

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी

यदि हो जाए ईश्वर के साथ साझेदारी

(मार्च १९८९ में शांतिकुंज परिसर में दिया गया उद्बोधन)

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्!

देवियो, भाइयो! जमीन के भीतर बेशकीमती चीजें भरी पड़ी हैं। इसमें हीरा है, सोना है, कोयला है, लोहा है और न जाने क्या-क्या भरा पड़ा है। जमीन की खुदाई करने पर हम इसमें तेल देखते हैं और दूसरी कीमती चीजें देखते हैं, पर बाहर हम सारी जमीन पर तलाश करते चले जाते हैं तो सिवाय घास-पात के, कूड़े-कचरे के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हीरा कहीं दिखाई नहीं पड़ता, सोना जमीन पर कहीं फैला हुआ नहीं पाया जाता। हमें बेशकीमती चीजें पाने के लिए जमीन की गहरी खुदाई करनी पड़ती है। ठीक इसी तरह जब हमने अपने भीतर में, अपने गेबान में मुँह डाला तो हमें बड़ी कीमती चीजें दिखाई पड़ीं। मैं चाहता हूँ कि आप लोगों को यहाँ बुलाकर अपनी वही मनःस्थिति आपके सामने दिल खोल करके दिखा पाता तो आप भी मेरी तरह धन्य हो जाते।

जीवन के दो कीमती हिस्से

मित्रो! मेरे फरिश्ते ने जिंदगी के दो कीमती हिस्से मुझे दिखाए—एक शुरुआत वाला और दूसरा आखिरी वाला हिस्सा। दोनों ही हिस्से इतने बेशकीमती थे कि इनके बराबर और कोई कीमती चीज किसी की जिंदगी में हो नहीं सकती है। जिंदगी का पहला वाला सिरा मेरे फरिश्ते ने मुझे दिखाया और मैंने देखा कि भगवान ने बेशकीमती नियामत मेरे हाथ में सौंप दी है। कितने बड़े हीरों का हार, जिसकी कोई कीमत नहीं हो सकती। और चीजों की बड़ी कीमत है, पर जिंदगी से बढ़कर और कोई नियामत दुनिया में हो ही नहीं सकती, जो भगवान इनसान को सुपुर्द करता है। मनुष्य की जिंदगी जो किसी और प्राणी को नहीं मिल सकी। मनुष्य की जिंदगी जिसके लिए देवता तरसते हैं और ये कहते हैं कि हमको मनुष्य की जिंदगी मिलनी चाहिए; क्योंकि इसमें कर्म का भी आनंद है। देवयोनि में कर्म का आनंद नहीं है। देवता भोगयोनि हैं और पशु भी भोगयोनि

हैं, पर मनुष्य योनि में खट्टे-मीठे आनंद हैं। वह कर्म भी कर सकता है और भोग भी सकता है। ऐसा सुरदुर्लभ मनुष्य का जीवन जो किसी और प्राणी को नहीं मिला। चौरासी लाख योनियों में से किसी का नहीं मिला। इतना बेशकीमती जीवन मुझे भगवान ने दिया है। सिर ऊँचा हो गया, सीना तन गया। मनुष्य का जन्म इतना सामर्थ्यवान है कि आदमी अगर इसका सही तरीके से इस्तेमाल कर सके तो दूसरा भगवान बन सकता है। मैंने इसे बड़े गौर से देखा, घूर-घूर कर देखा, इसकी कीमत को देखा, नाप-तोल करके देखा और मेरे फरिश्ते ने मुझे दिखाया।

साथियो! इतनी बड़ी चीज पाकर इसका ठीक तरीके से इस्तेमाल करना भी एक बड़ी बात है। कोई बाप लाखों-करोड़ों रुपए की संपत्ति देकर जाए और उसके बेटे कपूत निकलें, सारी-की-सारी दौलत को जुआखोरी में और शराबबाजी में खरच कर डालें तो कोई क्या कर सकता है! उसमें बाप की क्या गलती हो सकती है! इतनी कीमती चीज है, अब इसका मुझे ठीक से इस्तेमाल करना होगा। मेरे गुरु ने मुझे बताया कि देख मानव जीवन कितना कीमती है, क्या तू इसे समझ पाया है? मैंने कहा, हाँ, यह बेशकीमती है। इससे बढ़िया और कोई दौलत प्राणी के लिए नहीं हो सकती, जितना इनसानी जीवन है। मैं धन्य हो गया, निहाल हो गया। मैंने जिंदगी का एक सिरा देखा, जो मेरे फरिश्ते ने मुझे दिखाया। कब? आज से पचपन वर्ष पहले, उन दिनों ये ही वसंत के दिन चल रहे थे।

मित्रो! मेरे फरिश्ते ने मुझे एक और जिंदगी का हिस्सा दिखाया। वह कौन-सा हिस्सा? वह आखिरी वाला हिस्सा। कौन-सा वाला? जिस दिन आदमी को मौत आती है। मौत को मैंने देखा। एक बार देखा, दो बार देखा, तीन बार देखा। तीन जन्मों का हाल जब मुझे दिखाया तो तीन बार अपने आप को मरते हुए देखा। मरते समय में आदमी को कितनी कसक, कितनी पीड़ा, कितना पश्चात्ताप, कितनी व्यथा, कितनी जलन, कितना हाहाकार उसके भीतर होता है। वे सारी-की-सारी घटनाएँ—न सिर्फ दृश्य मैंने देखा है, बल्कि

मैंने जलते हुए अपना शरीर देखा और वह कसक, वे पीड़ाएँ भी देखीं जो मैंने गँवा दी थीं। जिंदगी मामूली कामों में खरच कर डाली, कसक का कोई ठिकाना न रहा। पश्चात्ताप का कोई ठिकाना न रहा, क्रंदन का कोई ठिकाना न रहा, हा-हाकार का कोई ठिकाना न रहा, चीत्कार का कोई ठिकाना न रहा। हा! मैंने कैसी धूल कर डाली। इस इनसानी जिंदगी को अच्छे काम में खरच कर सकता था, लेकिन मैंने इसको कीड़े-मकोड़ों के तरीके से खरच किया।

पेट-प्रजनन का जीवन

कीड़े और मकोड़े दो काम के लिए जिंदा रहते हैं—एक पेट पालते रहते हैं और दूसरे औलाद पैदा करते रहते हैं। दो के अलावा तीसरा कोई काम नहीं कर सकते। न इनमें अक्ल होती है, न हिम्मत होती है, न बुद्धि होती है, न समझ आती है, न परिस्थिति होती है, न साहस होता है। कुछ नहीं होता। दो काम करते रहते हैं। जब से पैदा होते हैं, पेट पालते हैं और औलाद पैदा करते हैं और मर जाते हैं। उसी तरीके से मेरा भी जन्म हुआ और मैं भी मरा। रो पड़ा कि अब जब यह जिंदगी खत्म होगी, तब मुझे कहाँ जाना पड़ेगा? किन योनियों में जाना पड़ेगा, न जाने कहाँ कहाँ जाना पड़ेगा? कितना कष्ट उठाना पड़ेगा। यह मैंने मौत के दिन देखा। मौत की घड़ी देखी, मैंने अपनी लाश चिता के ऊपर पड़ी हुई देखी। चीत्कार कर उठा कि हाय रे, अभाग! मैं ! न जाने किन-किन समस्याओं को कीमती समस्या समझता था, अगर मुझे एक ही कीमती समस्या समझ में आ गई होती कि जिंदगी का ठीक-ठीक उपयोग करना, तो मजा आ जाता।

मित्रो! छोटी-छोटी समस्याएँ—मकान में छप्पर नहीं पड़ सका, मकान में टीन नहीं पड़ सकी, इस लड़की को वकील जमाई नहीं मिल सका, इस लड़के की बहू को इतना जेवर न मिल सका। ये छोटी-छोटी बच्चों की खिलवाड़ जैसी राई-रती भर समस्याएँ हैं। जिनसे आदमी के लिए न कुछ नुकसान हो सकता है, न फायदा हो सकता है। इन राई-रती समस्याओं को मैं पहाड़ के बराबर समझता रहा और उन्हीं में उलझा रहा। लेकिन वह समस्या, जिसके लिए कीमती जिंदगी दी गई थी, उसके बारे में विचार न कर सका। मैं रो पड़ा। ऐसे ही मैंने कई बार देखा, पिछले तीन जन्मों के अतिरिक्त। मेरे गुरु ने मुझे दिखाया और मुझे चौंका दिया। मैं चौंक पड़ा और मैंने उनके चरणों को पकड़कर कहा—बताइए, मुझे क्या करना चाहिए? उन्होंने कहा—एक ही काम करना चाहिए और वह यह है कि जिंदगी की कीमत समझनी चाहिए। जिंदगी का ठीक इस्तेमाल

क्या हो सकता है, इसके बारे में गौर करना चाहिए। इतनी हिम्मत इकट्ठी करनी चाहिए, जिससे कि जिंदगी का श्रेष्ठतम उपयोग करना संभव हो सके। इतना ही करना चाहिए, और कुछ नहीं करना चाहिए। आज से पचपन साल पहले मेरे गुरुदेव ने मुझे बताया और मैं चौंक पड़ा और जाग गया।

प्रसूति से जाग्रति

मैं चाहता था कि आप सब मित्रों को बुलाकर बताऊँ, ताकि आपको भी ऐसा ही मौका मिल जाए, कदाचित् आप भी चौंक पड़ें और आप भी जाग जाएँ। आप भी जिंदगी की कीमत को समझ पाएँ। जिंदगी जब हाथ से निकल जाती है, तब हमको किन-किन परिस्थितियों में रहना पड़ता है, इसके बारे में कदाचित् आपको भीतर से हूक पैदा हो जाए, कदाचित् आपके भीतर से जाग्रति उत्पन्न हो जाए, चेतना उत्पन्न हो जाए तो मजा आ जाए। आप भी मेरे तरीके से धन्य हो जाएँ। मैं चाहता था कि आपको भी उसी तरह का मौका मिले, जैसा कि मुझे धन्य बनने का मौका मिला। जिस तरह से मैं जाग पड़ा और समझ गया कि जिंदगी कीमती है और मैं उसका ठीक से उपयोग करूँगा। कीड़े-मकोड़ों की तरह, जानवरों की तरह नहीं जीऊँगा, वरन् आदमी के तरीके से जीऊँगा। जिस काम के लिए भगवान ने मुझे पैदा किया है, उसे पूरा करने का मैंने निश्चय कर लिया, संकल्प कर लिया कि जीऊँगा तो ऐसे ही जीऊँगा।

मित्रो! अब क्या करना चाहिए? क्या कदम बढ़ाना चाहिए? मैंने फिर अपने उसी फरिश्ते से दूसरा सवाल किया कि जब आपने मुझे जगा ही दिया है और यह बता दिया है कि जिंदगी का ठीक उपयोग करना चाहिए तो आप ही बताइए कि मुझे अब क्या करना होगा? उन्होंने मुझे दूसरी शिक्षा दी कि दुनिया में एक ही समझदारी है कि अकेला आदमी लंबी मंजिल नहीं पार कर सकता। लंबी मंजिल पार करने के लिए दो टाँगों की जरूरत होती है। दो पैरों पर चलकर ही हम लंबी मंजिल पूरी कर सकते हैं। दो हाथों से ही सारा काम चलता है। एक हाथ से काम कहाँ हो पाता है! एक टाँग से सफर कहाँ हो पाता है! जिंदगी की नाव पार करने के लिए दो सहयोगियों की जरूरत होती है। अतः तुम भी दूसरा सहयोगी तलाश करो।

मैंने कहा—गुरुदेव! इससे आपका क्या मतलब है? कहीं ब्याह-शादी करने से तो नहीं है? नहीं, ब्याह-शादी करने से मतलब नहीं है। जिस तरह नाव से नदी को पार

करने के लिए दो हाथों की और दो पतवारों की जरूरत पड़ती है, उसी तरह आपको भी एक और सहायक ढूँढ़ लेना चाहिए। तो आप बताते क्यों नहीं कि मुझे कौन-सा सहायक ढूँढ़ लेना चाहिए? उन्होंने कहा कि भगवान को एक सहायक के रूप में ढूँढ़ लेना चाहिए। और दूसरा? दूसरा एक इन्सान को। एक इन्सान और एक भगवान, दोनों को आप साझी बना लीजिए, फिर देखिए, कैसा मजा आता है! फिर देखिए कि जिंदगी की नाव कैसे आगे चलती है! और फिर देखिए कि उन्नति का रास्ता कैसे खुलता है! मेरे गुरु ने, मेरे फरिश्ते ने मुझे यही रास्ता बताया।

साझेदारी का मर्म

मित्रो! फिर मैंने पूछा कि मुझे क्या करना होगा? उन्होंने कहा कि तुम्हें मालूम नहीं है कि जो दुकानदार होते हैं, व्यापारी होते हैं, वे क्या काम करते हैं? आप ही बताइए, मुझे तो मालूम नहीं है। उन्होंने कहा कि वे बैंक के साथ साझेदारी कर लेते हैं। कैपिटल बैंक का होता है, पचहत्तर प्रतिशत पैसा बैंक से आता है, पच्चीस प्रतिशत अपना होता है। गवर्नमेंट भी ऐसे ही लोन देती रहती है। जमीन अपनी खरीद लीजिए और लोन सरकार से ले लीजिए। कारखाना अपना लगा लीजिए, मशीनें अपनी लगा लीजिए, कैपिटल बैंक का इस्तेमाल कीजिए। बैंक बराबर देती रहती है। भगवान एक बैंक है। अगर हम इसकी साझेदारी अपनी जिंदगी में कर लें तो हमारे जीवन की तिजारत और हमारे जीवन का व्यापार ठीक तरीके से चल सकता है। अकेले चलाएंगे तब? बेटे, अकेले तो बहुत मुश्किल है।

अपनी भुजाओं की ताकत से, अपने पुरुषार्थ से, अपनी अक्ल से हम बहुत थोड़ी मंजिल पार कर सकते हैं, लेकिन अगर एक टाँग हमारी और एक टाँग भगवान की, इस तरह की साझेदारी हो जाए तो मजा आ जाए। भगवान से साझेदारी कैसे होगी, बताइए? साझेदारी के बारे में घर वालों ने और दूसरों ने मुझे जो बात बता रखी थी, वह तो एक मजाक जैसी मालूम पड़ी, दिल्लीगी जैसी मालूम पड़ी कि प्रार्थना कीजिए, पूजा कीजिए, बस, साझेदारी खत्म। नहीं साहब! इस तरीके से साझेदारी नहीं हो सकती। साझेदारी की कुछ शर्तें होती हैं। बैंक पैसा देता है, लेकिन उसकी भी दो शर्तें होती हैं। एक शर्त यह है कि आपने जिस काम के लिए पैसा लिया हुआ है, उस काम में खर्च कीजिए। आपने मशीनें खरीदने के लिए पैसा लिया है, आपको अपने कुएँ में ट्यूब वेल लगाना है, आपको ट्रैक्टर खरीदना है। यही

लिखा है न आपने? नहीं साहब! अब ट्रैक्टर खरीदने से क्या फायदा! अब तो हम उसी पैसे से ब्याह-शादी करेंगे और तमाशा करेंगे। नहीं बेटे! यह गलत बात है। बैंक वाला नीलाम करा लेगा और जो कुछ पैसा दिया होगा, उसका रिफंड माँगेगा और फिर आपको तंग करेगा। आपको जिस काम के लिए पैसा मिला है, केवल उसी काम में खर्च कीजिए, और किसी में मत कीजिए। यह बैंक की शर्त नंबर एक है।

बैंक क्या है? बैंक माने भगवान। भगवान का अनुग्रह। आपने जिस काम के लिए प्राप्त करने की कोशिश की है, उसे उसी काम में खर्च कीजिए। यह भगवान का प्यार और अनुग्रह नंबर एक है। नंबर दो, ब्याज समेत उसे वापस कीजिए। मूलधन देने की कसम खाइए और यह कहिए कि हम आपका न केवल मूलधन देंगे, वरन् आपका धन ब्याज समेत वापस करेंगे। तभी बैंक आपको पैसा देना शुरू करेगा। नहीं साहब! हम तो यह नहीं कर सकते, आपका ब्याज भी वापस नहीं कर सकते और यह भी वायदा नहीं कर सकते कि जिस काम के लिए हमने माँगा है, उसी काम में खर्च करेंगे। तो फिर आपको कर्ज नहीं मिल सकता। तो फिर बैंक आपके कारखाने में कोई शेयर नहीं दे सकती और कोई सहायता नहीं दे सकती। भगवान के बारे में भी यही बात है, जिसके बारे में मेरे गुरुदेव ने कहा था कि तुमको भगवान का प्यार पाना चाहिए और भगवान की शक्ति और सहायता का सक्रिय लाभ उठाना चाहिए।

कोई शॉर्टकट नहीं

इसके लिए क्या करना पड़ेगा? दूसरे लोग तो भगवान के साथ मखौल करते हैं, दिल्लीगीबाजी करते हैं। दिल्लीगी-बाजी क्या होती है? यह होती है, जैसे 'लाठी से थन छूना।' कोई एक दिल्लीगीबाज था। उसने गाय का दूध पीने के लिए क्या किया? पोले बाँस की एक नलकी ली और गाय के थन से लगाई और हुक्के के तरीके से दूर से ही दूध पीने लगा। एक ने पूछा—महाशय जी! यह क्या कर रहे हैं आप? लाठी से गाय का दूध पी रहे हैं। नहीं साहब! लाठी से छूकर दूध नहीं पिया जा सकता। तो कैसे पिया जा सकता है? पहले आप गाय पालिए। उसे घास खिलाइए, चारा खिलाइए। तो क्या गाय को चारा भी खिलाना पड़ेगा, दाना भी खिलाना पड़ेगा, पानी भी पिलाना पड़ेगा, रखवाली भी करनी पड़ेगी और गाय को दुहना भी पड़ेगा? हाँ! नहीं साहब! अगर इतना झगड़ा है तो यह हम नहीं कर सकते। तो बेटे, गाय का दूध नसीब नहीं हो सकता। नहीं साहब!

मैंने तो यह सुना था कि लाठी लीजिए और उसकी नलकी को थनों में लगा दीजिए और चूस जाइए। इसके अतिरिक्त आपको और कुछ नहीं करना, न घास देनी है, न चारा देना है, न पानी पिलाना है, कुछ नहीं करना है।

क्या मतलब है इसका? इसका मतलब है कि माला घुमाइए और दूध पी जाइए। माला माने लाठी। लाठी गाय के थन से लगाइए और चूसते चले जाइए, बस, हो जाइए मालामाल। हो जाइए धन्य। आपको तो यही बताया गया है कि ग्यारह माला जपिए और देवी को प्रसन्न कर लीजिए, हनुमान जी को प्रसन्न कर लीजिए, गणेश जी को प्रसन्न कर लीजिए, सबको प्रसन्न कर लीजिए। हनुमान चालीसा का पाठ करिए, चावल, धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ा दीजिए। यही तो आपको बताया गया है न? हाँ साहब! अगर सारी दुनिया पागल है तो मैं भी पागल हूँ। हाँ बेटे, यह दुनिया सब पागल है। यह भगवान को अहमक समझती है। अहमक माने जड़मति, मूर्ख। अहमक माने वे आदमी जो केवल चापलूसी के आधार पर और छोटे-मोटे उपहार देने की कीमत के आधार पर जिस-तिस से फायदा उठाने का प्रयास करते हैं। लेकिन भगवान बड़े समझदार आदमी का नाम है। भगवान बड़े जिम्मेदार आदमी का नाम है। भगवान ने इतनी बड़ी दुनिया बनाई है, कायदे-कानून बनाए हैं, नियम और मर्यादाएँ बनाई हैं। यह नहीं हो सकता कि आप खुशामद के सहारे, चापलूसी के सहारे और छोटी-मोटी धूपबत्तियों का सहारा लेकर उसकी कृपा प्राप्त कर सकें।

भगवान की पूँजी में हिस्सेदारी

मित्रो! मैंने अपने गुरुदेव से कहा कि तो फिर आप ही बताइए कि मुझे क्या करना पड़ेगा? उन्होंने कहा कि भगवान को अपनी जिंदगी की तिजारत में हिस्सेदार बना लीजिए। मैंने भगवान को अपनी जिंदगी की तिजारत में हिस्सेदार बना लिया। कैसा हिस्सेदार? जैसे कि बैंक में वह आदमी हिस्सेदार हो जाता है, जो बैंक की पूँजी में अपना हिस्सा लगाता हुआ चला जाता है। मैंने भी भगवान के बैंक में अपनी पूँजी लगानी शुरू कर दी और भगवान ने भी अपनी पूँजी देना स्वीकार कर लिया। पहले ही दिन से भगवान की पूँजी मुझे मिलती हुई चली गई। जिस काम के लिए दरखास्त दी थी कि मुझे अमुक काम के लिए आपकी पूँजी की जरूरत है, उसी काम के लिए मैंने खर्च किया। भगवान की कृपा, भगवान का अनुग्रह, भगवान का प्यार अपने लिए मैंने खर्च नहीं किया। मुझे उसकी जरूरत क्या थी! पेट हमारा मुट्ठी भर का है। सो मुट्ठी भर अनाज से हम

छह इंच के पेट को पूरा भर सकते हैं। इसमें भगवान की सहायता की हमें कतई आवश्यकता नहीं है, लेकिन अगर हमारी हवस बढ़ी हुई है तो उसको कोई पूरा नहीं कर सकता। रावण की हवस पूरी न हो सकी, कंस की पूरी न हो सकी, हिरण्यकशिपु की हवस पूरी न हो सकी। सिकंदर की हवस पूरी न हो सकी। अगर आपकी भी हवस बढ़ी हुई है तो फिर भगवान भी उसे पूरा नहीं कर सकते। अगर वह इस मिट्टी में स्वयं भी गिरे, तो भी आपकी हवस को पूरा नहीं कर सकता।

मित्रो! अपनी जरूरत के लिए आपको भगवान के सामने खुशामद करने और नाक रगड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। भगवान ने दो देवता पहले ही हमारे सुपुर्द कर दिए हैं और यह कहा है कि ये देवता ही सामान्य मनुष्य की

उपनिषद् में एक कथा है। भगवान किसी पर प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, “वर माँगो।”

भक्त ने कहा, “प्रभो! मैं क्या जानूँ और कौन-सा वर माँगूँ? मुझे इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि मेरे लिए क्या योग्य है। तुम्हीं सब कुछ जानते हो। जो मेरे लिए उचित हो। वह तुम्हीं दे दो।”

और वह भक्त परीक्षा में पास हो गया।

जिंदगी की जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। और वे देवता हैं हमारे दो हाथ। छह फीट लंबा हमारा शरीर है और छह इंच लंबा हमारा पेट है। हम घास खोद सकते हैं, रिक्शा चला सकते हैं और दूसरा काम कर सकते हैं और अपना पेट भरने के लिए दाने मुहैया करा सकते हैं। हमारी अक्ल इतनी है कि तन ढकने के लिए कपड़े और शरीर को जिंदा रखने के लिए छाया हम अपनी अक्ल के सहारे इकट्ठा कर सकते हैं। अनाज पैदा कर सकते हैं। इसके लिए भगवान से क्या कहना! नहीं साहब! भगवान से दौलत माँगेंगे और संपत्ति माँगेंगे। आप दौलत क्यों माँगेंगे और किस काम के लिए माँगेंगे? अरे साहब! हम मालदार बनना चाहते हैं, बड़े आदमी बनना चाहते हैं और अपनी हवस पूरी करना चाहते हैं।

नहीं बेटे! यह भगवान का काम नहीं है। यह दूसरों का काम है। इसका भगवान से कोई ताल्लुक नहीं है। नहीं साहब! हम तो लक्ष्मी जी की पूजा इसीलिए करते थे। नहीं

बेटे, लक्ष्मी जी की पूजा इस काम के लिए करने की जरूरत नहीं है। इसके लिए दूसरा रास्ता है, तुम तो वह रास्ता ही भूल गए, भटक गए। साहब! हम तो बच्चे पैदा करने के लिए हनुमान जी को खुश कर रहे थे। नहीं बेटे, हनुमान जी की पूजा करने की जरूरत नहीं है। हनुमान जी कैसे आपको बच्चे देंगे, उनके खुद बच्चे नहीं हैं। तो फिर किसकी पूजा करूँ? रावण की कर, क्योंकि रावण के एक लाख पूत और सवा लाख नाती थे। हनुमान जी की पूजा से क्या लाभ जब उनके यहाँ बच्चे हैं ही नहीं! तो तुझे कहाँ से देंगे! पागल कहीं का, हनुमान जी की पूजा करेगा! साहब! हम तो शंकर जी की पूजा करते हैं। किसलिए करता है? इसलिए करता हूँ, ताकि धन मिल जाए। शंकर जी के पास धन था क्या? मकान था क्या? नहीं था। कपड़ा था क्या? नहीं था। नंग-धड़ंग मरघट में पड़े रहते थे। उनके अपने घर में तो लक्ष्मी है नहीं, तुझे और लक्ष्मी दे जाएँगे! गुरु जी! मैं तो इसीलिए भजन करता था। नहीं बेटे, इसके लिए भजन करने की जरूरत नहीं है।

मिला असली अध्यात्म

मित्रो, असली अध्यात्म, जिसको पाकर मैं निहाल हो गया, धन्य हो गया, उसका तरीका आपको समझा रहा था। उसकी साइंस और फिलॉसफी समझा रहा था, जो आज से पचपन वर्ष पहले मुझे सिखाई और समझाई गई थी। सारी जिंदगी मैं उसी पर चला और अपनी जिंदगी में भगवान को हिस्सेदार बना लिया। जो जिंदगी की दौलत है, उसमें से मैंने शरीर को भी अपना हिस्सा दिया और भगवान को भी हिस्सा दिया। कमाई में दोनों हिस्सेदार हैं। जो हम कमाते हैं, हमारे पास जो संपत्ति है—मसलन श्रम, बुद्धि, साधन, समय—ये भगवान की दी हुई संपदाएँ हैं। हम अपने जीवन की कमाई में इसे कमाते हैं। श्रम इस वक्त हमारे पास है। श्रम की ताकत हमारे पास है। पैसे की ताकत हमारे पास है। इसे हम दोनों में बाँट देंगे। शरीर को भी देंगे, क्योंकि यह हमारी सवारी है। यह हमारा घोड़ा है। घोड़े के लिए भी घास चाहिए। उसे घास नहीं देंगे तो हमको लंबा सफर तय करना है, घोड़ा जिएगा कैसे! शरीर को खुराक हम जरूर देंगे। कितनी खुराक देंगे? इसके बारे में भी तय करना पड़ा। यह कहा गया कि जिस देश के हम नागरिक हैं, जिस देश में हम रहते हैं, वहाँ औसत भारतीय स्तर का स्टैंडर्ड हमारा होना चाहिए। औसत भारतीय स्तर का हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

हिंदुस्तान अपने सामान्य नागरिक को क्या भोजन दे सकता है? क्या वस्त्र दे सकता है? उसे किस स्तर की

जिंदगी जीनी पड़ सकती है? यही हमारा स्टैंडर्ड है। आप अमेरिका में जन्मे हैं तो आपका स्तर दूसरा हो सकता है। अमेरिकी नागरिक को खरच करने के लिए जो पैसा मिलता है, उसमें से आप खरच करें और उस स्टैंडर्ड का जीवन जिएँ। अगर आप यहाँ बढ़िया स्तर बनाते हैं, ऊँचा स्तर बनाते हैं तो यह एक गलत बात है। फिर यह आध्यात्मिक जीवन नहीं रह जाता। सामान्य स्तर का जीवनयापन करने के लिए जो खरच करने की जरूरत थी, हमने अपने शरीर के लिए खरच किया। अब रही कुटुंब की समस्या? कुटुंब

एक दिन एक गृहस्थ ने महात्मा रामानुज से प्रश्न किया कि महात्मन्! क्या ऐसा कोई मार्ग नहीं है कि यह संसार भी न छोड़ना पड़े और स्वर्ग भी पा लूँ।

रामानुज हँसे और बोले, “हाँ, है ऐसा मार्ग, तुम जो कुछ कमाओ, ईमानदारी से कमाओ और जो कुछ व्यय करो, सदा दूसरों की भलाई के लिए करो।”

गृहस्थ को संदेह हुआ। उसने पूछा, “मगर ऐसे कठिन मार्ग पर कौन चल सकता है?”
रामानुज ने दृढ़ विश्वास के साथ कहा, “जो नारकीय यातनाओं से बचना चाहता होगा और जिसे ईश्वरप्राप्ति की सच्ची लगन होगी।”

की समस्या का समाधान करने के लिए अपने कुटुंबियों को उनकी मनमरजी की दौलत उनके सुपुर्द कर देने से समस्या का हल नहीं हो सकता। विचार करना पड़ा कि जिनके कर्ज हमारे ऊपर चढ़ चुके हैं, वे भी इसमें हिस्सेदार हैं, जिनका कर्ज चुकाना अभी बाकी है। अभी हमको माँ का कर्ज चुकाना बाकी है, बाप का कर्ज चुकाना बाकी है। बाप की इतनी लंबी जिंदगी से हमने खाया है और अपनी माँ का हमने दूध पिया है। सबसे पहले हम इनका कर्ज चुकाएँगे, साहूकारी तब करेंगे। माता-पिता के बाद छोटे भाई-बहन का, छोटे बच्चों का भी कर्ज चुकाना है। छोटे भाई-बहनों को पढ़ाना पड़ेगा और उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने लायक बनाना पड़ेगा। हमें उनके लिए भी खरच करना है। नहीं साहब! हमारे घर में छोटा बच्चा है। मैं तो बेटे को ही दूँगा, और चार बेटे पैदा करूँगा और उन पर चार लाख

खरच करूँगा। बेईमान कहीं का, केवल बेटे को ही दंगा, अन्यो को नहीं।

आँखें खुलीं, प्रकाश मिल गया

मित्रो! मेरी आँखें खोल दीं भगवान ने और यह कहा कि तू हमारी जिंदगी में हिस्सेदार है। तू हमारे लिए काम कर। मित्रो! मेरी आँखें वहीं से और उसी दिन से खुल गई। आँखें खुल जाने का मतलब है—अध्यात्म का प्रकाश मिल जाना। जिस प्रकाश के लिए हम प्रार्थना करते हैं— तमसो मा ज्योतिर्गमय हे भगवान! आप प्रकाश दीजिए, जीवन में चमक पैदा कीजिए। चमक किसे कहते हैं? प्रकाश किसे कहते हैं? प्रकाश इसे कहते हैं, जो मैं आपसे निवेदन कर रहा था, जिससे कि मेरी आँखें खुल गई। अँधेरे में भटकता हुआ प्राणी, अँधेरे में भटकता हुआ भूत और प्रेत प्रकाश पाकर निहाल हो जाता है। मित्रो! आज से पचपन वर्ष पहले मैं मनुष्य बन गया, देवता बन गया। पचपन वर्ष पहले की लंबी वाली मंजिल को एक-एक कदम पार करके बढ़ता हुआ चला आ रहा हूँ और यहाँ आ गया हूँ, जहाँ कि आपके सामने खड़ा हूँ।

अब क्या सवाल रह गया? अब बेटे, यह सवाल रह गया कि जिस अध्यात्म की प्रशंसा ऋषियों ने गाई, पुस्तकों में गाई गई, राम-नाम की महत्ता जो संसार ने गाई, गायत्री मंत्र की महत्ता, जिसके बारे में अथर्ववेद ने जाने क्या से क्या कह दिया। कई बार तो संदेह होता है और अविश्वास

होता है कि ये बातें गलत हैं, ये बातें सही नहीं हैं, जो बताई गई हैं। जिस गायत्री मंत्र की महत्ता को मैं आपको सिखाता हूँ और सारी दुनिया को समझाता हूँ, उसके बारे में अथर्ववेद में क्या समझाया गया है? उसके बारे में यह बताया गया है—“स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।” ये सात चीजें याद करनी हैं। महाराज जी! हमको तो तीन साल हो गए, तीन माला रोज जप करते हैं, लेकिन हमें तो कोई चमत्कार नहीं दिखाई पड़ा। हाँ बेटे, न तीन साल में मिला है और अब तेरी जिंदगी के जो तीस साल बचे हैं, न उसमें कोई मिलने वाला है। काहे को शाप दे रहे हैं? बेटे, इसलिए दे रहा हूँ कि न तुझे गायत्री मंत्र के बारे में कोई जानकारी है और न गायत्री मंत्र में खाद और पानी कैसे लगाया जाता है, इसका तुझे ज्ञान है। बीज बोने का तुझे ज्ञान है। वृक्षारोपण हर साल होता है। मिनिस्टर लोग आते हैं और जगह-जगह पेड़ लगा देते हैं। रोज अखबारों में छपता है कि एक लाख पेड़ लगाए गए। खाद-पानी दिया नहीं, रखवाली हुई नहीं, सब पेड़ गाय ने खा लिए, जानवर चर गए। गायत्री मंत्र को भी आप खाद-पानी नहीं लगा सकते, केवल बीज बोकर के, माला घुमा करके उसमें चमत्कार देखना चाहते हैं, तो यह नहीं हो सकता। (क्रमशः)

□

नीशापुर के संत अहमद से कुछ शिष्य बोले, “महाराज, हमें ईश्वर के किसी सच्चे भक्त के बारे में बताइए।” संत ने कहा, “तो सुनो, बहराम मेरा पड़ोसी था। मुझसे उसकी मित्रता हो गई। वह मालदार व्यापारी था। एक दिन राह में डाकुओं ने उसके कारवाँ को लूट लिया। सुनकर मैं उसे ढाढस बँधाने गया। जब मैं उसके घर पहुँचा, बहराम ने सोचा—शायद दूसरों की तरह मैं भी भोजन के लिए आया हूँ। मैंने उससे कहा, “भाई कष्ट मत करो। मैं भोजन की आशा से नहीं, बल्कि तुम्हारे इस भारी नुकसान में तुम्हें ढाढस बँधाने आया हूँ।” इस पर बहराम बोला, “हाँ, यह सच है कि मुझे लाखों का नुकसान हुआ है। मगर कृपा है ईश्वर की कि उन्होंने मेरी शाश्वत संपत्ति को हाथ तक नहीं लगाया है। वह संपत्ति है—ईश्वर में मेरी आस्था। वही तो जीवन की सच्ची संपत्ति है।” संत बोले, “सत्पुरुषों की श्रेष्ठता उनकी आस्था के स्तर के आधार पर ही पनपती है। अनास्थावान न भक्त हो सकता है, न सज्जन।”

यदि हो जाए ईश्वर के साथ साझेदारी-२

(गतांक से आगे)

मित्रो! अब मैं अपना बिस्तर समेटने की फिकर में हूँ। बिस्तर समेटने के फेर में हूँ। दूसरी जिम्मेदारियों ने मुझे बुलाया है। दूसरे मोरचे पर भी बहुत काम पड़ा हुआ है। हिंदुस्तान में आध्यात्मिकता का प्रकाश फैलाने के लिए जितना काम मेरे जिम्मे था, वह लगभग पूरा हो गया। हिंदुस्तान में काम करने के लिए जो कुछ और मेरे जिम्मे बचा हुआ है, उसे एक-दो वर्ष में समाप्त करके उसका किस्सा खत्म करूँगा। फिर मैं कहाँ जाऊँगा? फिर मेरा ट्रांसफर तैयार किया हुआ रखा है। मेरा बिस्तर बँधा हुआ रखा है। मैं कहीं और चला जाऊँगा। आप कहाँ-कहाँ जाएँगे? बेटे, मुझे बहुत जगह जाना है। हिंदुओं के बीच में मुझे काम करने के लिए हिंदू बनकर आना पड़ा। अब कहाँ जाना पड़ेगा आपको? बेटे, सारे हिंदुस्तान में तो हिंदू बत्तीस-तैंतीस करोड़ हैं और दो करोड़ बाहर हैं। सारी दुनिया में चौतीस करोड़ हिंदू हैं। अभी और कौन हैं, जहाँ आप जाएँगे? बेटे, अस्सी करोड़ मुसलमान हैं, संभव हैं, मुझे वहाँ जाना पड़े। क्या आप वहाँ भी यही हिंदुओं की तरह क्रांति करेंगे? बेटे, यही क्रांति मैं वहाँ भी कर सकता हूँ। फिर बहुत जगह मेरे ट्रांसफर बने हुए पड़े हैं? मैं बिस्तर उठाने वाला हूँ।

आपको यहाँ बुलाने का उद्देश्य

साथियो! मैं आपको यहाँ क्यों बुलाता हूँ? मैं आपको यहाँ सम्मेलनों के लिए, उद्घाटनों के लिए नहीं बुलाता हूँ। समारोहों में भाग लेने के लिए आपको नहीं बुलाता हूँ। मैं किसलिए बुलाता हूँ? मैं इसलिए बुलाता हूँ कि अपनी जिंदगी का सार और निचोड़ आपके सामने सुपुर्द करने में सफल हो सकूँ। मेरी पचपन साल की जिंदगी के अनुभव यही हैं कि मनुष्य के लिए सबसे बड़ी समझदारी की बात और सबसे बड़ी बहादुरी की बात यह है कि वह भगवान को अपनी जिंदगी में शामिल कर ले और अपनी जिंदगी की कीमत समझे। अगर आप अपनी जिंदगी की कीमत समझ लें, जैसा कि आपको अभी तक समझ में नहीं आई। जिंदगी की कीमत आपकी समझ में कहाँ आई है? आप करोड़ों में अपने को दरिद्र मानते हैं, अपने को दुखी मानते

हैं, अपने आप को अभागा मानते हैं। समस्याओं से अपने आप को घिरा हुआ मानते हैं और जाने क्या-क्या मानते हैं। कभी-कभी तो मरने की बात सोचते हैं, आत्महत्या की बात सोचते हैं। जिंदगी की कीमत आपको कहाँ मालूम है? जिंदगी का महत्त्व आपको कहाँ मालूम है? जिंदगी की सामर्थ्य आपको कहाँ मालूम है? जिंदगी की संभावनाएँ आपको कहाँ मालूम हैं? जिंदगी की संभावनाएँ अगर आपको मालूम होतीं तो आपकी आँखें टॉर्च के तरीके से चमकती और आपकी गरदन फूलकर शेर की तरह हो जाती और आप सोचते कि हमारे पास इनसानी जिंदगी है। इस जिंदगी से हम जाने क्या-क्या कर सकते हैं?

मित्रो! इनसानी जिंदगी को गिराने वाले जिस दिन चौंक पड़े और उन्होंने इसे ठीक तरह से इस्तेमाल करना शुरू कर दिया तो उन्हें मजा आ गया। कौन-कौन चौंक पड़े? बेटे, उनमें से एक का नाम आम्रपाली है, जो दुनिया को गिराने वाली एक महिला थी। लेकिन जब उसने जिंदगी की धाराएँ बदल दीं तो धन्य हो गई। फिर क्या हो गई? फिर ऐसी ऋषि हुई कि तवारीख में उसका नाम हमेशा बना रहेगा। अंगुलिमाल एक निकम्मा आदमी था, घटिया आदमी था। चोर और डाकू था, लेकिन उसने इसी जिंदगी में अपने जीवन की धारा बदल दी। अगले जन्म की बात कौन कर रहा है? हम तो इसी जन्म की बात कहते हैं। अरे साहब! अगले जन्म में संत हो जाएँगे, स्वर्ग में चले जाएँगे। नहीं बेटे, अगले जन्म में नहीं, इसी जन्म की बात कहते हैं हम। अंगुलिमाल ने अपने जीवन की दिशा-धारा इसी जीवन में बदल दी और भगवान बुद्ध का दाहिना हाथ बन गया।

प्रभु के तारने का तरीका

अजामिल, गीध, गणिका तारे, तारे सदन कसाई। क्यों महाराज जी! भगवान इन्हें तार देते हैं? बिलकुल तार देते हैं। कैसे? तार देने का एक ही तरीका है कि आदमी चौंक पड़ता है और अपनी जिंदगी की दिशाएँ बदल देता है। तो क्या भगवान ने बिल्वमंगल को तारा? बिलकुल तारा, लेकिन तारने से पहले उनको सूरदास बना दिया। तारने से पहले भगवान उनकी जिंदगी की दिशाएँ बदल देते हैं। भगवान हमारा कल्याण करने वाले हैं कि नहीं, इसकी पहचान एक

ही है कि हमारे जीवन के स्वरूप और हमारे जीवन की दिशाधारा को बदल दें। अगर भगवान हमारे जीवन की दिशाधारा को बदल नहीं रहे हों तो जानना चाहिए कि हमारी कल्पनाएँ निरर्थक हैं। हमको भगवान में कोई रस आता है? भगवान से हमारा कोई संबंध है? बिल्कुल नहीं है। भगवान से अगर कोई संबंध रहा होता तो आपके जीवन की धाराएँ बदल गई होती। तुलसीदास जी निकम्मे आदमी थे, आपने उनके सारे किस्से सुने हैं, लेकिन जब भगवान ने उनको प्यार किया तो क्या-क्या हुआ? भगवान के प्यार में एक ही विशेषता है कि जैसे पारस लोहे को छुएगा तो उसे सोना बना देगा। तुलसीदास भी सोना बन गए। संत बन गए, ऋषि बन गए।

महाराज जी! हमारे घर में पूजा की एक चौकी बनी हुई है। उसमें देवी की स्थापना है, गणेश जी की स्थापना है, हनुमान जी की स्थापना है। तो गणेश जी ने तुझे छुआ क्या? नहीं, मुझे छुआ तो नहीं। लक्ष्मी जी ने तुझे छुआ? नहीं तो। किसी भगवान ने छुआ? गायत्री ने छुआ? नहीं, अगर छुआ होता तो बेटा तू सोना हो जाता, पारस हो जाता। नहीं महाराज जी! मुझे तो देवी सपने में दिखाई पड़ती है। मुझे नहीं मालूम क्या दिखाई पड़ती है बेटे, अगर देवी सपने में दिखाई पड़ी होती तो तू अपने जीवन में क्या-से-क्या बन गया होता।

मित्रो! मैंने आपको इसलिए बुलाया है कि अब जब मैं जाने की तैयारी में हूँ, अगर आप में समझदारी हो तो आप एक हिम्मत करके दिखाएँ कि भगवान के साथ रिश्तेदारी पैदा कर लें। रिश्तेदारी करने के बाद मनुष्य क्या पा सकता है? बेटे, मैं कुछ कह नहीं सकता। उदाहरण मैंने बीसियों बार छापे हैं। रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद का किस्सा मैंने छपा है। ये मनुष्यों की सहायता की जोड़ियाँ छपी हैं। चाणक्य और चंद्रगुप्त का किस्सा, समर्थ गुरु रामदास और शिवाजी का किस्सा छपा है। मांधाता और शंकराचार्य का किस्सा छपा है। लालबहादुर शास्त्री और जवाहरलाल नेहरू का किस्सा छपा है और मित्रो, अहिल्याबाई का किस्सा छपा है। अहिल्याबाई का किस्सा तो और भी मजेदार है।

अहिल्याबाई इंदौर की महारानी

अहिल्याबाई कौन थी? इंदौर की महारानी थी। तुकोजीराव एक बार चीते का शिकार खेलने के लिए कहीं देहात में गए। उन्होंने बंदूक चलाई तो चीता घायल हो गया और भाग करके एक झाड़ी में छिप गया। राजा अपनी

बहादुरी दिखाना चाहते थे कि हम चीता मारकर लाए हैं और यह डर भी लगता था कि चीता घायल हुआ है, कहीं हमला कर दिया तो घोड़े को मार डालेगा, हम को मार डालेगा। तुकोजीराव यही सोचकर झाड़ी के चारों ओर चक्कर काट रहे थे कि देखें चीता मर गया या जिंदा है। घोड़ा खेत में चक्कर काटता तो किसान का खेत खराब होता था। एक अठारह-उन्नीस साल की किसान की लड़की ने बाहर आकर कहा, घोड़े वाले भाईसाहब! हाँ! आप हमारा खेत तबाह किए डालते हैं, घोड़े को बार-बार घुमाकर। यह कोई सड़क है क्या? आप खेत में घोड़ा घुमाते हैं, इसका क्या मतलब है? महाराज ने कहा, हमने शिकार मारा था, जो घायल होकर यहाँ छिप गया। कहाँ छिप गया? झाड़ी में। अब हम इस चक्कर में हैं कि या तो चीता हमारे हाथ लगे या चीता कहाँ गया है, यह हमें पता चले। इसलिए हम घोड़े को घुमाते हैं। हम तुम्हारे खेत को नहीं बिगाड़ना चाहते हैं। लड़की ने कहा, अगर आप शिकार खेलने के शौकीन हैं तो चीते का मुकाबला कीजिए। चीता को पकड़िए या मारिए। हमारा खेत क्यों खराब करते हैं। चीता तो बड़ा भयंकर होता है, तुझे मालूम नहीं है। हमला कर देगा तो मार डालेगा। तो क्या आप मरने से डरते हैं और चीते का शिकार भी करते हैं। चलिए, बैठिए और घोड़े को यहाँ बाँधिए।

वह छोकरी एक लंबा डंडा लेकर आई और बोली कहाँ है आपका चीता? शायद इस झाड़ी में छिपा हुआ मालूम पड़ता है। लड़की चमड़े के जूते पहन करके झाड़ी में दनदनाती हुई चली गई। उसने देखा कि चीता वहाँ बैठा हुआ था। उसने एक ढेला फेंका। ढेला लगते ही चीता उसे मारने के लिए आया। डंडे को लेकर वह उस पर पिल पड़ी। दाँत तोड़ डाले और उसके मुँह में डंडा ठूस दिया और उसको मारकर गिरा दिया। थोड़ी घायल तो हुई, लेकिन वह लड़की चीते की पूँछ पकड़कर घसीटती हुई ले आई और महाराज के सामने पटक दिया और कहा—ले जाइए आप चीता, पर हमारा खेत मत खराब कीजिए। चीते को देखकर राजा दंग रह गए। एक बार लड़की के चेहरे की तरफ देखा, फिर मरे हुए चीते की तरफ देखा। जिंदा वाले चीते को वह देख ही चुके थे। राजा साहब हक्का-बक्का रह गए। उन्होंने पूछा, लड़की तू कौन से गाँव की रहने वाली है? हम तो इसी गाँव के रहने वाले हैं। तेरे घर में? हमारा बाप है, जो पड़ोस में ही काम कर रहा है इसी खेत में। हम दोनों खेती का काम करते हैं। हमें उनके पास ले चलो। चलिए, अपने पिता के पास ले गई।

महाराज ने घोड़े रो नीचे उतरकर उसके पिता को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। किसान ने कहा, आप कौन हैं? हम इंदौर के राजा हैं, जिसकी रियाया आप हैं, यह गाँव है। आप राजा साहब हैं, हमसे क्या गलती हो गई? गलती कुछ नहीं हुई। हम तो आपसे एक प्रार्थना करने आए हैं, एक भीख माँगने आए हैं। क्या? यह कि अगर आपकी दया और कृपा हो जाए तो आप इस लड़की का हमसे ब्याह कर दीजिए। इंदौर के महाराज से? हमारी बेटी रानी बन सकती है, आप यह क्या कह रहे हैं? मैं सपना देख रहा हूँ या कोई दृश्य। नहीं, आप सपना नहीं देख रहे हैं। हम इंदौर के महाराज हैं और आपसे प्रार्थना कर रहे हैं कि अगर आपकी कृपा हो जाए तो अपनी यह लड़की हमें दे दीजिए। अच्छा, दे देंगे। दूसरे दिन राजा साहब की सजी-धजी बारात आई। बड़े शानदार तरीके से उनका ब्याह हुआ और अहिल्याबाई को विदा कराके ले गए। अहिल्याबाई पढ़ी-लिखी तो थी नहीं, लेकिन वहाँ जाकर पढ़ना-लिखना सीखा। फिर महाराज से यह कहा कि अब देखिए मैं आपकी हुकूमत चला कर दिखाती हूँ। आप क्या हुकूमत करेंगे? आप बैठे रहा कीजिए, मौज कीजिए। अहिल्याबाई का राज्य इंदौर के इतिहास में अभूतपूर्व राज्य था। इंदौर के महाराज धन्य हो गए और इतिहास धन्य हो गया। अहिल्याबाई को हम बहुत दिनों तक याद करते रहेंगे।

जाग्रत-जीवंत आत्मा कैसी

मित्रो! मैं किसकी बात कर रहा था? अहिल्याबाई की बात कह रहा था। नहीं अहिल्याबाई की नहीं, मैं जाग्रत और जीवंत आत्मा की बात कर रहा था। जाग्रत और जीवंत आत्मा कैसी होती है? बहादुर, साहसी, संकल्पवान आत्मा, उत्कृष्टता और आदर्शवादिता जिसके अंदर ये विशेषताएँ हों। उदाहरण के लिए एक उपमा दे सकता हूँ इंदौर वाली रानी से। इंदौर वाली रानी की उपमा किससे दे रहे हैं आप? जीवात्मा से और भगवान की किससे उपमा देंगे? तुकोजीराव से। ऐसी जीवात्मा जिसमें संकल्प हो, साहस हो, जिसमें त्याग हो, शौर्य हो, जिसमें बलिदानी भाव हो, जिसमें उत्कृष्टता और आदर्शवादिता हो, भगवान उसकी खुशामद कर सकता है, चापलूसी कर सकता है, हाथ जोड़ सकता है और पैर छू सकता है। किसके? उस आदमी के जिसके भीतर संकल्प हो।

रामकृष्ण परमहंस बार-बार विवेकानंद के यहाँ जाया करते थे। हाथ जोड़ा करते थे और कहते कि बच्चे देख हमारा बड़ा काम हर्ज हो रहा है। तू किस झगड़े में लगा है,

तू चलेगा नहीं क्या? अभी हमें बी० ए० का इम्तहान देना है। आप बार-बार क्यों आ जाते हैं? जब हमारी इच्छा होगी तब आ जाएँगे। नहीं बेटे, तेरा इच्छा से काम नहीं चलेगा। तू समझता नहीं है कि तू किस काम के लिए आया है और तेरे बिना हमारा कितना काम हर्ज हो रहा है। महाराज जी अभी हमको नौकरी करनी है। नहीं बेटे, नौकरी नहीं करनी है, तुझे तो हमारा काम करना है। एक दिन तो मिठाई लेकर जा पहुँचे। ले बेटे, मिठाई खा ले। किस बात की मिठाई है? ले तू मिठाई खा ले और हमारे साथ चल। मैं कोई बच्चा हूँ जो आप मुझे बहकाने आए हैं। अरे तू बच्चा ही तो है, बच्चा नहीं है तो क्या है? जाग्रत आत्माएँ, जीवंत आत्माएँ क्या हैं? जब गुलाब का फूल खिलता है, तब उसके ऊपर भौर आते हैं, तितलियाँ आती हैं और न जाने कौन-कौन आता है। सब दूर-दूर से उसकी सुगंध पाने आते हैं।

प्रार्थना से नहीं, प्राण भरे स्पर्श से मिलती है सफलता

मित्रो! मैं आपसे यह कह रहा था कि आप फूल की तरह खिल सकते हो तो खिल पड़ो। भगवान से प्रार्थना करेंगे। नहीं बेटे, भगवान से प्रार्थना करने की कोई जरूरत नहीं है। भगवान आपसे प्रार्थना करेगा। हमने सुना है कि प्रार्थना से बड़े-बड़े काम हो जाते हैं। हाँ बेटे, हो जाते हैं। प्रार्थना की कीमत हमने भी सुनी है। क्या सुनी है आपने? हम हलवाई की दुकान पर जाते हैं और प्रार्थना करते हैं हलवाई साहब, हमको एक किलो जलेबी चाहिए। अच्छा साहब, आप खूब आ गए, बैठिए जरा-सा हाथ धो लूँ, दो मिनट में अभी देता हूँ। देखिए साहब, गरमागरम हैं, बिलकुल सही जलेबियाँ हैं, कोई खराबी नहीं है लीजिए। तौल करके उसने पुड़िया में बाँध दीं और हमारी ओर बढ़ाने लगा और दूसरा हाथ आगे करने लगा। क्या मतलब है? पैसे लाइए। एँ पैसे लेगा? हमने तो समझा था कि प्रार्थना से ही जलेबी मिल जाती है। भाईसाहब, आपको किसी ने गलत बता दिया है।

महाराज जी! सवा लाख के अनुष्ठान से ही लक्ष्मी मिल जाती है? गलत है बेटे। सवा लाख का अनुष्ठान क्या है? प्रार्थना है। हमने सुना है कि पी० सी० एस० और आई० ए० एस० की नौकरी प्राप्त करने के लिए पाँच रुपए का फार्म खरीदना पड़ता है। टाइप कराकर अरजी और मैट्रिक और बी० ए० के सर्टीफिकेट की कॉपी अटेस्टेड कराके जैसे ही भेज देते हैं, वैसे पी० सी० एस० और

आई० ए० एस० का हुकुम आ जाता है। नहीं बेटे, इतना तो तेरा कहना सही है कि फार्म पाँच रुपए का ही आता है, अरजी टाइप कराने के पचहत्तर पैसे देने पड़ते हैं, उसमें फोटो लगाना और पिछले वाले रिजल्टों की कापी अटैच करनी पड़ती है। तो महाराज जी, इतना काम करने के बाद फिर कलैक्टर नहीं हो जाते, कमिश्नर नहीं हो जाते? नहीं बेटे, उसके साथ में एक और टेस्ट का झगड़ा पड़ा हुआ है। वह यह है कि तेरा वाइवा लिया जाएगा और रिटर्न टेस्ट लिया जाएगा। तेरी दौड़ देखी जाएगी, शरीर का टेस्ट किया जाएगा। इतना सब पास करने के बाद ही चयन होगा। मैं तो समझता था कि फार्म से ही सब हो जाएगा। नहीं, इससे नहीं हो सकता।

मित्रो प्रार्थनाएँ-पूजाएँ, जिनको हम भजन-पूजन कहते हैं, इनका भी महत्त्व है। अगर हम प्रार्थना न करें, पूजा न करें तो? तो फिर जिस तरह आप टिकट के लिए स्टेशन मास्टर के पास जाएँ और चुपचाप खड़े रहें, कुछ न कहें। क्या मतलब है आपका? अपनी बात क्यों नहीं कहते? अरे कोई बात हो तो बताओ? नहीं कुछ नहीं। तो चल भाग यहाँ से। बेटे, आपको कहना होगा कि हमें यहाँ से दिल्ली तक के सेकंड क्लास के दो टिकट चाहिए और रुपये दीजिए। तो टिकट दे देगा? हाँ दे देगा। इसकी जरूरत है? हाँ बहुत जरूरत है। अगर आप नहीं कहेंगे तो स्टेशन मास्टर को मालूम कैसे पड़ेगा कि आप कहाँ जाना चाहते हैं और कितने टिकट, कौन से क्लास के लेना चाहते हैं। यह सब बताने की जरूरत है। यह प्रार्थना जिसको हम पूजा कहते हैं, भजन कहते हैं। इसकी कीमत यहीं तक सीमित है कि भगवान से यह प्रार्थना करते हैं कि हम कहाँ जाना चाहते हैं, क्या करना और किधर बढ़ना चाहते हैं? हमारा लक्ष्य क्या है, हमारा उद्देश्य क्या है? हमारे संकल्प क्या हैं, हम करना क्या चाहते हैं? यह अपनी एक दिशा और धारा बनाने वाली बात है।

साक्षी है इतिहास

बेटे, इससे आगे यह करना पड़ता है, जो कि प्रत्येक संत ने किया है। भगवत् भक्तों का कितना लंबा इतिहास है। भगवत् भक्तों के इतिहास को, प्रत्येक ब्राह्मण के जीवन को और ऋषियों के जीवन को हम पढ़कर देखते हैं। भगवान के रास्ते पर चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को हम देखते हैं और यह मालूम करने की कोशिश करते हैं कि आखिर भगवान के भक्तों को माला घुमाने के सिवाय भी कुछ काम करना पड़ा है क्या? नाक से प्राणायाम करने,

तिलक लगाने के अलावा भी कुछ करना पड़ा है क्या? नहीं बेटे, कुछ और भी करना पड़ा है। क्या करना पड़ा है? यही बताने के लिए मैं आपका बुलाता हूँ।

मित्रो भगवत् भक्तों के प्राचीनकाल के इतिहास में से एक भी भक्त का ऐसा उदाहरण मुझे बताइए जो केवल माला घुमाता रहा हो। जिसने भगवान के क्रिया-कलापों में कोई प्रत्यक्ष हिस्सेदारी न ली हो। प्राचीनकाल के ब्राह्मण और संत मितव्ययी, किफायत का जीवन जीते थे। वे भजन करते थे, स्वाध्याय करते थे, ठीक है, पर इससे भी ज्यादा एक और बात है कि वे बादलों के तरीके से हमेशा बरसते रहते थे। नहीं साहब, वे तो माला ही घुमाते रहते थे। नहीं साहब, वे तो प्राणायाम ही करते रहते थे? नहीं बेटे, प्राणायाम भी करते थे। यों मत कह कि प्राणायाम ही करते रहते थे, वरन् यों कह कि वह प्राणायाम भी करते थे। व्यायाम भी करते थे? हाँ, व्यायाम की भी हमको आवश्यकता है, कसरत की भी हमको जरूरत है, हम तो सारे दिन व्यायाम करेंगे? नहीं, सारे दिन व्यायाम नहीं किया जा सकता। क्या करना पड़ेगा? भगवान के क्रिया-कलापों में हस्तक्षेप करने के लिए हमको उनकी सहायता के लिए, उनके सुंदर उद्यान को सुरम्य बनाने के लिए भी कुछ करना पड़ता है। यही मुझे मेरे गुरु ने कहा और मैं दोनों काम करता हुआ चला आया।

उपासना कैसे सार्थक हो सकती है? उपासना कैसे मंत्रसिद्ध हो सकती है? भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के अधिकारी हम कैसे हो सकते हैं? मित्रो, ये सारे-के-सारे घटनाक्रम हमारे सामने हैं। आज तक के मेरे जीवन के घटनाक्रम आपके सामने हैं। प्राचीनकाल के भगवत् भक्तों के जीवन का इतिहास आपके सामने है। भगवान राम के सबसे प्रिय शिष्य, सबसे प्रिय भक्त हनुमान जी का जीवन आपके सामने खुली पुस्तक के समान पड़ा है। उन्होंने भजन किया था? किया होगा, मैं यह तो नहीं कहता कि भजन नहीं किया था। प्राणायाम नहीं किया होगा? बेटे किया होगा। लेकिन सबसे प्यारे भगवान के भक्त हनुमान जी की उपासना, उनके जीवन की पुस्तक को खोलकर आप पढ़िए। उनका एक ही क्रम रहा—‘राम काज कीन्हे बिना, मोहि कहाँ विश्राम।’ राम नाम ही काफी नहीं है, राम का काम भी करना पड़ेगा।

अर्जुन ने सौंपा अपने आप को

भगवान श्रीकृष्ण के सबसे प्रिय शिष्यों में से हम अर्जुन का इतिहास देखते हैं। अर्जुन ने भजन नहीं किया होगा?

किया होगा, बेटे मैं यह नहीं कहता कि वह भजन नहीं करता था। अर्जुन ने ध्यान-जप किया था? बेटे, जरूर किया होगा। मुझे मालूम नहीं। उनकी कुंडलिनी भी जगी होगी? जगी होगी, यह भी वायदा नहीं करता कि जगी होगी या नहीं जगी। लेकिन सबसे बड़ी बात, सबसे बड़ी उपासना-साधना उसकी यह थी कि उसने भगवान के इशारे पर अपनी जिंदगी को खरच करने का साहस किया था। हनुमान, नल, नील, जामवंत, अंगद और सुग्रीव यह जितने भी भगवान के भक्त थे, इन्होंने कितने प्राणायाम किए, कितनी भक्ति की, मैं नहीं जानता, पर यह जानता हूँ कि उन्होंने जीवन को अपनी हथेली पर रखकर भगवान के चरणों पर समर्पित करने की कोशिश की और यह कहा, आप इशारा तो कीजिए, हम उसी ओर चलेंगे।

मित्रो! आज का वक्त कुछ इसी तरह का है, जिसमें मैंने आपको बुलाया है। भगवान हम लोगों से कुछ चाहता है। यह पुनर्गठन वर्ष जो आप लोगों के सामने है, इसमें भगवान ने एक नई स्फुरणा ली है। महाकाल ने एक नई करवट ली है। उसने आप जैसी जीवंत आत्माओं को विशेष रूप से बुलाया है। आप अपने को जान नहीं पाते, मैं जानता हूँ, इसीलिए बार-बार आपको पत्र भेजे हैं। हनुमान अपने आप को नहीं जानते थे कि वे कौन हैं? हनुमान जी को जब सुग्रीव ने यह पता लगाने के लिए भेजा कि राम-लक्ष्मण कौन हैं, तो वे अपना वेष बदलकर ब्राह्मण का रूप बनाकर गए थे और नमस्कार करके उनसे पूछने लगे कि आप कौन हैं? लेकिन राम उन्हें जानते थे, इसीलिए पता लगाते-लगाते, हनुमान जी को तलाश करते, अंगद को तलाश करते वे ऋष्यमूक पर्वत पर जा पहुँचे। एक ही पहाड़ था? नहीं बेटे, वहाँ तो बहुत पहाड़ थे, किसी और पर भी वे जा सकते थे, लेकिन ऋष्यमूक पर इसलिए गए कि वहाँ हनुमान-अंगद जैसे उनके भक्त रहते थे।

अध्यात्म ही बनाएगा, अच्छा आदमी

आप लोगों को बुलाने का मतलब, हमारा मकसद यही है कि जिस तरीके से आज से पचपन वर्ष पहले हमारे गुरु ने हमको जगाया था। हम भी आपको जगाएँ। जिस तरीके से उन्होंने हमारा मार्गदर्शन किया था, हम आपका मार्गदर्शन करें। क्यों? क्योंकि अब अच्छा आदमी अगली पीढ़ी के लिए अत्यधिक आवश्यक है। अब अध्यात्म के बिना मनुष्य की नैतिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकेंगी। अध्यात्म के बिना मनुष्य के क्रिया-

कलापों में नैतिकता का समावेश न हो सकेगा, अगर ऐसा न हो सका तो जो आज की परिस्थितियाँ हैं, उनका कोई समाधान न हो सकेगा। आज की परिस्थितियाँ और भी उलझती चली जाएँगी और मनुष्य हैरान होता चला जाएगा। इन हैरानियों का और कोई समाधान नहीं है।

मित्रो ! हमारा मन दिन-रात विक्षुब्ध और अशांत रहता है। दिल धड़कता रहता है। हमारे मन पर न जाने क्या-क्या छाया रहता है। यह कौन करता है ? राजनीति ? नहीं साहब राजनीति तो नहीं करती, हमारे बेटे ही बागी और उत्पाती हो गए हैं, कहना ही नहीं मानते। स्त्री-पुरुषों के बीच में ऐसा भयंकर युद्ध होता है, अगर उनके बच्चे नहीं होते तो अब तक स्त्री तलाक देकर, घर छोड़कर चली गई होती। बच्चों ने पकड़ रखा है। बच्चे मम्मी को भी पकड़कर रखते हैं और बाप को भी। आफत के पुतले ये बच्चे हैं। घर में क्लेश चलते रहते हैं और जलते रहते हैं। कौन जलाता है ? बेटे, यह हमारी विकृत मनःस्थिति जलाती है। विकृत मनःस्थिति का सुधार किए बिना मानवीय समस्याओं का कोई समाधान नहीं है। राजनैतिक समस्याओं, सामाजिक कुरीतियों का कोई समाधान नहीं, इसलिए व्यक्ति को ही ठीक करना पड़ेगा।

मित्रो! व्यक्ति को ठीक करने का एक ही तरीका है, जिसका नाम है अध्यात्म। इस अध्यात्म को जीवंत रखने के लिए हमको और आपको मिलकर प्रयास करने चाहिए। इस समय में भगवान ने, महाकाल ने यही पुकार की है कि मनुष्य जाति के गिरते हुए भविष्य को सुधारने, संभालने के लिए उज्ज्वल भविष्य की संभावनाओं को सार्थक करने के लिए हममें से प्रत्येक जीवंत और जाग्रत आत्मा को प्रयत्न करना चाहिए, ताकि अध्यात्म को जिंदा रखा जा सके। अध्यात्म किस तरह से जिंदा रखा जा सकता है? अध्यात्म, का शिक्षण कैसे किया जा सकता है? अध्यात्म की गतिविधियों को आगे कैसे बढ़ाया जा सकता है? अध्यात्म बेटे, यह वाणी का विषय नहीं है। वाणी का विषय रहा होता तो अब तक बहुत से एक से एक बढ़िया पंडित, एक से एक बढ़िया रामायणी हुए हैं। एक से एक बढ़िया कथावाचक हुए हैं। एक से एक बढ़िया ज्ञानवान प्रतिभाएँ भरी पड़ी हैं। उन्होंने तो सबको अध्यात्ममय कर दिया होता और दुनिया न जाने कहाँ से कहाँ चली गई होती, पर अध्यात्म इनके बस का नहीं है। □

शेष आगामी अंक में

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी

यदि हो जाए ईश्वर के साथ साझेदारी— ४

समापन किस्त

प्रतीक हों घर-घर में

मित्रो! जैसे हमारे गुरु ने हमको आदेश दिया कि आध्यात्मिकता का विस्तार करने के लिए हम छोटे से प्रतीक स्थापित करें तो हमने गायत्री का मंदिर बनाया। हमारा बड़ा मन है कि आप भी एक प्रतीक स्थापित करें। प्रतीक मंदिर से क्या हो जाएगा? मंदिर से सब कुछ हो जाएगा—हवा फैलेगी, वातावरण बनेगा। हम हवा फैलाना चाहते हैं और वातावरण बनाना चाहते हैं; फिर आप देखना कि वातावरण का क्या प्रभाव होता है! गांधी जी ने नमक बनाया था। नमक से क्या हो जाएगा? बेटे, हम क्या बताएँ क्या हो जाएगा? बना करके देख जरा, नमक से बगावत पैदा होगी। नमक से? हाँ बेटे, नमक से। नमक से बगावत की बात न होती तो अँगरेज जरा भी ध्यान नहीं देते। नमक बनाएँगे। बना लीजिए, हमारा क्या बिगड़ता है! वे मना नहीं कर सकते थे, पर उन्होंने देखा कि इसमें तो बगावत का माददा है। हमारे मंदिरों के पीछे समर्थगुरु रामदास की वृत्ति काम करती है, लोकमान्य तिलक की वृत्ति काम करती है। इसके पीछे हमारे बड़े-बड़े ख्वाब हैं और बड़े-बड़े सपने हैं। आप उँगली तो रखने दीजिए, फिर हम पहुँचा पकड़ लेंगे। आप पहुँचा भी पकड़ लेंगे? हाँ बेटे, हम पहुँचा भी पकड़ लेंगे, उँगली रखने की जगह तो दें।

आप अपने घर में गायत्री माता की जगह दें, यज्ञ की परंपरा को स्थान दें, फिर देखना हमारा चमत्कार! फिर आपके बच्चे पूछेंगे कि मम्मी क्या बात है, आप रोज आग काहे को जला देती हो? मम्मी को बताना पड़ेगा। उसके बहाने से आप उन्हें शिक्षण देंगे। हम भी बच्चों से कहेंगे कि बेटे, तुम अपनी मम्मी से पूछते हो या नहीं कि यह आग किसलिए जलाती हो? तुम्हारे पिताजी ने यह कहा था कि हाथ जोड़कर नमन किया करो और चंदन चढ़ाया करो। यह क्यों किया करते हैं, आपने पिताजी से पूछा कि नहीं? गुरुजी ! हमने तो नहीं पूछा। उन्होंने कह दिया, सो हमने कर दिया। नहीं बेटे, सवाल पूछो कि यह क्या बात है? साहब, काहे को आप दो मिनट खराब कराते हैं। इसलिए कि बच्चे सवाल करेंगे और आप जवाब देंगे। इससे आप जिज्ञासाएँ पैदा करेंगे और हम आस्तिकता का वातावरण

घर-घर में पैदा करेंगे। इस प्रकार सवाल देने के लिए आप जो पद्धति बनाएँ, उसके प्रचार की हम शुरुआत कर देंगे।

देवस्थापना करें

मित्रो! उद्घाटन के साथ-साथ में हम आपको प्रेरणा देते हैं कि शाखाओं में और घरों में, हर जगह यह देव-स्थापना होनी चाहिए। तो महाराज जी, आपका बड़ा इन्ट्रेस्ट है? हाँ बेटे, हमारा बड़ा इन्ट्रेस्ट है। हमने तो बड़े-बड़े साइज के और छोटे-छोटे साइज के चित्र तैयार करके रखे हैं। उनके मूल्य ऐसे रखे हैं कि आपको हँसी आएगी और मजाक लगेगा। इतने बड़े साइज कि जो आठ-आठ रुपये के चित्र बिकते हैं। हमने एक-एक रुपये, सवा-सवा रुपये के बना दिए हैं और उनकी प्राणप्रतिष्ठा कर दी है। हमारी देवकन्याओं ने और हमने मिलकर सबके ऊपर स्वास्तिक बना दिए हैं। सबके ऊपर रोली, चंदन लगा दिए हैं, केशर लगा दी है, चित्र की प्राणप्रतिष्ठा कर दी है। आप उन चित्रों को यहाँ से ले जाइए, अपने घर में देवमंदिर बनाइए, फिर साधना कीजिए।

वसंतपंचमी के दिन से हम उस आस्तिकता की शुरुआत करते हैं, जिसको जन-जन तक पहुँचाने के लिए आज से पचपन वर्ष पहले हमारे गुरु ने हमको बताया था। उसी आध्यात्मिकता के बीज, जो हमारे भीतर बोए गए, सारे जीवनभर लाखों आदमियों के भीतर विस्तार करते चले गए। आप भी छोटे में, संक्षेप में अपने घरों पर गायत्री माता की और यज्ञ भगवान की स्थापना करें, उसका विस्तार करें। सवाल-जवाब बताएँ, शंका-समाधान करें एवं पूछताछ करें। जब आपका भतीजा कहे कि हम तो झगड़े में नहीं पड़ते, हम तो नमस्कार नहीं करते। आप कहिए, अच्छा बेटे, शाम को आना, हम बताएँगे। आपको मार्गदर्शन का मौका तो मिलेगा! हमारा यह आंदोलन नंबर एक, इसको आपको चलाना चाहिए।

ज्ञान की मशाल जलाएँ

नंबर दो, दूसरा वाला आंदोलन है—विचार-क्रांति। विचार ही हैं जो आदमी को बनाते हैं और आदमी को बिगाड़ते भी हैं। विचार आदमी को घटिया बना देते हैं, चोर बना देते हैं और विचार ही आदमी को संत बना देते हैं,

ऋषि बना देते हैं। विचार ही हैं आदमी के पीछे और है क्या? नहीं तो मांस और हड्डियाँ हैं। उसके भीतर जो प्राण कर्म करता है, विचार कार्य करते हैं। विचारों का विस्तार हम नए युग के अनुरूप करने के इच्छुक हैं। इसीलिए हमारा मन है कि प्रत्येक व्यक्ति तक, जन-जन तक अलख निरंजन जगाने के लिए महाकाल की आग, हमारे गुरु की आग, जो हमारे पास आती है, उस आग को फैला देना आपका काम है। लाल मशाल में जो निशान बनाया गया है, उसके पीछे जो बहुत सारे मनुष्यों की भीड़ दिखाई पड़ती है, उसका मतलब यह है कि वह हम सबकी, आप सबकी है और उसके पीछे जो लाल हाथ-लाल मशाल दिखाई पड़ती है, वह ज्ञान की मशाल है।

मित्रो! जो नया युग आएगा, वह किससे आएगा? ज्ञान से आएगा, विचारों से आएगा। बंदूक से नहीं आएगा नया युग। यह बंदूक से भी बड़ी, सबसे बड़ी तोप है, जिसको हम विचार कहते हैं। यह जो एक मशाल हाथ में ली हुई है, वह किसका हाथ है? हमारे भगवान का हाथ है, महाकाल का हाथ है। उसके पीछे छोटे-छोटे रीछ और वानर हम और आप खड़े हुए हैं। ज्ञान का विस्तार हमको करना चाहिए। बादलों के तरीके से इसको फैलाना चाहिए। जन-जन के पास जाना चाहिए, घर-घर में हमारा प्रवेश होना चाहिए। ये कैसे हो सकता है? इसके लिए छोटा-सा तरीका हमने बताया है और वह ज्ञानरथ है। झोला पुस्तकालय पहले वाला था। आप जाइए, संपर्क बढ़ाइए और जो भी आपको मिलते हैं, उनको पुस्तक पढ़ाइए। बिना पढ़ों को सुनाइए। हमारा ज्ञानरथ इस जमाने का जगन्नाथ जी का रथ है। हमारे वृंदावन में रंग जी का रथ निकलता है। भगवान के पास तो सब लोग नहीं जा पाते, लेकिन भगवान को अर्थात् ज्ञान को, ऋतंभरा प्रज्ञा को, गायत्री माता को, युगचेतना को घर-घर में आपको ले करके जाना चाहिए।

दीजिए समय का एक हिस्सा

मित्रो! आपको अपने समय का एक हिस्सा निकालना चाहिए। यदि आप भगवान को अपने जीवन में हिस्सेदार-साझीदार बना सकते हों तो भगवान के लिए कुछ समय निकालिए। नहीं साहब! भगवान के लिए समय तो लगाएँगे, लेकिन चापलूसी में लगाएँगे। नहीं बेटे, चापलूसी के बजाय उनका काम करने में लगा। गुरुजी! हम तो आपको हाथ जोड़कर, पैर छूकर प्रणाम करेंगे, आपका नाम जपेंगे और आपकी आरती उतारेंगे। नहीं बेटे, जितनी देर में तू हमारी आरती उतारेगा और पैर छुएगा, पैर दबाएगा, उतनी देर में

तू हमारी सड़क को साफ कर दिया कर और देख नालियों में गंदगी हो जाती है, उसको साफ कर दिया कर। नहीं महाराज जी! नाली में तो मैं और कूड़ा डालूँगा, पर आपकी आरती उतारूँगा। बेटे, हमारी आरती मत उतार। हम अपनी आरती अपने आप उतार लेंगे, तेरी आरती की हमें कोई जरूरत नहीं है। तू तो नाली साफ कर दिया कर।

मित्रो! आज समाज की सबसे बड़ी सेवा, देश की सबसे बड़ी सेवा, धर्म और संस्कृति की सबसे बड़ी सेवा, मानवता की और महाकाल की सबसे बड़ी सेवा यह है कि हम जनमानस में युगचेतना का विस्तार करने का प्रयत्न करें। उसमें खाद-पानी पहुँचाएँ। प्राचीनकाल में तीर्थयात्रा का यही उद्देश्य था। बादलों के तरीके से ऋषि और ब्राह्मण घर-घर जाकर अलख निरंजन की जाग्रति जगाया करते थे। आप लोगों को भी वही करना चाहिए। आपको जन-जन के पास जाना चाहिए। झोला पुस्तकालय के रूप में, ज्ञानरथों के रूप में। हमारे सुल्तानपुर के लखपतराय वकील की बात में भूलता नहीं। वे पाँच बजे कचहरी से घर आते और आधा घंटे में फ्रेश हो करके, चाय-नाश्ता करके निश्चित हो जाते। फिर चल पुस्तकालय लेकर सारे बाजार में, अपने मुक्किलों के पास, सेठों के पास, स्कूलों में जाते और तीन घंटे तक चल पुस्तकालय चलाते।

महाकाल की सच्ची सेवा

लोग कहते—अरे वकील साहब! यह क्या धंधा खोल लिया है? अरे यार, यह भगवान का धंधा है, तू भी खोल, फिर देख। जरा यह पुस्तक पढ़ तो सही, तब पता चलेगा, क्या है? इस जमाने में सारे के-सारे सुल्तानपुर को उन्होंने जाग्रत कर दिया। उन्होंने कोई कोना नहीं छोड़ा, कोई स्कूल नहीं छोड़ा, कोई घर नहीं छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि जिस सुल्तानपुर में मैं पहले दो बार गया, जब पाँच कुंडीय यज्ञ हुए थे, तब मुश्किल से एक सौ आदमी आते थे। जब बाबू लखपत राय ने सारे-के-सारे सुल्तानपुर में मिशन की बात फैला दी, तब मुझसे कहा—गुरुजी! आप तो हिमालय जाने वाले हैं? हाँ बेटे, जाने वाला हूँ। तो एक बार सुल्तानपुर और चलिए। दो बार तो हो आया। सौ आदमी तो आते नहीं हैं, मैं क्या करूँगा सुल्तानपुर में। उनने कहा—कौन से जमाने की बात कह रहे हैं आप। कुछ वर्ष पहले में और अब में जमीन-आसमान का फरक पड़ गया है, आप चलिए तो सही। अच्छा चलूँगा।

सुल्तानपुर के गाँव-गाँव, घर-घर में उन्होंने पुस्तकें पढ़ाई और पूछा कि आचार्य जी की किताबें आप पढ़ते हैं,

आपको पसंद आती हैं? हाँ साहब, पसंद आती हैं और आँखों में आँसू आ जाते हैं, ऐसा गजब का साहित्य है। यह तो किसी देवता का लिखा हुआ है। लखपत बाबू ने कहा— जिन्होंने ये किताबें लिखी हैं, वे हमारे गुरुजी हैं, उनको बुला दें तो? हाँ साहब, बुला दीजिए। तो आप अपनी दुकानें बंद रखेंगे और आचार्य जी के साथ में रहेंगे? हाँ साहब, रहेंगे। उनके खाने-पीने का, किराये-भाड़े का जो खर्चा पड़ेगा, सो आप देंगे? हाँ, जिस लायक हमारी हैसियत है, दे देंगे। हर एक से उन्होंने वायदे करा लिए और सौ कुंडीय यज्ञ रखा। मैं गया तो एक लाख जनता थी। उन दिनों एक लाख आबादी सुल्तानपुर की नहीं होगी शायद। आस-पास के सारे देहातों के लोग आए। बैलगाड़ियाँ ही बैलगाड़ियाँ। मैंने कहा— भई, गायत्री तपोभूमि को मैं खाली छोड़कर आ रहा हूँ, कुछ पैसे-वैसे का थोड़ा-बहुत इंतजाम हो जाए तो कर देना। बोले—गुरुजी! हम करेंगे। यज्ञ समाप्त होने के बाद उनके पास इक्यावन हजार रुपया बचा था, जो उन्होंने गायत्री तपोभूमि में जमा कर दिया। यह किसकी करामात थी? झोला पुस्तकालय की, चल पुस्तकालय की और वकील साहब की। नहीं साहब! नौकर रखेंगे, कोई मिलता ही नहीं और वह फलाना पुस्तकें ले गया, वापस ही नहीं कीं। पहले चलाया था तो चला ही नहीं। बहाने बनाता है दुनिया भर के। गुरुजी! वह चल पुस्तकालय तो ठंडा हो गया, उसमें गरमी आई ही नहीं। गरमी आई नहीं तो दीयासलाई लगा दे उसमें।

करें गुरु से—ईश्वर से साझेदारी

मित्रो! क्या करना पड़ेगा? मैं चाहता हूँ कि आप में से प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर की साझेदारी शुरू करे। जैसे मैंने अपने गुरु की साझेदारी अपनी जिंदगी में की है। गुरु का असीम धन मुझे मिला है और बेटे, मेरे जीवन का प्रत्येक अंश मेरे गुरु को मिला है। हम दोनों की साझेदारी ईमानदारों की साझेदारी है। चोर और चालाकों की साझेदारी नहीं है। चोर-चालाकों की साझेदारी कैसी होती है? ऐसी होती है बेटे कि दो थे मित्र, बोले हम और आप कुछ करें। कुछ आप हमारे लिए करना, कुछ हम आपके लिए करेंगे। हाँ साहब! बताइए क्या करें? यह करें कि हमारे शरीर में कई छेद हैं, हम आपके एक छेद में उँगली कर देंगे और एक छेद में आप हमारे उँगली कर दीजिए। अच्छा भाईसाहब! जैसे आप कहेंगे, सो करेंगे। तो आप ऐसा कीजिए कि आप हमारे मुँह में उँगली कर दीजिए और हम आपकी आँख में उँगली कर देंगे। एक ने उसकी आँख ही फोड़ दी और दूसरे ने उँगली काट खाई। क्या यही साझेदारी है?

बेटे, यह साझेदारी नहीं है। तो गुरुजी आप और हम रिश्तेदार हो जाएँ। हाँ, फिर क्या करें? आप अपने तीन साल का तप हमको दे दीजिए। तो फिर क्या करेगा बेटे, तप का? तीन साल के तप में तो हमारे यहाँ संतान नहीं होती है, वह हो जाएगी। अच्छा, दो वर्ष का तप और दे दीजिए। यह हमारा भाई है, इसका लड़का तीन साल से फेल हो रहा है, वह पास हो जाएगा और दो वर्ष का तप और दे दीजिए। काहे के लिए? हमारा मकान बनाने को पड़ा है, सो उससे बन जाएगा। सात साल का तप दे दीजिए। अच्छा, फिर तू क्या देगा? महाराज जी मैं क्या दूँगा? नहीं बेटे, तप यों नहीं

एक न्यायाधीश था, वह बड़ा भक्त था। एक बार एक चोर उसके न्यायालय में लाया गया। पूछने पर कहने लगा—“जज साहब! आप जैसे साधु व्यक्ति के सामने उपस्थित होने में मुझे बड़ा आनंद आ रहा है, मैंने चोरी कोई अपने वश होकर नहीं की। मुझे ऐसी प्रभुप्रेरणा ही हुई कि चोरी करूँ, अतः मैंने चोरी की। मेरे हाथों का दोष नहीं।”

चोर का तर्क सुन कचहरी वाले विस्मित से रह गए व सोचने लगे कि देखें ऐसे में न्यायाधीश अब कैसा दृष्टिकोण अपनाते हैं, परंतु न्यायाधीश पक्के निकले। उन्होंने फैसला सुनाया—“चोर का कथन पूर्णतः मान्य है। जिस भगवान ने उसे चोरी करने की प्रेरणा दी, उसी भगवान की प्रेरणा से मैं इस चोर को दंड देता हूँ।”

देंगे। हम तो ईमानदारों की साझेदारी करेंगे, बेईमानों की नहीं। भगवान से तू माँग, भगवान को दे, बैंक से ले और बैंक को दे, यह ईमानदारी की साझेदारी है।

असली भजन यह है

बेटे, अपने समय का एक हिस्सा आपको भजन में लगाना चाहिए, लेकिन भजन से भी ज्यादा समाज के क्रिया-कलापों में खर्च करना चाहिए। मैं भजन करता हूँ चार घंटे रोज, लेकिन मैं अपने गुरु का काम करता हूँ चौदह घंटे रोज। मैं शाम को सात-आठ बजे सो जाता हूँ और साढ़े बारह बजे उठ करके बैठ जाता हूँ। साढ़े बारह बजे से लेकर एक बजे तक नहा-धोकर नित्यकर्म से निश्चित हो जाता हूँ। मेरी बत्तियाँ सब जल जाती हैं ठीक एक बजे।

एक से पाँच बजे तक, चार घंटे में अपना भजन पूरा कर लेता हूँ। फिर उसके बाद पाँच बजे से अपने गुरु का काम शुरू कर देता हूँ और दस घंटे काम करता हूँ। सवेरे जब आप लोग यह काम करते हैं, उस वक्त तक मैं अखण्ड ज्योति का एक लेख लिखकर तैयार कर देता हूँ। बाकी दिन में भी करता हूँ। आजकल तो शिविर में भी लगा रहता हूँ। यह भी अपने गुरु का काम करता हूँ, आपका नहीं। भगवान का काम शाम सात बजे तक करता रहता हूँ। क्या मजाल है। मैं गुनहगार हूँ एक रोटी और एक कटोरी साग खाने का, गुनहगार हूँ ये कपड़े पहन लेने का। बाकी न मेरी कोई इच्छा है, न कोई कामना। चौबीसों घंटे अपने गुरु के लिए काम करता हूँ।

मित्रो! मेरे गुरु के पास जो कुछ भी संपदा है, मेरी है। उन्होंने कह रखा है कि जब भी तुझे जरूरत पड़े, तब मुझे माँग लेना। जब मुझे जरूरत पड़ती है, बस, चैक ही काटता रहता हूँ। कितने चैक काटते रहते हो? बेटे, तीन-चार वर्ष पहले यह दस लाख रुपये का चैक काटा, कैश होकर आ गया। देख यह बना हुआ खड़ा है। अभी यह ब्रह्मवर्चस बन रहा है। इसमें कितना खर्च हुआ है? लगभग दस लाख इसमें भी लगा है और यह गायत्री नगर, जो अभी बनने वाला है, इसमें गुरुजी, कितना पड़ेगा? बेटे, इसमें तो बहुत ज्यादा लगेगा। दस लाख से काम चल जाएगा? नहीं; दस लाख से काम नहीं चलेगा, क्योंकि इसमें सौ क्वार्टर बनने वाले हैं। जितने भी कार्यकर्ता यहाँ रहेंगे, उनके बच्चों को हाईस्कूल तक पढ़ाने के लिए स्कूल बनने वाला है। एक खेलने का ग्राउंड बनने वाला है, एक पार्क बनने वाला है। एक लाइब्रेरी बनने वाली है। एक उद्योग हॉल बनने वाला है, जिसमें हमारे कार्यकर्ताओं की महिलाएँ गृह उद्योग सीखा करेंगी।

महाराज जी! यह तो बड़ी लंबी-चौड़ी स्कीम है। हाँ बेटे, बड़ी लंबी-चौड़ी स्कीम है। तो इतना कहाँ से आता है? यह हमारी बैंक से आता है। कौन-सी बैंक? जिस बैंक से हमारा ईमानदारी का एग्रीमेंट है। उसने हमारी शाख बढ़ा दी है। अब आपकी पचास हजार की शाख है और बाकी ग्रेड? अब एक लाख की ग्रेड है। ग्रेड भी बढ़ती हुई चली जाती है क्यों? हमारी बैंक हमको ईमानदार समझती है कि इसको जो पैसा दिया गया है, वह चुका देगा। और आप चुकाना नहीं चाहते, माँगना चाहते हैं। नहीं बेटे, यह तो गलत बात है, ऐसा मत करना। हमारी शाख-पर-शाख बढ़ती जा रही है। आपको भी अपनी शाख बढ़ानी चाहिए।

विचार-क्रांति की आग फैला दीजिए

मित्रो! लंका में हनुमान जी ने अपनी पूँछ में लगी आग से प्रत्येक घर में आग लगा दी थी। आप हमारे दिल में जलती हुई आग, जो हमारे गुरु की आग है, लाल मशाल की आग है। जो हमारे रोम-रोम में, हमारी नस-नस में जलती है, इसे समाज में फैला दीजिए। जब होली जलती है तो लोग-बाग उसमें से थोड़ी-सी आग ले जाते हैं और अपने-अपने घरों पर जाकर होली जलाते हैं। आपके यहाँ रिवाज है या नहीं, मुझे नहीं मालूम, पर हमारे यहाँ यू० पी० में यह रिवाज है। होली में से आग लाकर अपने घर पर गोबर की बनी बलगुरिया-मालाओं की होली जलाते हैं, फिर उसमें चावल, आलू पकाते हैं, नारियल पकाते हैं। हमारे यहाँ यह रिवाज है। मित्रो! आप भी यहाँ से हमारी जलती हुई होली में से आग ले जाइए और अपने घरों पर जलाइए। ज्ञान-मंदिरों के, चल पुस्तकालय के रूप में, विचार-क्रांति के रूप में, ज्ञानयज्ञ के रूप में और जन-जन के भीतर वह प्रकाश पैदा कीजिए, जिसको हम आध्यात्मिकता का प्रकाश कहते हैं, युगचेतना का प्रकाश कहते हैं और भगवान का प्रकाश कहते हैं। यही अपेक्षा हम आप लोगों से करेंगे।

मित्रो! हमने आपको उद्घाटन कराने, जय बुलवाने के लिए, परिक्रमा कराने, आहुतियाँ देने और प्रसाद बाँटने के लिए नहीं बुलाया है। हम आपसे कुछ चाहते हैं। क्यों चाहते हैं आप? इसलिए चाहते हैं कि हम आपको कुछ देना चाहते हैं, अगर आप दे नहीं पाएँगे, तो हम भी नहीं दे सकेंगे। नहीं गुरुजी। आप तो दे दीजिए। नहीं बेटे, हम दे नहीं सकेंगे। अगर नाक में से पुराना श्वास नहीं निकालेगा तो हम नया श्वास नहीं दे सकते। नहीं साहब! नया श्वास दे दीजिए, पुराने को तो मैं नहीं निकाल सकता। पुराने को निकाल, तब नया मिलेगा। पेट में गंदगी भरी पड़ी है, पहले उसे निकाल, फिर खाना देंगे। नहीं महाराज जी! पेट की गंदगी को तो साफ नहीं करेंगे, खाना दे दीजिए। उलटी हो जाएगी तुझे, हम खाना नहीं दे सकते। बेटे, हमारा गुरु कुछ देना चाहता था और देने से पहले उसने कहा, निकाल तेरे पास जो कुछ भी है। जो कुछ भी था, हम निकालते हुए चले गए। जितना हमने अपने आप को खाली कर लिया, उससे ज्यादा वह हमको भरता हुआ चला गया। इस शिविर में बुलाकर हम आपको भर देना चाहते हैं। भर देने से पहले यह प्रार्थना करते हैं कि अगर आपके लिए खाली हो सकना संभव हो सके तो आप खाली हो जाइए।

विश्वास पर टिकी है साझेदारी

मित्रो! ये थोड़े से क्रिया-कलाप हैं, जो आज आपको बताए गए हैं। इन कार्यों में थोड़ा-थोड़ा-सा समय लगाना है, सो आप लगा सकते हैं। ज्यादा समय लगाना होगा तो हम आपको बुलाएँगे, दावत देते हैं। मित्रो, हमने अपने भगवान पर विश्वास किया और यह कहा कि हम आपके सुपुर्द होते हैं। आप हमको और हमसे जुड़े सबको सँभालना। उन्होंने कहा—हम आपसे जुड़े हर एक को सँभाल देंगे। हमारी बीबी और बच्चों को सँभाल दिया। हमारी बीबी को उन्होंने ऋषि और संत बना दिया, जैसे हमें बनाया था। हमारे बच्चों को भी उन्होंने इस लायक बना दिया कि वे सुखी रह सकें और हमारी ही तरह समाज की सेवा कर सकें। हमारे घर में हम जो स्वयं कर सकते थे, उसकी अपेक्षा हमारे गुरु ने हमारे घर का, हमारे शरीर का, हमारे परिवार का उत्तरदायित्व सँभाला है। हमने भी उस पर विश्वास किया है। आप तो विश्वास ही नहीं करते।

मित्रो! विश्वास करने की बात से मुझे एक कहानी याद आ जाती है। अमेरिका में टामस नाम का एक व्यक्ति था। उसने विश्वास की महत्ता सबको बताई कि आप भगवान पर विश्वास कीजिए। नहीं साहब, हम तो भगवान पर विश्वास नहीं कर सकते। अरे भाई, भगवान के विश्वास में बड़ा चमत्कार है। उसने नियाग्रा फाल के ऊपर एक पेड़ के ऊपर इधर से और एक पेड़ के ऊपर उधर से एक रस्सी बाँध दी। नियाग्रा फाल एक बहुत बड़ा फाल है। रस्सी बाँधकर उसने लाखों लोगों को बुलाया और कहा कि देखिए विश्वास का चमत्कार। विश्वास का चमत्कार दिखाने के लिए टामस आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पहले उस रस्सी

के ऊपर से धीरे-धीरे चलने लगा। उसने कहा, देखिए मैं भगवान पर विश्वास करके इस रस्सी पर होकर के उस पार जाता हूँ और चार सौ फर्लांग चौड़े फासले को वह पार कर गया। लोगों ने तालियाँ बजाई और कहा कि आपका विश्वास तो बड़ा पक्का है।

उसने कहा कि अगर मेरा विश्वास पक्का है तो आप सब मानते हैं कि भगवान है। हाँ साहब! मानते हैं; क्योंकि आप बाजीगर भी नहीं हैं, नट भी नहीं हैं, कलाकार भी नहीं हैं। आपने विश्वास के आधार पर इतना लंबा फाल, जिसमें यदि कोई आदमी गिरा होता तो चकनाचूर हो जाता, पार कर लिया। उसने कहा कि आपको विश्वास है तो फिर आइए। आप में से जो भी चाहे, आए और मेरे कंधों पर सवार हो जाए। अगर आप हमारे कंधों पर सवार हो जाएँगे तो मैं आपको भी पार लगाकर और वापस लेकर पीछे लौटने वाला हूँ। जहाँ से आपको लेकर आया था, वहीं पहुँचा दूँगा। कोई भी तैयार नहीं हुआ। तब उसने अपने ग्यारह साल के बच्चे से कहा कि बेटा, तुझे हमारे ऊपर विश्वास है? हाँ पिताजी, आप पर मुझे पूरा विश्वास है। तुम हमारी मोहब्बत पर विश्वास करते हो? हाँ पिताजी! हम आपकी मोहब्बत पर विश्वास करते हैं। तो तुम बैठो हमारे कंधे पर। बच्चा कुदककर उसके कंधे पर बैठ गया। उन्होंने कहा कि बेटा, अगर तुम डूब गए तो? बच्चे ने कहा—नहीं पिताजी! जब तक आप नहीं डूबेंगे, तब तक हम नहीं डूब सकते। मित्रो! इसे कहते हैं विश्वास। हमने भगवान पर विश्वास किया है और उसकी फलश्रुति आपके सामने है। आप भी विश्वास कीजिए और हमारी तरह धन्य हो जाइए। आज की बात समाप्त। ॥ ॐ शांति ॥ □

एक नौजवान तेजी से सड़क पर चला जा रहा था। सड़क कच्ची होने व उसके तीव्र गति से चलने के कारण धूल उड़ रही थी।

“कृपया धीरे-धीरे चलिए। आपका तेजी से चलना मुझे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जल्दी-जल्दी पटक रहा है, जिससे मुझे कष्ट हो रहा है।” धूल ने मन्मतापूर्वक कहा।

“तुम्हारे कष्ट से मुझे क्या मतलब है। मुझे अपने काम पर जल्दी जाना है।” नौजवान ने ऐंठकर कहा।

“जो मनुष्य अपने लाभ के लिए दूसरों की हानि की परवाह नहीं करता। प्रकृति माता उससे उसका बदला लिए बिना नहीं रहती।” धूल ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया।

“पैरों के नीचे रौंदी जाने वाली इतनी बड़-बड़कर क्यों बातें करती है।” नौजवान ने आँखें निकालकर कहा।

“श्रीमान्, आप जितनी जल्दी चलेंगे, उतनी जल्दी मैं आपकी आँखों तक पहुँचकर उन्हें बंद कर दूँगी और आपकी गति रुक जाएगी।” धूल ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया।

बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविंद दियो मिलाय

प्रस्तुत गुरुपूर्णिमा (२ जुलाई, ०४) पर प्रस्तुत है १३ जुलाई १९८९ का गुरुपूर्णिमा संदेश, परमवन्दनीया माताजी के श्रीमुख से

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

प्रेरणाओं का स्रोत—गुरु

हमारे आत्मीय परिजनो! आज का यह गुरुपर्व आत्म-समीक्षा का पर्व है, संकल्प का पर्व है और यह गुरु का पर्व है। गुरु कौन होता है? गुरु हमारा मार्गदर्शक होता है और गुरु हमारी प्रेरणाओं का स्रोत होता है। हमारे मार्ग में जो कटि बिखरे होते हैं, गुरु उनको दूर करता जाता है और हमको रास्ता बताता हुआ चला जाता है। गुरु मनुष्य के जीवन-पथ की प्रगति का द्वार खोल देता है, उसका आत्मविकास कर देता है और यह कहता हुआ चला जाता है कि राह में कटि हैं तो क्या हुआ, हम आपके साथ हैं। आप इस मार्ग पर चलिए। हम अपने तप का एक अंश आपको देंगे, ताकि आप में वह शक्ति आ जाए, वह ऊर्जा उत्पन्न हो जाए कि आप कौटों में भी यह अनुभव करें कि ये हमारे लिए कटि नहीं, फूल हैं, मोती हैं।

गुरु, प्रेरणा के स्रोत का नाम है। गुरु संबल होता है, गुरु कल्पवृक्ष होता है। इस शक्तिस्रोत के नीचे जो बैठता है और फलाकांक्षा करता है, वह साधक को, शिष्य को मिलता हुआ चला जाता है और शिष्य धन्य हो जाता है, क्योंकि जिस सत्ता का हाथ उसने पकड़ा है, जिसका आँचल पकड़ा है, उसमें उसका विश्वास है, उसकी श्रद्धा है। तुलसीदास जी ने कहा है—“भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वास-रूपिणी।” मैं भवानी-शंकर जी वंदना करता हूँ। कहाँ हैं भवानी शंकर? यहाँ न भवानी दिख रही है और न शंकर, फिर किसकी वंदना कर रहे हैं? उन्होंने कहा कि श्रद्धा और विश्वासरूपी भवानी-शंकर हैं, उनकी मैं वंदना करता हूँ। बेटे, यह उनकी श्रद्धा है और विश्वास है। जो श्रद्धा और विश्वास है, वही सफलता का सोपान है। सफलता शिष्य को जरूर मिलती है, इसमें दो राय नहीं है, लेकिन मिलती कब है? जब शिष्य बाँसुरी के तरीके से बिल्कुल खाली हो जाता है। आपने बाँस की बाँसुरी देखी होगी। वह

बाँसुरी कैसी है? वासनाओं से खाली। तरह-तरह के विकारों से जब शिष्य खाली हो जाता है, तब गुरु उसमें तरह-तरह के राग निकालता है और शिष्य कठपुतली के तरीके से बाजीगर के इशारों पर चलता जाता है। बाजीगर कौन होता है? गुरु। कठपुतली कौन होता है? शिष्य। जिस तरीके से कठपुतली अपना समर्पण करती है और कहती है कि जैसा चाहें वैसा नाच आप नचाते चलिए, हम नाचने के लिए तैयार हैं। जो भी पाँट आप अदा कराना चाहें, वह हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। चाहे हमारे पथ में कितनी ही बाधाएँ क्यों न हों। बाधाएँ अपनी जगह पर होंगी, लेकिन शिष्य उस चट्टान का नाम होता है, जो कि बिना सोचे-विचारे उसी रास्ते पर चलता है, जो उसे मार्ग दिखाया गया है।

गुरु गोविंद से भी बड़ा

गुरु कौन है? गुरु वह है जो जीवात्मा को परमात्मा से मिलाता है। गुरु ही मिलाता है, गुरु न हो तो नहीं मिल सकता। बुद्धि मिल सकती है, शिक्षा मिल सकती है, लेकिन हमको श्रद्धा नहीं मिल सकती, भगवान नहीं मिल सकता। भगवान से हम लाखों कोस दूर बने रहेंगे। भले ही हम वैज्ञानिक क्यों न बन जाएँ, हम कुछ और क्यों न बन जाएँ। बुद्धि मिल जाएगी? हाँ, बुद्धि मिल जाएगी, लेकिन वह बुद्धि विनाशकारी बुद्धि होगी। वह रचनात्मक दिशा में नहीं चल सकती, क्योंकि उसके पास श्रद्धा नहीं है। गुरु और भगवान दोनों में से कौन बड़ा है गुरु अथवा भगवान? बेटे, यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखेंगे तो पाएँगे कि गुरु ही बड़ा है, क्योंकि वह शिष्य को भगवान से मिलाता है। कहा गया है—

गुरु-गोविंद दोऊ खड़े, काके लागू पाँय।

बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दियो मिलाय ॥

इस तरह गोविंद से मिलाता है गुरु। भटके हुए हमारे कदमों को गुरु ही हर पग पर सँभालता है। गुरु ही है जो हमारी मानसिक वेदना को हरता है और शांति लाता है। चाहे भले से उसके ऊपर कोई कष्ट क्यों न आता हो। वह जान की बाजी लगाकर भी अपने शिष्य को बचाता है और उसको सही रास्ता बताता है।

क्यों साहब! कैसे मालूम पड़ेगा कि गुरु देता है कि नहीं देता। हमको तो नहीं मिला, हम बेटा-बेटी माँगने आए थे। संभव है आपको न मिलने पर कुछ ठेस लगी हो, लेकिन इसके पीछे भी कोई रहस्य है। संभव है कि जो आप माँगने आए हैं, आपके लिए वह घातक ही सिद्ध हो। गुरु को यह मालूम है कि हमें इसको क्या देना चाहिए, क्या नहीं देना चाहिए। हम इसको दलदल में फँसने दें अथवा इसे दलदल में से निकालें, ताकि यह उपयोगी बन सके। आपके मन में यह विचार क्यों नहीं आता। जाने-अनजाने में कितनी झोली भरी जाती है, यह व्यक्ति समझ नहीं पाता।

अभी दो घटनाएँ ऐसी हुई हैं जो मैं आपको बताना चाहती हूँ, हालाँकि शायद आप ये समझें कि हमको चमत्कारवाद बताना चाहती हैं, पर बेटे यह चमत्कारवाद नहीं है, यथार्थवाद है। चमत्कार पर हम जरा भी विश्वास नहीं करते, यथार्थ पर हम भरपूर विश्वास करते हैं। अभी कल-परसों दो-चार रोज की बात है। हमारी एक बच्ची जिस गाड़ी से आ रही थी, उस गाड़ी में किसी ने ऐसे जोर का पत्थर मारा कि उसका शीशा चकनाचूर हो गया। बच्ची कहती है कि ऐसा लगा जैसे पत्थर पकड़ लिया गया, लगा नहीं, जबकि खिड़की का काँच बच्ची के ऊपर, आस-पास के लोगों के ऊपर, उसके पति और सास के ऊपर गिरा। गुरुजी ने पूछा—बेटी रास्ते में कोई परेशानी तो नहीं हुई बता। भावावेश में मुँह से कुछ कह नहीं सकी। प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष। यह मदद है कि नहीं, बताइए? यह मदद ही है।

गुरु हर तरह से मदद करता है

परोक्ष रूप से मदद किसने की? बेटे गुरुजी ने की, आज जी खोलकर कहने दीजिए। कितने ही व्यक्ति, हमारे लड़के यहाँ बैठे हैं। अभी मैं उनको खड़ा कर दूँ तो मैं समझती हूँ कि आप में से दो सौ-पाँच सौ ऐसे निकल आएँगे जो कि यह अनुभव करते हैं कि हाँ गुरुजी ने हमारी मदद की। एहसान है? कोई एहसान नहीं, आप हमारे बेटे हैं। हमने आपको विश्वास दिलाया है कि हम आपके हैं तो भरसक यह प्रयास होता रहा है और होता रहेगा। क्यों साहब! कोई भाग्य के विधाता हैं आप? फिर कभी मरने देंगे कि नहीं मरने देंगे? यह गारंटी किसी के लिए नहीं है। जो आया है वह तो जाएगा ही। कोई पहले जाएगा, कोई पीछे जाएगा। इसमें हम क्या कर सकते हैं, पर चाहेंगे कि न जाएँ और उसे किसी भी कीमत पर रोकें तो ऐसा भी नहीं हो सकता।

बेटे, यह मदद कौन करता है? वह गुरु करता है जिसके हाथ में हमने अपना सर्वस्व सौंप रखा है। गुरुजी ने

अपनी डोरी उस बाजीगर के हाथ में थमा दी है और हर पल यह देखते रहते हैं कि हिमालय से गुरुदेव का क्या संकेत आएगा। जो आया, उसका पालन करना है, उसमें एक सेकंड की भी देर नहीं होती है। कल-परसों उन्होंने कहा कि अभी संकेत आया है कि यह नारी वर्ष है। यह नारी वर्ष है तो आपने पहले से क्यों नहीं कहा? पहले से इसलिए नहीं कहा कि जब जिस समय जो आभास होता है, जो प्रेरणा मिलती है, जो संकेत मिलता है, उससे एक कदम हम आगे भी नहीं बढ़ेंगे और पीछे भी नहीं हटाएँगे। आगे तब तक नहीं बढ़ेंगे, जब तक हमें दिव्य संकेत नहीं मिलता। हमारे गुरु का संकेत है तो हम आगे चलते हुए चले जाएँगे।

नारी वर्ष है, तो इसका क्या अर्थ है? मैं हँसकर विनोद में बात करने लगी। उन्होंने कहा—यह नारी वर्ष है, इसमें

समाज-सेवक महात्मा हंसराज तब विद्यार्थी ही थे। आवश्यक कार्यों से बचा सारा समय मुहल्ले के गरीब तथा अनपढ़ लोगों की चिट्ठी-पत्री लिखने तथा पढ़ने में ही लगा देते थे। जब परीक्षा निकट आई तो माता ने समझाया—क्यों रे, तू सारे दिन दूसरों की लिखा-पढ़ी करता रहता है, अपनी पढ़ाई कब करेगा? इस पर वे मुस्कराकर सहज भाव से बोले—“माँ, यदि पढ़ाई-लिखाई का लाभ अकेले ही उठाते रहे हम, दूसरों का उससे कुछ भला न हो तो ऐसी पढ़ाई-लिखाई किस काम की। शिक्षा की उपयोगिता तभी है जब उसका अधिक-से-अधिक लाभ दूसरों को मिले।”

नारी को जाग्रत होना चाहिए, नारी को आगे आना चाहिए। मुझसे कहा, जरा अपने लाड़ले बेटों से कहना कि जो बच्चियों को दबाकर रखा है, उनको आगे आने दें, उनका उपयोग होने दें। पाँच-पाँच की टोली बनाएँ। आप इनके संरक्षक तो हो सकते हैं, पर मालिक नहीं। जिस किसी ने भी मालिकी जताई, बस उसकी मालिकी छीन ली जाएगी। ये हमारी बच्चियाँ हैं। इनको आगे आने दीजिए और दीपयंत्र से लेकर जो भी छोटे-छोटे संस्कार हैं, इनको मनाने दीजिए। इनसे नहीं आता तो आप सहयोग दे सकते हैं, लेकिन मंत्र हमारी बच्चियाँ ही बोलेंगी। आपकी लड़कियाँ ऐसी हैं? हाँ, आप क्या समझते हैं, हमारी लड़कियाँ बड़ी शानदार हैं। अभी आपने इनकी शक्ति को पहचाना कहाँ है। डराया है,

दबाया है, कहीं आप उभरने दें तो मैं समझती हूँ कि आप सबको एक तरफ बैठा देंगी। बस नारी-ही-नारी दिखेगी। यहाँ से जब मैंने निगाह फैलाई तो ऐसा मालूम पड़ा कि बस अब आ गई नारी सदी।

शांतिकुंज से आरंभ हुई नारी सदी

इक्कीसवीं सदी शांतिकुंज से शुरू हुई और देख लो तीस फीसदी नारियों का स्थान तो सरकार की ओर से सुरक्षित है। जापान में तो उनचास सीटें ले आईं। कौन? नारी। नारी ऐसी है कि यदि उसकी शक्ति जाग्रत हो जाए तो दुर्गा है। उसमें दुर्गा जैसी अपार शक्ति है। आखिर यह नर कहाँ से आया है? उस शक्ति से पैदा हुआ है। वह शक्ति मध्यकाल से अब तक कुछ दबती हुई चली आई और अपनी शक्ति के बारे में अनजान हो गई थी। उसे अब पुनः झकझोरने के लिए गुरुजी ने अवतार लिया है। अवतार कह रही हैं आप? बेटा, हैं तो अवतार ही, मानो चाहे न मानो, क्योंकि कोई ऐसे कार्य नहीं कर सकता, जहाँ हर कदम पर रचनात्मक कार्य चलते हों। यह ईश्वरीय प्रेरणा है और ईश्वरीय शक्ति के रूप में है। ईश्वर नहीं कह रही हूँ, मैं यह मत समझना। मैं ईश्वरीय शक्ति के रूप में कह रही हूँ, जो कि आपके सामने विद्यमान हैं। यदि इस समय भी आप सचेत न हो पाए और आपने बाँसुरी जैसा अपने को खाली नहीं किया तो आप में राग पैदा नहीं हो सकते। आप श्रेष्ठ नहीं बन सकते। देख लीजिए उन्होंने तो अपने को बना करके दिखा दिया।

गुरु किसका नाम होता है? उसका नाम होता है जो हमें कदम-कदम पर श्रेष्ठ मार्ग पर आगे चलाता है। गुरु होता है द्रोणाचार्य। जैसे, जिसने अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बना दिया, जिसने एकलव्य को बना दिया। चाणक्य ने हाथ रख दिया था अपने शिष्य चंद्रगुप्त के ऊपर, तो उसको चक्रवर्ती राजा बना दिया। किसको? चंद्रगुप्त को। समर्थ गुरु रामदास ने एक नाटे-से, बौने-से लड़के के ऊपर हाथ रख दिया और कहा कि बेटा हमारा आशीर्वाद है, तू जा विजयी होगा। कौन था वह लड़का? शिवा नाम था उसका, जिसने अपने को समर्पित किया था। अपना समर्पण किया तो वह छत्रपति शिवाजी हो गए।

समर्पित, प्राणवान, जुझारू बनिए

हनुमान उसका नाम है, जिसने भगवान के चरणों पर अपने को समर्पण कर दिया था और यह कहा कि सीता माँ की खोज हमको करनी है। सीता माँ को वापस लाना है। भले ही हमारी समस्याएँ और परिस्थितियाँ ऐसी हैं, जो सुरसा के तरीके से मुँह फाड़े हुए हमको निगलना चाहती

हैं, लेकिन हम निगले नहीं जाएँगे। समुद्र पार करके जाना ही है, जो भी राक्षस होगा देखा जाएगा। राक्षस हमारा क्या करेगा? राक्षस माने, हमारी परिस्थितियाँ, जिनमें हम उलझते हुए चले जाते हैं मकड़ी की तरह। मकड़ी जो होती है वह अपने बुने जाले में फँस जाती है और तड़फड़ाती रहती है। जब वह निकलना चाहती है, निकलने की हिम्मत करती है तो स्वयं ही निकल जाती है। आप भी परिस्थितियों के इस मकड़जाल से निकलिए।

बेटे, आज से एक साल पहले मैंने एक हाथी का उदाहरण दिया था कि किसी राजा के यहाँ एक हाथी था। जब वह हाथी बूढ़ा हो गया तो उसे आवारा छोड़ दिया गया। सबने कहा कि अब इसमें शक्ति नहीं है। अब क्या हुआ? हाथी एक दिन पानी पीने गया और दलदल में फँस गया। जब लोगों ने देखा कि हाथी दलदल में फँस गया है, तो सब उसे छोड़कर चले आए। उस भीड़ में एक सैनिक भी था। उसने कहा, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। यह हाथी वही है, जिसने सेना में काम किया है। यह अपनी शक्ति को भूल चुका है और कोई कारण नहीं है। जब उसके सामने युद्ध जैसे दृश्य उपस्थित किए गए, जुझारू ढोल-नगाड़े बजाए गए, तो वह उठ खड़ा हुआ और दलदल को चीरता हुआ बाहर आ गया। बेटे, शरीर बूढ़ा होता है, मन बूढ़ा नहीं होता। जीवात्मा बूढ़ी होती है क्या? जीवात्मा बूढ़ी नहीं होती। व्यक्ति के झुर्रियाँ पड़ जाएँगी, दाँत उखड़ जाएँगे, बाल सफेद हो जाएँगे, पर जिस दिन व्यक्ति मन से टूट जाएगा, उस रोज़ बुढ़ा हो जाएगा। बेटे, गुरुजी अस्सी साल की उम्र में बुढ़े नहीं हुए, आप लोग कैसे बुढ़े हो रहे हैं? मुझे तो बड़ा आश्चर्य होता है कि जिससे आप जुड़े हैं, जिसको अपना गुरु कहते हैं, जिसको अपनी माँ कहते हैं, उनके झकझोरने पर दो कदम आगे नहीं चलते। इससे हमको आंतरिक कष्ट होता है, वेदना होती है।

समर्पण की महिमा

क्यों होती है? इसलिए होती है कि हमारे ऐसे नौजवान बच्चे जहाँ कहीं भी जाएँ, वहीं तहलका मचाते हुए चले जाएँगे। जिधर इनको भेज दें, उधर ही ये चलते हुए चले जाएँगे। बच्चियाँ हैं, अरे एक-एक बच्ची ने कितना-कितना काम किया है। बौद्ध धर्म में संघमित्रा नाम की लड़की और महेंद्र नाम का लड़का था। अशोक ने तो सारा-का-सारा परिवार ही अपने गुरु के चरणों पर समर्पित कर दिया था। किसी जमाने में यह प्रचलन था कि हर घर में से एक व्यक्ति सेना में जाता था। जिनके यहाँ चार लड़के थे, उनसे कहा जाता था कि एक को निकालिए, आपमें से एक तो समाजसेवी

बने। नहीं साहब। हम तो घर में घुसे रहेंगे, बीबी और बच्चे के लिए कमाते रहेंगे। और भी कोई फर्ज-कर्तव्य बनता है क्या? और कुछ नहीं बनता। समाज भी कुछ नहीं; राष्ट्र! बिलकुल नहीं। जिसे गुरु कहते आए हो, उसके काम आओगे? नहीं साहब। हमने तो सब भार सौंप दिया है गुरुदेव आपके चरणों में। अरे बेटे, जिस दिन सब भार सौंप देगा न, उस दिन देखना कि तेरा क्या परिवर्तन होगा, फिर तो विवेकानंद हो जाएगा। अभी तो कुछ भी नहीं सौंपा है। आपने सौंपा होगा तो वह, जिन्हें हम केवल कागज के टुकड़े कहते हैं। ठीक है उनकी भी जरूरत है, ऐसा नहीं है कि उनकी जरूरत नहीं है। ये बिल्डिंग बन रही हैं, किससे बन रही हैं? उन्हीं से बन रही है। लेकिन बेटे, वह सब कुछ नहीं होता। सब कुछ क्या होता है? वह होती है आपकी निष्ठा, आपकी श्रद्धा, आपका परिपक्वपन।

गुरुजी के पास पैसा था क्या? नहीं बेटे, पैसा नहीं था। तो क्या था? उनका आत्मबल था, उनकी श्रद्धा थी। उन्होंने कहा—“जिधर आप चलाएंगे, हम उधर ही चलते जाएंगे। उनके गुरुदेव ने कहा कि हजार कुंडीय यज्ञ होगा। बिलकुल होगा गुरुजी। इसमें दो राय नहीं है। हालाँकि जैसे सब पत्नी विरोध करती हैं न, उसमें मैं भी एक विरोधी थी। यह मत समझना कि मैंने भी यही कहा था। हालाँकि मैंने कदम से कदम मिलाना उन्हीं से सीखा है। उनका एक कदम चला तो मैंने दो कदम रखने की कोशिश की होगी। कभी मैंने उनको पीछे हटाने की कोशिश नहीं की, लेकिन तब मैंने थोड़ा-सा विचार किया और कहा कि घर में एक दाना नहीं है, एक पैसा नहीं है। जेवर भी पहले गिरवी रखे थे, सो छुड़ाए और फिर दान में दे दिए। अब काहे से यज्ञ होगा आप बताइए? उन्होंने कहा कि हम तो विशुद्ध रूप से कठपुतली हैं। जिसके हाथ में हमने डोरी सौंप रखी है, उस पर हमारा पूरा विश्वास है, पूरी श्रद्धा है। हमारा कुछ नहीं हो सकता और बिलकुल निर्विघ्न यज्ञ होगा। हालाँकि बच्चे तो छोटे थे और दोनों बच्चों के अपहरण की बात कही गई थी और हमारी हत्या की बात भी कही गई थी, हम सभी पूरे हिटलिस्ट में थे।

वह विकट समय और हमारी परीक्षा

हमने कहा, हाँ देखा जाएगा। मारने वाले से बचाने वाले के हजार हाथ होते हैं। बेटे, वही हुआ भी। खैर बच्चे तो हमने किसी को दे दिए थे कि भई जो जरूरतमंद हो वह हमारे बच्चों को ले जाए और हम तो आज राजा हरिश्चंद्र और शैव्या के तरीके से बिकने के लिए चौराहे पर खड़े हैं। कोई खरीददार है क्या? बेटे ऐसी झोली भर गई कि क्या

कहें। आपने तो वह समय नहीं देखा था। शायद कोई एकाध लड़का इनमें बैठा ही होगा, जिसने वह समय देखा था। बेटे, पाँच दिन गुरुजी और मैं, दोनों स्टेज पर हाथ जोड़कर खड़े रहते थे कि भगवान किसी तरह से लाज बचाना, हमारी डोरी आपके हाथ है। हमारा तन-मन और धन सब आपके चरणों पर समर्पित है। कुछ भी नहीं है हमारे पास, खाली ब्राह्मण खाली हाथ है। सारा नगर यही कहता था कि ऐसा यज्ञ या तो महाभारत काल में हुआ होगा या अब हुआ है। बेटा, वैसे बिलकुल भी नहीं होता, पर परोक्ष रूप से शक्ति मिलती हुई चली गई और परोक्ष रूप से अनुदान और वरदान मिलते हुए चले गए, जिससे कोई कमी नहीं पड़ी। मैं कहती हूँ सैकड़ों मन अनाज बचा, घी बचा और सामग्री बची, जो सालों के लिए हो गई।

यह कैसे संभव हो गया? बेटे मैं आपको श्रद्धा की बात बता रही हूँ कि जिसके प्रति हमारी श्रद्धा है, जिससे हम

प्रसिद्ध गुजराती कवि कलापी से एक बार एक शिक्षित व्यक्ति ने पूछा—“शृंगार, करुण, वीर आदि रसों में से कौन-सा रस आपको अधिक प्रिय है।” “समाज के हितकर हो, मुझे वही रस प्रिय है। चाहे वह करुण रस हो या वीर रस।” कवि कलापी ने उत्तर दिया।

जुड़े हुए हैं, वह हमारी हर पूर्ति करने के लिए तैयार है। यदि इतना मिलता है तो माताजी यह बताइए कि हम जितने व्यापारी और नौकरीपेशे वाले बैठे हैं, हमारे कितने-कितने रूप बढेंगे। बेटे, अगर मैं यह कह दूँ कि तेरे और भी घट जाएँ तो? अरे माताजी तब तो हम आज किसी कीमत पर नहीं आते। हम तो आशीर्वाद लेने आए हैं। बेटे, आप सबके लिए भरपूर आशीर्वाद है, पर हम तो यह कहते हैं कि स्वार्थ में और परमार्थ में बहुत अंतर होता है। जमीन-आसमान का अंतर होता है। स्वार्थ में खुद के लिए माँगा जाता है और परमार्थ में लोकमंगल के लिए माँगा जाता है। यदि विवेकानंद ने अपने लिए माँगा होता तो उनको क्या मिलता? नौकरी मिलती या कोई बड़े व्यापारी बन जाते, फिर उससे क्या बनता। आज हम विवेकानंद का नाम लेते-लेते थकते नहीं हैं, क्योंकि वे समर्पित हो गए थे। जिससे वह भी धन्य हो गए और रामकृष्ण परमहंस भी धन्य हो गए। बेटे, भगवान तब निकट आता हुआ चला जाता है,

जब साधक पूर्ण समर्पण के लिए तैयार हो जाता है। तब उसके ऊपर कृपा बरसती है, उससे पहले नहीं बरसती।

शबरी को सारी जिंदगी लग गई थी झाड़ू लगाते-लगाते। बेचारी को कुछ नहीं आता था, लेकिन उसकी श्रद्धा थी कि मुझे भगवान का काम करना चाहिए। भगवान का नाम? हाँ, भगवान का नाम भी लेना चाहिए, पर भगवान का नाम चौबीस घंटे नहीं लिया जाता। एक घंटे लो, दो घंटे लो, तीन घंटे लो, पाँच घंटे लो, छह घंटे लो, बस बात खत्म। फिर बाकी का जो समय बचता है, उसका क्या उपयोग करिएगा? मैं तो आपसे एक निवेदन करती हूँ कि चाहे आप पाँच माला करना, तीन माला करना, तीन न बने तो एक ही करना। एक से ही आपको वह शक्ति मिल जाएगी, लेकिन करना बड़ी श्रद्धा से और नियमित रूप से। समय पर उठना और समय पर सोना। समय की जो कीमत समझते हैं, वे समय को अपने शिकंजे में बाँध लेते हैं। समय नहीं बाँध पाता, लेकिन वे बाँध लेते हैं और समय का विभाजन करते हुए चले जाते हैं। उसी से उनकी उन्नति-तरक्की होती हुई चली जाती है। उसी में समाज की सेवा भी कर लेते हैं और अपनी बौद्धिक भूख भी मिटाते रहते हैं, जिसका नाम स्वाध्याय है। स्वाध्याय करते-करते अनेक भाषाओं के ज्ञाता भी हो जाते हैं, जैसा कि मैं बिनोबा भावे के बारे में कई बार कह चुकी हूँ। उन्होंने कितनी ही भाषाएँ पढ़ी थीं।

मनोयोग और श्रद्धा का समन्वय हो

फिर क्या कारण है कि हम नहीं पढ़ सकते, हम कुछ नहीं कर सकते? इसका एक ही कारण समझ में आता है कि हमारे अंदर जो आलस्य और प्रमाद छाया हुआ है अथवा जो अज्ञानता छाई हुई है, वह हमें दो कदम आगे नहीं बढ़ने देती। इसी के लिए हम गुरु का संबल लेते हैं। गुरु जीवात्मा को परमात्मा से मिलाने का काम करता है। वह भगवान से हमको मिला देता है। गुरु शक्ति के रूप में अनुदान और वरदान देता है। जिस तरीके से लव और कुश को वाल्मीकि ने अपनी सारी शक्ति दे दी थी और यह कह दिया था कि बेटे, तुम अपने पिता से भी ज्यादा पराक्रमी बनोगे। बाप से भी ज्यादा पराक्रमी बच्चे हो जाएँगे? क्यों नहीं हो जाएँगे। गुरु का संरक्षण, गुरु की शक्ति, उनकी प्रेरणा जो साथ में है। गुरु हमें साहस बाँधाता है।

गुरु को क्या समझते हैं आप? गुरु होते हैं—विश्वामित्र। विश्वामित्र के हवाले जब राम-लक्ष्मण हो गए तो उन्होंने ये कहा था कि गुरुवर आपके यज्ञ की पहरेदारी करना हमारा

काम है। हम देखेंगे कि कौन राक्षस आता है, कौन-सा विघ्न आता है? आप यज्ञ करिए अर्थात् जो आपकी तपश्चर्या है, आप तप करिए और जो रचनात्मक कार्य हम कर सकते हैं, सो हम करेंगे। देख लेंगे कौन आता है। उनसे कहा—बेटे, तुममें इतना साहस है? उन्होंने कहा कि श्रद्धा-भक्ति ये दो चीजें हमारी हैं और शक्ति आपकी है, प्रेरणा आपकी है, मार्गदर्शन आपका है। तब बला और अतिबला दोनों विधाएँ उन्होंने राम और लक्ष्मण को सिखा दीं। वसिष्ठ जी ने योग वसिष्ठ सिखाया था। शिष्य पर इतनी गुरु की कृपा बरसती रहती है, लेकिन शिष्य भी इस लायक हो तब न।

पात्रता की अनिवार्यता

उन्हीं दो को क्यों मिली, औरों को क्यों नहीं मिली? औरों को इसलिए नहीं मिली कि कई बार भगवान भी कुछ देकर पछताता है। रावण को देकर भगवान शंकर हैरान हो गए थे और उन्होंने कहा कि अब हमें वरदान नहीं देना है, बहुत दे चुके। हमने देख लिया। किन-किनको देकर देख लिया? भस्मासुर को और रावण को। रावण ने इतनी तपश्चर्या की थी कि उसने काल को भी पाटी से बाँध लिया था। जिसके इशारे पर काल भी बाँध जाए, जिसके इशारे के बगैर पत्ता भी नहीं हिल सकता, इतनी जबरदस्त शक्ति। फिर उस शक्ति का उपयोग क्या किया गया? उपयोग नहीं दुरुपयोग किया। इसका क्या मतलब हुआ? मतलब एक ही हुआ कि वरदान का उपयोग खुदगर्जी के लिए किया गया और अपना सर्वनाश कर लिया। किसने? रावण ने और भस्मासुर दोनों ने।

देखो, हमारे ये पीले-पीले परिजन बैठे तो हैं, पर जब इनसे यह कहेंगे कि लोकमंगल के लिए जरा समय निकालना, तो पीछे हट जाएँगे। कोई कहेगा कि हमारी पत्नी ठीक नहीं है तो कोई कहेगा कि हमारा बच्चा बेलाइन है। कोई कहेगा कि हम क्या करें, हमें भी कुछ गठिया की सी शिकायत हो रही है। बताइए अब हम कैसे काम कर सकते हैं? आपके काम में हम कैसे सहयोगी बन सकते हैं? हम नहीं बन सकते। और क्या-क्या चाहिए? पहाड़ से भी ऊँचा चाहिए। कुछ देने को भी है बेटा? नहीं माताजी। एक कौड़ी भी नहीं है। और लेने को? अहा लेने को तो सुन लो आप, सुनते-सुनते थक जाएँगे, हम कहते-कहते नहीं थकेंगे। मनोकामनाओं से लेकर के दुःख-पीड़ा तक। अच्छा बेटा, हम वायदा करते हैं कि हम तुम्हारी पूरी-पूरी मदद करेंगे, पर तू भी कुछ करेगा? माताजी। मैं कुछ नहीं करूँगा।

(क्रमशः अगले अंक में समापन)

□

बलिहारी गुरु आपनी जिन गोविंद दियो मिलाय

(१३ जुलाई १९८९ का गुरुपूर्णिमा संदेश, परमवंदनीया माताजी के श्रीमुख से।)

वरदान चाहिए किस उद्देश्य के लिए

एक बार शंकर और पार्वती जी भ्रमण कर रहे थे। जंगल में एक वृद्ध दंपती अपने बच्चे के साथ तप कर रहे थे। पार्वती जी ने कहा कि देखिए भगवन्! ये लोग बैठे हैं। कैसे-कैसे बच्चे हैं, आप इनको कुछ भी नहीं देंगे? शंकर जी ने कहा कि एक बार तो हम आपके कहने में आ गए, पर अब हम इन्हें वरदान नहीं देंगे। पार्वती जी ने कहा कि देखिए, इन्होंने कितने दिन तपश्चर्या की है, कुछ तो दे दीजिए। उन्होंने कहा—दे देते हैं। शंकर भगवान ने उनसे कहा कि भई! आप लोग क्या माँगते हैं? बुढ़िया बोली—मैं तो एक चीज माँगती हूँ। क्या माँगती है? मरने का तो वक्त आ गया, नब्बे साल की उम्र होने को आई, अब क्या चाहिए? उसने कहा कि मुझे तो टिपटॉप यौवन चाहिए, जिससे मैं सोलह-अठारह साल की लड़की लगूँ। अच्छा ठीक है ले जा। जब वह षोडशी हो गई तो उसे देखकर वह जो बुढ़ा ब्राह्मण था, सो मन-ही-मन कुड़कुड़ाया। आप में से कोई होते तो शायद वहीं उसकी खबर ले ली होती, पर उसने लिहाज किया कि भगवान के सामने बेइज्जती नहीं करनी चाहिए। पत्नी है तो क्या हुआ, सबके सामने कुछ नहीं कहना चाहिए, इतनी उसमें अक्ल थी। वे पहचान गए, क्योंकि भगवान थे। उन्होंने कहा—ऐसे क्या कर रहा है, तू भी माँग ले। उसने कहा—मैं माँगता हूँ कि आप इसको सुअरिया बना दें। सुअरिया बना दिया, अब बच्चा रोने लगा।

बेटे! माँ से बच्चा पैदा होता है और माँ ही उसका लालन-पालन करती है। गुण-कर्म-स्वभाव माँ ही देती है। सारे-के-सारे गुण बच्चे में माँ के जाएँगे। गुरुजी में बेटे, सबसे ज्यादा माँ के ही गुण हैं। तपश्चर्या में भी माँ के ही गुण हैं और एक सेकंड फलतून बैठना, यह भी उनकी माँ का गुण है। मितव्ययता भी माँ का गुण है। क्या मजाल जो एक नया पैसा व्यर्थ खर्च हो जाए, वैसे चाहे लाखों रुपए खर्च हो जाएँगे, पर वे काम में ही खर्च होते हैं। जहाँ एक नया पैसा फजूल खर्च हुआ नहीं कि बस लाल हो जाते हैं। मैं तो जरा ठंडा करती रहती हूँ कि साहब! हो गई गलती तो हो जाने दो, बच्चे ही तो हैं, कभी-कभी गलती हो जाती है।

बालक ने कहा—अरे, मेरी मम्मी तो सुअरिया हो गई, अब मुझे खाना कौन देगा? भगवान बोले—बेटा तुझे क्या चाहिए? उसने कहा—आप बस यही वरदान दीजिए कि जैसी मेरी माँ पहले थी, वैसी ही हो जाए। अच्छा चल! और जल छिड़क दिया, माँ पहले जैसी हो गई। क्या पल्ले पड़ा, जरा बताना? कुछ भी नहीं पड़ा। इतनी तपश्चर्या भी की, भगवान का तप भी खरच कराया और वरदान भी लिया, सो भी क्या लिया, जो किसी मतलब का नहीं, किसी काम में नहीं आया। खाली हाथ के खाली हाथ रह गए। ऐसा क्यों किया गया? इसलिए किया कि उनमें अक्ल नहीं थी और दूरदर्शिता नहीं थी कि हमें किस उद्देश्य के लिए वरदान चाहिए। आखिर हम इसका करेंगे क्या? किसी लोक-मंगल के लिए, अच्छे कार्य के लिए वरदान माँगा गया होता तो अवश्य फलता; इसमें दो राय नहीं हैं।

हमें प्रवेश करने दीजिए

बेटे! आपने गुरुजी की शक्ति को अभी पहचाना ही नहीं है। शरीर को छुआ है, शरीर ही आपने देखा है, बुरा मत मानिएगा। चूँकि आप हमसे जुड़े हुए हैं, आप में श्रद्धा तो है, मैं ऐसा नहीं कहती कि श्रद्धा नहीं है, लेकिन आपने अपने चर्मचक्षुओं को ही खोला है। अभी हृदय के कपाट को और खोलो, उसमें गुरुजी को आने दीजिए, घर में प्रवेश करने दीजिए। बेटे! हम दोनों को जाने दीजिए अपने घर। नहीं साहब! हम तो आपके पाँव छुएँगे, पाँव धोएँगे माताजी! पैर में क्या है? जो तेरे पैर में है, सो हमारे पैर में है। कोई बड़ी चीज नहीं है, जो कुछ है, सो तेरी श्रद्धा में है। यदि श्रद्धा है तो सिद्धांत भी लेकर चलो। आप पूरी तरह से जुड़िए। हमको अपने घर में प्रवेश करने दीजिए, आप तो किवाड़ बंद करके रखते हैं। मनोकामनाएँ तो पूरी करा ले जाएँगे, पर गुरुजी-माताजी के लिए घर के किवाड़ बंद हैं। नहीं माताजी! किवाड़ बंद कहाँ हैं, आप दोनों तो हमारी पूजा की चौकी पर बैठे हैं। अच्छा बेटा, बहुत धन्यवाद! पूजा की चौकी पर बैठे हैं, ये क्या कम है, नहीं तो जिस दिन आपकी कोई मनोकामना पूरी नहीं हुई, उसी दिन गुरुजी-माताजी के चित्रों को उठाकर फेंक देते। क्यों, इससे

क्या फायदा है ? कई लड़के ऐसा करते हैं कि जब उनका काम नहीं बनता तो भरपूर गाली देते हैं। जब काम बन जाता है तो फिर बेचारे लाइन पर आ जाते हैं कि इन्हीं की कृपा से हमारा काम बन गया। जब तक आपने अपना मन नहीं खोला, तब तक हम आपके मन में कैसे प्रवेश करें, आपकी बुद्धि में, आपके सिद्धांतों में कैसे प्रवेश करें ? हमें प्रवेश करने दीजिए।

माताजी ! बताइए, आप और गुरुजी कब आ रहे हैं ? हाँ बेटे, आपको तारीख और तिथि बता देंगे, थाली लगी हुई रखना। अच्छा तो क्या-क्या पकेगा ? बेटा, पकेगा सो पकेगा, रहने दे, तू जाने और तेरा काम जाने। हम तो नमक से भी रोटी खाने वालों में से हैं। आप तो कहती हैं कि हम एक टाइम खाते हैं। हाँ, एक टाइम खाते तो हैं कुछ, तो खिला—निकाल। कितना निकालें ? आठ रुपये के हिसाब से मत निकाले तो ढाई रुपये के हिसाब से तो निकाल। हम दो जने जाएँगे तो पाँच रुपये का खिलाएगा कि नहीं। इस हिसाब से एक साल के साठ रुपये हुए, इतना भी नहीं तो हर महीने की जो अखण्ड ज्योति जाती है, उसके लिए पच्चीस रुपये साल के हिसाब से निकाल। उसे सँभालकर रखेगा तो वह तेरे लिए ही नहीं, बल्कि तेरी पीढ़ी-दर-पीढ़ी के काम आएगी। तू यह भी नहीं निकालेगा तो मत निकाल, हम तुझे फिर भी सब कुछ देते हुए चले जाएँगे। अखण्ड ज्योति में वह विचारणा है कि हमारे यहाँ दिल्ली से एक लड़का आता था और यह कहता कि माताजी, कभी कोई समस्या आती है तो या तो मैं गुरुजी के पत्रों को पढ़ता हूँ या अखण्ड ज्योति पढ़ता हूँ, मेरे सब समस्या भागती हुई चली जाती है। जो विद्यार्थी होते हैं, वे कहते हैं कि हम अखण्ड ज्योति पढ़ करके गए थे, वही प्रश्न आया, सो हमने किया। इसमें ऐसा ही भरा है ? हाँ बेटे ! ऐसा ही भरा है। हम आपसे कोई अपेक्षा करने नहीं आए हैं।

चाहिए आपकी श्रद्धा, आपका समय

बेटा ! आज गुरुपर्व है। आत्मचिंतन और आत्मशोधन का पर्व है। आज हम आपसे एक ही चीज माँगने आए हैं और वह है आपकी श्रद्धा, आपका विश्वास और आपका समय। आप समय दे दीजिए और हमको कुछ भी मत दीजिए। आप जिस लायक हैं, कुछ कदम तो उठाइए। हम तो आपको केवल त्याग का पाठ पढ़ाने आए हैं। थोड़ा-सा भी आप कुछ निकाल कर चलेंगे तो आपके मन में यह संतोष होगा कि हम भी कुछ कर रहे हैं, हम भी कुछ दे रहे हैं। नहीं, हम तो सब खाते जाएँगे। तो फिर आप कौन हैं ?

राक्षस हैं, जो खाते ही जाएँगे। नहीं साहब ! देंगे नहीं, खाएँगे ही खाएँगे। बेटे ! खाएँगे ही नहीं, खिलाना भी है। किसको खिलाना है ? सारे समाज को खिलाना है और सारे विश्व को खिलाना है। आपकी भावना चाहे छोटी-सी क्यों न हो।

आप गिलहरी के समान क्यों न हों। गिलहरी की भावनाएँ थीं, आस्था थी कि भगवान राम के काम में आई और भगवान राम ने उसको अपने हाथ पर रख करके ऐसा पुचकारा कि कहते हैं कि गिलहरी के शरीर पर जो काला रंग है, वह भगवान राम की उँगलियों का है। क्योंकि वे

एक तार्किक युवक था। संत ने ईश्वर के पक्ष में अनेक प्रमाण दिए, किंतु वह मानने के लिए तैयार न था। युवक ने कहा—“स्वामी जी ! विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है कि ईश्वर यदि हृदय की गुफा में भी होता, तो भी डॉक्टरों को हार्ट ऑपरेशन के समय मिल गया होता।”

स्वामी जी को युवक की स्थूल दृष्टि समझते देर न लगी। उन्होंने युवक को इस तरह समझाया, जिस तरह फूल की गंध आँख से नहीं, घ्राण से मालूम होती है और संगीत का रस आँख से नहीं, कान से अनुभव होता है। दूध के अंदर का मक्खन मथने से प्रकट होता है। उसी प्रकार कण-कण में व्याप्त ईश्वर करुणा और सेवा के दो नेत्रों से ही देखा जा सकता है।

साँवले थे, सो धारियाँ पड़ गई। बेटे ! पड़ गई कि नहीं पड़ गई, यह मुझे नहीं मालूम, लेकिन यह सिद्धांत बिलकुल सही है। इसमें दो राय नहीं हैं कि यह भगवान का जो खेत है, इसमें जितना बोया जाएगा, उससे हजार गुना प्राप्त होता रहेगा। मैंने उस रोज कई बच्चों से कहा था, जब टोलियों की गोष्ठी ले रही थी कि देखिए, आपने मक्के का दाना देखा है न ? हाँ। अच्छा, उसको जब हम मिट्टी में बो देते हैं तो कितने रूप में पैदा होता है ? वह सैकड़ों दानों के रूप में पैदा हो जाता है। मक्के और बाजरे की बालों के रूप में, भुट्टे के रूप में, बस यही सिद्धांत है। अध्यात्म का भी यही सिद्धांत है। आप बोइए और काटिए।

बोड़ए और काटिए

बेटे! किसान तो एक दो बार बोता है और एक-दो बार काटता है, पर जो साधक हैं, जो शिष्य हैं, वे तो रोज बोते हैं और रोज काटते हैं। जो जितना बोता है, उसका हजार गुना उसको मिलता हुआ चला जाता है, यदि उसका विश्वास उसके साथ है और उसकी श्रद्धा उसके साथ है, तब। जब श्रद्धा नहीं है तो एक कविता का अंश है, मुझे कविता तो याद नहीं है। वह रवींद्रनाथ टैगोर की कविता है। उसमें एक अतिथि था—एक भिखारी। उसने कहा कि हमें कुछ दे दीजिए। जो सज्जन अनन्य ले जा रहे थे, उनकी झोली भरी हुई थी। याचक बार-बार कहता जा रहा था कि जरा एक दाना हमको भी दीजिए। सारा आप ही खा जाएँगे क्या? वह बोला—नहीं, यह तो मेरे लिए ही है। नहीं साहब! हमारे लिए भी है। उन्होंने झट अपनी झोली में से एक दाना उसके हाथ पर रख दिया। घर लौट करके जब झोली को उँड़ेलता तो उसमें एक दाना सोने का पाया। उन्होंने कहा, हाय रे! मैंने यह कैसी भूल की। वह पछताता रह गया कि क्यों न मैंने अपनी सारी झोली को उँड़ेल दिया, ताकि मेरे सारे-के-सारे दाने सोने के हो जाते।

हम समझ नहीं पाते कि कितना अनुदान और वरदान मिलता रहता है। हमको जो शक्ति मिलती रहती है, उससे हम अनभिज्ञ रहते हैं। अनभिज्ञ न रहे होते तो वह साहस, वह शक्ति, वह पराक्रम, वह त्याग और बलिदान हमारी भावनाओं में होना चाहिए था, जो कि साधक की मनोभूमि में होता है। साधक अलग चीज है और माला जपना अलग चीज है। माला तो वे भी जपते हैं, जो गद्दी पर बैठे हैं, देखते भी जा रहे हैं और माला भी जप रहे हैं। अनाज की बोरी भी आ रही है तो कहा कि उस स्टोर में रख आ। यह माल वहाँ जाएगा और यह वहाँ जाएगा। क्यों, भगवान का भजन कर रहे हो या माल का? हर समय जो विचारों में समाया रहता है, वह तमाम दुनिया का कूड़ा-कबाड़ा जप करते समय ही याद आता है। तो खाली कहाँ हुए, खाली करो न अपने को, फिर देखिए, आपके अंदर भगवान की शक्ति प्रवाहित होती है कि नहीं। आपको ऐसी प्रेरणा मिलेगी कि आप ध्रुव तारे के तरीके से चमक जाएँगे। वह गुरु की, नारद जी की ही प्रेरणा थी। नारद जी ने पार्वती जी से यह कहा था कि पार्वती, अपने कदम मत डगमगाना। आप शंकर जी की होने वाली पत्नी हैं, इसलिए तप करें। उन्होंने तप किया। कहते हैं कि उनके पास सप्तऋषि गए, देवता गए, तब उन्होंने सबसे एक ही बात कही थी—

जन्म कोटि लागि रगर हमारी।

बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥

किसी एक पर विश्वास करें

बेटे! उनका एक ही इष्ट था, किंतु आपकी—जो पूजा की चौकी है, उस पर तो भानमती का पिटारा—ऐसा कुनबा बैठा है कि शंकर जी से लेकर हनुमान तक, गणेश जी से लेकर संतोषी माता, चंडी माता, न जाने कौन-कौन इकट्ठे हैं। उसी में गुरुजी-माताजी भी बैठे हैं। ऐसी स्थिति में किसी को कुछ नहीं मिला सकता। क्यों नहीं मिलेगा? क्योंकि आपने किसी एक का आँचल पकड़ा ही नहीं है।

कोई गृहस्थ अकस्मात् आर्थिक विपत्ति में पड़ गया। उसको पेट भरने की चिंता होने लगी। उसके एक साथी ने कहा—“भगवान की पूजा करो, उनसे कुछ माँगो।” गृहस्थ का मन हुआ, क्यों न भगवान से याचना की जाए, पर तुरंत ही उसकी अंतरात्मा ने आवाज लगाई—विश्वासी आदमी को याचना नहीं करनी चाहिए, भगवान से भोजन की नहीं, धैर्यशक्ति की याचना करो। इस पर उस गृहस्थ को अपने अंदर भगवान की दिव्यवाणी सुनाई दी—“मैं धैर्य का समुद्र तुम्हारे साथ हूँ, तुम अधीर होकर अपना विश्वास क्यों खोते हो, क्या मैं बिना प्रार्थना के नहीं देता? मुझ पर अटल विश्वास रखने वाले भक्त का योगक्षेम वहन करते रहने की तो मैंने शपथ ले रखी है।”

गृहस्थ ने मन ही मन भगवान से कहा—सत्य है प्रभो, मैं भटक गया था। तुमने मुझे सँभाल लिया।

बेटे! आपको विश्वास ही नहीं है, आस्था ही नहीं है। डाल-डाल और पात-पात पर घूमने वालों को कहाँ से मिलेगा! समर्पण से मिलता है। पत्नी को मिलता है, वेश्या को नहीं मिलता। क्यों नहीं मिलता? क्योंकि बेटे, पत्नी में भावनाएँ हैं, त्याग है। पत्नी जब शादी होकर के आती है तो अपना सारा-का-सारा पिछला जीवन भूल जाती है और आगे का पाठ पढ़ती है। जिसमें उसके पति की प्रसन्नता, उसके सिद्धांत, उसकी भावनाएँ निहित हैं, उसी में वह घुलती-मिलती हुई चली जाती है। इसे कहते हैं समर्पण।

वेश्या किसे कहते हैं? उसे कहते हैं कि जब शरीर में ताकत न हो और पैसे में दम न हो तो दो लात देगी और भगा देगी।

बेटे! यह कौन-सी साधना है, जो मैं आपसे कह रही हूँ। आपको बुरा तो लग रहा होगा, माफ करना। मैं तो आपकी श्रद्धा को मजबूत करने के लिए कह रही हूँ। मेरा उद्देश्य आपका तिरस्कार करने का नहीं है। आप तो हृदय से लगाने लायक हैं। इतनी-इतनी दूर से बड़ी श्रद्धा से आए हैं। आप में और भी प्रखरता आ जाए, इसके लिए कह रही हूँ। उपासना का मतलब यदि यही रहा कि लाओ भगवान देकर जाओ, लेकर कुछ भी मत जाओ। इससे भी माँगना, उससे भी माँगना, यह भक्ति नहीं है। भक्ति तो एक रास्ते पर चलने की होती है। उसे जो भक्त अपना लेता है तो कठिन-से-कठिन रास्ते को भी पार करता हुआ चला जाता है। मैं शीरी-फरहाद का बार-बार उदाहरण देती हूँ। उसके पिता ने घोषित किया था कि जो पहाड़ खोद करके नहर लाएगा, उसके साथ हम अपनी कन्या की शादी करेंगे। फरहाद पहाड़ खोद करके नहर लाया था। क्यों साहब! अकेला नहर खोद लाया? हाँ बेटे, पहले उसने अकेले खोदा और फिर उसको जन-सहयोग भी मिला।

घर-घर अलख जगाने आए गुरुदेव

भगवान राम को भी जन-सहयोग मिला था। भगवान राम इस पृथ्वी पर आए और रामराज्य की उन्होंने स्थापना की। भगवान बुद्ध आए और उन्होंने बौद्ध धर्म की स्थापना की। ठीक उसी तरीके से बेटे, गुरुजी आए, “घर-घर अलख जगाएँगे, हम बदलेंगे जमाना” घर-घर अलख जगाने के लिए आए और इतना बड़ा समूह तैयार किया, आप कितने बैठे हैं। मैंने जब गिनती सुनी तो हैरान हो गई। किसी को स्वीकृति नहीं दी, क्या चक्कर है? ये दस हजार कहाँ से आ गए, किसकी आवाज पर निकल पड़े? बेटे, आप आवाज सुन करके ही आए हैं। शायद हमको कोई पुकारता-बुलाता है और यह कहता है कि यह सही समय आया है, अब इक्कीसवीं सदी आने वाली है और बीसवीं सदी जाने वाली है। उसके लिए हमारे प्रत्येक परिजन को कमर कसकर आगे की पंक्ति में आना पड़ेगा। आगे की पंक्ति में ही नहीं आएँगे, बल्कि जितना भी त्याग कर सकते हैं, वह भरसक करेंगे।

बेटे! अब वह समय आ गया है कि हमें आगे की पंक्ति में आना है और समाज का, राष्ट्र का काम करना है, जो कि हमसे आशा लगाए बैठे हैं। कौन-कौन आशा लगाए बैठे हैं? बेटे! राजनीति से लेकर धर्मनीति तक सब हमारे मिशन

की तरफ देख रहे हैं। वे कह रहे हैं कि यहाँ से हमको प्राप्त हो सकता है। कल-परसों की बात है—मैं जरा-सा उल्लेख कर दूँ—एक अखबार में वैसे ही छाप दिया कि कितने-कितने प्रतिनिधि कहाँ-कहाँ से आते हैं। कहीं से मुख्यमंत्री, कहीं से अन्य कोई। साहब! यह क्या बात है, ऐसे क्यों भागते चले आते हैं? बेटे! उनको वास्तव में कुछ मिलता है, इसमें दो राय नहीं हैं। हाँ, जिसका भाग्य बिलकुल ही ठप्प हो जाए या उसके पुरुषार्थ में कमी रहे तो हमें नहीं मालूम। अगर नहीं मिलता तो ये क्यों चक्कर काट रहे हैं? देखना, अभी तो बड़े-से-बड़े चक्कर काटेंगे, क्योंकि उनको भरोसा है, उम्मीद है कि हमें मिलेगा। भगवान करे मिल जाए। जो आलसी और प्रमादी होगा, उसको नहीं मिलेगा। जिस पर हाथ रख दें, उसको शायद मिल भी जाए।

सच्चे उत्तराधिकारी बनें

इनमें हमारी कई ऐसी लड़कियाँ बैठी हैं, जो कितना गजब का काम कर रही हैं! एक लड़की तो ऐसी है कि चाहे जहाँ, चाहे जिस मिनिस्टर को खटखटा आती है। जरा-सी साधारण लड़की है, पर है बड़ी जबरदस्त। चूँकि जिसका उसने दामन पकड़ा है, अपने उस गुरु पर उसे विश्वास है कि शक्ति हमारे पीछे-पीछे आ रही है। जब शक्ति मिल रही है तो हम डरें क्यों? हमारी तो जबान ही हिलेगी, हम संपर्क करने उसके दरवाजे पर ही तो जाएँगे। हम अपनी बात कह सकते हैं, प्रतिपादन कर सकते हैं। हम पढ़े-लिखे नहीं हैं? कोई जरूरी नहीं है। मैंने कहा न कि शबरी और मीरा कहाँ तक पढ़ी थीं? कबीर कहाँ तक पढ़े थे? रैदास कहाँ तक पढ़े थे? कहीं तक नहीं पढ़े थे, फिर भी उन्होंने भगवान का काम किया कि नहीं? वे भगवान से जुड़े थे, इसीलिए सराहे गए और आगे भी उनको सराहा जाएगा।

गांधी जी के पदचिह्नों पर जो चले, वे विनोबा भावे हो गए, उनके उत्तराधिकारी हो गए। उत्तराधिकारी कौन होता है? वही होता है, जो उद्देश्यों के लिए समर्पित होता है। व्यक्ति के लिए हम नहीं कह रहे हैं। बेटे! यह मत कहना कि गुरुजी और माताजी यह कह रहे हैं कि हमारे लिए समर्पित हो जाइए। बेटे! हमारे लिए नहीं, हमारे सिद्धांतों के लिए, हमारे मिशन के लिए समर्पित हो जाइए, जिसको आप अपना समझते हैं। जिस गुरु को आप अपना पिता समझते हैं, हमें माँ समझते हैं। यह मिशन भी तो उन्हीं का है। आप लोग उसके अंग हैं, इस तथ्य को आप समझिए और इसके लिए समर्पित हो जाइए। हमारा तो मालूम नहीं कब डेरा उठ जाएगा और कब चले जाएँगे, लेकिन इस

शांतिकुंज के कण कण में, जर्-जर् में हम रहेंगे और आपको वही प्रेम्णा, वही शक्ति, वही ऊर्जा हमेशा मिलती रहेगी, जो आपको अब मिल रही है। पीछे भी आपको मिलेगी।

माताजी ! फिर हमारे दुःख-दर्दों का क्या होगा ? अभी आप नहीं सुन रही हैं तो फिर पीछे कौन सुनेगा ? बेटे ! अब भी हम ही सुनते हैं और पीछे भी हम ही सुनेंगे। जो कुछ भी आपके लिए हम कर सकते हैं, वह पूरा करने के लिए हम तत्पर रहेंगे। यह हमने पहले ही कह दिया है कि बेटे, गुरुजी और हम वो हैं, जो हमेशा तत्पर रहते हैं कि जो हमारे परिजन हैं, जो हमसे जुड़े हुए हैं, हे भगवान ! इनको कष्ट में से उबारना और जो कुछ भी हम इनके लिए कर सकते हैं, पूरा-पूरा सहयोग करेंगे। बेटे ! आप विश्वास रखना कि अंतिम क्षणों तक हम आपकी सेवा करेंगे और जब हमारा यह शरीर नहीं रहेगा, तब भी हमारी रूह, हमारी जीवात्मा सदा आपकी रक्षा करती रहेगी; इसमें दो राय नहीं है।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च

अब आपकी बारी है और आपको भी कदम उठाना है, आपको भी संकल्प लेना है। आपको भी वह महायज्ञ करना है, जिसको गुरुजी ने कहा है कि नारियों को आगे आने दीजिए। सब कुछ इन्हीं से कराइए। इस मातृशक्ति को जागने दीजिए, फिर देखना कि इस मातृशक्ति से कृष्ण, बुद्ध, गांधी और कौन-कौन पैदा होते हैं। न जाने कौन-कौन पैदा होते हैं। आप एक महायज्ञ कीजिए, जिसमें एक नेवले ने कहा था कि महाभारतकाल में एक यज्ञ किया गया था, जिसमें मेरा आधा शरीर सोने का हो गया था। आधा शरीर अभी भी ऐसा है, अतः क्यों न जहाँ इस यज्ञ का पानी है, उसमें लोट लगा लूँ। उस पानी में जहाँ कि ऋषियों के और सबके पाँव धोए जा रहे हैं, जिससे मेरा यह आधा शरीर भी सोने का हो जाए। वह वहाँ गया, लोट लगाई, पर उसे संतोष नहीं हुआ। भगवान श्रीकृष्ण ने पूछा कि क्या बात है ? उसने कहा कि यह यज्ञ उतना शानदार नहीं है। उन्होंने कहा कि कैसा शानदार ? नेवले ने बताया कि एक यज्ञ ऐसा भी था, जिसमें लोट लगाने से मेरा यह आधा शरीर सोने का हो गया था।

भगवान श्रीकृष्ण ने पूछा कि वह यज्ञ कैसा था ? नेवले ने कहा कि एक पति-पत्नी थे और उनके दो बच्चे थे। कितने ही दिनों से वे भूखे थे। कहीं से थोड़ा अन्न मिला, उन्होंने चार रोटियाँ बनाईं। जब वे चारों लेकर बैठे और

खाने को उद्यत हुए तो पति ने पत्नी का हाथ रोक दिया और कहा कि अभी नहीं। जो हमसे भी ज्यादा भूखा है, हमसे भी ज्यादा जरूरतमंद है, उसकी बारी पहले है। भगवान तो परीक्षा लेते ही हैं, वे एक चांडाल का वेश धरकर परीक्षा लेने आए। उन्होंने कहा—ठहरिए, अभी भोजन मत कीजिए। पहले हमारा नंबर है। चूंकि आपको एक सप्ताह से भोजन नहीं मिला है, पर हमको तो दो-तीन सप्ताह हो गए। इसलिए हमारा अधिकार पहला है। उन्होंने कहा कि आइए अतिथि देव ! और बारी-बारी से अपनी-अपनी रोटी उसे दे दी। फिर बच्चों की तरफ देखा कि वे भूख से छटपटा रहे हैं। उन्होंने कहा, नहीं बेटे ! ये तुमसे भी ज्यादा भूखे हैं। इम भूखे का पेट भरने दीजिए। बच्चों ने भी अपनी रोटी दे दी। चारों रोटी खाकर चांडाल ने पेट पर हाथ फिराकर और पानी पीकर जो कुल्ला किया, उस पानी पर लोट लगाने से मेरा आधा शरीर सोने का हो गया।

इक्कीसवीं सदी का महायज्ञ

बेटे ! ऐसा ही महायज्ञ आपको भी करना है। यह महायज्ञ की प्रवृत्ति है। महायज्ञ का मतलब केवल घी और सामग्री होम करने का नहीं है। गुरुजी ने तो उसमें ब्रेक लगा दिया है और कहा है कि दीपयज्ञ करो। लोग कहते हैं कि दीपयज्ञ से क्या फायदा ? उससे क्या मिलेगा ? क्योंकि हमारी मान्यता तो वैसी ही बनी है। अरे बेटा ! तू उस मान्यता को छोड़, भावना और श्रद्धा को क्यों नहीं जोड़ता, उसे जोड़ और जनमानस को उसे बता। बेटे ! उस महायज्ञ के लिए आपको तैयार रहना चाहिए, जिस महायज्ञ का नाम हमने 'इक्कीसवीं सदी' रखा है। वह प्रखरता आपके अंदर आनी चाहिए। हम आपको प्रखर बनाना चाहते हैं और प्रखर बनाकर आपको आगे की पंक्ति में लाना चाहते हैं। उसके लिए आप तैयार हो जाइए, मजबूत हो जाइए।

बस, इतना ही मुझे आज के दिन कहना था कि यह गुरु पर्व है। यह आत्मसमीक्षा का पर्व है और यह संकल्प का पर्व है। आप मन-ही-मन यह संकल्प ले करके जाइए, जो कि गुरुजी ने इन दो-तीन दिनों में लड़कों से कहलवाया है। मैं कहूँगी तो समय और बढ़ जाएगा, क्योंकि एक घंटे से भी ज्यादा समय हो गया है। आप उस संकल्प को लेकर जाइए और उसको पूरा करने में जी-जान से जुट जाइए। आप भगवान राम के बानरों के तरीके से जुट जाइए। अरे माताजी ! आपने तो हमें बानर बना दिया, हम तो इनसान हैं। अरे बेटे ! आप इनसान बन जाएँ, तब तो हमारे सौभाग्य उदय हो जाएँ। तब तो हम भी सौभाग्यशाली हो जाएँगे।

आपसे हमारी अपेक्षाएँ

चलिए, इतना नहीं आपसे हमारी आकांक्षाएँ तो इतना अवश्य कीजिए कि आप गिलहरी के तरीके से तो लगिए, जटायु के तरीके से तो लगिए। जिस जटायु ने सीता जी को छुड़ाने के लिए अपने प्राण त्याग दिए थे। फिर क्या हुआ? फिर उस जटायु को भगवान राम ने अपने सीने से लगाया और उनके अश्रु उसके ऊपर पड़े और वह भगवान के लोक को चला गया। आप भी जब जटायु की तरह कदम उठाएँगे, तब हम भी मान लेंगे कि आप सराहनीय हैं। आपसे उम्मीद तो और भी ज्यादा है कि आप तेज चलें, कम क्यों चलें। पर जितनी आप में शक्ति है, उतना तो चलिए, फिर बाकी का तो हम देख लेंगे।

बेटे! हम सोच लेंगे कि हमारा लड़का आज एक कदम रख रहा है, कल दो कदम आगे रखेगा और परसों तीन कदम आगे चलेगा। आगे पाँच कदम चलेगा और फिर चलता ही रहेगा। आप चलने की कोशिश कीजिए, फिर हम आपको ऊँचा उठाएँगे, आगे बढ़ाएँगे। यदि आप बैठे ही रहे तो हम लाख आपकी उँगली पकड़ करके उठाते हुए

ले जाएँ, पर आप उठने को तैयार नहीं हैं तो कैसे उठेंगे। कैसे आगे बढ़ेंगे। अगर आप उठने के लिए तैयार हैं तो फिर आप कैसी भी मिट्टी के क्यों न हों, तो भी हम आपको बढ़ा ले जाएँगे, ऊँचा उठा ले जाएँगे। फिर हम आपको चला देंगे, क्योंकि हमने आपकी उँगली जो पकड़ी हुई है। हम कहेंगे कि बेटे! तू चल, आगे बढ़।

हम आपके सारथी बनेंगे

आप चलने के लिए तैयार हो जाइए। आपके जीवन के रथ को चलाने के लिए हम दो पहियों का काम करेंगे। हम आपके सारथी का काम करेंगे। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने थे। तीर किसने चलाया? अर्जुन ने। तो आप भी तीर चलाइए और हम आपके सारथी बनेंगे और आपके रथ को आगे बढ़ाते हुए, चलाते हुए चले जाएँगे। आपके जीवन के रथ को, जो अवरोधों से घिरा हुआ है, उन अवरोधों को कुचलते हुए बढ़ाते चले जाएँगे। आपसे यही निवेदन है कि आप यहाँ से संकल्प लेकर जाइए और भक्ति और श्रद्धा अपने भीतर से उत्पन्न कीजिए, बस मुझे इतना ही आज कहना था।

॥ ॐ शान्ति ॥

□

एक थे पंडित जी। नाम था सज्जनप्रसाद। थे भी सज्जन, सदाचारी और ईश्वरभक्त, किंतु धर्म का कोई विज्ञानसम्मत स्वरूप भी है, यह वे न जानते थे।

प्रतिदिन प्रातःकाल पूजा समाप्त करके पंडित जी शंख बजाते। वह आवाज सुनते ही पड़ोस का गधा किसी गोत्र बंधु की आवाज समझकर स्वयं भी रेंक उठता। पंडित जी प्रसन्न हो उठते कि यह कोई पूर्वजन्म का महान तपस्वी और भक्त था। एक दिन गधा नहीं चिल्लाया। पंडित जी ने पता लगाया। मालूम हुआ कि गधा मर गया। गधे के सम्मान में उन्होंने अपना सिर घुटाया और विधिवत् तर्पण किया। शाम को वे बनिए की दुकान पर कुछ सौदा लेने गए। बनिए को शक हुआ, पूछा—“महाराज, आज यह सिर घुटमुंड कैसा?” पंडित जी बोले—“अरे भाई शंखराज की इहलीला समाप्त हो गई है।”

बनिया पंडित का यजमान था, उसने भी अपना सिर घुटा लिया। बात जहाँ तक फैलती गई, लोग अपने सिर घुटाते गए। छूत बड़ी खराब होती है। एक सिपाही बनिए के यहाँ आया उसने तमाम गाँव वालों को सिर मुड़ाए देखा, पता चला शंखराज जी महाराज नहीं रहे, तो उसने भी सिर घुटाया। धीरे-धीरे सारी फौज सिर-सपाट हो गई। अफसरों को बड़ी हैरानी हुई। उन्होंने पूछा—“भाई बात क्या हुई?” पता लगाते-लगाते पंडित जी के मकान तक पहुँचे और जब मालूम हुआ कि शंखराज कोई गधा था, तो मारे शरम के सबके चेहरे झुक गए।

एक अफसर ने सैनिकों से कहा—“ऐसे अनेक अंधविश्वास समाज में केवल इसलिए फैले हैं कि उनके मूल का ही पता नहीं है। धर्म परंपरावादी नहीं, सत्य की प्रतिष्ठा के लिए है। वह सुधार और समन्वय का मार्ग है। उसे ही मानना चाहिए।”

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—

धर्मतंत्र का परिष्कार अत्यंत अनिवार्य (पूर्वार्द्ध)

(परमपूज्य गुरुदेव द्वारा १९६९ में गायत्री तपोभूमि, मथुरा में दिया गया उद्बोधन)

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

दो ही मुख्य तंत्र

देवियो, भाइयो! व्यक्ति एवं समाज के ऊपर नियंत्रण करने वाली दो ही शक्तियाँ मुख्य हैं। एक शक्ति का नाम धर्मतंत्र और दूसरी शक्ति का नाम है—राजतंत्र। राजतंत्र मनुष्य के ऊपर नियंत्रण करता है और धर्मतंत्र मनुष्य के भीतर श्रेष्ठताओं और रचनात्मक प्रवृत्तियों को ऊपर उठाता है, उभारता है। एक का काम संसार में और व्यक्ति में महत्ता को, श्रेष्ठता को ऊँचा उठाना है और दूसरे का काम मनुष्य की अवांछनीय गतिविधियों पर नियंत्रण करना है। भौतिक क्षेत्र राजनीति का है और आत्मिक क्षेत्र धर्म का है। दोनों ही एक गाड़ी के दो पहियों के तरीके से एक दूसरे के पूरक हैं। एक दूसरे का एक दूसरे से बहुत ही घनिष्ठ संबंध है। राजनीति यदि ठीक हो, राजसत्ता यदि ठीक हो तो मनुष्यों की धार्मिकता, विचारणा, आध्यात्मिकता और श्रेष्ठता अक्षुण्ण बनी रहेगी और यदि मनुष्यों की धर्मबुद्धि ठीक हो तो उसका परिणाम राजनीति पर हुए बिना नहीं रहेगा।

दोनों एक दूसरे के पूरक

मित्रो! अच्छे व्यक्ति, धार्मिक व्यक्ति अच्छी सरकार बना सकने में समर्थ हैं और अच्छी सरकार में यदि अच्छे व्यक्ति जा पहुँचें तो साधन स्वल्प होते हुए भी, सामग्री स्वल्प होते हुए भी समाज का हितसाधन कर सकते हैं। धर्म के मार्ग पर जो रुकावटें पैदा हों या जो कठिनाइयाँ हों, उनको दूर करना राजसत्ता का काम है और राजसत्ता में जो विकृतियाँ पैदा हों, उनको नियंत्रित करना धर्मसत्ता का काम है। वस्तुतः दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों ही समर्थ हैं। दोनों का ही क्षेत्र बड़ा व्यापक है और दोनों की सामर्थ्य लगभग एकसमान है। हमारे देश में धर्मसत्ता राजनीति सत्ता से कहीं आगे थी। इस समय में गई-गुजरी अवस्था में भी जबकि विकृतियाँ

चारों ओर से फैल पड़ी हैं। ऐसे समय में भी धर्मसत्ता का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हम देखते हैं कि इतनी जनशक्ति, धनशक्ति, भावनाशक्ति, विवेकशक्ति इस धर्म-क्षेत्र में लगी हुई हैं। यदि ये शक्तियाँ ठीक दिशा में नियोजित की गई होतीं और उनका ठीक तरीके से उपयोग किया गया होता तो जो काम राजसत्ता देशभर में कर सकती है, उसकी अपेक्षा सौ गुना ज्यादा काम धर्मसत्ता ने कर लिया होता, क्योंकि अपने देश में धर्मसत्ता का स्थान बहुत ऊँचा और महत्त्वपूर्ण है। अपने यहाँ संसार के सभी क्षेत्रों से अधिक धार्मिक प्रक्रियाओं की ओर ध्यान दिया जाता है। अपने यहाँ संत-महात्माओं को ही लें, साधु-ब्राह्मण को ही लें तो इतना बड़ा वर्ग जिस देश में है, जो धर्म के आधार पर जीविका भी प्राप्त करता है, अपने मन में यह समझता भी है कि हम धर्म के लिए जीवित हैं। न केवल अपने आप को समझता है, अपितु समाज में यह घोषित भी करता है कि हम समाज के ही नहीं हैं, हम धर्म के लिए भी हैं। अगर इन लोगों की गतिविधियाँ सही रही होतीं और यदि इन लोगों के विचार करने की शैली सही रही होती तो इनके द्वारा इतना बड़ा विशाल कार्य देश में ही नहीं, समस्त विश्व में कर सकना संभव हो गया होता कि दुनिया को उलट-पलट कर लिया जाता।

भगवान बुद्ध के केवल ढाई लाख शिष्य थे। उन ढाई लाख शिष्यों को भगवान बुद्ध ने आज्ञा दी कि आप लोगों को सारे विश्व में और सारे एशिया के ऊपर छाप डालनी चाहिए। इस समय जो अनैतिक और अवांछनीय वातावरण पैदा हो गया है, उसे ठीक करना चाहिए। भगवान बुद्ध की इच्छा के अनुसार गृहत्यागी, धर्म पर निष्ठा रखने वाले ढाई लाख व्यक्ति खाना हो गए और सारे एशिया पर छा गए, सारे यूरोप पर छा गए, सारे विश्व पर छा गए। उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रसार और बौद्ध संस्कृति, बौद्ध भावनाओं का प्रसार सारे विश्व में कर दिया।

विराट संख्या एवं बढ़े हुए साधन

मित्रो! आज हमारे साधन बहुत ज्यादा बढ़े-चढ़े हैं। अपने इस भारतवर्ष में सरकारी जनगणना के हिसाब से छप्पन लाख व्यक्ति इस तरह के हैं, जो कहते हैं कि हमारी जीविका केवल धर्म के आधार पर चलती है। धर्म ही हमारा व्यवसाय है, रोटी कमाने का स्रोत है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनकी जीविका धर्म नहीं है। जो केवल अपने मन और संतोष के लिए *स्वातः सुखाय* और सामान्य कर्तव्य समझ करके पूजा-पाठ या धार्मिक कृत्य करते हैं। धर्म के माध्यम से जीविका कमाने वालों में साधु-बाबाजी, पंडे-पुजारी आते हैं। यह संख्या छप्पन लाख हो जाती है। यह संख्या इतनी बड़ी है कि सरकार के एंपलाइज—कर्मचारियों की संख्या उससे कम है। सेमी गवर्नमेंट और पूरी गवर्नमेंट दोनों को मिला करके हिंदुस्तान में चालीस लाख के लगभग कर्मचारी हैं, लेकिन धर्मसत्ता के पास छप्पन लाख कर्मचारी हैं। यह जनशक्ति इतनी बड़ी है कि उसको यदि किसी रचनात्मक कार्य में लगा दिया जाए तो सरकार के द्वारा जितने भी रचनात्मक और नियंत्रणात्मक कार्य होते हैं, उन सबकी अपेक्षा धर्म में काम करने वाले ज्यादा काम कर सकते हैं। क्योंकि सरकार को मशीनरी में केवल वेतनभोगी लोग होते हैं, समय पर काम करने वाले होते हैं। जरा भी समय ज्यादा खर्च हो जाए तो वे ओवर टाइम माँगते हैं। उन्हें पेंशन देने की जरूरत पड़ती है और भी बहुत मे खर्चे करने पड़ते हैं, इसलिए वे कर्मचारी बहुत महँगे भी होते हैं। उनके जीवन का उद्देश्य सेवा नहीं होता। अधिकांश लोगों की इच्छा-उद्देश्य नौकरी करना, पेट पालना होता है।

लेकिन मित्रो! धर्म के लिए जिन्होंने आजीविका स्वीकार की है, उनके सामने तो लक्ष्य भी होना चाहिए। उनके पास तो समय भी ज्यादा होना संभव है। आठ घंटे ही काम करेंगे, यह क्या बात हुई! संत-महात्मा छह घंटे सो लिए, भिक्षा से रोटी मिल गई, बनी-बनाई रोटी मिल गई, दो घंटे नित्यकर्म के लिए लगा दिए, आठ घंटे हो गए। आठ घंटे के बाद सोलह घंटे उनके पास बच जाते हैं। यदि वे इस सारे-के-सारे समय को धर्मकार्यों में लगाना चाहें तो उनमें से एक व्यक्ति दो आदमियों के बराबर काम कर सकता है। उनमें भावनाएँ होती हैं, निष्ठाएँ होती हैं, धर्म-विश्वास होता है, और भी बहुत-

सी बातें होती हैं। तो ये छप्पन लाख व्यक्ति वस्तुतः इतनी बड़ी जनसंख्या है कि चाहें तो बुद्ध भगवान के ढाई लाख शिष्यों की अपेक्षा दुनिया भर में तहलका मचा सकते हैं।

एक लाख व्यक्तियों ने फैलाया तीन-चौथाई दुनिया में धर्म

ईसाई मिशनरी के पास केवल एक लाख के करीब पादरी हैं और वे पादरी सारी दुनिया में छाए हुए हैं। उत्तरी ध्रुव से लेकर भारतवर्ष के नागालैंड और बस्तर तक में, जंगलों में और आदिवासियों के बीच काम करते हैं। उनका यह विश्वास है कि ईसामसीह का संदेश और ईसाईयत का संदेश घर-घर पहुँचाया जाना चाहिए। इस विश्वास के आधार पर अपनी सुविधाओं का ध्यान किए बिना पादरी लोग सारे विश्व भर में काम करते हैं। परिणाम क्या हुआ? केवल ईसाई धर्म को, भगवान ईसा को जन्म लिए सिर्फ उन्नीस सौ सत्तर वर्ष के करीब हुए हैं। तीन सौ वर्ष तक तो उनका सारा-का-सारा क्रियाकलाप अज्ञात ही बना रहा। सेंट-पॉल ने ईसा के लगभग तीन सौ वर्ष बाद ईसाई धर्म की खोज की और ईसा की खोज की, उनका जीवनचरित ढूँढ़ा, उनके उपदेशों को संकलित किया। तीन सौ वर्ष तो ऐसे ही निकल जाते हैं। केवल सोलह सौ वर्ष हुए हैं, लेकिन एक लाख व्यक्ति जो आज हैं, इससे पहले तो एक लाख भी नहीं थे। इन थोड़े से निष्ठावान, धार्मिक व्यक्तियों ने ईसाईयत का कितना प्रचार कर डाला कि दुनिया में एक-तिहाई मनुष्य अर्थात् एक अरब मनुष्य आज ईसाई हैं। तीन अरब की आबादी सारी दुनिया में है। मुसलमानों की बात अलग थी। उन्होंने तो तलवार के जोर से भी अपना धर्म फैलाया, लेकिन ईसाईयों ने जुल्म भी नहीं किया। कम-से-कम प्रारंभ में तलवार के जोर से धर्म नहीं फैलाया। इतना होते हुए भी इस थोड़े से समय में सारे विश्व में इतनी बड़ी संख्या फैल गई। इसका क्या कारण है? कारण केवल उन एक लाख मनुष्यों का श्रम, उनकी भावनाएँ और प्रयत्न हैं, जिनकी वजह से उन्होंने ईसा को, बाइबिल के ज्ञान को दुनिया में फैलाया।

मित्रो! अगर अपने पास धर्म की शक्ति में लगे हुए व्यक्ति इस तरह की भावना को लेकर के चले होते कि हमको ऋषियों का, सभ्यता और संस्कृति का, भगवान का संदेश जनमानस में स्थापित करना है। उससे लोक-

मानस को, जन-जन को प्रभावित करना है। हर व्यक्ति को धार्मिक बनाना है और एक ऐसा समाज बनाना है कि जिसमें धर्मप्रेमी लोग रहते हों। मर्यादाओं का पालन करने वाले, परस्पर स्नेह करने वाले और बुराइयों, अनीतियों से दूर रहने वाले व्यक्ति पैदा हों। बताइए तो उसका परिणाम कितना बड़ा हो गया होता! जरा विचार तो कीजिए। जिसके मन में भगवान की, देश और धर्म की लगन लगी हुई हो, वह एक ही आदमी कितना बड़ा काम कर सकता है। हमने कल-परसों महात्मा गांधी को देखा था, अकेले ही थे और सारे भारतवर्ष को जगा दिया। हमने कल-परसों बुद्ध भगवान को देखा, एक ही महात्मा थे और सारे विश्वभर को जगा दिया। कल-परसों स्वामी रामतीर्थ एवं एक ही विवेकानंद को हमने देखा, एक ही योगी थे। उनने वेदांत का संदेश भारतवर्ष से लेकर अन्य द्वीप-द्वीपांतरों तक पहुँचा दिया।

शिक्षा नहीं, भावना प्रधान

आप कहेंगे कि वे लोग तो पढ़े-लिखे और सुशिक्षित महात्मा थे और ये छप्पन लाख तो सुशिक्षित नहीं हैं। शिक्षा से और धर्म से कोई खास समझौता नहीं है। शिक्षित व्यक्ति भी उतना ही काम कर सकते हैं, जितना कि बिना शिक्षित और बिना शिक्षित धर्मप्रेमी भी उतना ही काम कर सकते हैं, जितना कि शिक्षित। संत रैदास बिना पढ़े थे और कबीर की शिक्षा भी नाममात्र की थी। मीरा कौन ज्यादा पढ़ी-लिखी थी! नामदेव की शिक्षा क्या बढ़ी-चढ़ी थी! दादू से लेकर के अन्य महात्मा, जो भक्तिकाल में हुए हैं, उनको शिक्षा की दृष्टि से यदि तलाश किया जाए तो उनकी योग्यता, उनकी विद्या और शिक्षा बहुत ही कम थी, लेकिन उन लोगों ने अपने-अपने समय पर कितने महत्वपूर्ण कार्य किए, आप सभी जानते हैं। समाज का संरक्षण और शिक्षण करने के लिए भावनाओं की जरूरत है, प्रभाव की जरूरत है, लगन और परिश्रम की जरूरत है। शिक्षा की उतनी जरूरत नहीं है।

भारतवर्ष में सात लाख गाँव हैं। यदि छप्पन लाख संत-महात्मा इस देश में काम करने के लिए खड़े हो गए होते तो वह काम कर दिखाया होता कि हमने राष्ट्र का नया निर्माण ही कर लिया होता। कल्पना कीजिए कि आठ महात्मा एक गाँव के पीछे हैं, उनमें से कुछ तो पढ़े-लिखे होंगे ही। यदि कुछ भी पढ़े-लिखे नहीं हैं, तो

भी अपने शारीरिक श्रम के द्वारा सारे गाँव की सफाई की व्यवस्था बना सकते हैं। अगर एक महात्मा झाड़ लेकर चल पड़े तो बाकी लोग उसका तमाशा देखते रहें, ऐसा तो नहीं हो सकता। गाँव के लोग भी श्रमदान के लिए चलेंगे, तो जहाँ गाँव की गलियों-कूचों में हर जगह गंदगी-हो-गंदगी दिखाई पड़ती है, वहाँ स्वच्छता दिखाई देने लगे। एक महात्मा पेशाबघर और चलते-फिरते शौचालय बनाने के लिए फावड़ा लेकर खड़ा हो जाए, तो गाँव वालों को शर्म नहीं आएगी क्या!

जरूर आएगी कि हम अपने गाँव में जहाँ-तहाँ गंदगी कर देते हैं। इसके लिए हमको एक कोने में छोटा-सा पेशाबघर और शौचालय बना लेना चाहिए। मैं छोटी-सी बात कह रहा था कि जापान ने अपने देश की खाद्य समस्या इसी प्रकार से हल कर ली है। वहाँ फर्टिलाइजर और दूसरे प्रकार के कारखाने नहीं हैं। मनुष्य के मल-मूत्र का ही उपयोग किया जाता है और उससे ही करोड़ों रुपए की खाद पैदा कर ली जाती है। अपने देहातों में मल-मूत्र का कोई उपयोग नहीं होता। गाँव के आस-पास ही लोग मल त्याग करके जगह खराब कर देते हैं। यदि हर गाँव में चलते-फिरते शौचालय, ड्रेनेज के शौचालय बना लिए गए होते, सारे गाँव के लोग उसी में शौच के लिए जाते तो कितना खाद मिल सकता था। यदि महात्मा चाहते तो इस छोटे से काम को अपने हाथ में ले करके राष्ट्र में करोड़ों मन अन्न पैदा करने और गाँव में स्वच्छता रखने का काम कर सकते थे।

आठ संत-महात्मा प्रति गाँव लग जाएँ तो.....

मित्रो! शिक्षा को ही लें। आठ आदमियों में से एक भी पढ़ा-लिखा हो तो गाँव में एक पाठशाला चला सकता है। प्रौढ़ पाठशाला, रत्रि पाठशाला चला सकता है। जिससे अपना आज का अर्द्ध निरक्षर देश थोड़े ही दिनों में साक्षर बन सकता है। कितनी सामाजिक कुरीतियाँ और व्यसन अपने देश भर में फैले हुए हैं। ब्याह-शादियों में होने वाला खरच हिंदुस्तान के सिर पर कलंक के तरीके से है। धन का कितना अपव्यय होता है। लोगों में गरीबी और बेईमानी पैदा करने के लिए मजबूर करता है। इससे सारे राष्ट्र की जड़ें खोखली हो गई हैं। यदि ब्याह-शादियों में इतना धन खरच न किया गया होता तो किसी को अपने बच्चे और बच्चियाँ भारी नहीं पड़तीं। किसी पिता को अपने बच्चों के लिए चिंता करने की जरूरत न

होती। इन बुराइयों को दूर करने के लिए आठ संत-महात्मा प्रार्थना के द्वारा, प्रचार के द्वारा भी जनमानस तैयार कर सकते थे। कोई ऐसे अवांछनीय जिद्दी व्यक्ति हों, जो दुराग्रह दिखाते हों तो उनको सत्याग्रह करने से लेकर घिराव तक की और अनशन से लेकर दूसरे काम करने तक की धमकी दी जा सकती थी। उनको बलपूर्वक रोका जा सकता था। सरकार जिस काम को नहीं रोक सकती, उसको ये लोग रोक सकते थे।

नशेबाजी किस तेजी के साथ बढ़ती चली जाती है, आप देख रहे हैं न! बीड़ी-तंबाकू आज घर-घर का शौक बन गई है। इसमें दो करोड़ रुपया प्रतिदिन खर्च होता है। इस हिसाब से सात सौ तीस करोड़ रुपया अपने भारतवर्ष के लोगों को प्रतिदिन खर्च करना पड़ता है। यदि इस व्यसन को रोका जा सके तो सात सौ तीस करोड़ रुपए की राष्ट्रीय बचत हो सकती है। यह बचत इतनी बड़ी है, जिसके सहारे सारे देश में उच्च श्रेणी की शिक्षा-व्यवस्था हम आसानी से बना सकते हैं। यदि हमने नशे को रोका होता और नशे के स्थान पर आवश्यक चीजों को उत्पन्न किया होता, वह पैसा उन कामों में खर्च कराया होता, जो रचनात्मक हैं तो मजा आ जाता और पैसे के अभाव में रुके हुए शिक्षा से लेकर स्वास्थ्य तक के सारे-के-सारे काम कैसे बढ़िया बन गए होते। क्या कहा जाए! कुछ कह नहीं सकते, हमारी धर्मबुद्धि न जाने कैसी है! हम सब विचारशील लोगों को और बाहर के लोगों को भी हमारी धर्मबुद्धि पर हैसी आती है।

यह तो अध्यात्म नहीं है

मित्रो! भगवान की प्रार्थना करें, पूजा करें, यह बात समझ में आती है, लेकिन डंडा लेकर भगवान के पीछे ही पड़ जाएँ और कहें कि तुमको तो न हम खाने देंगे, न खाएँगे; न कुछ करेंगे, न करने देंगे; तो भगवान भी कहेगा कि अच्छे चेलों से पाला पड़ा—ये न खाते हैं, न खाने देते हैं; न उठते हैं, न उठते देते हैं; न चलते हैं न चलने देते हैं; न कुछ करते हैं, न करने देते हैं। भगवान बहुत परेशान होगा कि बाबा इनसे पिंड कैसे छुड़ाया जाए! लोगों के मन में यह खयाल है कि भगवान का ज्यादा नाम लो, उनके ऊपर ज्यादा पानी चढ़ाओ, उनको ज्यादा उबटन करो तो क्या हो जाएगा कि भगवान मजबूर होकर मनोकामना पूरी कर देगा। मित्रो! भगवान का नाम

लेना साबुन लगाने के बराबर है। थोड़ी देर साबुन लगाया भी जा सकता है, लेकिन इसके बाद यदि भगवान का नाम लिया जाए, तो उसके बराबर भगवान का काम भी किया जाए। तभी एक बात पूरी होती है, अन्यथा बात कहाँ पूरी होती है! यह बात अगर लोगों की समझ में आ गई होती, तो ये छप्पन लाख व्यक्ति राष्ट्र का निर्माण और देश की सामाजिक, नैतिक और दूसरी समस्याओं का समाधान करने के लिए जुट पड़े होते। यह संख्या कितनी बड़ी है! जितने आदमी सरकार की मशीनरी चलाते हैं, उतनी ही बड़ी मशीनरी धर्मतंत्र के द्वारा चलाई जा सकती थी।

एक व्यक्ति कुछ धन लेकर उपहार में मित्र को देने के लिए चला। रात्रि बहुत हो गई। सभी सोए हुए थे। मित्र ने दरवाजा खटखटाया। अंदर से आवाज आई—“कौन?” उत्तर में आगंतुक ने कहा—“मैं” उलटकर उसने भी पूछा—“बात कौन कर रहा है? उत्तर मिला—“मैं” इस प्रकार दोनों ओर से कई बार “मैं” कहा जाता रहा। इससे संदेह बढ़ा और दरवाजा नहीं खुला। मित्र रातभर बाहर बैठा रहा। सवेरे लौटने लगा, तो दरवाजा भी खुल गया। रात को दरवाजा न खुलने का कारण दोनों ने ही समझा कि “मैं” ही प्रधान बाधा रही। लोभ-मोह, संघर्ष और पाप की जड़ यह “मैं” ही है। अहंता हर प्रगतिद्वार के दरवाजे बंद करती है।

मित्रो! धन को ही लें, तो गवर्नमेंट जितना रेवन्यू वसूल करती है, टैक्स वसूल करती है, उससे ज्यादा धन जनता हमारे धर्मकार्यों के लिए दिया करती है। मंदिरों में कितनी बड़ी संपदा लगी हुई है। सरकार के खजाने में जितनी कुल पूँजी है और रिजर्व बैंक के पास जितना धन है, लगभग उतना ही धन मंदिरों और मठों के पास इमारतों के रूप में, नकदी के रूप में, जायदादों के रूप में अभी भी विद्यमान है। धर्मतंत्र की संपदा एक तरह का रिजर्व बैंक है। अगर धर्मतंत्र की संपदा भोग-प्रसाद लगाने, मिठाई बाँटने, पंडे-पुजारियों का पेट पालने, शंख-घड़ियाल बजाने और कर्मकांड करने की अपेक्षा जनमानस

को ऊँचा उठाने के लिए लगा दी गई होती तो मजा आ जाता! मैं जहाँ मथुरा में रहता हूँ, वहाँ के दो मंदिरों की बात बताता हूँ। सबका जिक्र तो मैं नहीं करता। वहाँ दो भगवान दो मंदिरों में दो लाख रुपये मासिक का भोग खा जाते हैं।

क्या भगवान यह सब चाहता है

ऐसे लगभग पाँच हजार मंदिर हैं। इसमें न्यूनाधिक मात्रा को लगाया जाए तो मैं समझता हूँ कि रोज भगवान के खाने-पीने का खर्चा मथुरा-वृंदावन दो नगरों में पंद्रह लाख रुपये प्रतिदिन जा बैठता हो, तो कोई अचंभे की बात नहीं। पंद्रह लाख प्रतिदिन से कितने करोड़ महीने के और कितने अरब साल भर के होते हैं, जरा हिसाब लगाइए न! यह सारा-का-सारा धन यदि भगवान को भोग लगाने की अपेक्षा उन कामों में खर्च किया जाता, जो व्यक्ति के भीतर से कुछ चेतना उत्पन्न करने में, उनकी मनःस्थिति को ऊँचा उठाने में समर्थ हैं, जैसे लोगों को धर्म-धारणा के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था। जिस तरीके से पादरी काम करते हैं। ईसाई मिशन के लोग बाइबिल और दूसरी पुस्तकों को संसार की छह सौ भाषाओं में छापते हैं और घर-घर में एक-एक पैसे के मूल्य पर पहुँचाते हैं। जैसे—शिक्षा की व्यवस्था, ऐसे विश्वविद्यालय और विद्यालय स्थापित करने में पैसा खर्च किया गया होता, जहाँ से समाज का नया निर्माण करने वाले व्यक्ति निकल सकें। उनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबंध किया जा सके, तो कितना काम आता। मित्रो! पंद्रह लाख रुपया केवल अपने मथुरा की बात मैंने बताई है। सारे हिंदुस्तान का यदि ब्यूरा लिया जाए, तो ये करोड़ों और अरबों रुपया प्रतिदिन के बीच जा बैठेगा। यदि धर्मतंत्र को सही दिशा देना संभव रहा होता, तो न केवल हिंदुस्तान, बल्कि सारी दुनिया को ठीक कर लिया गया होता। धर्मतंत्र को सही दिशा नहीं दी जा सकी, धर्म का उद्देश्य लोक-मंगल नहीं समझा गया, अपितु कर्मकांड मात्र ही लोगों को बताया जा सका। जिसका परिणाम रचनात्मक न हो सका तथा व्यक्ति और समाज की कोई खास सेवा न हो सकी।

अत्यधिक अपव्यय धर्म के नाम पर

हिंदुस्तान में सोमवती अमावस्या के दिन गंगास्नान का बहुत महत्त्व है। कल्पना कीजिए कि हरिद्वार से लेकर गंगासागर तक स्नान करने वालों की संख्या कम-

से-कम हर सोमवती अमावस्या के दिन पचास लाख हो जाती है। एक आदमी के जाने-आने का, श्रम का, खाने-पीने का, दान-दक्षिणा आदि का खर्च बीस रुपया आता हो और उसे पचास लाख से गुणा कर दिया जाए तो दस करोड़ रुपया प्रति सोमवती अमावस्या का खर्च आता है। आप कल्पना कीजिए कि कम-से-कम चार और ज्यादा-से-ज्यादा पाँच सोमवती अमावस्या हर वर्ष होती हैं। उनका खर्च लगा दिया जाए तो पचास करोड़ रुपया हो जाता है। अगर हर साल इस पचास करोड़ रुपया खर्च करने वालों से प्रार्थना की गई होती कि आप एक वर्ष स्नान करने की अपेक्षा गंगा का उपयोग, गंगा की महत्ता समाज में बनाए रखने के लिए विवेकपूर्वक विचार करें।

मित्रो! जिन शहरों की गंदी नालियाँ गंगा में डाली जाती हैं। वहाँ का पानी अपवित्र कर दिया जाता है। स्नान करने वाला उसी नाले के दूषित पानी मिले हुए गंगाजल को पीता है और उसी का आचमन करके चला जाता है। वह गंदा पानी यदि गंगा में डालने की अपेक्षा शहर की नालियों-ड्रेनेज के द्वारा शहर से बाहर निकाला गया होता और खेतों में, बगीचों में डाल दिया गया होता तो कितने एकड़ भूमि की सिंचाई हो जाती! तब हमारे राष्ट्र की अन्न की समस्या इस आधार पर पूरी हो जाती। गंगा में, यमुना में और दूसरी नदियों में जो गंदगी पैदा होती है, उनका पानी खराब होता है, जो कि स्नान करने और पीने के लायक भी नहीं रह जाता, बीमारियाँ और फैलाता है। वह पचास करोड़ रुपया यदि उस गंदे पानी का सदुपयोग करने और नदियों को साफ रखने में खर्च किया गया होता तो कैसा अच्छा होता, मजा आ जाता!

धर्मभावना नहीं, धर्मभीरुता

लेकिन क्या कहा जाए? इसे मैं धर्मभीरुता कहता हूँ, धर्मभावना नहीं कहता। अपने देश में सिर्फ धर्मभीरुता है, धर्मभावना नहीं है। धर्मभीरुता और धर्मभावना में जमीन-आसमान का फरक है। गाँव-गाँव में रामचंद्र जी की लीलाएँ और श्रीकृष्ण की लीलाएँ होती हैं। एक-एक लीला में बीस-बीस, तीस-तीस हजार रुपया खर्च हो जाता है। केवल मनोरंजन, तमाशा होता है। लोग तालियाँ बजाते हैं, मेला-ठेला, तमाशा देखते हैं और चले जाते हैं। मित्रो! वह धन जो अवांछनीय और अनावश्यक खेल-प्रसंगों में खर्च किया जाता है,

को ऊँचा उठाने के लिए लगा दी गई होती तो मजा आ जाता! मैं जहाँ मथुरा में रहता हूँ, वहाँ के दो मंदिरों की बात बताता हूँ। सबका जिक्र तो मैं नहीं करता। वहाँ दो भगवान दो मंदिरों में दो लाख रुपये मासिक का भोग खा जाते हैं।

क्या भगवान यह सब चाहता है

ऐसे लगभग पाँच हजार मंदिर हैं। इसमें न्यूनाधिक मात्रा को लगाया जाए तो मैं समझता हूँ कि रोज भगवान के खाने-पीने का खर्चा मथुरा-वृंदावन दो नगरों में पंद्रह लाख रुपये प्रतिदिन जा बैठता हो, तो कोई अचंभे की बात नहीं। पंद्रह लाख प्रतिदिन से कितने करोड़ महीने के और कितने अरब साल भर के होते हैं, जरा हिसाब लगाइए न! यह सारा-का-सारा धन यदि भगवान को भोग लगाने की अपेक्षा उन कामों में खर्च किया जाता, जो व्यक्ति के भीतर से कुछ चेतना उत्पन्न करने में, उनकी मनःस्थिति को ऊँचा उठाने में समर्थ हैं, जैसे लोगों को धर्म-धारणा के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था। जिस तरीके से पादरी काम करते हैं। ईसाई मिशन के लोग बाइबिल और दूसरी पुस्तकों को संसार की छह सौ भाषाओं में छापते हैं और घर-घर में एक-एक पैसे के मूल्य पर पहुँचाते हैं। जैसे—शिक्षा की व्यवस्था, ऐसे विश्वविद्यालय और विद्यालय स्थापित करने में पैसा खर्च किया गया होता, जहाँ से समाज का नया निर्माण करने वाले व्यक्ति निकल सकें। उनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबंध किया जा सके, तो कितना काम आता। मित्रो! पंद्रह लाख रुपया केवल अपने मथुरा की बात मैंने बताई है। सारे हिंदुस्तान का यदि ब्यौरा लिया जाए, तो ये करोड़ों और अरबों रुपया प्रतिदिन के बीच जा बैठेगा। यदि धर्मतंत्र को सही दिशा देना संभव रहा होता, तो न केवल हिंदुस्तान, बल्कि सारी दुनिया को ठीक कर लिया गया होता। धर्मतंत्र को सही दिशा नहीं दी जा सकी, धर्म का उद्देश्य लोक-मंगल नहीं समझा गया, अपितु कर्मकांड मात्र ही लोगों को बताया जा सका। जिसका परिणाम रचनात्मक न हो सका तथा व्यक्ति और समाज की कोई खास सेवा न हो सकी।

अत्यधिक अपव्यय धर्म के नाम पर

हिंदुस्तान में सोमवती अमावस्या के दिन गंगास्नान का बहुत महत्त्व है। कल्पना कीजिए कि हरिद्वार से लेकर गंगासागर तक स्नान करने वालों की संख्या कम-

से-कम हर सोमवती अमावस्या के दिन पचास लाख हो जाती है। एक आदमी के जाने-आने का, श्रम का, खाने-पीने का, दान-दक्षिणा आदि का खर्च बीस रुपया आता हो और उसे पचास लाख से गुणा कर दिया जाए तो दस करोड़ रुपया प्रति सोमवती अमावस्या का खर्च आता है। आप कल्पना कीजिए कि कम-से-कम चार और ज्यादा-से-ज्यादा पाँच सोमवती अमावस्या हर वर्ष होती हैं। उनका खर्च लगा दिया जाए तो पचास करोड़ रुपया हो जाता है। अगर हर साल इस पचास करोड़ रुपया खर्च करने वालों से प्रार्थना की गई होती कि आप एक वर्ष स्नान करने की अपेक्षा गंगा का उपयोग, गंगा की महत्ता समाज में बनाए रखने के लिए विवेकपूर्वक विचार करें।

मित्रो! जिन शहरों की गंदी नालियाँ गंगा में डाली जाती हैं। वहाँ का पानी अपवित्र कर दिया जाता है। स्नान करने वाला उसी नाले के दूषित पानी मिले हुए गंगाजल को पीता है और उसी का आचमन करके चला जाता है। वह गंदा पानी यदि गंगा में डालने की अपेक्षा शहर की नालियों-ड्रेनेज के द्वारा शहर से बाहर निकाला गया होता और खेतों में, बगीचों में डाल दिया गया होता तो कितने एकड़ भूमि की सिंचाई हो जाती! तब हमारे राष्ट्र की अन्न की समस्या इस आधार पर पूरी हो जाती। गंगा में, यमुना में और दूसरी नदियों में जो गंदगी पैदा होती है, उनका पानी खराब होता है, जो कि स्नान करने और पीने के लायक भी नहीं रह जाता, बीमारियाँ और फैलाता है। वह पचास करोड़ रुपया यदि उस गंदे पानी का सदुपयोग करने और नदियों को साफ रखने में खर्च किया गया होता तो कैसा अच्छा होता, मजा आ जाता!

धर्मभावना नहीं, धर्मभीरुता

लेकिन क्या कहा जाए? इसे मैं धर्मभीरुता कहता हूँ, धर्मभावना नहीं कहता। अपने देश में सिर्फ धर्मभीरुता है, धर्मभावना नहीं है। धर्मभीरुता और धर्मभावना में जमीन-आसमान का फरक है। गाँव-गाँव में रामचंद्र जी की लीलाएँ और श्रीकृष्ण की लीलाएँ होती हैं। एक-एक लीला में बीस-बीस, तीस-तीस हजार रुपया खर्च हो जाता है। केवल मनोरंजन, तमाशा होता है। लोग तालियाँ बजाते हैं, मेला-ठेला, तमाशा देखते हैं और चले जाते हैं। मित्रो! वह धन जो अवांछनीय और अनावश्यक खेल-प्रसंगों में खर्च किया जाता है,

विराट संख्या एवं बढ़े हुए साधन

मित्रो! आज हमारे साधन बहुत ज्यादा बढ़े-चढ़े हैं। अपने इस भारतवर्ष में सरकारी जनगणना के हिसाब से छप्पन लाख व्यक्ति इस तरह के हैं, जो कहते हैं कि हमारी जीविका केवल धर्म के आधार पर चलती है। धर्म ही हमारा व्यवसाय है, रोटी कमाने का स्रोत है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनकी जीविका धर्म नहीं है। जो केवल अपने मन और संतोष के लिए *स्वांतः सुखाय* और सामान्य कर्तव्य समझ करके पूजा-पाठ या धार्मिक कृत्य करते हैं। धर्म के माध्यम से जीविका कमाने वालों में साधु-बाबाजी, पंडे-पुजारी आते हैं। यह संख्या छप्पन लाख हो जाती है। यह संख्या इतनी बड़ी है कि सरकार के एंपलाइज—कर्मचारियों की संख्या उससे कम है। सेमी गवर्नमेंट और पूरी गवर्नमेंट दोनों को मिला करके हिंदुस्तान में चालीस लाख के लगभग कर्मचारी हैं, लेकिन धर्मसत्ता के पास छप्पन लाख कर्मचारी हैं। यह जनशक्ति इतनी बड़ी है कि उसको यदि किसी रचनात्मक कार्य में लगा दिया जाए तो सरकार के द्वारा जितने भी रचनात्मक और नियंत्रणात्मक कार्य होते हैं, उन सबकी अपेक्षा धर्म में काम करने वाले ज्यादा काम कर सकते हैं। क्योंकि सरकार की मशीनरी में केवल वेतनभोगी लोग होते हैं, समय पर काम करने वाले होते हैं। जरा भी समय ज्यादा खरच हो जाए तो वे ओवर टाइम माँगते हैं। उन्हें पेंशन देने की जरूरत पड़ती है और भी बहुत से खर्चे करने पड़ते हैं, इसलिए वे कर्मचारी बहुत महँगे भी होते हैं। उनके जीवन का उद्देश्य सेवा नहीं होता। अधिकांश लोगों की इच्छा-उद्देश्य नौकरी करना, पेट पालना होता है।

लेकिन मित्रो! धर्म के लिए जिन्होंने आजीविका स्वीकार की है, उनके सामने तो लक्ष्य भी होना चाहिए। उनके पास तो समय भी ज्यादा होना संभव है। आठ घंटे ही काम करेंगे, यह क्या बात हुई! संत-महात्मा छह घंटे सो लिए, भिक्षा से रोटी मिल गई, बनी-बनाई रोटी मिल गई, दो घंटे नित्यकर्म के लिए लगा दिए, आठ घंटे हो गए। आठ घंटे के बाद सोलह घंटे उनके पास बच जाते हैं। यदि वे इस सारे-के-सारे समय को धर्मकार्यों में लगाना चाहें तो उनमें से एक व्यक्ति दो आदमियों के बराबर काम कर सकता है। उनमें भावनाएँ होती हैं, निष्ठाएँ होती हैं, धर्म-विश्वास होता है, और भी बहुत-

सी बातें होती हैं। तो ये छप्पन लाख व्यक्ति वस्तुतः इतनी बड़ी जनसंख्या है कि चाहें तो बुद्ध भगवान के ढाई लाख शिष्यों की अपेक्षा दुनिया भर में तहलका मचा सकते हैं।

एक लाख व्यक्तियों ने फैलाया तीन-चौथाई दुनिया में धर्म

ईसाई मिशनरी के पास केवल एक लाख के करीब पादरी हैं और वे पादरी सारी दुनिया में छाए हुए हैं। उत्तरी ध्रुव से लेकर भारतवर्ष के नागालैंड और बस्तर तक में, जंगलों में और आदिवासियों के बीच काम करते हैं। उनका यह विश्वास है कि ईसामसीह का संदेश और ईसाईयत का संदेश घर-घर पहुँचाया जाना चाहिए। इस विश्वास के आधार पर अपनी सुविधाओं का ध्यान किए बिना पादरी लोग सारे विश्व भर में काम करते हैं। परिणाम क्या हुआ? केवल ईसाई धर्म को, भगवान ईसा को जन्म लिए सिर्फ उन्नीस सौ सत्तर वर्ष के करीब हुए हैं। तीन सौ वर्ष तक तो उनका सारा-का-सारा क्रियाकलाप अज्ञात ही बना रहा। सेंट-पॉल ने ईसा के लगभग तीन सौ वर्ष बाद ईसाई धर्म की खोज की और ईसा की खोज की, उनका जीवनचरित ढूँढ़ा, उनके उपदेशों को संकलित किया। तीन सौ वर्ष तो ऐसे ही निकल जाते हैं। केवल सोलह सौ वर्ष हुए हैं, लेकिन एक लाख व्यक्ति जो आज हैं, इससे पहले तो एक लाख भी नहीं थे। इन थोड़े से निष्ठावान, धार्मिक व्यक्तियों ने ईसाईयत का कितना प्रचार कर डाला कि दुनिया में एक-तिहाई मनुष्य अर्थात् एक अरब मनुष्य आज ईसाई हैं। तीन अरब की आबादी सारी दुनिया में है। मुसलमानों की बात अलग थी। उन्होंने तो तलवार के जोर से भी अपना धर्म फैलाया, लेकिन ईसाईयों ने जुल्म भी नहीं किया। कम-से-कम प्रारंभ में तलवार के जोर से धर्म नहीं फैलाया। इतना होते हुए भी इस थोड़े से समय में सारे विश्व में इतनी बड़ी संख्या फैल गई। इसका क्या कारण है? कारण केवल उन एक लाख मनुष्यों का श्रम, उनकी भावनाएँ और प्रयत्न हैं, जिनकी वजह से उन्होंने ईसा को, बाइबिल के ज्ञान को दुनिया में फैलाया।

मित्रो! अगर अपने पास धर्म की शक्ति में लगे हुए व्यक्ति इस तरह की भावना को लेकर के चले होते कि हमको ऋषियों का, सभ्यता और संस्कृति का, भगवान का संदेश जनमानस में स्थापित करना है। उससे लोक-

मानस को, जन-जन को प्रभावित करना है। हर व्यक्ति को धार्मिक बनाना है और एक ऐसा समाज बनाना है कि जिसमें धर्मप्रेमी लोग रहते हों। मर्यादाओं का पालन करने वाले, परस्पर स्नेह करने वाले और बुराइयों, अनीतियों से दूर रहने वाले व्यक्ति पैदा हों। बताइए तो उसका परिणाम कितना बड़ा हो गया होता! जरा विचार तो कीजिए। जिसके मन में भगवान की, देश और धर्म की लगन लगी हुई हो, वह एक ही आदमी कितना बड़ा काम कर सकता है। हमने कल-परसों महात्मा गांधी को देखा था, अकेले ही थे और सारे भारतवर्ष को जगा दिया। हमने कल-परसों बुद्ध भगवान को देखा, एक ही महात्मा थे और सारे विश्वभर को जगा दिया। कल-परसों स्वामी रामतीर्थ एवं एक ही विवेकानंद को हमने देखा, एक ही योगी थे। उनसे वेदांत का संदेश भारतवर्ष से लेकर अन्य द्वीप-द्वीपांतरो तक पहुँचा दिया।

शिक्षा नहीं, भावना प्रधान

आप कहेंगे कि वे लोग तो पढ़े-लिखे और सुशिक्षित महात्मा थे और ये छप्पन लाख तो सुशिक्षित नहीं हैं। शिक्षा से और धर्म से कोई खास समझौता नहीं है। शिक्षित व्यक्ति भी उतना ही काम कर सकते हैं, जितना कि बिना शिक्षित और बिना शिक्षित धर्मप्रेमी भी उतना ही काम कर सकते हैं, जितना कि शिक्षित। संत रैदास बिना पढ़े थे और कबीर की शिक्षा भी नाममात्र की थी। मीरा कौन ज्यादा पढ़ी-लिखी थी! नामदेव की शिक्षा क्या बढ़ी-चढ़ी थी! दादू से लेकर के अन्य महात्मा, जो भक्तिकाल में हुए हैं, उनको शिक्षा की दृष्टि से यदि तलाश किया जाए तो उनकी योग्यता, उनकी विद्या और शिक्षा बहुत ही कम थी, लेकिन उन लोगों ने अपने-अपने समय पर कितने महत्वपूर्ण कार्य किए, आप सभी जानते हैं। समाज का संरक्षण और शिक्षण करने के लिए भावनाओं की जरूरत है, प्रभाव की जरूरत है, लगन और परिश्रम की जरूरत है। शिक्षा की उतनी जरूरत नहीं है।

भारतवर्ष में सात लाख गाँव हैं। यदि छप्पन लाख संत-महात्मा इस देश में काम करने के लिए खड़े हो गए होते तो वह काम कर दिखाया होता कि हमने राष्ट्र का नया निर्माण ही कर लिया होता। कल्पना कीजिए कि आठ महात्मा एक गाँव के पीछे हैं, उनमें से कुछ तो पढ़े-लिखे होंगे ही। यदि कुछ भी पढ़े-लिखे नहीं हैं, तो

भी अपने शारीरिक श्रम के द्वारा सारे गाँव की सफाई की व्यवस्था बना सकते हैं। अगर एक महात्मा झाड़ लेकर चल पड़े तो बाकी लोग उसका तमाशा देखते रहें, ऐसा तो नहीं हो सकता। गाँव के लोग भी श्रमदान के लिए चलेंगे, तो जहाँ गाँव की गलियों-कूचों में हर जगह गंदगी-ही-गंदगी दिखाई पड़ती है, वहाँ स्वच्छता दिखाई देने लगे। एक महात्मा पेशाबघर और चलते-फिरते शौचालय बनाने के लिए फावड़ा लेकर खड़ा हो जाए, तो गाँव वालों को शर्म नहीं आएगी क्या!

जरूर आएगी कि हम अपने गाँव में जहाँ-तहाँ गंदगी कर देते हैं। इसके लिए हमको एक कोने में छोटा-सा पेशाबघर और शौचालय बना लेना चाहिए। मैं छोटी-सी बात कह रहा था कि जापान ने अपने देश की खाद्य समस्या इसी प्रकार से हल कर ली है। वहाँ फर्टिलाइजर और दूसरे प्रकार के कारखाने नहीं हैं। मनुष्य के मल-मूत्र का ही उपयोग किया जाता है और उससे ही करोड़ों रुपए की खाद पैदा कर ली जाती है। अपने देहातों में मल-मूत्र का कोई उपयोग नहीं होता। गाँव के आस-पास ही लोग मल त्याग करके जगह खराब कर देते हैं। यदि हर गाँव में चलते-फिरते शौचालय, ड्रेनेज के शौचालय बना लिए गए होते, सारे गाँव के लोग उसी में शौच के लिए जाते तो कितना खाद मिल सकता था। यदि महात्मा चाहते तो इस छोटे से काम को अपने हाथ में ले करके राष्ट्र में करोड़ों मन अन्न पैदा करने और गाँव में स्वच्छता रखने का काम कर सकते थे।

आठ संत-महात्मा प्रति गाँव लग जाएँ तो.....

मित्रो! शिक्षा को ही लें। आठ आदमियों में से एक भी पढ़ा-लिखा हो तो गाँव में एक पाठशाला चला सकता है। प्रौढ़ पाठशाला, रात्रि पाठशाला चला सकता है। जिससे अपना आज का अर्द्ध निरक्षर देश थोड़े ही दिनों में साक्षर बन सकता है। कितनी सामाजिक कुरीतियाँ और व्यसन अपने देश भर में फैले हुए हैं। ब्याह-शादियों में होने वाला खरच हिंदुस्तान के सिर पर कलंक के तरीके से है। धन का कितना अपव्यय होता है। लोगों में गरीबी और बेईमानी पैदा करने के लिए मजबूर करता है। इससे सारे राष्ट्र की जड़ें खोखली हो गई हैं। यदि ब्याह शादियों में इतना धन खरच न किया गया होता तो किसी को अपने बच्चे और बच्चियाँ भारी नहीं पड़तीं। किसी पिता को अपने बच्चों के लिए चिंता करने की जरूरत न

होती। इन बुराइयों को दूर करने के लिए आठ संत महात्मा प्रार्थना के द्वारा, प्रचार के द्वारा भी जनमानस तैयार कर सकते थे। कोई ऐसे अवांछनीय जिद्दी व्यक्ति हों, जो दुराग्रह दिखाते हों तो उनको सत्याग्रह करने से चेकर घिराव तक की और अनशन से लेकर दूसरे काम करने तक की धमकी दी जा सकती थी। उनको बलपूर्वक रोका जा सकता था। सरकार जिस काम को नहीं रोक सकती, उसको ये लोग रोक सकते थे।

नशेबाजी किस तेजी के साथ बढ़ती चली जाती है, आप देख रहे हैं न! बीड़ी-तंबाकू आज घर-घर का शौक बन गई है। इसमें दो करोड़ रुपया प्रतिदिन खर्च होता है। इस हिसाब से सात सौ तीस करोड़ रुपया अपने भारतवर्ष के लोगों को प्रतिदिन खर्च करना पड़ता है। यदि इस व्यसन को रोका जा सके तो सात सौ तीस करोड़ रुपए की राष्ट्रीय बचत हो सकती है। यह बचत इतनी बड़ी है, जिसके सहारे सारे देश में उच्च श्रेणी की शिक्षा-व्यवस्था हम आसानी से बना सकते हैं। यदि हमने नशे को रोका होता और नशे के स्थान पर आवश्यक चीजों को उत्पन्न किया होता, वह पैसा उन कामों में खर्च कराया होता, जो रचनात्मक हैं तो मजा आ जाता और पैसे के अभाव में रुके हुए शिक्षा से लेकर स्वास्थ्य तक के सारे-कें-सारे काम कैसे बढ़िया बन गए होते। क्या कहा जाए! कुछ कह नहीं सकते, हमारी धर्मबुद्धि न जाने कैसी है! हम सब विचारशील लोगों को और बाहर के लोगों को भी हमारी धर्मबुद्धि पर हँसी आती है।

यह तो अध्यात्म नहीं है

मित्रो! भगवान की प्रार्थना करें, पूजा करें, यह बात समझ में आती है, लेकिन डंडा लेकर भगवान के पीछे ही पड़ जाएँ और कहें कि तुमको तो न हम खाने देंगे, न खाएँगे; न कुछ करेंगे, न करने देंगे; तो भगवान भी कहेगा कि अच्छे चेलों से पाला पड़ा—ये न खाते ह, न खाने देते हैं; न उठते हैं, न उठते देते हैं; न चलते हैं न चलने देते हैं; न कुछ करते हैं, न करने देते हैं। भगवान बहुत परेशान होगा कि बाबा इनसे पिंड कैसे छुड़ाया जाए! लोगों के मन में यह खयाल है कि भगवान का ज्यादा नाम लो, उनके ऊपर ज्यादा पानी चढ़ाओ, उनको ज्यादा उबटन करो तो क्या हो जाएगा कि भगवान मजबूर होकर मनोकामना पूरी कर देगा। मित्रो! भगवान का नाम

लेना साबुन लगाने के बराबर है। थोड़ी देर साबुन लगाया भी जा सकता है, लेकिन इसके बाद यदि भगवान का नाम लिया जाए, तो उसके बराबर भगवान का काम भी किया जाए। तभी एक बात पूरी होती है, अन्यथा बात कहाँ पूरी होती है! यह बात अगर लोगों की समझ में आ गई होती, तो ये छप्पन लाख व्यक्ति राष्ट्र का निर्माण और देश की सामाजिक, नैतिक और दूसरी समस्याओं का समाधान करने के लिए जुट पड़े होते। यह संख्या कितनी बड़ी है! जितने आदमी सरकार की मशीनरी चलाते हैं, उतनी ही बड़ी मशीनरी धर्मतंत्र के द्वारा चलाई जा सकती थी।

एक व्यक्ति कुछ धन लेकर उपहार में मित्र को देने के लिए चला। रात्रि बहुत हो गई। सभी सोए हुए थे। मित्र ने दरवाजा खटखटाया। अंदर से आवाज आई—“कौन?” उत्तर में आगंतुक ने कहा—“मैं” उलटकर उसने भी पूछा—“बात कौन कर रहा है? उत्तर मिला—“मैं” इस प्रकार दोनों ओर से कई बार “मैं” कहा जाता रहा। इससे संदेह बढ़ा और दरवाजा नहीं खुला। मित्र रातभर बाहर बैठा रहा। सवेरे लौटने लगा, तो दरवाजा भी खुल गया। रात को दरवाजा न खुलने का कारण दोनों ने ही समझा कि “मैं” ही प्रधान बाधा रही। लोभ-मोह, संघर्ष और पाप की जड़ यह “मैं” ही है। अहंता हर प्रगतिद्वार के दरवाजे बंद करती है।

मित्रो! धन को ही लें, तो गवर्नमेंट जितना रेवन्यू वसूल करती है, टैक्स वसूल करती है, उससे ज्यादा धन जनता हमारे धर्मकार्यों के लिए दिया करती है। मंदिरों में कितनी बड़ी संपदा लगी हुई है। सरकार के खजाने में जितनी कुल पूँजी है और रिजर्व बैंक के पास जितना धन है, लगभग उतना ही धन मंदिरों और मठों के पास इमारतों के रूप में, नकदी के रूप में, जायदादों के रूप में अभी भी विद्यमान है। धर्मतंत्र की संपदा एक तरह का रिजर्व बैंक है। अगर धर्मतंत्र की संपदा भोग-प्रसाद लगाने, मिठाई बाँटने, पंडे-पुजारियों का पेट पालने, शंख-घड़ियाल बजाने और कर्मकांड करने की अपेक्षा जनमानस

को ऊँचा उठाने के लिए लगा दी गई होती तो मजा आ जाता! मैं जहाँ मथुरा में रहता हूँ, वहाँ के दो मंदिरों की बात बताता हूँ। सबका जिक्र तो मैं नहीं करता। वहाँ दो भगवान दो मंदिरों में दो लाख रुपये मासिक का भोग खा जाते हैं।

क्या भगवान यह सब चाहता है

ऐसे लगभग पाँच हजार मंदिर हैं। इसमें न्यूनाधिक मात्रा को लगाया जाए तो मैं समझता हूँ कि रोज भगवान के खाने-पीने का खर्चा मथुरा-वृंदावन दो नगरों में पंद्रह लाख रुपये प्रतिदिन जा बैठता हो, तो कोई अचंभे की बात नहीं। पंद्रह लाख प्रतिदिन से कितने करोड़ महीने के और कितने अरब साल भर के होते हैं, जरा हिसाब लगाइए न! यह सारा-का-सारा धन यदि भगवान को भोग लगाने की अपेक्षा उन कामों में खर्च किया जाता, जो व्यक्ति के भीतर से कुछ चेतना उत्पन्न करने में, उनकी मनःस्थिति को ऊँचा उठाने में समर्थ हैं, जैसे लोगों को धर्म-धारणा के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था। जिस तरीके से पादरी काम करते हैं। ईसाई मिशन के लोग बाइबिल और दूसरी पुस्तकों को संसार की छह सौ भाषाओं में छापते हैं और घर-घर में एक-एक पैसे के मूल्य पर पहुँचाते हैं। जैसे—शिक्षा की व्यवस्था, ऐसे विश्वविद्यालय और विद्यालय स्थापित करने में पैसा खर्च किया गया होता, जहाँ से समाज का नया निर्माण करने वाले व्यक्ति निकल सकें। उनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबंध किया जा सके, तो कितना काम आता। मित्रो! पंद्रह लाख रुपया केवल अपने मथुरा की बात मैंने बताई है। सारे हिंदुस्तान का यदि ब्यौरा लिया जाए, तो ये करोड़ों और अरबों रुपया प्रतिदिन के बीच जा बैठेगा। यदि धर्मतंत्र को सही दिशा देना संभव रहा होता, तो न केवल हिंदुस्तान, बल्कि सारी दुनिया को ठीक कर लिया गया होता। धर्मतंत्र को सही दिशा नहीं दी जा सकी, धर्म का उद्देश्य लोक-मंगल नहीं समझा गया, अपितु कर्मकांड मात्र ही लोगों को बताया जा सका। जिसका परिणाम रचनात्मक न हो सका तथा व्यक्ति और समाज की कोई खास सेवा न हो सकी।

अत्यधिक अपव्यय धर्म के नाम पर

हिंदुस्तान में सोमवती अमावस्या के दिन गंगास्नान का बहुत महत्व है। कल्पना कीजिए कि हरिद्वार से लेकर गंगासागर तक स्नान करने वालों की संख्या कम-

से-कम हर सोमवती अमावस्या के दिन पचास लाख हो जाती है। एक आदमी के जाने आने का, श्रम का, खाने-पीने का, दान-दक्षिणा आदि का खर्च बीस रुपया आता हो और उसे पचास लाख से गुणा कर दिया जाए तो दस करोड़ रुपया प्रति सोमवती अमावस्या का खर्च आता है। आप कल्पना कीजिए कि कम-से-कम चार और ज्यादा-से-ज्यादा पाँच सोमवती अमावस्या हर वर्ष होती हैं। उनका खर्च लगा दिया जाए तो पचास करोड़ रुपया हो जाता है। अगर हर साल इस पचास करोड़ रुपया खर्च करने वालों से प्रार्थना की गई होती कि आप एक वर्ष स्नान करने की अपेक्षा गंगा का उपयोग, गंगा की महत्ता समाज में बनाए रखने के लिए विवेकपूर्वक विचार करें।

मित्रो! जिन शहरों की गंदी नालियाँ गंगा में डाली जाती हैं। वहाँ का पानी अपवित्र कर दिया जाता है। स्नान करने वाला उसी नाले के दूषित पानी मिले हुए गंगाजल को पीता है और उसी का आचमन करके चला जाता है। वह गंदा पानी यदि गंगा में डालने की अपेक्षा शहर की नालियों-ड्रेनेज के द्वारा शहर से बाहर निकाला गया होता और खेतों में, बगीचों में डाल दिया गया होता तो कितने एकड़ भूमि की सिंचाई हो जाती! तब हमारे राष्ट्र की अन्न की समस्या इस आधार पर पूरी हो जाती। गंगा में, यमुना में और दूसरी नदियों में जो गंदगी पैदा होती है, उनका पानी खराब होता है, जो कि स्नान करने और पीने के लायक भी नहीं रह जाता, बीमारियाँ और फैलाता है। वह पचास करोड़ रुपया यदि उस गंदे पानी का सदुपयोग करने और नदियों को साफ रखने में खर्च किया गया होता तो कैसा अच्छा होता, मजा आ जाता!

धर्मभावना नहीं, धर्मभीरुता

लेकिन क्या कहा जाए? इसे मैं धर्मभीरुता कहता हूँ, धर्मभावना नहीं कहता। अपने देश में सिर्फ धर्मभीरुता है, धर्मभावना नहीं है। धर्मभीरुता और धर्मभावना में जमीन-आसमान का फरक है। गाँव-गाँव में रामचंद्र जी की लीलाएँ और श्रीकृष्ण की लीलाएँ होती हैं। एक-एक लीला में बीस-बीस, तीस-तीस हजार रुपया खर्च हो जाता है। केवल मनोरंजन, तमाशा होता है। लोग तालियाँ बजाते हैं, मेला-ठेला, तमाशा देखते हैं और चले जाते हैं। मित्रो! वह धन जो अवांछनीय और अनावश्यक खेल-प्रसंगों में खर्च किया जाता है,

जिसको जनता पुण्य समझती है, उसके द्वारा हमने एक क्रमबद्ध रूप से अभिनय मंच बनाया होता, ऐसी थियेटरिकल कंपनियाँ बनाई होतीं, जो गाँव-गाँव में जाकर भगवान राम और श्रीकृष्ण भगवान के जीवन के उद्देश्यों का शिक्षण देने में समर्थ रही होतीं। उनके नाटक, प्रहसनों ने जनता के मन-मस्तिष्क को और जनता की दिशाओं को बदल दिया होता। जिससे उनमें नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना उत्पन्न की जा सकती थी पर हम देखते हैं कि तमाशे के, उपहास के मजाक के रूप में भगवान को एक खिलौना बना देते हैं। भगवान का सम्मान करने की बात न जाने कहाँ चली जाती है!

मित्रो! थोड़े दिन पहले पंजाब में गुरुनानक पर एक फिल्म बनाई जाने वाली थी, तो पंजाबियों ने घोर विरोध किया कि गुरुनानक देव को ड्रामे के रूप में नहीं दिखाया जा सकता। उनकी नकल बनाने के लिए कोई झूठा

आदमी खड़ा नहीं किया जा सकता। नानक की महत्ता और श्रद्धा हमारे मन में है। उसे हम छोटे से कमजोर आदमी के लिए नष्ट नहीं कर सकते और कोई भी नानक का पार्ट अदा करने के लिए तैयार नहीं हुआ। मित्रो! भगवान का पार्ट अदा करने के लिए ऐसे छोकरे खड़े हो जाएँ, जिनमें न कोई विवेक है, न विचार है, न कोई दिशा है, न लक्ष्य है, तो इससे मनुष्यों की श्रद्धा में क्या कमी नहीं आएगी! केवल लकीर पीटने के लिए कितने आदमी कितना पैसा अनावश्यक रूप से खर्च कर डालते हैं। यह पैसा कितनी विकृतियाँ पैदा करता है, यह किसी से छिपा नहीं है। जो भी आदमी हराम की कमाई खाएगा, उसका नाम चाहे 'अ' हो, चाहे 'ब', उसके आचरण अच्छे नहीं रह सकते। वह समाज के लिए उपयोगी व्यक्ति नहीं रह सकता। (क्रमशः) □

(नोट—प्रस्तुत लेख के सभी आँकड़े सन् १९६९ के हैं। पूज्यवर की वाणी यथावत दी गई है।)

वनराज की अरदली में एक शृगाल और शृगाली रहते थे। सिंह के रोब-दाब की नकल करने की शृगाल सदा चेष्टा करता।

एक दिन सिंहनी ने सिंह से कहा, “प्रिय! भूख बड़ी तेज लगी है।” सुनकर सिंह ने अपनी पूछ जमीन पर फटकारी, त्यौरियों पर बल दिया और चल पड़ा। थोड़ी ही देर में एक भैंसा मारकर सिंहनी के आहार के लिए ला पटका। सियार सिंह की इस अदा पर मुग्ध हो गया। उसने सियारी से कहा, “तुम भी भूख की शिकायत करो। मैं सिंह की-सी अदा दिखाना चाहता हूँ।” सियारी ने पति की बात मानकर भूख की शिकायत की। सियार त्यौरियाँ चढ़ाने और पूछ फटकारने की चेष्टा करने लगा तो शृगाली ठठाकर हँस पड़ी। “बस-बस, श्रीमान् जाने भी दो। इस चक्कर को छोड़ो। न तो तुम्हारी पूछ ही जमीन तक पहुँचती है, न त्यौरियाँ ही चढ़ती हैं।”

“फूहड़ों जैसी हँसी मत हँस।” सियार कुढ़कर बोला, “चुपचाप मेरा पराक्रम देखती जा।”

सियार ने इधर-उधर नजर दौड़ाई। पास ही एक ऊँट बैठा दीखा। सियार शेर की तरह लपककर उसकी गरदन पर जा बैठा। ऊँट कुछ हड़बड़ाहट के साथ खड़ा हो गया तो सियार गिरने को हुआ और घबड़ाकर ऊँट की गरदन पकड़ ली। फिर तुंबे की तरह लटकने लगा। सियारी ने पति की यह दशा देखी तो सिर पीट लिया। फिर बोली—“अभी भी यह चक्कर छोड़ दो। हठ मत करो।”

सियार को लग रहा था कि अगर नीचे गिरे तो हड्डी-पसली एक हो जाएगी, कचूमर निकल आएगा। उसने कहा “बात तो तेरी ठीक है मेरी संगिनी, पर हठ छोटे कैसे, पाँव तो जमीन पर नहीं टिक पा रहे हैं।”

अपने को तौले बिना किया गया अनुकरण आपत्तियाँ ही ला सकता है।

धर्मतंत्र का परिष्कार अत्यंत अनिवार्य

दुरुपयोग रुके

साथियो!, अपने देश की सांस्कृतिक, सामाजिक सेवा और नैतिक उत्कर्ष के लिए धन की जरूरत है। धन के बिना कुछ संस्थाएँ और प्रवृत्तियाँ बेमौत भूख से मर जाती हैं। पैसा ऐसे लोगों को दिया जाता है, जिनकी समझ में नहीं आता कि उसका क्या इस्तेमाल किया जाए? इस धर्मभीरु जनता को क्या कहा जाए? उनकी धर्मभीरुता को किस तरीके से धिक्कारा जाए? इतना समर्थ धर्मतंत्र जिसके पीछे छप्पन लाख व्यक्ति काम करते हैं। इतने मंदिरों, मठों, तीर्थों और कर्मकांड श्राद्ध-तर्पण और न जाने क्या-क्या करने में छप्पन करोड़ रुपया खर्च हो जाता हो, तो जरा भी अचंभे की बात नहीं है। इतनी बड़ी पूँजी एक गवर्नमेंट का बजट बनाने के लिए काफी है। इतनी बड़ी धन की शक्ति, भावनाओं की शक्ति, इतनी बड़ी जनशक्ति, जो कि आज बिखरी पड़ी है और अवांछनीय दिशा में प्रवाहित हो रही है। आवश्यकता इस बात की है कि नई पीढ़ी के समझदार-विवेकशील लोग इस धर्म के अपव्यय को रोकें। जिसे मैं दुरुपयोग कहता हूँ।

मित्रो, ! धर्म की भावना का बुरी तरह से दुरुपयोग हो रहा है। इसे उस दिशा में लगाया जाए, जिससे कि व्यक्ति का श्रेष्ठ निर्माण हो। मनुष्यों की विचारणा-भावनाओं में परिष्कार हो और समाज को अच्छे रास्ते पर चलने के लिए प्रकाश मिले। इसके लिए समझदार-विवेकशील लोगों को आगे आना ही चाहिए। जिस तरीके से राजनीति में धक्का-मुक्की करके लोग आगे बढ़ते चले जाते हैं। उसमें उनका सत्ता और पद का लोभ रहा होगा, लेकिन सेवा का जो स्तर अपने धर्मक्षेत्र में है, वह अन्य किसी क्षेत्र में नहीं है। इसलिए मैं आह्वान करना चाहता हूँ उन सब लोगों का, जिनके अंदर देशभक्ति और विश्वमानव की पीड़ा विद्यमान है, जो समाज का हित साधन करना चाहते हैं, जो लोकमंगल के लिए कदम बढ़ाना चाहते हैं। उनको धर्म के विकृत स्वरूप का समाधान करने, धार्मिक भावनाओं और जनशक्ति को ठीक दिशा देने के लिए कदम बढ़ाकर आगे आना

ही चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया गया तो राष्ट्र और विश्व की प्रगति के लिए एक भारी अभाव बना ही रहेगा। इतनी बड़ी पूँजी, जनशक्ति और भावनाशक्ति का दुरुपयोग होता ही रहेगा। इसको ठीक करना अब राष्ट्र की महती आवश्यकता है।

एक जगह भगवान बैठें, यह गलत अवधारणा

भगवान के मंदिर जगह-जगह बनाए जाएँ, यह विचार उस समय उत्पन्न हुआ, जब भगवान की विचारणा को जनमानस में स्थापित करने, भगवान की प्रेरणाओं को सर्वत्र प्रकाशित करने की आवश्यकता अनुभव की गई। भगवान सब जगह विराजमान हैं। पेड़-पत्तों से लेकर फूल-पौधों तक और मनुष्य के हृदय से लेकर के इस आसमान तक, कोई भी स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ वे विद्यमान न हों। फिर भगवान को एक स्थान पर बिठाने और खाना खिलाने की क्या जरूरत पड़ गई? यह विचारणीय प्रश्न है। भगवान तो बादलों को बरसाते हैं। जरूरत पड़े तो जहाँ कहीं वर्षा हुआ करे, वहाँ जा बैठें और फुहारों का आनंद ले लें। नहाने की उनको क्या दिक्कत पड़ेगी? नदियाँ उनकी बहती हैं। जब कभी स्नान करना पड़े, घंटों नहा सकते हैं। उनको कोई रोकने वाला है क्या? फिर भगवान को स्नान कराने की क्या जरूरत थी?

मित्रो, ! भगवान तो एक विचारणा है, भावना है, एक चेतना है। उनको एक जगह बिठाया जाए, ये कैसे मुमकिन हो सकता है? भगवान की वृत्तियों और प्रवृत्तियों को हम लोग भूल गए हैं। उनको स्मरण दिलाने के लिए ही मंदिर, चेतना केंद्र बनाए गए हैं, जिसके माध्यम से भगवान की वृत्तियों को सर्वसाधारण के मनों तक पहुँचाना संभव हो सकेगा। गाँवों में देवालय इसीलिए बनाए गए हैं कि जो लोग भगवान को भूल गए हैं, वे इस माध्यम से अपने जीवन लक्ष्य को पहचानें। लोग भगवान का नाम तो जानते हैं कि भगवान कृष्ण होते हैं, भगवान राम होते हैं, हनुमान होते हैं। लेकिन सही बात यह है कि भगवान के स्वरूप, उनके आदेश, उनकी शिक्षाओं और मानव जीवन से उनका संबंध इन सबको सौ फीसदी लोग भूल

गए हैं। यदि वे भूले न होते, तो उनने अपने जीवन लक्ष्य को याद रखा होता और यह स्मरण रखा होता कि भगवान ने इंसान को दुनिया में किसलिए भेजा है? उसके ऊपर क्या जिम्मेदारियाँ सौंपी हैं? भगवान ने मनुष्य से क्या उम्मीदें की हैं?

मित्रो, ! भगवान तो हृदय में, घट-घट में समाया हुआ है और वह मनुष्य के द्वारा अच्छी वृत्तियों को पूरा किया जाना देखना चाहता है। अगर ये बातें मनुष्य को याद नहीं हैं, उसे केवल किसी मंदिर की मूर्ति की शक्ल भर याद रहती है, तो कैसे कहा जाए कि इस आदमी को भगवान याद है और वह भगवान को भूला नहीं है? साथियो! लोग भगवान को भूलते जा रहे थे और भूल रहे हैं। इसीलिए उनको स्मरण दिलाए रखने के लिए मंदिरों की स्थापना की गई, ताकि जब कभी भी आदमी उधर से निकले तो प्रणाम करे, दंडवत करे और सुबह-शाम उनका दर्शन करे, ताकि उसे याद आए कि कोई भगवान नाम की सत्ता भी है और वह मनुष्य के जीवन से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। मनुष्य जीवन के विकास के लिए, जीवन में सुख-शांति की स्थापना करने के लिए भगवान की सहायता और भगवान के सहयोग की नितांत आवश्यकता है। यह सिद्धांत और आवश्यकता मनुष्य को अनुभव होती रहे, इसलिए हर जगह मंदिर बनाए गए।

लोक-शिक्षण जनजागृति हेतु बने थे मंदिर

मित्रो, ! उससे भी एक और बड़ा सामाजिक कारण यह था कि प्रत्येक गाँव और गली-मोहल्ले के लिए ऐसी आवश्यकता अनुभव की गई कि इन स्थानों पर सत्प्रवृत्तियाँ एवं सद्भावनाएँ फैलाने के लिए, रचनात्मक कार्यों को दिशा देने के लिए ऐसे स्थान होने ही चाहिए, जहाँ अनकानेक प्रकार की प्रवृत्तियों का संचालन किया जा सके। उदाहरण के लिए कथा के द्वारा लोक-शिक्षण जितनी अच्छी तरह किया जा सकता है, उतना और किसी तरीके से नहीं। इसमें मनोरंजन भी है, इतिहास भी है और आनंद भी है। साथ-ही-साथ इसमें ऊँचे विचार एवं पूर्व शिक्षाएँ भी जुड़ी हुई हैं। इस तरह से कथाएँ कहकर के जनता को उत्साह और मनोरंजन के साथ सन्मार्गगामी बनाया जा सकता है।

प्राचीनकाल में मंदिरों में कथाएँ होती थीं, संगीत का शिक्षण होता था और वह कीर्तन के माध्यमों से लोकगायन और लोक-मंगल की शिक्षाओं के केंद्र बने रहते थे।

मंदिरों के साथ पाठशालाएँ जुड़ी रहती थीं, पुस्तकालय जुड़े रहते थे। मंदिरों में सत्संग की व्यवस्था होती थी। मंदिरों के आस-पास व्यायामशालाओं की भी व्यवस्था थी। कहने का अर्थ यह है कि असंख्य रचनात्मक प्रवृत्तियों का एक ही केंद्र उस जमाने में था, जिसको हम कहते हैं—मंदिर। उन दिनों मंदिरों में जो कार्यकर्त्ता काम करते थे, वे बड़े प्रभावी, लोकसेवी होते थे। लोकसेवियों को जीविका की भी आवश्यकता है। लोकसेवी काम करे और खाने का प्रबंध न हो सके, तो काम कैसे चलेगा? इसी तरह यदि खाने का प्रबंध और गुजारे की व्यवस्था किसी को वेतन के रूप में लोग दें, तो लेने वाले का भी असम्मान होता है और देने वाले को अहंकार पैदा होता है।

इसलिए मित्रो, ! विचार ये किया गया कि उस गाँव में काम करने वाले लोकसेवियों को गुजारा निर्वाह करने की व्यवस्था के लिए भगवान का भोग लगाया जाए। थाली भरकर भोग सवेरे का भोग लगा दिया और थाली भरकर शाम को भोग लगा दिया। एक आदमी के गुजारे का प्रबंध हो गया। दोनों वक्त का भोजन मिल गया। लोगों ने यह समझा कि हमने भगवान को खाना खिलाया और सेवा करने वाले व्यक्ति ने समझा कि हमारे गुजारे का प्रबंध हो गया। असम्मान भी नहीं हुआ और किसी के ऊपर प्रत्यक्ष रूप से दबाव भी नहीं पड़ा। इस तरीके से मंदिरों में भगवान के जो खाने-पीने की व्यवस्था थी, वास्तव में वह वहाँ के कार्यकर्त्ताओं के लिए भोजन की व्यवस्था थी। लोग भगवान के पास दक्षिणा चढ़ाया करते थे, पैसा चढ़ाया करते थे। वे चढ़ावे की चीजें सिर्फ एक ही काम आती थीं कि उस क्षेत्र में सेवाकार्य करने वाले लोगों के गुजारे तथा मंदिर की देखभाल का प्रबंध इस तरीके से हो जाता था।

लोकसेवियों की आवश्यकता पूर्ति था एक प्रयोजन

साथियो! लोकसेवी तो हर जगह होने ही चाहिए। लोकसेवियों के बिना सत्प्रवृत्तियों का विकास कैसे हो सकता है? इसलिए पहले हर गाँव में कितने ही लोकसेवी रहते थे और एक-दूसरे के गाँव में परिभ्रमण करते रहते थे। परिभ्रमण करने वाले ऐसे लोकसेवियों को संत-महात्मा भी कहा जा सकता है, विद्वान भी कहा जा सकता है। वे जब कभी भी आते थे, तो उनके ठहरने के लिए डाक-बंगला चाहिए, धर्मशाला चाहिए। यह कहाँ

से आए? इसलिए मंदिरों में इतनी गुंजाइश रखी जाती थी कि कभी दस-पाँच आदमी बाहर से आ जाएँ, तो उनके भी ठहराने और खाने-पीने का प्रबंध कर दिया जाए। इस तरीके से किसी जमाने में सत्प्रवृत्तियों के केंद्र मंदिर थे। मंदिरों को इसीलिए बनाया गया था। भगवान की पूजा-अर्चना भी हो जाती थी, साथ ही भगवान को याद करने के बहाने से आस्तिकता का प्रचार भी होता था।

मित्रो, ! ये सब बातें ठीक हैं, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि भगवान को उन सब चीजों की आवश्यकता थी, उनके बिना भगवान का कोई काम रुका पड़ा था। आरती अगर न उतारी जाए तो भगवान नाखुश हो जाएँ, या उनका काम हरज हो जाए, ये कैसे हो सकता है? सूर्यनारायण और चंद्रमा भगवान की हर वक्त आरती उतारते रहते हैं। नवग्रहों से लेकर के तारामंडलों द्वारा हर क्षण उनकी आरती होती रहती है। फिर हमारे छोटे-से दीपक की क्या कीमत हो सकती है? फूल सारे विश्व में उन्हीं के उगाए हुए हैं, चंदन के पेड़ उन्हीं ने उगाए हैं। फूल और चंदन अगर भगवान को नहीं मिलते, तो भगवान का क्या हरज था? मिठाई या खाना-भोग भगवान को नहीं मिलता। तो क्या हरज था? राई के बराबर भी कुछ हरज नहीं था। भगवान को खाने-पीने की और पहनने ओढ़ने की वास्तव में कतई जरूरत नहीं है।

ये सब चीजें भगवान को मंदिरों के माध्यम से जो भगवान के निमित्त चढ़ाई जाती हैं, उनके पीछे सिर्फ एक ही उद्देश्य छिपा था कि लोकसेवी को, जो एक तरीके से भगवान के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की तिलांजलि दी और अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं को ताक पर रख दिया, जिन्होंने केवल लोकमंगल का ही ध्यान रखा, केवल भगवान के संदेशों का ही ध्यान रखा, भगवान का प्रतिनिधि न कहें तो क्या कहें? भगवान के प्रतिनिधियों को जीवनयापन करने के लिए निवास से लेकर भोजन, वस्त्र तक और दूसरी चीजों के खर्च की आवश्यकता के लिए मंदिरों को बनाया गया। यह एक मुनासिब क्रम था।

मंदिर वस्तुतः जन-जागरण के केंद्र थे। इसकी पुनरावृत्ति एक बार फिर बढ़िया ढंग से की गई। सिक्खों के गुरुद्वारों को आप देखते हैं। किसी जमाने में जब मुसलमानों का दबदबा बहुत ज्यादा था, अत्याचार भी बहुत होते थे, तब सिक्खों के गुरुद्वारे में जहाँ एक ओर

भगवान की भक्ति की बात होती थी, वहीं दूसरी ओर इस बात को भी स्थान दिया गया कि एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में भाला लेकर के सिख धर्म के अनुयायी खड़े हों और समाज में जो अनीति फैली हुई है, उसका मुकाबला करें। मंदिर थे, गुरुद्वारे थे, पर तब उनमें लोकसेवा की, लोकमानस के परिष्कार की कितनी तीव्र प्रक्रिया विद्यमान थी!

मित्रो, ! समर्थ गुरु रामदास ने भी यही किया था। जब अपना देश बहुत दिनों तक पराधीन हो गया, तो उन्होंने देखा कि जनता को संघबद्ध करने के लिए, जनता को दिशा देने के लिए और जन-सहयोग का केंद्रीकरण करने के लिए कोई बड़ा काम किया जाना चाहिए। समर्थ गुरु रामदास ने महाराष्ट्र भर में घूम-घूमकर सात सौ महावीर मंदिर बनाए। वे मंदिर केवल हनुमान जी को मिठाई या चूरमा-लड्डू खिलाने के लिए नहीं बनाए गए थे। हनुमान जी तो पेड़ पर चढ़कर भी अपना फल, लड्डू-चूरमा खा सकते हैं। उन्हें क्या गरज पड़ी है कि वे किसी का चूरमा और लड्डू खाएँ? वे तो अपने हाथ-पाँव से मेहनत करके खुद खा सकते हैं और सैकड़ों बंदरों को भी खिला सकते हैं। वे किसी का लड्डू और चूरमा खाने के लिए भूखे कहाँ थे? लेकिन महावीर स्थान, जो जगह-जगह सारे महाराष्ट्र में समर्थ गुरु रामदास के द्वारा बनाए गए, उसका एक ही उद्देश्य था कि इनमें जो काम करने वाले व्यक्ति हैं, वे जनता से सीधा संपर्क बनाएँ। उन सात सौ महावीर मंदिरों में ऐसे तीखे और भावनाशील पुजारी रखे गए, जिन्होंने गाँव को ही नहीं, पूरे इलाके को जगा दिया। वह सात सौ इलाकों में बैठा हुआ महाराष्ट्र एक तरीके से संगठित होता हुआ चला गया।

समर्थ के मंदिर व्यायामशालाएँ

साथियो! समर्थ गुरु रामदास ने छत्रपति शिवाजी के सिर पर हाथ रखा और कहा कि भारतीय स्वाधीनता के लिए भारतीय धर्म की रक्षा करने के लिए तुम्हें बढ़-चढ़कर काम करना चाहिए। शिवाजी ने कहा कि मेरे पास वैसी साधन-सामग्री कहाँ है? मैं तो छोटे से गाँव का एक अकेला छोकरा, इतने बड़े काम को कैसे कर सकता हूँ? समर्थ गुरु रामदास ने कहा, “मैंने पहले से ही उसकी व्यवस्था सात सौ गाँवों में महावीर मंदिर के रूप में बनाकर के रखी है। जहाँ जनता में काम करने वाले बड़े प्रकांड, समझदार एवं मनस्वी लोग काम करते

हैं। पुजारी पद का अर्थ मरा हुआ आदमी, बीमार, बुढ़ा, निकम्मा, बेकार आदमी नहीं है। पुजारी का अर्थ है— जिसे भगवान का नुमाइंदा या भगवान का प्रतिनिधि कहा जा सके। जहाँ ऐसे समर्थ व्यक्ति हों, समझना चाहिए, वहाँ पुजारी की आवश्यकता पूरी हो गई।”

मित्रो, ! किसी आदमी को खाना दिया जाए और वह भी आधा-अधूरा, सड़ा-बुसा हुआ दिया जाए, तो उससे खाने वाले को भी नफरत होगी और उसके स्वास्थ्य की रक्षा भी नहीं होगी। इसी तरीके से भगवान की सेवा करने के लिए लंगड़ा-लूला, काना-कुबड़ा, मरा, अंधा, बिना पढ़ा, जाहिल-जलील, गंदा आदमी रख दिया जाए तो वह क्या कोई पुजारी है? पुजारी तो भगवान जैसा ही होना चाहिए। भगवान राम के पुजारी कौन थे? हनुमान जी थे। अतः कुछ इस तरह का पुजारी हो, तो कुछ बात भी बने। इसी तरह के पुजारी समर्थ गुरु रामदास ने सारे-के-सारे महाराष्ट्र में रखे थे। इन सात सौ समर्थ पुजारियों ने उस इलाके में जो फिजा, वो परिस्थितियाँ पैदा कीं कि छत्रपति शिवाजी के लिए जब सेना की आवश्यकता पड़ी, तो उन्हीं सात सौ इलाके से बराबर उनकी सेना की आवश्यकता पूरी की जाती रही।

इसी प्रकार जब उनको पैसे की आवश्यकता पड़ी, तो उन छोटे-से देहातों से, जिनमें कि महावीर मंदिर स्थापित किए गए थे, वहाँ से पैसे की आवश्यकता को पूरा किया गया। अनाज भी वहाँ से आया। उसी इलाके में जो लोहार रहते थे, उन्होंने हथियार बनाए। इस तरह जगह-जगह से छिटपुट हथियार बनते रहे। अगर एक जगह पर हथियार बनाने की बड़ी फैक्ट्री होती, तो शायद विरोधियों को पता चल जाता और उन्होंने उस स्थान को रोका होता। वे सावधान हो गए होते। मिलिट्री एक ही जगह रखी गई होती, तो विरोधियों को पता चल जाता और उसे रोकने की कोशिश की गई होती। लेकिन सात सौ गाँवों में पुजारियों के रूप में एक अलग तरह की छावनियाँ पड़ी हुई थीं। हर जगह इन सैनिकों को ट्रेनिंग दी जाती थी। हर जगह इन छावनियों में १०-२० वालंटियर

आते थे और वहीं से पैसा धन व अनाज आता था। इस तरीके से मंदिरों के माध्यम से समर्थ गुरु रामदास ने छत्रपति शिवाजी को आगे करके इतना बड़ा काम कर दिखाया।

मूल उद्देश्य हम भूल गए

मित्रो, ! मंदिर जन-जागरण के केंद्र बनाए जा सकते हैं। मंदिरों का उपयोग लोकमंगल के लिए किया जा सकता है। क्योंकि उसके पास इमारत होती है। इमारत तो हर सेवा केंद्र के पास होनी चाहिए, परंतु इसके अलावा वह व्यवस्था भी होनी चाहिए, जिससे कि उस क्षेत्र के कार्यकर्ताओं का, निवासियों का, गुजारे का प्रबंध किया जा सके। इस गुजारे का प्रबंध तभी हो सकता है, जब आजीविका के स्रोतों से जनता, इसके लिए त्यागवृत्ति पैदा की जा सके। मनुष्य में यह भावना पैदा की जा सके कि हमने भगवान को दिया है, तुमको नहीं। इससे आदमी का मन हलका होता है। त्याग और सेवा की वृत्ति पैदा होती है। वह धन एक केंद्र पर इकट्ठा होने से समाज के लिए उससे उपयोगी काम किए जा सकते हैं।

प्राचीनकाल में मंदिर इसी उद्देश्य से बनाए गए थे। समाज में सत्प्रवृत्तियों का विकास वास्तव में भगवान की सेवा का एक बहुत बड़ा काम है। लेकिन आज मैं क्या कहूँ! मंदिरों को देखकर रोना आता है। आज मंदिर पर मंदिर बनते चले जा रहे हैं। करोड़ों रुपया खर्च होता है। क्या ऐसा संभव नहीं था कि करोड़ों रुपयों से बनने वाली इमारतों को इस ढंग से बनाया गया होता कि वहाँ लोकसेवा की प्रवृत्तियों के लिए गुंजाइश रहती और भगवान के निवास की भी, एक छोटी-सी जगह बना दी गई होती। अब तो सारी-की-सारी इमारतें इस काम के लिए बनाई जाती हैं कि उसमें केवल भगवान ही बैठें। भगवान को इतनी जगह की क्या जरूरत है? भगवान को चाहो तो एक कोने में बिठा दो, तो भी वे मौज करेंगे। भगवान को इतने बड़े भव्य निर्माण से क्या लेना-देना? उनके लिए तो इतना बड़ा आसमान विद्यमान है। (क्रमशः)

□

ऊँट और गधा साथ-साथ नदी पार कर रहे थे। ऊँट ने थोड़ा लेने के लिए पहले पार जाने का निश्चय किया। नदी का पानी उसके पेट तक ही पहुँच पाया।

ऊँट ने आवाज दी कि पानी आधे पेट जितना ही है। गधे ने कहा, आपके पेट तक पानी है सो ठीक है। पर मैं तो इतने में ही डूब जाऊँगा। मुझे आपकी नकल नहीं करनी है, मुझे अपनी दैशियत देखनी है।

धर्मतंत्र का परिष्कार अत्यंत अनिवार्य—३

(समापन किस्त)

लोकसेवा की प्रवृत्तियों का केंद्र हो मंदिर

मित्रो! मंदिरों की इमारतों को अगर इस ढंग से बनाया गया होता कि जिनमें मंदिर के साथ-साथ पाठशाला, प्रौढ़पाठशाला, संगीत विद्यालय, वाचनालय और कथा-कीर्तन का कक्ष भी बना होता; उसके आस-पास व्यायामशाला भी होती और थोड़ी-सी जगह में चिकित्सालय का भी प्रबंध होता; बच्चों के खेलने की भी जगह होती। इस तरीके से लोकमंगल की, लोकसेवा की अनेक प्रवृत्तियों का एक केंद्र अगर वहाँ बना दिया गया होता और वहीं एक जगह भगवान की भी स्थापना होती तो जो धन मंदिरों में चढ़ाया जाता है, उसका ठीक तरीके से उपयोग होता। ऐसी स्थिति में मंदिरों के द्वारा कितना बड़ा लाभ होता।

साथियो! आपने गिरजाघरों को देखा है। गिरजाघरों में भगवान के लिए कोई गुंजाइश नहीं है क्या? वहाँ कहीं-कहीं मरियम की मूर्ति लगी रहती है, तो कहीं-कहीं ईसा की प्रतिमा लगी रहती है। एक छोटा-सा प्रार्थनाकक्ष होता है। कहीं इसमें अस्पताल या दवाखाने वाला हिस्सा होता है। कहीं पादरियों के रहने का हिस्सा होता है। कहीं एक छोटा-सा दफ्तर बना होता है। इस तरह भगवान का एक छोटा-सा केंद्र बनाने के बाद में बाकी सारी-की-सारी इमारत, सारा स्थान लोकमंगल के लिए होता है। पहले भारतवर्ष में भी ऐसा ही किया जाता था और किया भी जाना चाहिए, लेकिन आज तो मंदिरों की दशा देखकर हँसी आती है और क्रोध भी। आज मंदिरों का सारा-का-सारा धन कुछ चंद लोगों के निहित स्वार्थ के लिए खर्च हो जाता है। जो कुछ भी चढ़ावा या दान आया, कुछ निहित स्वार्थ के लिए मठाधीशों और मंदिरों के स्वामी और दूसरे महंतों के पेट में चला गया।

अनाचार एवं अज्ञान के केंद्र हैं ये

मित्रो! वह अनावश्यक धन, हराम का धन जब उन लोगों के पास आया तो उन्होंने क्या-क्या किया? आप नहीं जानते, मैं जानता हूँ। पंडा-पुजारियों, महंतों और मठाधीशों की हकीकत मुझे मालूम है, आपको नहीं

मालूम है। आप तो केवल उनकी बाहर की शकल जानते हैं। मुझे उनके पास रहने का मौका मिला है। मैं जानता हूँ कि समाज में खराब-से-खराब किस्म के तबके अगर हैं तो उनमें से एक तबका इन लोगों का भी है, जो धर्म का कलेवर या धर्म का दुपट्टा ओढ़े हुए हैं। धर्म का झंडा गाड़े हुए हैं और धर्म का तिलक लगाए हुए हैं। धर्म की पोशाक और धर्म का बाना पहने हुए बैठे हैं। ये क्या-क्या अनाचार फैलाते हैं और क्या-क्या दुनिया में खुराफातें पैदा करते हैं, आप जरा भी नहीं जानते। इन लोगों का पोषण करने के लिए, इनके निहित स्वार्थों को पूरा करने के लिए आज का धर्मतंत्र है—मंदिर।

तो क्या मंदिर सिर्फ इसी काम के लिए हैं? क्या इन परिस्थितियों को बदला नहीं जाना चाहिए? हाँ, अगर हमको समाज में ढोंग, अनाचार और अज्ञान फैलाना हो तो मंदिरों का यही रूप बना रहने देना चाहिए। अगर हमको यह खयाल है कि जनता का इतना धन, जनता की इतनी श्रद्धा, जनता का इतना पैसा—इन सब चीजों का ठीक तरीके से उपयोग किया जाए तो आज के जो मंदिर हैं, उनकी व्यवस्था पर नए ढंग से विचार करना पड़ेगा। जिन लोगों के हाथ में उनका नियंत्रण है, उनको समझाना पड़ेगा और कहना पड़ेगा कि लोगों की उपयोगिता के लिए आप इनका इस्तेमाल क्यों नहीं करते? ट्रस्टियों को समझाया जाना चाहिए। अगर उनकी समझ में यह बात आ जाए कि मंदिर में जितना धन लगा हुआ है, इसमें से थोड़े पैसे से भगवान की पूजा आसानी से की जा सकती है। एक पुजारी ने आधा घंटे सुबह और आधा घंटे शाम को पूजा कर ली। एक घंटे के बाद तेईस घंटे बच जाते हैं। नहीं साहब! तेईस घंटे पुजारी पंखा लिए खड़े रहेंगे। जब भगवान सो जाएँगे तो वे वहाँ से हटेंगे और जब भगवान उठ जाएँगे तो फिर पंखा डुलाते रहेंगे। यह कोई तरीका है?

जनश्रद्धा का दुरुपयोग न हो

मित्रो! हम अपने ढंग से भगवान को बेकार आदमी जैसा बनाते हैं। अगर भगवान सोया करेंगे तो सूरज, चाँद

रूप में जिंदा नहीं रहेगा। बेशक धर्म के साथ में कर्मकांडरूपी कलेवर जिंदा रहे, लेकिन कर्मकांडों के साथ-साथ उन सत्प्रवृत्तियों को भी जीवित रखा जाना चाहिए, जिनसे लोक-भंगल की और समाज की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। धर्म केवल कर्मकांड नहीं है। धर्म केवल आडंबर नहीं है। धर्म केवल पूजा-पाठ की प्रक्रिया नहीं है, वरन् इस पूजा-पाठ की प्रक्रिया और धार्मिक क्रिया-कृत्यों के पीछे और साथ-साथ में एक महती आवश्यकता जुड़ी हुई है कि हम व्यक्ति के अंतरंग को, उसकी भावनाओं को कैसे ऊँचा उठाएँ। समाज के अंदर फैली हुई धार्मिक वृत्तियों को कैसे बढ़ाएँ। यह सारे-के-सारे क्रियाकलाप जिस माध्यम से और जिस आधार पर पूरे किए जा सकते हैं, उसके लिए कोई केंद्र या एक स्थान होना ही चाहिए। वह जगह हमारे मंदिर ही हो सकते हैं।

इन मंदिरों में पुजारी के रूप में सिर्फ लोकसेवियों की नियुक्ति हो, जिनके मन में समाज के लिए दरद है और जो समाज को ऊँचा उठाना चाहते हैं। जो मनुष्य के भीतर धर्मवृत्तियाँ पैदा करना चाहते हैं, उसी तरह के पुजारी वहाँ रहें। वे अपने पूजा-पाठ का एक-दो घंटा पूरा करने के बाद, अपने गुजारे की व्यवस्था करने के बाद जो समय उनके पास बच जाता है, उसका इस्तेमाल इस तरह से करें, जिससे कि हमारी सामाजिक और राष्ट्रीय एवं व्यक्तिगत चरित्र की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। मंदिरों में जहाँ दूसरी तरह के खर्च होते हैं—कभी बैंगले बनते हैं, कभी उत्सव होते हैं, कभी झाँकी बनती है, कभी क्या बनता है और उसी में लाखों रुपये खर्च हो जाता है। उन सारे-के-सारे क्रियाकलापों में आंशिक किफायत की जा सकती है और इससे जो पैसा बचता है, उसको लोकमंगल की अनेक प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है और करना भी चाहिए। इस तरीके से धन की आवश्यकता, इमारतों की आवश्यकता, जनसहयोग की आवश्यकता मंदिरों के आधार पर ठीक तरीके से पूरी की जा सकती है।

यह सोच भी बदलें

मित्रो! जो व्यक्ति ऐसा खयाल करते हैं कि भगवान निराकार है, उसकी मूर्तिपूजा की जरूरत नहीं है, उन लोगों से भी मेरी यह प्रार्थना है कि वे उस शक्तिशाली

माध्यम की उपेक्षा नहीं करें। ये मंदिर हिंदू धर्म की श्रद्धा के केंद्र हैं। उनको अब दिशा दी जानी चाहिए, नया मोड़ दिया जाना चाहिए। अब उनका विरोध करने की जरूरत नहीं रही। अब उनका खंडन करने की जरूरत नहीं रही। किसी जमाने में ऐसा रहा होगा कि लोगों के मनो में मूर्तिपूजा की बात, जो गहराई तक जम गई थी, उसको कमजोर करने के लिए संभव है, किसी ने मंदिर का विरोध किया हो और यह कहा हो कि इसमें मूर्तिपूजा की जरूरत नहीं है। उस आधार पर धन खर्च करने की जरूरत नहीं है। हो सकता है, किसी जमाने में धर्मसुधारकों ने अपनी बात समय के अनुरूप कही हो, लेकिन मैं अब यह कहता हूँ कि हिंदुस्तान में गाँव-गाँव में छोटे-बड़े मंदिर बने हुए हैं। उनको आप उखाड़िएगा क्या? भगवान राम और भगवान श्रीकृष्ण, जिनको हमारी असंख्य जनता श्रद्धापूर्वक प्रणाम करती है, क्या उनका आप

जो कर्म सद्भाव से प्रेरित होकर किए जाते हैं, वे ही फलित होते हैं। कर्म साधनारत ऐसे ही व्यक्ति देवमानव कहलाते हैं और परमात्मसत्ता का अनुग्रह तथा जन-सम्मान पाते हैं।

विरोध करेंगे? निंदा करेंगे क्या? नहीं, अब यह गलती नहीं करनी चाहिए।

साथियो! ठीक है, जैसा भी अब तक चला आ रहा है, उसे अब हमें सुधार की दिशा में मोड़ देना चाहिए। यह एक बहुत बड़ा काम है। विरोध करके नई चीज को खड़ा करना कितना मुश्किल है। एक चीज को गिराया जाए और फिर एक नई इमारत बनाई जाए, इसकी अपेक्षा यह क्या बुरा है कि जो बनी-बनाई इमारत है, उसको हम ठीक तरीके से इस्तेमाल करना सीख लें और उसी को काम में लाएँ। मंदिरों को अगर ठीक तरीके से काम में लाया जा सकता हो और उनमें लगी पूँजी को ठीक तरीके से इस्तेमाल किया जाता रहा हो और इन दोनों का उपयोग लोक-मंगल के लिए किया जाता रहा हो। उनमें ऐसे पुजारियों की, कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की जा सकती हो, जो अपना एक-दो घंटे का समय पूजा-पाठ में लगाने के बाद बचा हुआ सारा समय समाज को ऊँचा उठाने में लगाएँ, तो मैं यह विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि सरकार और दूसरी संस्थाओं के द्वारा जो

लंबे-लंबे प्लान, योजनाएँ बनती हैं, धन लगाती हैं, कार्यकर्ता नियुक्त करती हैं, फिर भी सारी योजनाएँ असफल हो जाती हैं, उसकी तुलना में यह योजना इतनी बड़ी, इतनी महत्वपूर्ण, इतनी मार्मिक और सार्थक है कि हम राष्ट्र को पुनः उसके शिखर पर पहुँचा सकते हैं।

राष्ट्र का कायाकल्प कर सकते हैं ये देवालय

इसके लिए हमें केवल मंदिरों की दिशाएँ मोड़ने की जरूरत है। लोगों को समझाने की जरूरत है, प्रचार करने की जरूरत है, धमकाने की जरूरत है। अगर ये काबू में न आते हों तो घिराव करने से लेकर बहिष्कार करने तक की जरूरत है और यह समझाने की जरूरत है कि इस धन का और इमारतों का हम अपव्यय नहीं होने देंगे। मंदिरों को हम अंधश्रद्धा का केंद्र नहीं बनने देंगे। हम

धर्मभिरूता का पोषण करने वाले केंद्र के रूप में नहीं, वरन् इन्हें धर्म की स्थापना का केंद्र बनाएँगे। यदि इन मंदिरों को धर्म की स्थापना का केंद्र बनाया जा सका तो राष्ट्र की महती आवश्यकता पूरी की जा सकती है। तब नया युग लाने में, नया समाज बनाने में और समाज की विकृतियों को दूर करने में और एक समर्थ राष्ट्र, समर्थ

समाज बनाने के लिए इतने बड़े साधन हमारे हाथ सहज ही लग सकते हैं। इन बने-बनाए साधनों को विवेकशीलों को अपने अधिकार में, कब्जे में लेना ही चाहिए और उनको वह दिशा देनी चाहिए, जिससे कि भगवान वास्तव में प्रसन्न हों।

भगवान की जो सद्वृत्तियाँ इस विश्व में फैली हुई हैं, जिनसे कि शांति आती है और धार्मिक-भावना की वृद्धि होती है और समाज समृद्ध होता है, उन भावनाओं

को आगे बढ़ाने के लिए मंदिरों को केंद्र बनाया ही जाना चाहिए। ताकि वास्तविक भगवान अपनी वास्तविक पूजा को देखकर प्रसन्न हो जाए और भक्ति करने, पूजा-पाठ करने का उद्देश्य लोगों को प्राप्त हो सके और लोग उसका समुचित फायदा उठा सकें। यह करने की बहुत अधिक आवश्यकता है और हमको करना चाहिए। मंदिरों को जन-जागरण का केंद्र बनाया जाना

पाठक-परिजन कृपया ध्यान दें

‘अखण्ड ज्योति’ पत्रिका वह प्रकाशपुंज है, जिसे जन-जन तक पहुँचना ही चाहिए। इसमें सारा विचार-प्रवाह युगत्रयधि परमपूज्य गुरुदेव की प्राणचेतना की प्रेरणा से ही प्रकाशित होता है। अभी अँगुलियाँ किन्हीं की भी हों, संपादक में किसी भी व्यक्ति का नाम है, पर यह अनादि प्रवाह दैवी स्फुरणा, अपौरुषेय वाणी के प्रकट रूप में प्रकाशित होता है। यह सभी परिजनों का कर्तव्य है, युगधर्म है कि ऐसे श्रेष्ठ विचारों का प्रतिपादन करने वाली पत्रिका अधिकाधिक व्यक्तियों तक पहुँचे। यदि हमारा हर पाठक-परिजन मात्र तीन सहयोगी व्यक्ति सदस्य और बढ़ा दे, तो इस पत्रिका को चार गुना कर २५ लाख के लक्ष्य तक इसी वर्ष पहुँचा जा सकता है। हमें २०११—२०१२ परमपूज्य गुरुदेव के शताब्दी वर्ष तक इसे पाँच करोड़ के लक्ष्य तक पहुँचाना है। ‘अखण्ड ज्योति’ लागत मूल्य पर मात्र ८४ रुपये में प्रतिवर्ष बारह बार सभी के पास पहुँचती है। इस दिव्य ज्ञान का शुल्क धनराशि से नहीं दिया जा सकता। सचाई यही है कि अधिकतम व्यक्तियों तक इस ज्ञान को पहुँचाना ही शुल्क अदा करना है, ऋण चुकाना है। इस माह से ही परिजन ‘अखण्ड ज्योति’ के नए सदस्य बनाने का अभियान आरंभ कर दें।

चाहिए, उनका कायाकल्प किया जाना चाहिए। इतना करना यदि संभव हो गया तो समझना चाहिए कि हमने लोक-मंगल के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी मंजिल पूरी कर ली और बहुत बड़े साधनों को हमने अपने आप में इकट्ठा कर लिया। आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शांति ॥

□

लोकमानस का आध्यात्मिक प्रशिक्षण : रीति-नीति—१

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

देवियो-भाइयो! दो प्रश्न आपके मस्तिष्क में संभवतः उठते रहते होंगे। एक प्रश्न यह कि हमें क्या करना है और क्या बनना है? दूसरा यह कि हमें क्या कराना है और क्या बनाना है? इसके संबंध में स्थूल रूप से आपको कई चीजें दिखाई पड़ती हैं। क्या करना है? सवेरे उठना चाहिए, नहाना चाहिए, पूजा करनी चाहिए, हवन करना चाहिए। ये क्रियाएँ हैं और जनता में क्या कराना चाहिए? जनता में हवन कराने चाहिए, सम्मेलन कराने चाहिए, त्योहार-संस्कार कराने चाहिए।

क्रिया व विचार दोनों महत्त्वपूर्ण

मित्रो! ये क्रियाएँ आपको दिखाई पड़ती हैं कि जनता के बीच में आपको क्या क्रियाएँ करानी चाहिए और अपने आप में क्या क्रियाएँ करनी चाहिए। क्रियाओं का अपना मूल्य है, महत्त्व है। हम जानते हैं कि क्रियाओं के माध्यम से विचारों के निर्माण में बहुत ही अधिक सहायता मिलती है। क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं, यह बात भी सही है, लेकिन मित्रो! यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि क्रियाओं और विचारणा में जमीन-आसमान का अंतर होना भी संभव है। क्रिया क्या हो सकती है और हमारे ढंग क्या हो सकते हैं। इसमें फरक रह गया तो क्रिया का, खासतौर से धार्मिक क्रिया का कोई लाभ न मिलेगा। भौतिक क्रिया का लाभ तो मिल भी जाएगा। जैसे आपके जी में हरामखोरी का मन है, चोरी-चालाकी का मन है तो बात अलग है, लेकिन अगर आप काम करते हैं, मेहनत-मशक्कत करते हैं, रिक्षा चलाते हैं तो आपको उसकी मजदूरी के पैसे मिलते हैं। चाहे आप अपने मालिक से बैर रखते हैं, लेकिन अगर आप काम करते हैं तो भौतिक जीवन में आपको मजदूरी के पैसे मिल भी सकते हैं।

मित्रो! चूँकि हमारा जीवन भौतिक जीवन नहीं है। हमारे क्रिया-कलाप, भौतिक क्रिया-कलाप नहीं हैं। हमारा कार्यक्षेत्र भौतिक कार्यक्षेत्र नहीं है अतः विचार यह करना पड़ेगा कि हमारी दृष्टि और हमारा चिंतन आध्यात्मिक क्रिया के अनुरूप है कि नहीं। यदि क्रिया के अनुरूप हमारी दृष्टि और चिंतन नहीं हुआ तो उससे कुछ लाभ नहीं मिलेगा। दृष्टि कुछ और रही, चिंतन कुछ और रहा, तो जो यह विडंबना आज हमको अपने धार्मिक क्षेत्र में आमतौर से दिखाई पड़ती है कि लोग बाहर से कृत्य तो बहुत अच्छे-अच्छे करते हैं, पर उस क्रिया-कलाप के साथ में जैसी दृष्टि का समावेश होना चाहिए था, उसका अभाव दिखाई पड़ता है। कृत्यों का मित्रो! कुछ खास महत्त्व नहीं होता, बल्कि और भी ज्यादा नुकसान होता है। कैसे? नुकसान ऐसे होता है जैसे गोशाला के नाम पर कई आदमी गायों की रक्षा के लिए चपरास पीठ पर बाँध लेते हैं। डंडा और गुल्लक हाथ में ले लेते हैं। गोरक्षा के लिए रेल के डिब्बों में आवाज लगाते हैं, चंदा इकट्ठा करते हैं। क्यों साहब! आप तो गो-रक्षक हैं? बिलकुल। कितनी जिंदगी खतम हो गई आपकी? साहब चालीस साल। बीस वर्ष की उम्र से हम गोरक्षा का काम करते आ रहे हैं और अब साठ साल के हैं। गऊओं की जय बोलते हैं।

दृष्टिदोष का परिणाम

आपको क्या फायदा हुआ? कुछ फायदा नहीं हुआ। बेसिलसिले की गलत तसवीरें छपवा लेते हैं। रेलगाड़ियों में चंदा माँगते हैं। यहाँ-वहाँ चंदा माँगते हैं और रात को सिनेमा देखते हैं, सिगरेट पीते हैं। न कोई गाय है, न कोई बैल, फिर कैसी गोसेवा? अरे साहब! हमारी ये इंद्रियाँ ही गाय हैं। हमारी जो जीभ है, यह गाय है। जीभ को हम मिठाई खिलाते हैं, कॉफी पिलाते हैं। तो क्या यह गऊ माता को खिलाना नहीं हुआ? हमारी आँखें भी गाय हैं। देखिए हम अपनी आँखों को सिनेमा दिखाते हैं। गायों

का पालन करते हैं। इंद्रियाँ जितनी भी हैं, सब गाय हैं। संस्कृत में इन्हें गाय कहते हैं। तो आपकी गऊशाला है कि नहीं? नहीं साहब! गऊशाला तो नहीं है।

अनाथालयों का काम कैसा है? बहुत ही अच्छा काम है। बेचारे अनाथ बच्चों का शिक्षण करें, पालन-पोषण करें। जिनके माँ-बाप नहीं हैं, उन अनाथों की आप सेवा करें। जिनका कोई आश्रय नहीं है, उनको आश्रय देना बहुत अच्छी बात है। इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है? लेकिन मित्रो! आपकी क्रिया में और दृष्टि में फरक हुआ तब? तो आपका अनाथ पालन ऐसी विडंबना बन जाएगा, मसलन ऐसे कई अनाथालय देखे गए हैं, जो किराए के बच्चों को नौकरी पर रख लेते हैं। तू अपने लड़के को छह-आठ घंटे के लिए भेज दिया कर रे! हाँ साहब! हम तो गरीब आदमी हैं। हम तुझे पच्चीस रुपया महीना दिया करेंगे। तेरे बच्चे को रोटी खिला दिया करेंगे। बस पाँच-सात बच्चे पकड़ लिए और बाँसुरी बजाना, ढोल बजाना सिखा दिया। बच्चे घर-घर भीख माँगते रहे। पच्चीस-पच्चीस रुपये बच्चों के हवाले कर दिए और हजार रुपया महीना अपनी जेब में डाल लिया। क्या करते हैं साहब? हम तो अनाथों का पालन करते हैं। बेटे! तेरी दृष्टि में फरक रहा तो कुछ बनेगा नहीं।

हवन भी एक तमाशा

अच्छा तो महाराज जी! हवन किया करें। हवन तो पंडित भी करते हैं, और लोग भी करते हैं। हवन को भी लोगों ने धंधा बना लिया है। चंदा जमा करते हैं और सब हजम कर जाते हैं। हम तो हवन करते हैं, यज्ञ करते हैं। हाँ बेटे! यज्ञ भी करते हैं। इससे कुछ लाभ होगा? नहीं, कुछ लाभ नहीं होगा। न तो वातावरण का संशोधन होगा, न ही करने वालों को धर्म की शांति मिलेगी। जो लोग हवन में शामिल हुए थे, उनके भीतर जो छाप, जो प्रभाव पड़ना चाहिए था, वह प्रभाव भी नहीं पड़ सकेगा, क्योंकि छाप डालने वाली शक्ति हमारी जीवात्मा होती है। अगर हमारी जीवात्मा ही कमजोर है, निर्बल है तो कैसे पड़ेगा प्रभाव, आप बताइए तो सही। हवन करने वालों की, हवन-व्यवस्था करने वालों की, पंडित जी, पुरोहित जी की हरेक की नीयत खराब है तो उस अग्नि जलाने का, सुगंधि फैलाने का, जलाने का फायदा मनुष्यों के मनों में, हृदयों में, अंतःकरण में मिलेगा क्या? मेरा विश्वास

है कि शायद न मिल सकेगा। खेल-तमाशा तो हो गया, विडंबना तो बन गई। वातावरण नहीं बन सकता।

चिंतन उच्चस्तरीय हो

इसीलिए मित्रो! यह बात ध्यान में रखकर चलना पड़ेगा कि आपको बनना क्या है और बनाना क्या है? करना क्या है और कराना क्या है? इन दोनों प्रश्नों के उत्तर में एक ही जवाब है कि हृपको अपनी दृष्टि का परिशोधन करना है। स्वयं का प्रश्न जहाँ तक आए, आप एक ही बात ध्यान रखिए कि हमारी दृष्टि परिष्कृत होनी चाहिए। हमारा चिंतन उच्चस्तरीय होना चाहिए। हमारे मनो में सिद्धांतों के लिए, आदर्शों के लिए ऊँची निष्ठा होनी चाहिए। अगर ये आपके भीतर है, तो आप क्या क्रिया करते हैं, क्या नहीं करते? चलिए आपकी क्रिया घटिया किस्म की हो तो भी मैं यह कहूँगा कि आप योगी हैं, आप संत हैं, आप तपस्वी हैं और आप ज्ञानी हैं। क्रिया-कृत्य आपका सामान्य जैसा दिखाई पड़ता हो तो भी, उसके लिए हँसी-मजाक उड़ाया जाता हो तो भी, इतिहास में नाम छपने लायक न हो तो भी। इसका बड़ा भारी असर पड़ेगा, फिर आपके लिए तो पड़ना भी चाहिए। इसलिए दृष्टि को ऊँचा करना, चिंतन को ऊँचा करना, आस्थाओं-निष्ठाओं को ऊँचा करना, यह हमारा पहला काम है।

मित्रो! यह मुख्य काम है और आखिरी काम भी है। इसी के लिए हम तरह-तरह के क्रिया-कृत्य करते हैं। उसमें जप भी शामिल है, भजन भी शामिल है, अनुष्ठान भी शामिल है। ये जप, भजन और अनुष्ठान एक कृत्य हैं। अगर आपने इनको उच्चस्तरीय दृष्टिकोण बनाने के लिए किया है, तो मैं आपको बधाई देता हूँ और ये कहता हूँ कि भगवान करे ऐसा भाव हरेक के मन में उत्पन्न हो। ऐसा अनुष्ठान हरेक के मन में हो, लेकिन अगर आपकी दृष्टि अनुष्ठानों के पीछे निकृष्ट है। किसी का पैसा लेकर जप करने की आपके मन में दृष्टि है तो मैं समझता हूँ कि कोई खास फायदा नहीं है। आप एक मजदूरी करते हैं। गायत्री माता का कोई फल मिलेगा? बेटे! मैं कह नहीं सकता, क्योंकि तेरा उद्देश्य मजदूरी है। गायत्री माता का फल मिलेगा? बेटे! जरूर मिलेगा, अगर तेरी दृष्टि उँची रहेगी तब। दृष्टि का उसमें समावेश नहीं हुआ तो मैं जानता हूँ कि शायद ही इसका कोई परिणाम और शायद ही कोई अच्छा फल तुझे मिल सकता होगा।

ऐसी भावना लेकर जप निरर्थक

‘क्या करते हैं साहब? गायत्री माता का जप करते हैं। यह तो बहुत अच्छी बात है। किस काम के लिए करते हैं? साहब! हमारे पड़ोसी के ऊपर जो मुक़्दमा चल रहा है, वे जीत जाएँ। और किसके लिए करते हैं? हमारे बेटियाँ न हों, बेटा हो जाए। बेटे-बेटियाँ तो बहुत अच्छी होती हैं। बेटा होने से क्या फायदा है? नहीं महाराज जी! बेटा हो जाए, इसलिए हम गायत्री माता का जप करते हैं। तेरी दृष्टि बहुत छोटी है, ओछी दृष्टि है, घटिया दृष्टि है, कमीनी दृष्टि है, जानवरों जैसी दृष्टि है। ऐसी दृष्टि को लेकर के तू गायत्री माता का जप कर रहा होगा तो मैं नहीं जानता कि इससे तेरी जीवात्मा को कोई लाभ मिल सकता है कि नहीं। तेरी जीवात्मा में कोई प्रकाश आ सकता है कि नहीं। भगवान की कृपा और अन्य शक्तियाँ मिलेंगी कि नहीं। नहीं साहब! मैं तो ८१ हजार जप करूँगा। चाहे ८१ हजार जप कर ले, चाहे ५१ हजार, अगर दृष्टि तेरे पास नहीं है तो उस क्रिया-कृत्य का क्या परिणाम निकलेगा, मैं नहीं जानता। मेरा विश्वास है कि दृष्टि को ऊँचा किए बिना अध्यात्म और धर्म जो कि हमारा कार्यक्षेत्र है, उसमें कोई महत्वपूर्ण लाभ नहीं मिल सकता। इसीलिए हमको दृष्टि का परिष्कार करने वाली बात सोचकर चलना चाहिए।

बोलना सीखना कोई बड़ा काम नहीं

मित्रो! आप हमारे वानप्रस्थ शिविर में आ करके क्या फायदा उठाएँगे? महाराज जी! बोलने की शैली आ जाए बस। बोलने की शैली बेटे! एक छोटी-सी, जरा-सी बात है, ‘तिल के पीछे ताड़’ है। इस जरा-सी बात को तू अपने मन से निकाल दे। इसमें कुछ है नहीं। बोलना तो बच्चों को भी आता है। आपको अपने पड़ोसी से बात करनी पड़ती है तो धारा प्रवाह बात करते चले जाते हैं। घर में गप्पें हाँकते चले जाते हैं। स्टेज पर बैठकर बोलने में क्या आफत आ गई आपको? नहीं साहब! स्टेज पर बैठकर बोलना नहीं आता। दो बातें हो जाती हैं, इसलिए बोलना नहीं आता। हम सिखा देंगे। साइकिल चलानी आती है तुझे? हाँ महाराज जी! कभी आती है, कभी भूल जाते हैं। नहीं बेटे! साइकिल चलाना सीख ले। साइकिल चलाने में जिन दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है, उन्हीं बातों को व्याख्यान देने में भी याद रखना पड़ता है। यहाँ से जाऊँगा तो गुरुजी! व्याख्यान आ

जाएगा? बेटे! साइकिल चलाना आता होगा तो आ जाएगा। कैसे? साइकिल चलाने में डर लगता है। गिर पड़ेंगे तो, डर पक्का है। दो इंच की चौड़ाई पर दो पहिये चलते हैं और हम भी चलेंगे तो गिरेंगे। बेटे! जरूर गिरेगा। इसके पहिये समान—बराबर भी नहीं हैं। देख, हमारी टाँगें बराबर हैं और टाँगें आगे-पीछे होतीं तो? शायद हम गिर पड़ते। साइकिल के पहिये तो आगे-पीछे हैं, बेटे! गिरेगा जरूर। लेकिन अगर यह सोच लेगा कि सैकड़ों आदमी चलते हैं तो खट चल जाएगी तेरी साइकिल। हिम्मत अगर आदमी के पास आ जाए, तो फिर कुछ भी कठिन नहीं है।

मात्र झिझक निकलनी चाहिए

मित्रो! झिझक—आत्महीनता का भाव कि हम बड़े कमजोर हैं, लोग हमारी मजाक उड़ाएँगे, हमारी दिल्लगीबाजी हो जाएगी। हमारा भाषण किसी काम का नहीं होगा और हम पढ़े-लिखे नहीं हैं, मूर्ख हैं। इतनी कमजोरियाँ बस जबान पर आकर हावी हो जाती हैं और आदमी को बोलने में रुकावट पड़ती है। गुरु जी! व्याख्यान करना सीख जाऊँगा? हाँ, सीख जाएगा, बस झिझक निकाल दे। यहाँ व्याख्यान देना सीख कर गंगा जी के किनारे चला जाया कर। वहाँ पत्थर रहते हैं। पत्थरों को बिठा लिया कर—अरे प्यारे पत्थरो! हमारी बात तुमको सुननी पड़ेगी। तुम्हारे पत्थर जैसे दिमाग और पत्थर जैसी अक्ल, पत्थर जैसी जिंदगी को मुलायम बनना चाहिए। हमारे गुरु जी बताते हैं कि आपको हमारी बात सुननी चाहिए। गंगा के किनारे रहकर भी अरे मूर्खों! ऐसे-के-ऐसे ही रह गए। ये तो तुम्हारी नासमझी है। समझ से काम लो और जरा गीले होने की कोशिश करो। जरा चलने-फिरने की कोशिश करो। लुढ़कना शुरू करोगे तो तुम थोड़े दिनों में शालिग्राम बन सकते हो। अभी तो तिकोने पत्थर पड़े हो। समझा न व्याख्यान देना—झिझक खुली, गाड़ी चली तो चली। साइकिल चली तो चली, पहिया घूमा तो घूमा और बात खतम हो गई।

व्याख्यान देना एक कला

बेटे! व्याख्यान देना कोई खास बात नहीं है। मुझे फुरसत कम मिलती है, नहीं तो मैं तेरे पीछे पड़ जाऊँगा व्याख्यान देने के लिए। तो मैं समझता हूँ कि एक सप्ताह में तुझे बुलवा कर छोड़ूँगा। ये हमारी लड़कियाँ हैं। बाहर भेजा था इनको। बस इनके ऊपर हावी हो गया था—

बैठो, बोलो, यह क्या, ऐसे बोल, ऐसे बोल। क्यों नहीं बोलती? ऐसे बोला जाता है। फिर ऐसे बोलने लगीं कि बस गजब हो गया। व्याख्यान में भी कुछ होता है क्या? कुछ भी नहीं है। बस तेरा दिमाग अपसेट हो जाता है। तेरी जिंदगी फैली हुई है, बंदर की तरह मचक-मचक करता है। किसी बात में दिमाग नहीं लगाता, किसी बात पर ध्यान नहीं देता। अपने प्वाइण्ट बना ले, दिशाधारा निर्धारित कर ले कि ये-ये बोलना है। नहीं साहब! उस वक्त जो मन में आएगा, सो बोलेंगे। नहीं बेटे! अपने प्वाइण्ट निश्चित कर ले, सामने रख ले और उसी हिसाब से कायदे से बोलता हुआ चला जा। पहले उसे याद कर ले, रिवर्सल कर ले तो फिर बोलना आ जाएगा। गुरु जी। मैं अपनी जिंदगी में वक्ता हो जाऊँगा? जरूर हो जाएगा, मैं यह आशीर्वाद देता हूँ।

बेटे! अपने मन को नियंत्रित करना और झिझक हटाना सीख ले। जहाँ ये दो बातें सीखीं, बस वहीं तरी सारी-की-सारी बात ठीक हो जाएगी। शरीर का बैलेन्स बनाना सीख ले और हिम्मत से साइकिल पर सवारी करना सीख ले। पढ़ा है, बिना पढ़ा है तो भी बोल जाएगा। गँवार है तो भी बोल जाएगा और विद्वान है तो भी बोल जाएगा। बेटे! बोलना एक कला है, विद्या थोड़े ही है। बाजीगरों को यह कला आती है और वे जनता को इकट्ठा कर लेते हैं। ताबीज बेचने वालों को बोलना आता है। गोशाला वालों को, अन्य सैकड़ों आदमियों को बोलना आता है। नहीं साहब, गुरु जी यहाँ से जाऊँ तो आशीर्वाद देना कि मैं बोलता चला जाऊँ। हाँ, मैं दे दूँगा आशीर्वाद, कुछ है नहीं इसमें, यह एक खेल है, तमाशा है, जादू है।

सफलता का मापदंड

मित्रो! यहाँ जो वानप्रस्थ शिविर में हम आपको रामायण की कथा कहने के लिए बुलाते हैं। व्याख्यान के लिए स्टेज पर जाकर आप मचक करके बैठ जाएँ और जनता आपको सुनने लगे। आपके गले में फूलमाला पहनाई जाए तो यह कोई सफलता नहीं है। इस सफलता में क्या रखा है? यह तो स्कूलों के सब मास्टर, लेक्चरर कर लेते हैं। क्या पोस्ट है आपकी? लेक्चरर। आप क्या काम करते हैं? अरे साहब! लेक्चर झाड़ने का पैसा कमाते हैं। धत् तेरे की? और कुछ काम करते हो? नहीं साहब! कुछ काम नहीं, आप देख लीजिए हमारी पोस्ट।

लेक्चर झाड़ना, रोटी कमाना। कॉलेज और स्कूल कितने हैं? लाखों की तादाद में हैं। और लेक्चरर? जितने देखिए लेक्चरर ही लेक्चरर। लेक्चर से हम जनता का उद्धार कर देंगे। लेक्चर से हम यश कमा लेंगे। लेक्चर से हम बड़े आदमी हो जाएँगे। नहीं बेटे! लेक्चर बड़ी वाहिद्यात और घटिया चीज है। थोड़े दिन पीछे अभी और देखना तमाशा। जिन लोगों ने लेक्चर देने का धंधा कायम कर रखा है और जिनके चाल-चलन में जमीन-आसमान का फरक है। इन लोगों को सड़क पर बैठना मुश्किल पड़ जाएगा। कौन है यह? लेक्चरर है। अरे यह चालाक आदमी है, बदमाश आदमी है। लोगों को बहकाने के लिए आ गया है। अभी भी हो गया है, थोड़े दिनों बाद तो बिलकुल खतम हो जाएगा। लेक्चरर की क्या कीमत रह सकती है?

अनुशासन जरूरी

बेटे! हम यहाँ जो प्रशिक्षण करते हैं। जो क्रिया-कृत्य कराना चाहते हैं, उसमें अनुशासन जरूरी है। अच्छा तो गुरु जी! हवन करने की विधि सिखा दीजिए। हाँ बेटे! हवन करने की विधि भी सिखा देंगे, इसमें कोई खास बात नहीं है। थोड़े दिन, महीना-पंद्रह दिन तू मेहनत कर ले। श्लोक बोलने की शैली सीख ले। क्रिया-कृत्य में किसके बाद क्या करना चाहिए, यह देख ले। अनुशासन किस तरह से सभा में रखा जाता है यही नेता बनाने के लिए सिखाते हैं। पच्चीस आदमी हवन करने के लिए बैठे हों तो क्या करना चाहिए? डिसिप्लिन कायम रखना चाहिए और देखना चाहिए कि एक तरीके से सबकी क्रियाएँ हो रही हों। इतने आदमियों पर हावी रहो कि कोई आदमी गलत काम न कर रहा हो। बोलने में सबकी आवाजें साथ-साथ आ रही हों। नहीं साहब! बकरो की तरह से में-में, में-में। कोई तो प्रचोदयात् बोल रहा है, कोई तत्सवितुर बोल रहा है, लगा गाल में एक चाँटा। हम यहाँ बोलते हैं कि हमारे साथ-साथ बोलिए। कोई पीछे बोल रहा है, कोई इधर, कोई उधर बोल रहा है। ये बेटे! डिसिप्लिन का उल्लंघन है।

मित्रो! हम डिसिप्लिन—अनुशासन सिखाते हैं। हर आदमी को अनुशासित होना चाहिए, डिसिप्लिन में रहना चाहिए। नहीं साहब! हमारी मरजी है, हम तो जोर से चिल्लाएँगे। नहीं, जोर से नहीं चिल्लाने देंगे, जबान बंद रखो। या तो हमारे साथ-साथ बोलो या चुप बैठो। नहीं

साहब! आप प्रचोदयात् बोलिए हम धीमहि बोलेंगे। एक ऊँचा चिल्ला रहा है, एक नीचा चिल्ला रहा है, ऐसे नहीं बोलने देंगे। साथ-साथ गले से गला मिलाकर बोलो। हम यह अनुशासन सिखाते हैं, ताकि आप में से हर आदमी हवन कराने में डिसिप्लिन रखना सीख जाए और अपने पड़ोस को एक कायदे-कानून में चलाना सीख जाए। यदि आप अनुशासन में रहना सीख लेते हैं तो मैं आपका ब्रह्मा नाम, आचार्य नाम रख दूँगा। नहीं साहब! हमको श्लोक आते हैं, और झपकी लेते रहते हैं और श्लोक बोलते रहते हैं। हमें तो अपने माइक से और किताब से काम है। कोई सुने, चाहे न सुने, बोले या न बोले। हम तो बकवास करते चले जाते हैं। बेटे! थोड़ी-सी बातें हैं, जो तुझे वहाँ यज्ञ में करनी चाहिए। बोलना और यज्ञ करना, ये बिलकुल मामूली बातें हैं। महीने भर में नहीं सीखेगा तो दो महीने में सीख जाएगा।

हमारा उद्देश्य अलग है

लेकिन मित्रो! इससे हमारा वह उद्देश्य पूरा नहीं होगा, जिसमें कि हम अपनी कीमती जिंदगी को खरच करते चले जाते हैं और जिसके आधार पर हम लंबे-चौड़े ख्वाब देखते चले जाते हैं। उन ख्वाबों के आधार पर मनुष्य जाति के भाग्य का फैसला टिका हुआ है। अगर हमारे ये विचार और हमारे सपने नाकारा और निरर्थक साबित हुए तो हम कह सकते हैं कि यह असफलता केवल हमारी नहीं है, अपितु समूची मानव

जाति की असफलता है। यह असफलता सभ्यता की है, संस्कृति की है, धर्म की है, अध्यात्म की है, ऋषियों की है। यह असफलता हमारी उन महान परंपराओं की है, जिन्होंने विश्व का निर्माण, निर्धारण किया था। इसीलिए मित्रो! मैं आपसे अपने सपनों के पीछे छिपी हुई दृष्टि की बावत कहना चाहूँगा। हमको आखिर करना क्या है और बनना क्या है? कराना क्या है और बनाना क्या है?

मित्रो! आप सिर्फ यह ध्यान रखिए कि हमको मनुष्य का चिंतन, मनुष्य की दृष्टि और मनुष्य की निष्ठाएँ, इनका स्तर ऊँचा उठाना है। इसके लिए आपको कर्मकांडों की सहायता लेनी पड़ेगी। ठीक है, लेकिन आपकी स्वयं की दृष्टि जिसको मैं फिलॉसफी—दर्शन कहता हूँ। वास्तव में जो दर्शन था, प्राचीनकाल में इसी मामले में इस्तेमाल हुआ था। अब तो दर्शन के नाम की ऐसी मिट्टीपलीद हो गई है जैसे गांधी जी ने हरिजन नाम दिया था। क्यों साहब! आप तो हरिजन मालूम पड़ते हैं, तिलक लगाए हैं, जनेऊ पहने हुए हैं। अरे साहब! हमें हरिजन क्यों कहते हैं आप? हरिजन तो उन्हें कहते हैं, अछूतों को। अरे बेटे! हरिजन माने जो भगवान का आदमी मालूम पड़ता हो। नहीं साहब! हरिजन मत कहिए हमें! धत् तेरे का। हरिजन नाम की ऐसी मिट्टीपलीद हो गई। इतना ऊँचा नाम था और कितना घटिया अर्थ उसका लग गया। ठीक इसी तरीके से दर्शन की भी ऐसी मिट्टीपलीद हुई है कि क्या कहें। (क्रमशः) □

उन दिनों श्री जाकिर हुसैन जामिया मिलिया के अधिष्ठाता थे। छात्रावास की भी वे देख-भाल करते थे।

उस दिन उन्हें छात्रावास निरीक्षण के लिए जाना था। दरवाजे में प्रवेश किया तो देखा, लड़के भोजनालय में हैं। दरवाजे पर सभी के जूते अस्त-व्यस्त पड़े हैं। सबसे पहले उनसे जूतों को लाइन से लगाया और पोंछकर ठीक किया।

इसके बाद भीतर घुसे तो देखा कि लड़के रसोइए से लड़ रहे हैं। रोटी कच्ची-जली होने की शिकायत कर रहे हैं। दाल को पतली बता रहे हैं। बीच में एक थाली रख रखी थी, जिसमें रोटी का नापसंद भाग और दाल का ऊपर का पानी जमा करते जा रहे थे, फेंकने और अफसरों को दिखाने के लिए लड़ रहे थे, सो अलग।

जाकिर साहब पहले तो एक कोने में खड़े होकर यह सब देखते-सुनते रहे। पीछे वे बीच वाली थाली के पास पहुँचे और बैठकर उस फेंके गए सामान को खाने लगे।

लड़के स्तब्ध रह गए। जाकिर साहब ने कहा—“बच्चो! हम लोग जिस देश में रहते हैं, उसमें करोड़ों को ऐसा भी नहीं मिलता, जितना कि तुमने फेंक दिया है। खाना बरबाद करने से पहले यह भी तो सोचना चाहिए।”

लड़कों ने माफ़ी माँगी और भविष्य में सावगी से काम चलाने का आश्वासन दिया।

लोकमानस का आध्यात्मिक प्रशिक्षण : रीति-नीति-२

दर्शन का अर्थ देखना नहीं

मित्रो! कहाँ गए थे? दर्शन करने गए थे? किसका दर्शन करने गए थे? साहब! बदरीनाथ का दर्शन करने गए थे। तो कर लिया दर्शन? हाँ साहब! खूब दर्शन हो गए। भीड़ तो बहुत थी, पर हम पंद्रह मिनट खड़े रहे और अच्छी तरह से दर्शन हो गए। दर्शन से आपका मतलब क्या है? बेटे! दर्शन का अर्थ यदि देखना भर लगाता है तो देखने का इतना ही फायदा होगा कि उसकी यह व्याख्या कर सकता है कि बदरीनारायण संगमरमर के बने हैं या भूसा के बने हुए हैं। उनकी नाक लंबी है कि चौड़ी है। बस, इतनी ही जानकारी तुझे होगी और इतना ही पुण्य मिलेगा। बस, इतना ही फायदा होगा। इस दर्शन से तो महाराज जी! इस दर्शन से तो बैकुंठ मिलेगा न? नहीं बेटे! तुझे नहीं मिलेगा; क्योंकि तेरे दर्शन के माने-मतलब का अर्थ जो तुमने समझा है, वह मात्र देखना समझा है। वास्तव में दर्शन का अर्थ देखना नहीं है।

साथियो! दर्शन का मतलब 'दर्शन—टू फिलॉसफी'। दर्शन के पीछे एक दृष्टि काम करती है। आप किसको देखने के लिए गए थे? गांधी जी को। गांधी जी को देखने के लिए तो लाखों लोग गए होंगे। तो क्या पुण्य मिला? बेटे! मैं समझता हूँ कि कोई पुण्य नहीं मिला होगा। जो भी आदमी उन्हें देखने के लिए अपना किराया-भाड़ा खर्च कर गए होंगे तो सिर्फ इतनी जानकारी लेकर के आए होंगे कि एक छोटी कद-काँठी का काला व ठिगना आदमी था, जिसकी आँखें छोटी और नाक लंबी थी। बस, इतनी-सी जानकारी का जो पुण्य होगा, मिला होगा। नहीं महाराज जी! गांधी जी के पास जाने से तो बड़ा पुण्य मिलता है। नहीं बेटे! अगर उनके दिमाग में दृष्टि नहीं है, तब कोई पुण्य नहीं मिलता। हाँ, जिनकी आँखों में दर्शन रहा होगा, उनसे गांधी जी को देखा होगा

और देख करके उनकी फिलॉसफी को समझा होगा। उनके प्रति जो उनकी निष्ठा-श्रद्धा थी कि गांधी जी बहुत अच्छे आदमी हैं, उस निष्ठा को ग्रहण किया होगा और ग्रहण करने के बाद उनका नाम विनोबा हो गया।

विनोबा कौन हैं? दूसरे नंबर के गांधी हैं। गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह में जब अपना उत्तराधिकारी घोषित किया तो लोग बहुत उम्मीद लगाए बैठे थे कि गांधी जी के जेल जाने के बाद में दूसरे नंबर पर कौन हो सकता है? दूसरा नंबर जवाहरलाल नेहरू का होना चाहिए, सरदार पटेल का होना चाहिए। सब अखबार वाले इंतजार कर रहे थे कि गांधी जी अपना उत्तराधिकारी डिक्लेयर करेंगे। दोनों में से या तो जवाहरलाल नेहरू हो सकते हैं या फिर सरदार पटेल हो सकते हैं। ये दोनों बड़े दबंग थे, लेकिन गांधी जी ने, सन् १९३६ में जब व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन शुरू हुआ था तो उसमें डिक्लेयर किया कि मेरे गिरफ्तार होने के बाद में राष्ट्र की लगाम चलाने वाला और दूसरे नंबर का सत्याग्रही होगा तो विनोबा भावे होगा।

अंतर दो स्थितियों में

मित्रो! विनोबा भावे और जवाहरलाल नेहरू में क्या मुकाबला है? एक छोटे, गरीब घर में—कंगाल घर में पैदा हुए। न इनके पास साइकिल है, न इनके पास मोटर है, न इनके पास और कुछ भी है, बिलकुल नाचीज आदमी। ऐसे नाचीज आदमी और दुनिया में नहीं हैं तो क्या विनोबा भावे व्याख्यान दे सकते हैं? बेटा! मामूली सा देते हैं, कोई खास व्याख्यान नहीं देते। पढ़े लिखे हैं? अरे साहब! वो क्या पढ़े लिखे हैं, ऐसे ढेरों आदमी पढ़े लिखे हैं। अभी कल परसों अपने यहाँ हरिद्वार के एक प्रिंसिपल आए थे। उन्होंने बताया कि मैंने कितने विषयों में एम० ए० किया है। ढेरों विषयों में एम० ए० किया हुआ है। उन्होंने कहा कि अभी बहुत सारे विषयों में और एम० ए० करूँगा। अगर विनोबा भावे ने

एम० ए० कर लिया है या कई भाषाएँ पढ़ ली हैं तो कौन सी नई बात हुई? कोई खास बात नहीं है। मित्रो! उनके अंदर क्या विशेषता है? उनकी दृष्टि, उनका चिंतन, उनकी मान्यताएँ, उनकी निष्ठाएँ, उनकी आस्थाएँ—बस। असल में आदमी की शक्ति इसी में है। आदमी का वर्चस्व इसी में है। आदमी का गौरव इसी में है। आदमी का प्रभाव इसी में रहता है। आदमी की सामर्थ्य इसी में रहती है।

मित्रो! आपसे हम कर्मकांडों का जो कृत्य कराते हैं और जिस पर हम अधिक जोर देते हैं। 'धर्मतंत्र से लोकशिक्षण' में कर्मकांडों की धूम मचा दी है और कहा है कि आप पर्व मनाइए, संस्कार मनाइए, यज्ञ कराइए, वसंतपंचमी का त्योहार मनाइए, जन्मदिन मनाइए। रामायण की कथा कराइए, भागवत की कथा कराइए, कितने सारे धार्मिक क्रिया-कलाप लोगों को दिए हैं। आपको स्वयं कितने क्रिया-कलाप दिए हैं। जप कीजिए, उपासना कीजिए, खेचरी मुद्रा कीजिए, ध्यान कीजिए आदि कितने सारे कर्मकांड जनता को एवं आपको बता दिए हैं। तो क्या गुरुजी! इन कर्मकांडों का इतना बड़ा महत्त्व है? बेटे! कोई महत्त्व नहीं है। इन कर्मकांडों का महत्त्व व्यक्तिगत जीवन में और सामूहिक जीवन में सिर्फ एक बात पर टिका हुआ है कि आपने इन कर्मकांडों के साथ दृष्टि, चिंतन, फिलॉसफी को जोड़ करके रखा है कि नहीं रखा। यदि ये चीजें आपके कर्मकांडों के साथ जुड़ी होंगी तो आपके व्यक्तिगत जीवन में उससे बहुत फायदा होगा। और सामूहिक जीवन में, सामाजिक जीवन में—जिस क्षेत्र को आप ऊपर उठाना चाहते हैं, आगे बढ़ाना चाहते हैं, उसको बेहद लाभ होगा।

जरूरी है दृष्टिकोण का परिष्कार

साथियो! अगर अपने स्वयं में दृष्टिकोण का परिष्कार नहीं किया और जनता के दृष्टिकोण का परिष्कार नहीं किया। आप मात्र हवन कराते रहे। कितनी आहुतियाँ दीं? साहब! बाईस हजार आहुतियाँ दे दीं, दस हजार आहुतियाँ दे दीं, तो मैं यह पूछता हूँ कि इतनी आहुतियाँ देने के बाद, जो लोग उसमें आहुतियाँ देने के लिए आए थे, आखिर में आहुति देने के पीछे जो फिलॉसफी जुड़ी हुई है कि हमको उसमें किसकी आहुति देनी चाहिए; क्या त्याग करना चाहिए; बलिदान करना चाहिए; सेवा को जीवन का अंग बनाना चाहिए—यह भी सिखाया

क्या? नहीं साहब! यह तो नहीं सिखाया। फिर क्या सिखाया—दे आहुति-दे आहुति.....। बेटे! इससे तेरा क्या फायदा हुआ होगा? मालूम नहीं, शायद धुएँ से किसी की आँखें खराब हो गई हों। नहीं महाराज जी! उस समय तो किसी की आँखें खराब नहीं हुई थीं, हाँ, आँखों में से पानी तो बहुतों की से टपक रहा था। देख ले, यही फायदा हो गया कि आँखों में कोई कीचड़-वीचड़ रहा होगा, सो धुएँ से निकल गया। और क्या फायदा हो गया होगा? और बेटे! ठंडक में हवन कराया था या गरमी में कराया था? गुरुजी! ठंडक में कराया था। अच्छा तो एक फायदा यह हो गया कि जाड़े के मारे जो लोग काँप रहे होंगे, वे हाथ सेंक रहे होंगे और हवन भी कर रहे होंगे। और कोई फायदा हुआ? और कोई फायदा नहीं हुआ।

सोने का नेवला

मित्रो! हवन का, कर्मकांड का जो मूल लाभ है, वह उसके चिंतन का लाभ है। दृष्टिकोण के स्तर की ऊँचाई बढ़ाने का लाभ है—आप यह बात ध्यान रखना। प्राचीनकाल का इतिहास और नया इतिहास यह बराबर बताते हैं कि यदि क्रिया-कृत्य सामान्य हो, तो भी उसके फल असामान्य होंगे। पिछले शिविर में एक दिन मैंने आपको एक नेवले की कहानी सुनाई थी। एक ब्राह्मण थे, जो चार रोटी का अनाज कहीं से लाए थे और भूखे रहते हुए उन्होंने चारों रोटियाँ दान कर दी थीं। रोटी एक चांडाल ले गया था। उसके जूठे पानी में नेवले का थोड़ा अंग भीग गया था और वह सोने का हो गया था। भगवान श्रीकृष्ण ने जब पांडवों का यज्ञ कराया था तो उसमें वह नेवला गया था और कहने लगा था कि साहब! इस यज्ञ का इतना पुण्य नहीं हुआ। तो महाराज जी! किससे होता है पुण्य? इससे पुण्य होता है कि तुम अपनी थाली में एक-एक रोटी रख लो और जो कोई भी आदमी आए, उसे चारों रोटी दान कर दो। महाराज जी! तो क्या नेवला इससे सुनहला हो जाएगा? नहीं होगा। अच्छा तो मैं चार रोटी की जगह छह रोटियाँ रख दूँ अथवा एक किलो आटे की रोटियाँ थाली में रख दूँ? और दान कर दूँ तो तो भी नहीं होगा। क्यों?

क्योंकि इसका जो अर्थ तू समझता है, वह दृश्य का समझता है; कृत्य का समझता है; पदार्थ का समझता है! यही मतलब है न तेरा? लेकिन पदार्थ का क्या मूल्य हो

सकता है, क्या महत्त्व हो सकता है? पदार्थ को तो घर में चूहे भी खा जाते हैं। हाँ महाराज जी! चार रोटी का अनाज तो रोज चूहे खा जाते हैं। तो महाराज जी! अनाज का पुण्य करने से क्या हो जाएगा? कुछ भी नहीं हो जाएगा। तो कैसे हो जाएगा? बेटे! उसका एक ही आधार है, और दूसरा कोई नहीं है और उसका नाम है—दृष्टि। अभी मैंने आपको उस आदमी का हवाला दिया, जिसकी चार रोटियों ने यह कमाल कर दिया था। उसके पीछे एक दृष्टि थी, एक फिलॉसफी थी और वही यज्ञ हो गई। इतना बड़ा यज्ञ हो गई कि उसके मुकाबले में श्रीकृष्ण का पांडवों द्वारा लाखों रुपया खर्च करके कराया हुआ यज्ञ नाचीज हो गया। लेकिन भूखे ब्राह्मण का वह चार रोटी दान करने वाला यज्ञ बड़ा हो गया।

मित्रो! वह क्या था? वह एक दृष्टि थी, जो उस आदमी के भीतर काम करती थी। वह दृष्टि यह काम करती थी कि मैं अपने पेट पर पट्टी बाँध सकता हूँ, लेकिन यदि मुझसे जो ज्यादा पिछड़े हुए आदमी हैं, गिरे हुए, दुखियारे आदमी समाज में हैं तो उनका यह हक है कि मैं उनकी सेवा करूँ। इसके लिए चाहे मुझे मुसीबतें ही क्यों न उठानी पड़ें तो उठाऊँ। यह दृष्टि, यह निष्ठा, यह आस्था, यह विश्वास इतना शक्तिशाली था कि देवताओं के सोने के सिंहासन हिल गए।

तोते की मुक्ति गायत्री मंत्र से

मित्रो! पिछले दिनों मैं वहाँ गया—केन्या। नैरोबी (केन्या) में एक लड़की रहती है—विद्या। उसने कांगो का एक तोता पाल रखा था। तोता जो था, वह ऐसा बढ़िया साफ-साफ गायत्री मंत्र बोलता था। मैंने उसको कैसेट में टेप कर लिया और कहा कि जब हिंदुस्तान जाऊँगा तो लोगों को बताऊँगा कि एक सुग्गा इतना सही गायत्री मंत्र बोलता है। टेप के बिना तो मेरी बात पर कोई विश्वास नहीं करेगा। इसीलिए मैं टेप करके लाया। जब मैं वहाँ ठहरा था तो देखा कि सुबह-सवेरे चार बजे कौन इतना साफ गायत्री मंत्र बार-बार बोलता है? यह चक्कर क्या है? मैं बहुत देर तक देखता रहा, लेकिन समझ में नहीं आया। फिर मैंने उस लड़की से पूछा कि यह गायत्री मंत्र कौन बोलता है? वह बोली—गुरुजी! कांगो एक देश है, जहाँ के सुग्गे बड़े-बड़े होते हैं और वे मनुष्य की आवाज को ठीक तरीके से याद कर लेते हैं। उस तोते ने भी गायत्री मंत्र याद कर रखा था। अच्छा

महाराज जी! वह कितनी बार गायत्री मंत्र बोलता होगा? बेटे! वह सौ बार या एक सौ आठ बार तो बोलता ही होगा। तो क्या उसकी मुक्ति हो जाएगी? आपके खयाल से तो हो भी सकती है, पर मेरे खयाल से नहीं होगी; क्योंकि उसके भीतर कोई चिंतन नहीं है; कोई दृष्टि नहीं है; कोई आस्था नहीं है; कोई विश्वास नहीं है। केवल शब्दों को ही रिपीट करता रहता है।

अध्यात्म : आस्थाओं का परिपाक

अच्छा महाराज जी! शब्दों में कितनी ताकत है? बेटे! बस, इतनी ताकत है कि हम उसे टेप कर लाए और हम उस सुग्गे का नाम ले रहे हैं। और कोई ताकत है? और कोई ताकत नहीं है। बस, इससे लोगों को जानकारी मिल जाती है कि चार हजार जप कर लिया या तीन हजार जप किया। तो इसका कोई पुण्य नहीं है? न बेटे! कोई पुण्य नहीं है। पुण्य कैसे हो सकता है? दृष्टि से हो सकता है। दृष्टि अगर हमारे पास हो, चिंतन हमारे पास हो, आस्थाएँ हमारे पास हों, हमारे जप में भावविह्वलता जुड़ी हो तो यही सामान्य जप इतना बड़ा फलदायक हो सकता है, जिसके मुकाबले में तराजू में बड़ी-से-बड़ी चीज तौली जा सकती है। और इसके मुकाबले बड़ी-से-बड़ी चीज इतने कम मूल्य की हो सकती है, छोटे मूल्य की हो सकती है कि ढेरों-का-ढेरों श्रम, ढेरों-का-ढेरों धन खर्च करने के बाद भी हम उसको हिकारत की नजर से देख सकते हैं और उसे छोटी चीज ठहरा सकते हैं। अगर उसके पीछे निष्ठाएँ हों तब, आस्थाएँ हों तब। आस्थाओं का परिपाक—इसी का नाम अध्यात्म है। अध्यात्म और कोई चीज नहीं है, मात्र दृष्टि के परिष्कार का नाम है।

मित्रो! दृष्टिकोण के परिष्कार की बात पर जब हम विचार करते हैं, तब हमको मालूम पड़ता है कि छोटी-छोटी घटनाएँ धार्मिक क्षेत्रों में घटित हुई हैं तो उनके कितने तीव्र और कितने महत्त्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न हुए हैं। एक साधु और चिड़िया की कहानी कितनी बार आपको सुनाता रहता हूँ। एक साधु आया था। अपनी नजरों के तेज से उसने चिड़िया को जला दिया था। एक स्त्री थी, जिसने कहा था कि मैं योगाभ्यास कर रही हूँ। योगाभ्यास में वह खाना पका रही थी और अपने सास-ससुर की सेवा कर रही थी। तो महाराज जी! हमारी बहू भी सास-ससुर की सेवा करती है और हमको खाना

खिलाती है तो उतना ही पुण्य हमको भी मिल जाएगा क्या, जितना कि आप जो महाभारत का किस्सा सुना रहे थे? नहीं बेटे! तेरी बहू को नहीं मिलेगा। क्यों महाराज जी! उसमें क्या बात है? और उसमें क्या बात थी? वह भी खाना पकाती थी और हमारी औरत भी खाना पकाती है। बेटे! मुख्य बात—असल बात यह है कि तेरी औरत किस भाव से खाना पकाती है और किस दृष्टि से तेरी सेवा करती है? सारे-का-सारा चमत्कार, सारे-का-सारा जादू यहाँ है। अगर वह मजबूरी से खाना पकाती है, पेट के लिए खाना पकाती है तो समझ ले बेटे कि वह एक नौकरानी के तरीके से है, मजदूरनी के तरीके से है। उसमें वह योग की दृष्टि नहीं आ सकती, जो जिस महिला की बात मैंने बताई थी।

सबसे बड़े ब्रह्मज्ञानी

मित्रो! नकल क्रिया की मत कीजिए, भावनाओं की कीजिए। आपको तौल भावनाओं से करनी पड़ेगी, क्रियाओं से नहीं। क्रियाओं से तौल करके मैंने उसी कहानी में बताया था कि एक चांडाल था, जो टट्टी साफ करने का काम करता था, लेकिन वह बहुत बड़ा ब्रह्मज्ञानी था। उसी कहानी में मैंने तुलाधार वैश्य की कहानी बताई थी। वह लौंग-हींग बेचता था, लेकिन ब्रह्मज्ञानी था, तपस्वी था। मित्रो! गाड़ी वाले रैक्य की घटना का वर्णन उपनिषदों में आता है। एक दिन एक हंस और हंसिनी बैठे हुए बात कर रहे थे। राजा जनक वहीं समीप में बैठे थे। हंस-हंसिनी कहने लगे कि इस जमाने का सबसे बड़ा ब्रह्मज्ञानी कौन हो सकता है? उसने किसी एक ऋषि का नाम लिया। उसने कहा कि इस जमाने का सबसे बड़ा ऋषि गाड़ी वाला रैक्य है। राजा को चैन नहीं मिला। उसने कहा कि हमारे राज्य में गाड़ी-वाला रैक्य सबसे बड़ा ब्रह्मज्ञानी है। चलो, उसकी तलाश कराएँ और पता लगाएँ कि वह कैसा ब्रह्मज्ञानी है। पता लगाने के लिए बहुत दिनों तक नौकर-चाकर भेजते रहे। आखिर में जब पता लगा तो देखा कि जैसे आपने गाड़िया लोहार देखे हैं, जो अपनी गाड़ी लिए गाँव-गाँव फिरते हैं। ऐसे ही एक गाड़ी लिए, मजदूरी करता हुआ, गाड़ी में सामान ढोता हुआ एक छोटा-सा वृद्ध मजदूर दिखा। बात-चीत करने पर उसकी विद्वत्ता का, श्रेष्ठता का राजा को भान हुआ कि वास्तव में वे इस जमाने के सर्वश्रेष्ठ ऋषि हैं।

साथियो! क्रिया-कृत्य करने वाले कितने ही महात्मा होते हैं; संत होते हैं; ज्ञानी होते हैं। लेकिन हम देखते हैं कि छोटी-छोटी क्रियाएँ करने वाले, जिनकी क्रियाएँ नगण्य थीं, जिनकी क्रियाएँ मजाक उड़ाने वाली थीं, उपहास करने वाली थीं, फिर भी उनका ब्रह्मज्ञान, भगवान की भक्ति उच्चस्तरीय रही है। जैसे कबीर का किस्सा अभी तो मैंने आपको नहीं सुनाया, परंतु पहले के शिविरों में सुना चुका हूँ। अभी मैं आपको रैदास की बात सुना रहा हूँ। वे चप्पल सिला करते थे, चमड़े का काम किया करते थे, लेकिन उनकी कठौती में से गंगा प्रकट हुई थी। महात्मा पांडुरंग जब उनके दिए हुए दो पैसे लेकर गंगा जी में गए थे तो गंगा जी ने हाथ निकाल दिए थे और कहा था कि रैदास के पैसे हैं तो हमको दे दीजिए। क्या ये बातें सही हैं? हाँ बेटे! सही हैं।

सिद्धपुरुष कबीर

कबीर क्या करते थे? क्रिया-कृत्य कितना करते थे? जप कितना करते थे? अनुष्ठान कितना करते थे? बेटे! मुझे मालूम नहीं है, लेकिन इतना मुझे मालूम है कि कबीर अपना पेट पालने के लिए भिक्षा माँगने के बजाय हाथ से सूत कातते थे। उस सूत से कपड़ा बुनते थे और कपड़ा बुनने से जो दो-चार आने की मजदूरी मिल जाती होगी, उसी से अपना पेट भर लेते और अपना गुजारा कर लेते थे। महाराज जी! तो वे अनुष्ठान नहीं करते थे? हाँ बेटे! वे अनुष्ठान नहीं करते थे। और प्राणायाम? प्राणायाम भी नहीं करते थे। और समाधि? समाधि भी नहीं लगाते थे। कपड़ा बुनते थे। तो महाराज जी! कपड़ा बुनने पर भी, कोई अनुष्ठान न करने पर भी, जप-तप न करने पर भी वे कैसे इतने उच्चस्तरीय संत हो गए कि जिनके मरते समय हिंदू और मुसलमानों में लड़ाई हुई। मुसलमान कहते थे कि यह तो हमारा है और हिंदू कहते थे कि हमारा है। इस झगड़े को देखकर कबीर ने सोचा कि जिंदगी भर हम मोहब्बत पैदा करते रहे और अब मरते समय हमारी लाश के पीछे लड़ाई हो तो यह खराब बात है। उनकी मरी हुई लाश गायब हो गई और वहाँ, जहाँ उनकी लाश पड़ी हुई थी, केवल फूल पड़े रह गए। आधे फूल मुसलमान उठा ले गए, क्योंकि वे जुलाहे के यहाँ पैदा हुए थे और जुलाहे ने पालन-पोषण किया था। उन्होंने कहा कि इसकी मसजिद बनाएँगे, मकबरा बनाएँगे और मकबरा बना दिया गया।

मित्रो! आधे फूल हिंदू उठा ले गए। उन्होंने उन फूलों को जला दिया। जलाने के बाद में कबीरचौरा बना दिया गया। ऐसे थे वे सिद्धपुरुष, ऐसे थे महापुरुष। क्यों साहब! सूत बुनने से हो सकते हैं? हाँ बेटे! सूत बुनने से हो सकते हैं। देख—सूत बुनने की खड़ियाँ हमारे यहाँ लगी हुई हैं। तू यहाँ से खड़ड़ी ले जा और अपने घर में सूत बुना कर। थोड़े दिनों में कबीर हो जाएगा। तो महाराज जी! मैं कबीर हो जाऊँगा बेटे! तू कबीर नहीं हो सकता। ऐसी दृष्टि कहाँ है? तेरे पास, चिंतन कहाँ है? तेरे पास आस्थाएँ कहाँ हैं? तेरे पास विश्वास कहाँ है? अगर तेरा यह खयाल है कि कृत्यों के माध्यम से, घटनाओं के माध्यम से, क्रिया-कलापों के माध्यम से भगवान को पाना चाहता है, तो यह नामुमकिन है।

विधि क्यों पूछते हैं?

यहाँ कितने लोग आते रहते हैं और बार-बार यही पूछते रहते हैं कि विधि बताइए। किसकी विधि बताएँ? गायत्री माता का साक्षात्कार करने की विधि बताइए। अरे अभागे! विधि तो पूछ मत। तू तो केवल रामनाम लेता चल, इसी से पार हो जाएगा। वाल्मीकि इसी से पार हो गए थे। प्रह्लाद इसी से पार हो गया था। मैंने तो यह गायत्री मंत्र बता दिया है। नहीं साहब! आपने गायत्री मंत्र तो बता दिया है, पर विधि नहीं बताई है। क्या विधि बताऊँ? नहीं महाराज जी! बीजमंत्र लगाने की विधि बताइए। बताऊँ तेरा सिर, बेहूदा कहीं का। विधियाँ पूछता है। विधियों में क्या रखा है! नहीं साहब! ऐसी विधि बताइए कि फट से भगवान मिल जाएँ। बेटे! कोई विधि नहीं है ऐसी, केवल एक ही विधि है। कौन-सी? अपना ईमान और अपनी निष्ठाएँ, अपने विश्वासों की गहराइयों

को मजबूत बनाता चला जा। फिर देख तू रामनाम लेता हो, तो भी तुझे मुबारक। रामनाम न भी आता हो, मरा मरा कहता हो, तो मुबारक। मरा-मरा कहने से, उलटा नाम जपने से—

उलटा नाम जपा जग जाना।

वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना॥

वाल्मीकि ब्रह्म के समान हो गए थे। विधियाँ बताइए। बेटे! मैं विधियाँ बताता तो हूँ। विधियों पर प्रचार करता हूँ, विधियाँ आपको भी सिखाता हूँ। विधियाँ जनता को भी सिखाई हैं, पर मैं हमेशा यह कहता रहा हूँ और कहता रहूँगा कि विधियों के माध्यम से हम लोगों की निष्ठाओं को परिपक्व करते हैं। जनमानस का परिष्कार हमारा मूल उद्देश्य है।

मित्रो! एक दिन मैंने कहा था कि पहले के जमाने में बड़ी गरीबी के, कंगाली के दिन थे। हमें कंगाली के वे दिन अभी भी याद हैं। जब हम छोटे थे तो हमारे गाँव के लोग साग-भाजी के लिए हमारे यहाँ आया करते थे। हमारी माताजी शाम को जब सोया करती थीं तो दो कटोरे साग उठाकर रख दिया करती थीं और दोपहर के भोजन के बाद भी दो कटोरे साग-भाजी उठाकर रख दिया करती थीं। किस काम के लिए रख रही हैं? इतना बड़ा गाँव है, किसी के घर मेहमान आ गया तो? साग नहीं था तो दाल से खाते थे। साग-भाजी का उन दिनों नाम भी नहीं था। कोई मेहमान आ जाए, जमाई आ जाए तो सब भाग करके आते थे और माताजी से साग-सब्जी माँगकर ले जाते थे। गेहूँ का आटा किसी के यहाँ नहीं है तो हमारे यहाँ से ले जाते थे। उन दिनों गेहूँ नहीं था, लोग मक्का खाते थे। बड़ी गरीबी के दिन थे। (क्रमशः)

□

संत कबीर के मन में यदि कोई इच्छा-वासना है तो मैं उन्हें वश में करके गुमराह कर दूँ—यह सोचकर शैतान उनके सामने प्रकट हुआ। उस दिन कबीरदास के पास निर्वाह की व्यवस्था भी नहीं थी। अवसर उचित था। शैतान ने पूछा—“आज तुम क्या खाओगे?”

“मिट्टी खाऊँगा।”—कबीर साहब ने कहा और “पहनोगे क्या?” शैतान के पूछने पर वे बोले—“मुरदे का कफन।”

“अच्छा, यह भी ठीक, लेकिन यह भी तो बताओ कि रहने का भी कहीं ठौर है या नहीं?”

“हाँ है—” उनके पास मकान नहीं था फिर भी वे बोले—“श्मशान भूमि में रहूँगा।”

वश न चलता देख शैतान लौट गया।

तृष्णा, वासनायुक्त चित्त पर ही आसुरी शक्तियों का वश चलता है।

लोकमानस का आध्यात्मिक प्रशिक्षण :

रीति-नीति-३

(समापन किस्त)

बदला हुआ समाज

मित्रो! हमने सारे समाज को देखा है। आज हम गरीब नहीं हैं, संपन्न हैं, पैसे वाले हैं, लेकिन पुराने लोगों की तुलना में आज के लोगों में जो फरक दिखाई पड़ता है, वह एक ही है कि आदमी का चिंतन और आदमी का दृष्टिकोण बराबर घटिया होता हुआ चला जा रहा है। पहले एक घर में ३०-३०, ४०-४० आदमी मिल-जुलकर रह लेते थे, पता ही नहीं चलता था। हर आदमी अपना काम करता और मजे से रहता था। स्वार्थपरता, आपा-धापी, छीना-झपटी नाममात्र की भी नहीं थी। अरे साहब ! इतना बड़ा घर पड़ा है। भगवान सबका पालन कर रहा है। इस घर में हमारा भी गुजारा हो जाएगा। पच्चीस आदमी मरेंगे तो हम भी मर जाएंगे। पच्चीस आदमियों को रोटी नहीं मिलेगी तो हमको भी नहीं मिलेगी। परंतु अब हर आदमी यह सोचता है कि इस घर से मैं कितना चुरा सकता हूँ और अलग से कितना-क्या बना सकता हूँ?

यह दृष्टिकोण आने से क्या होता चला गया? मित्रो! इसके आने से हमारे घरों का सत्यानाश होता चला गया। हमारी संपत्ति बेकार हो गई, नाकारा हो गई। ज्यादा आमदनी से कुछ फायदा न हो सका। ज्यादा आमदनी हो गई तो बाप बेटों के लिए जमा करके रख गया। होना यह चाहिए था कि बाप की कमाई से सारा-का-सारा घर गुजारा करता और चैन से हर व्यक्ति आगे बढ़ता। परंतु जैसे ही बाप के मरने के दिन आए, आपस में मुकदमेबाजियाँ शुरू हो गई। मार-काट शुरू हो गई। फौजदारी शुरू हो गई। खून-खराबियाँ शुरू हो गई। कत्ल शुरू हो गए। संपत्ति थी, तो खुशहाली बढ़नी चाहिए थी, लेकिन खुशहाली नहीं बढ़ सकी, उलटे विनाश खड़ा हो गया। क्यों? क्योंकि दृष्टिकोण घटिया हो गया। *

दृष्टिकोण घटिया हो जाने से मित्रो! हमारे सारे समाज का सर्वनाश होता चला गया और यह दौलत हमारे किसी काम नहीं आ रही है। यह दौलत हमारे लिए विनाश खड़ा

करेगी। क्यों? क्योंकि दृष्टिकोण का स्तर गिरा और सामान का स्तर बढ़ा तो कितनी बड़ी असमानता आ गई। सामान का स्तर बढ़ना चाहिए था तो दृष्टिकोण भी ऊँचा होना चाहिए था। तब जो साधन-संपत्ति हमारे पास है, उसका फायदा समाज ने उठाया होता। विद्या हमारी बढ़ी तो विद्या के साथ-साथ हमारा हृदय भी बढ़ा होता, दिमाग की चौड़ाई बढ़ी होती। अगर ये दोनों साथ-साथ बढ़े और बढ़े होते तो फिर चाहे हम कम पढ़े-लिखे होते अथवा ज्यादा पढ़े-लिखे होते, फिर हमारे ज्ञान का फायदा सारे समाज ने उठाया होता।

बढ़ना चाहिए सहृदयता का क्षेत्र

मित्रो! महर्षि चरक के श्रम ज्ञान का लाभ हम और आप अभी तक उठा रहे हैं। हजारों वर्ष हो गए, चरक अपनी पुस्तक 'चरक संहिता' जैसा महान आयुर्वेदिक ग्रंथ लिखकर रख गए हैं। चरक ने अपने उस ज्ञान का लाभ स्वयं तो उठाया ही, संसार भर के बीमारों ने उसका लाभ उठाया, पीछे वाले लोगों ने, हकीमों ने उसका लाभ उठाया। चरक की लिखी हुई किताब को पढ़ कर सैकड़ों आदमी अपना पेट पाल रहे हैं, गुजारा कर रहे हैं, दवा-दारू कर रहे हैं। हजारों आदमियों का इलाज कर रहे हैं।

बेटे! ज्ञान और अक्ल के साथ-साथ यदि आदमी का कलेजा बढ़ जाए तब? हृदय बढ़ जाए तब? दृष्टिकोण बढ़ जाए तब? तब फिर मजा आ जाए और अगर हमारा कलेजा-हृदय छोटा होता हुआ चला जाए, तब फिर हमारा दिमाग सफाया करेगा और हममें से हर आदमी ठग बनने की कोशिश करेगा। धूर्त और बेईमान बनने की कोशिश करेगा। जालसाज बनने की कोशिश करेगा और ऐसी अक्ल से अपने पड़ोसी की गरदन काटने की तैयारी करेगा। आज जो अक्ल मनुष्य को मिली हुई है, उससे वह ऐसे-ऐसे जाल रचेगा, जिसमें वह स्वयं ही उलझकर मरेगा और जो भी उसके संपर्क में आएगा, उसको भी मार डालेगा। आज की अक्ल ऐसी ही है।

मित्रो! पिछले दिनों जिन लोगों के पास अक्ल थी, वह बड़ी जबरदस्त थी। एक सज्जन थे, जिन्होंने पाकिस्तान की हिमायत की और पाकिस्तान बनाया। मुंबई के मलाबार हिल पर उनकी जो कोठी थी, उस पर उनके जूनियर लोग काम करते थे। कितने लोग काम करते थे? यही कोई ४२-४३ एडवोकेट, सोलीसिटर काम करते थे। वे उनके अंडर में केस तैयार करते थे। वे एक बहुत बड़े वकील थे, बहुत बड़े बैरिस्टर थे, लेकिन अक्ल ने क्या काम किया? अक्ल ने यह काम किया कि हिंदुस्तान का बँटवारा हो गया। अगर उनकी अक्ल ने यह काम किया होता कि हिंदू और मुसलमान मिलकर रहें, मुहब्बत से रहें, प्यार से रहें तो मैं समझता हूँ कि हमारा देश—यह साठ करोड़ का हिंदुस्तान और उसके तिहाई के करीब पाकिस्तान, दोनों को मिला कर एशिया का सबसे बड़ा देश होता। एशिया में चाइना से बड़ा, दुनिया का सबसे बड़ा देश होता और हमारी संयुक्तशक्ति ने क्या किया होता? लेकिन हम आपस में कट मरे, खून-खराबा हुआ। इधर के लोग उधर भाग गए और उधर के लोग इधर भाग आए। अभी भी उसका फल भुगत रहे हैं। अक्ल ने क्या किया? अक्ल की बड़ी महत्ता है।

लानत है ऐसी अक्ल पर

लेकिन मित्रो! ऐसी अक्ल के ऊपर लानत है। ऐसे एम० ए० होने के ऊपर, बी० ए० होने के ऊपर धिक्कार है। अगर यह अक्ल मनुष्य के हृदय को विकसित न कर सकती हो, हृदय को विकसित करने में इसने सहायता न की हो तो मैं अक्ल से ज्यादा खराब, अक्ल से ज्यादा खौफनाक कोई चीज नहीं समझता। अगर दृष्टिकोण का परिष्कार न हो और केवल शिक्षा का एवं दिमाग का विकास हो तो मेरी बात चले तो—मैं यह नहीं जानता कि मेरी बात चलेगी कि नहीं चलेगी, किंतु अगर मेरी बात चले और कोई माने तो मैं सब स्कूलों को बंद करा दूँ और ये कहूँ कि बिना पढ़े आदमी अच्छे होते हैं। बिना पढ़े आदमी किसान हो सकते हैं, मजदूर हो सकते हैं, शरीफ हो सकते हैं और अगर किसी का नुकसान करेंगे तो थोड़ा-सा करेंगे। गाली-गलौज करेंगे, किसी का सिर फोड़ देंगे, लेकिन जिसके पास अक्ल है और हृदय नहीं है, ईमान नहीं है, वह आदमी तो दुनिया का सफाया करके रहेगा। उसका सत्यानाश और सर्वनाश करके रहेगा। जितनी पैनी अक्ल होगी, उतने ही तीखे विनाश के साधन होंगे। इसीलिए मैं अक्ल को न उठाने की बात कहूँगा, जब तक कि हृदय को ऊँचा न उठाया जा सके, समझदारी को ऊँचा न उठाया जा सके।

हृदय न बदले तो पैसा भी न बढ़े

मित्रो! मैं पैसे की वृद्धि करने के संबंध में भी इसी तरह का रुख अख्तियार करूँगा। भले ही लोग यह कहें कि इनके विचार दकियानूसी हैं और ये प्रतिगामी हैं। मैं पैसे के बारे में भी यही कहता हूँ कि लोगों के पास पैसा नहीं बढ़ना चाहिए। यदि उनके हृदय न बढ़ते हों, दृष्टिकोण न बढ़ता हो तो ब्रिटिश संसद में वेतन बढ़ाने की माँग को लेकर फिलॉस्फरों की राय जानने के लिए पार्लियामेंट में कुछ विशेषज्ञों को बुलाया गया। उनमें से एक फिलॉस्फर थे—जॉन स्टुअर्ट मिल। उस जमाने के वे माने हुए फिलॉस्फर थे। जॉन स्टुअर्ट मिल आए। उनसे छूटते ही यह कहा—“मजदूरों का वेतन न बढ़ाया जाए। वेतन बढ़ाने के मैं सख्त खिलाफ हूँ। उन्होंने अपनी गवाही में कहा कि जो वेतन बढ़ाया जा रहा है, उसकी तुलना में उनके लिए स्कूलों का प्रबंध किया जाए। उनके पढ़ने-लिखने का प्रबंध किया जाए, उनकी दवा-दारू का इंतजाम किया जाए, उनके शिक्षण का प्रबंध किया जाए और जब वे सभ्य एवं सुसंस्कृत होने लगें, तब उनके पैसे की वृद्धि की जाए, अन्यथा पैसे की वृद्धि करने से मुसीबत आ जाएगी। ये मजदूर तबाह हो जाएँगे।” बात खत्म हो गई। सभी ने एक मत से मजदूरों का वेतन ड्यौड़ा बढ़ा दिया।

तीन साल बाद जब इन्क्वायरी हुई कि ड्यौड़ा वेतन जो बढ़ाया गया था, उसका क्या फायदा हुआ? यह पता लगाया गया कि उसका लाभ मजदूरों को क्या मिला? मालूम पड़ा कि मजदूरों की बस्तियों में जो शिकायतें पहले थीं, वे पहले से दोगुनी हो गईं। खून-खराबा पहले से दोगुना हो गया। शराबखाने पहले की अपेक्षा दूने हो गए। वेश्यालयों की संख्या दोगुनी-चौगुनी हो गई। सुजाक, गरमी आदि गुप्त रोग पहले जितने मजदूरों को होते थे, उससे दूने-चौगुने हो गए। यह देखकर लोगों ने कहा कि जॉन स्टुअर्ट मिल की गवाही सही थी कि वेतन नहीं बढ़ाना चाहिए।

मित्रो! पैसा जरूर बढ़ाना चाहिए, लेकिन पैसा बढ़ने के साथ-साथ लोगों का ईमान, लोगों का दृष्टिकोण, लोगों का चिंतन भी बढ़ना चाहिए। आखिर जो पैसा हमें मिलेगा, उसका हम करेंगे क्या? अगर ‘करेंगे क्या’ की बात न हो तो इससे अय्याशी बढ़ सकती है। इससे फैशनपरस्ती की वृद्धि हो सकती है। इससे सिनेमाखोरी की वृद्धि हो सकती है। इससे नशेबाजी की वृद्धि हो सकती है। इससे दुनिया में तबाही आ सकती है और गरीबी से भी ज्यादा अमीरी महँगी पड़ सकती है, जैसे कि आजकल पड़ रही है।

यही बात धर्म क्षेत्र पर भी लागू होगी

मित्रो! दृष्टिकोण के विकास की आवश्यकता नहीं समझी गई तो हमारा धार्मिक क्षेत्र भी नाकारा होता हुआ चला जाएगा। इसमें भी ढोंग और विडंबनाएँ जड़ जमाती चली जाएँगी, निहित स्वार्थ अपना फायदा उठाएँगे और बेचारे भावुक लोग बेमौत मारे जाएँगे। फिर हमारा धार्मिक क्षेत्र धूर्तों और मूर्खों की ऐसी जोड़ी बनेगा कि 'राम मिलाई, जोड़ी एक अंधा-एक कोढ़ी' की उक्ति ही चरितार्थ होगी। कोढ़ी कौन? ये धूर्त, जिनको हम पंडा-पुरोहित कहते हैं, बाबा जी, साधु कहते हैं और महंत कहते हैं। ये कौन? धूर्त और बेईमान हैं। और वे बेचारे भावुक, जो बेमौत मारे जाते हैं? जो अपना पैसा खराब करते हैं? समय खराब करते हैं? अक्ल खराब करते हैं? उनका नाम है—मूर्ख, जो कर्मकांडों को ही सब कुछ समझते हैं। साहब! फलाने स्वामी जी भंडारा कर रहे हैं। अच्छा, पहले यह बता कि भंडारे में क्या होगा? नहीं साहब! भंडारे में बाबा जी आएँगे और गाँजा पिएँगे। उखाड़ बाल इन बाबा जी के। ये कौन हैं? धूर्त हैं, जो जनता को मूर्ख बनाते हैं।

मित्रो! क्या होता रहता है कि जनता का धन अनावश्यक कार्यों में खर्च होता हुआ चला जाता है। हम लोग समझते हैं कि इससे हमारा अमुक फायदा हो जाएगा। इससे हमें यह पुण्य मिल जाएगा। इससे हमारे देवी-देवता प्रसन्न हो जाएँगे। धर्मभीरु बेचारी जनता बेकार में मारी जाती है। हमारा धर्मक्षेत्र अगर ढोंग और विडंबनायुक्त बना रहेगा तो नुकसानदेह बना रहेगा। इससे हानियाँ होंगी, धन की बरबादी होगी और निहित-स्वार्थ अपना थोड़ा-सा फायदा करने के लिए जनता से ढेरों धन कमाएँगे। अगर उनको दो हजार रुपये चुसने हैं तो जनता के बीस हजार रुपये भंडारे में खर्च कराएँगे, ताकि बीस हजार रुपये में से दो हजार रुपए हमको चुराने को मिल जाएँ। अठारह हजार रुपए तो तुमने खराब करा दिए। इससे तो यह अच्छा था कि तुम दो हजार रुपये की भीख माँग लाते और अपनी जेब में जमा कर लेते। नहीं साहब! ऐसे तो कोई नहीं दे सकता था। इसलिए हमने बीस हजार रुपये का ढोंग रचाकर खर्च कराया और तब हमें दो हजार रुपये मिले।

हमारा मिशन जनमानस के परिष्कार हेतु

मित्रो! कर्मकांडों का, क्रिया-कृत्यों का मैं प्रचार-प्रसार करता हूँ। आप सबको, दुनिया को कर्मकांड सिखाता हूँ, पर आप एक बात मत भूलना। अगर आपने यह बात भुला दी तो हम अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारेंगे और हम जिस मिशन के लिए काम करते हैं, उसी को काटकर फेंक देंगे।

हम इस मिशन के लिए काम करते हैं, ताकि जनमानस का परिष्कार हो। शाहजहाँ के ताजमहल की तुलना में आज यदि मुझसे पूछा जाए कि ज्यादा दिलेर कौन-सा था और जनता की श्रद्धा किसके ऊपर टपकती है? तो मैं समझता हूँ कि शाहजहाँ की तुलना में हजारी किसान था, जिसके ऊपर हमारी आँखों में से आँसू और श्रद्धा के भाव जो टपकते हैं, वे बहुत हैं। क्यों साहब! हजारी किसान पढ़ा-लिखा नहीं था? हाँ बेटे! पढ़ा-लिखा नहीं था। अमीर था? नहीं था। विद्वान था? नहीं, विद्वान भी नहीं था। ज्ञानी था? भक्त था? नहीं था। फिर क्या था? उसका कलेजा चौड़ा था। जिन आदमियों का कलेजा चौड़ा होता है, उनके चिंतन का तरीका, सोचने का ढंग मक्खी-मच्छरों जैसा नहीं होता, वरन् दिलेर लोगों जैसा होता है, ऊँचे लोगों जैसा होता है, हमारे जैसा होता है।

मित्रो! अगर हमारे दृष्टिकोण ऊँचे हों तो हर जिंदगी में मजा आ सकता है। अगर हमारे कलेजे छोटे हों तब? बेटे! तब हमारे पास पैसा-दौलत हो जाए तो क्या? ज्ञान हो जाए तो क्या? भक्ति हो जाए तो क्या? विद्या हो जाए तो क्या? उससे कोई खास फायदा नहीं हो सकता है। इसलिए मैं आपसे एक निवेदन कर रहा था कि हमको बड़ीं फैक्ट्रियाँ नहीं बनानी हैं। हमको बड़े इन्सान बनाने हैं। बड़े इन्सान बनाने के लिए क्या करना पड़ता है? अगर पेड़ को बड़ा एवं ऊँचा बनाना हो तो क्या करना पड़ेगा? इसके लिए सिर्फ एक काम करना पड़ेगा कि उसकी जड़ों के लिए गुंजाइश छोड़नी पड़ेगी। जड़ें जितनी गहरी होंगी, पेड़ उसी हिसाब से बढ़ता चला जाएगा। क्यों साहब! बरगद का पेड़ क्यों बड़ा हो जाता है? क्योंकि बेटे! उसकी जड़ें इतनी पैनी हो जाती हैं कि दूर-दूर तक फैलती चली जाती हैं। बरगद की जटाएँ निकलती हैं, उनकी ये विशेषता होती है कि वे नीचे की ओर आती हुई जमीन में घुस जाती हैं और जमीन से खुराक लेने लगती हैं और पेड़ फैलता हुआ चला जाता है।

जड़ों को देखें

साथियो! बरगद का पेड़ इसी आधार पर फैलता है कि उसकी जड़ें गहरी होती हैं। गहरी जड़ें, नीची जड़ें, अगर हमारी हों, तब? बेटे! हमारी बाहर की जिंदगी फैलती हुई चली जाएगी। जड़ों से क्या मतलब है? जड़ों से मेरा मतलब है बेटे! ईमान। आदमी का व्यक्तित्व वह नहीं है, जो बाहर दिखाई पड़ता है। किसी का चेहरा अच्छा और खूबसूरत है। किसी आदमी में ताकत बहुत है। किसी में अक्ल-समझदारी बहुत है। बेटे! इन सबको मैं नहीं मानता। आदमी

का व्यक्तित्व वह है, जो उसकी निष्ठाओं पर टिका हुआ है, आस्थाओं पर टिका हुआ है। अगर वह व्यक्तित्व गहरा है तो आदमी को महापुरुष कहा जा सकता है, ज्ञानी कहा जा सकता है और न जाने क्या-क्या कहा जा सकता है।

मामूली आदमी असाधारण काम

मित्रो! आदमी की जिंदगी अगर बदल जाए, दृष्टिकोण बदल जाए तो मामूली आदमी, जिसमें हम और आप भी शामिल हैं, ऐसे-ऐसे काम कर सकते हैं, जो दुनिया के इतिहास में अजर-अमर रह सकें। कुछ लोगों के नाम मैं अक्सर गिनाया करता हूँ। उनमें राजस्थान के एक प्राइमरी स्कूल के अध्यापक का नाम न जाने क्यों मेरी ज़बान पर अक्सर आ जाता है, जिसे मैं भूल नहीं सकता। उन्होंने यह निश्चय किया था कि पेट भरने के लिए नौकरी करने से क्या फायदा? पेट तो हम किसी भी तरीके से भर सकते हैं। जिन छोटे देहातों में शिक्षा का अभाव है, वहाँ हम एक कन्या पाठशाला चलाएँगे। उन्होंने निस्स्वार्थ भाव से बिना कोई वेतन लिए एक छोटे से देहात में शिक्षण-कार्य शुरू कर दिया था। उस प्राइमरी के अध्यापक हीरालाल शास्त्री ने सारी जिंदगी कन्याशिक्षा के लिए काम किया। उनका वह स्कूल जो फूस के छप्पर के नीचे था, बढ़ते-बढ़ते 'वनस्थली बालिका विद्यालय' के नाम से प्रख्यात हुआ। वहाँ मोटर चलाने से लेकर हवाई जहाज उड़ाना तक लड़कियाँ सीखती हैं। अब वह यूनिवर्सिटी बनने जा रहा है।

मित्रो! आदमी का ईमान कितना प्रभावशाली होता है, आदमी की अंतरात्मा कितनी शक्तिशाली होती है, आपने कभी अंदाज़ ही नहीं लगाया है। उस अध्यापक की अंतरात्मा में विशुद्ध रूप से एक ही दृष्टि थी कि हमको समाज की सेवा करनी है। न उसमें चालाकी की गुंजाइश थी, न बेईमानी की गुंजाइश थी, न चोरी की गुंजाइश थी, न बदनीयती की और न नाम-यश की गुंजाइश थी। बस, छोटा-सा काम करता चला गया। ऐसे निस्स्वार्थ काम, चाहे उसका नाम भजन हो, चाहे सेवा-कार्य, हमेशा फलते-फूलते रहे हैं। उस प्राइमरी के अध्यापक ने चरित्र के हिसाब से, अपने दृष्टिकोण के हिसाब से एक नई फिज़ाँ, एक नई दिशा और नया आदर्श, नया चिंतन लोगों के सामने रखा।

तो महाराज जी! हम भी स्कूल खोल सकते हैं? नहीं बेटे! तू नहीं खोल सकता। क्यों? तेरा कलेजा मक्खी-मच्छर जैसा है। चंदा आएगा तो पहले तू उससे अपना उल्लू सीधा करेगा। इसलिए जनता का धिक्कार, भगवान का धिक्कार, तेरी जीवात्मा का धिक्कार तेरे ऊपर बरसता चला जाएगा। उसका परिणाम यह होगा कि तेरे हर काम

की पोल खुलती चली जाएगी। तेरे हर काम में असहयोग होता हुआ चला जाएगा। नहीं महाराज जी! मैं तो बहुत चालाक हूँ और लोगों को उल्लू बना सकता हूँ। नहीं बेटे! भगवान को कोई उल्लू नहीं बना सकता। जनमानस को उल्लू बनाना किसी के लिए भी संभव नहीं है।

मित्रो! उस प्राइमरी स्कूल के अध्यापक के तरीके से ढेरों-के-ढेरों आदमी हैं, जिनने ऊँचा दिल रखा और उनको सफलताएँ मिलती चली गईं। मैं उनका यश और गुणगान करता हूँ। उन्हीं में से एक हूँ—नागपुर के एक मामूली से वकील, जिनका नाम बाबा साहब आमटे है। बस, एक दिन मन में आ गया कि कोढ़ियों की सेवा करनी चाहिए। वकालत करके झूठमूठ में लोगों को मुकदमेबाजी में फँसा देने, झूठ बोलना सिखाने की अपेक्षा क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम गरीबी में जिएँ, पेट भरने के लिए किसी तरीके से रोटी कमा लें और अपनी सारी जिंदगी दीन-दुःखियारों के लिए लगा दें। उन्होंने जो कोढ़ी सड़क किनारे बैठे थे, उनको लेकर एक निश्चय किया कि ये सभी स्वावलंबी बन सकते हैं। वे उन्हें लेकर एक छोटे से गाँव में चले गए और वहाँ बकरी पाल ली, मुरगी पाल ली, जिसे कोढ़ी भी चरा सकते थे। वे स्वयं भी चराने लगे। उनसे दूध, ऊन आदि जिन चीजों से आमदनी होती थी, उससे अपना गुजारा करने लगे। कोढ़ियों का इलाज भी स्वावलंबनपूर्वक होने लगा। उन्होंने कहा कि मनुष्य अगर कमजोर हो, अंधा हो, कोढ़ी हो, तो भी स्वावलंबी बनकर स्वाभिमानपूर्वक रह सकता है। वे कमजोर और उपेक्षित लोगों का शिक्षण करते चले गए।

मैं ईमान का शिक्षण करता हूँ

आदमी के ईमान से ज्यादा कशिश और प्रभावशाली ताकत दुनिया में और कोई नहीं है। दुनिया में मनुष्य के उच्च दृष्टिकोण के अतिरिक्त और किसी में भी इतनी ताकत नहीं है। भजन में भी नहीं है। नहीं साहब! भजन में बड़ी ताकत है। बेटे! तुझसे हम कह रहे हैं कि भजन में कोई ताकत नहीं है। अगर कोई ताकत रही होती तो ये भजन करने वाले सवेरे से शाम तक क्यों बैठे रहते हैं और भीख माँगते रहते हैं? अगर ऐसा है तो फिर क्यों दरवाजे-दरवाजे पर भीख माँगते हैं? क्यों दुनिया भर की चालाकी करते हैं? नहीं साहब! भजन में बड़ी ताकत है। कोई ताकत नहीं है। फिर किसमें ताकत है? मित्रो! भजन में अगर ताकत है तो वह आदमी के ईमान से मिली हुई ताकत है। भजन से बड़ा ईमान है। भजन बड़ा नहीं, छोटा है ईमान से। ईमान बड़ा है।

साथियो! मैं आपसे यह कह रहा था कि आदमी की जड़ें नीचे रहती हैं, जिनको हम सिद्धांत कहते हैं, आदर्श

कहते हैं, आस्थाएँ कहते हैं, मान्यताएँ कहते हैं। वे अगर हमारे पास हों तो मजा आ जाए। हम आपसे बराबर निवेदन करते आ रहे हैं कि आप स्वयं अपने जीवन में दृष्टिकोण का परिष्कार करें। हमने आपके कर्मकांडों को कोई महत्त्व नहीं दिया है। उस दिन हम आपको शिक्षण दे रहे थे कि हमने आपको स्नान क्यों कराया? पीला कपड़ा क्यों पहनाया? क्यों महाराज जी! अगर हम पीला कपड़ा पहन लें तो क्या वैकुण्ठ को चले जाएँगे? नहीं बेटे! कहीं नहीं जाएगा, चाहे पीला कपड़ा पहन ले, चाहे हरा पहन ले। इससे क्या बनता है? हम तो यह याद दिलाना चाहते थे कि हमारा दृष्टिकोण परिष्कृत होना चाहिए। आपको उस दिन व्याख्या करते हुए हम यह कह रहे थे कि आपके हाथ में दंड और कौपीन इसलिए दिया गया है कि आप मुस्तैदी सीखें। कमर में रस्सी इसलिए बँधवाई गई थी कि आपका ढीला-पोला जीवन, वाहियात जीवन है, जिसमें न कोई नियमितता है, न कोई व्यवस्था है, न कोई निरंतरता है, न कोई कर्तव्य है, न कोई जिम्मेदारी है। आप फौजी सिपाही के तरीके से कमर की पेटी बाँध कर खड़े हो जाइए, जिससे मालूम पड़े कि ये सैनिक हैं।

कौपीनधारी की जिम्मेदारी अनुभव करें

मित्रो! आप धर्म के सैनिक हैं, अध्यात्म के सैनिक हैं, इसीलिए आपको कौपीन बँधवाई थी, पेटी बँधवाई थी। आप कौपीनधारी होने के कारण से जिम्मेदारी का अनुभव कीजिए। जब कभी किसी फौजी या पुलिस वाले का कोर्टमार्शल किया जाता है तो उसकी पेटी जमा करा ली जाती है। क्यों साहब! पेटी पहने रहें तो? नहीं, पेटी नहीं पहन सकते। पेटी इज्जत है। तो महाराज जी! आपने लँगोटी क्यों दी, पैंट क्यों नहीं दिया, जिससे ठंडक भी दूर हो जाती। अरे अभागो! तू बाहर की व्याख्या करता है। हम क्या कह रहे हैं, उसे समझता नहीं है। अरे! हमने तो तुझे एक दृष्टि दी थी, दृष्टिकोण दिया था।

एक सेठ जी थे। एक रात स्वप्न में लक्ष्मी जी आई और कहने लगीं कि अब तो हम आपके यहाँ से चले जाएँगे और गरीबी आपके घर में रहेगी। अब इसमें कोई सुधार नहीं हो सकता, क्योंकि आपका पुण्य खतम हो गया। लेकिन आपने हमारी बीस साल से बहुत सेवा की है, इसलिए एक वरदान माँग लीजिए, परंतु यह वरदान मत माँगना कि हम आपके यहाँ रह जाएँ। सेठ ने लक्ष्मी जी से कहा कि आप एक वरदान दे जाइए कि हम घर में जितने भी आदमी हैं, प्यार से रहें, मोहब्बत से रहें, मिल-जुलकर

रहें। सेवा और सहायता की दृष्टि से रहें। बस, इतना वरदान दे जाइए और चली जाइए।

लक्ष्मी जी वरदान देकर चली गईं। उस गरीबी में भी वे बड़े प्यार से रहने लगे, मिल-बाँटकर खाने लगे। कपड़े कम पड़ गए तो एक ने दूसरे के उतरे पहन लिए। एक बीमार पड़ गया तो दूसरे आदमी सेवा करने लगे। गरीबी में भी इतना आनंद, इतनी खुशी, इतनी मस्ती बनी रही कि उनका जो संकट था, कंगाली थी, धीरे-धीरे दूर होने लगी। लक्ष्मी जी फिर सपने में आई और कहा कि हम तो फिर से आपके यहाँ आ गए। सेठ ने कहा—एक साल पहले तो आप कह रही थीं कि तुम्हारा पुण्य खतम हो गया। अब आप कैसे आ गईं? लक्ष्मी जी ने कहा कि जहाँ कहीं भी प्यार रहता है, सहकार रहता है, सेवावृत्ति रहती है, उदारता रहती है, हमको वहाँ झक मार कर आना पड़ता है। हम वहाँ से जा नहीं सकते। हमने देखा कि आपके यहाँ तो प्रेमभाव है, सहकारिता है, उदारता है, सेवा है, फिर हम कैसे आपको छोड़ेंगी? बस, लक्ष्मी जी आ गई और गरीबी चली गई।

दृष्टिकोण का परिष्कार : प्रशिक्षण का मर्म

मित्रो! हमारा अध्यात्म तीन धाराओं में बँटा हुआ था। व्यावहारिक अध्यात्म और उसके पीछे दृष्टि एक होती थी—उदार दृष्टि, उदात्त दृष्टि और सेवा की दृष्टि। हमारी यह दृष्टि विकसित हो तो जो कर्मकांड हम आपको सिखाते हैं और जिन कर्मकांडों का हम विस्तार करना चाहते हैं? आप यह कसौटी तैयार रखना कि हमने जो कर्मकांड कराए थे, वे केवल क्रिया मात्र रह गए। आप यह ध्यान रखना कि वानप्रस्थ शिविर में आकर हमने जो ध्यान करना, कर्मकांड करना, हवन करना सीखा, तो क्या दृष्टिकोण का परिष्कार करना भी सीखा या नहीं सीखा? अगर आपने दृष्टिकोण का परिष्कार किया हो तो आपका वानप्रस्थ ठीक और आपने इसी दृष्टि से जनमानस का परिष्कार करने के लिए क्रिया-कृत्यों को, व्याख्यान की शैली को कथावार्ता को, या अन्य ज्ञान को सीखा हो तो आपका सीखना सार्थक। मित्रो! क्रिया के पीछे दृष्टि और कलेवर के पीछे प्राण होता है, यह मत भूलना। अगर आप ये बातें भूलेंगे नहीं तो हमारे वो ख्वाब और इस मिशन के वो सपने पूरे हो कर रहेंगे, जिसके लिए हमने यह मिशन स्थापित किया है और जिसके लिए हम आपका शिक्षण करते हुए, इतना बड़ा संगठन बनाते हुए, क्रिया-कृत्यों को गति देते हुए चले जा रहे हैं।

आज की बात समाप्त। // ॐ शान्ति //

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी

आत्मदेव की साधना-आराधना—१

(३० जनवरी, १९७७ को शांतिकुंज परिसर में दिया गया प्रवचन)

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

कस्मै देवाय हविषा विधेम

देवियो, भाइयो, ! ऋषि के मन में एक सवाल उत्पन्न हुआ कस्मै देवाय हविषा विधेम। हम किस देवता की प्रार्थना करें और किस देवता के लिए हवन करें, यजन करें, प्रार्थना करें। कौन-सा देव है, जो हमारी आवश्यकताओं को पूरा कर सके। हमको शांति प्रदान कर सके, हमें ऊँचा उठाने में मदद दे सके। किस देवता को प्रणाम करें। मित्रो ! बहुत से देवताओं का पूजन करते-करते हम बाज आ गए। हमने शंकर जी की पूजा की, हनुमान जी की पूजा की, गणेश जी की पूजा की और न जाने क्या-क्या चाहा ? लेकिन कोई कामना पूरी न हो सकी। हम एक को छोड़कर के दूसरे पर गए। दूसरे को छोड़कर के तीसरे पर गए। क्या कोई ऐसा देव होना संभव भी है, जो हमारी मनोकामना को पूर्ण करने में समर्थ हो सके ? जो हमको प्रत्यक्ष फल निश्चित रूप से देने में समर्थ हो सके—निश्चित फल, प्रत्यक्ष फल, तत्काल फल। क्या कोई ऐसा भी देवता है, जिसके बारे में यह कहा जा सके कि इनकी पूजा निरर्थक नहीं जा सकती ? **कस्मै देवाय हविषा विधेम।** ऐसा देव कौन है ?

मित्रो ! एक देव मेरी समझ में आ गया। यह देवता ऐसा है कि अगर आप इसकी पूजा कर सकते हों, इसका यजन कर सकते हों, हवन कर सकते हों तो यह देवता आपके जीवन में समुचित परिणाम देने में समर्थ है। कौन-सा है, वह देव ? उस देवता का नाम है— 'आत्मदेव।' अपने आप की पूजा अगर हम कर पाएँ, अपने आपको हम अगर सँभाल पाएँ, सुधार पाएँ। अपने आपको अगर हम सभ्य और सुसंस्कृत बना पाएँ तो मित्रो ! हमारी प्रत्येक आवश्यकता, प्रत्येक कामना को पूरी करने में समर्थ है, हमारी भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के द्वार खोलने में समर्थ है, हमारा यह—आत्मदेव।

आत्मदेव की पूजा, आत्मदेव का भजन, आत्मदेव का यजन, आत्मदेव का हवन—इसी का नाम है साधना। साधना किस की ? गणेश जी की। नहीं बेटे ! गणेश जी को तो तरीका मालूम है कि उनको क्या करना और कैसे रहना चाहिए ? उनके पास तो सब इंतजाम हैं। दो-दो बीबियाँ हैं—ऋद्धि-सिद्धि। एक खाना पका देती है, एक कपड़े साफ कर देती है। आपको कोई जरूरत नहीं है गणेश जी की साधना करने की।

आत्मदेवरूपी कल्पवृक्ष की साधना

मित्रो ! साधना अपने आपकी कीजिए। हमारा जीवन कल्पवृक्ष है। अगर इस कल्पवृक्ष की साधना हम कर पाएँ तो ये हमारी सारी-की-सारी मनोकामना पूर्ण करने में समर्थ है। मैंने सुना है कि एक कल्पवृक्ष होता है। कहाँ होता है ? स्वर्गलोक में होता है। इसकी क्या विशेषता होती है ? इसकी विशेषता मैंने यह सुनी है कि जो कोई उस पेड़ के नीचे जा बैठता है, उसकी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। जो कुछ चाहता है, तुरंत सब मिल जाता है। क्या ऐसा कोई कल्पवृक्ष होना संभव है ? हाँ, एक कल्पवृक्ष है और वह है—हमारा जीवन। हम अपने जीवन की महिमा को, गरिमा को समझ पाएँ। जीवन के महत्त्व और मूल्य को समझ पाएँ, उसका ठीक तरीके से उपयोग करने में समर्थ हो पाएँ तो हमारे जीवन में मजा आ जाए तो फिर क्या हो सकता है ? फिर, हम मनुष्य से आगे बढ़कर देव बन सकते हैं। देव ? हाँ बेटे ! देव। देवता तो वहाँ स्वर्ग में रहते हैं। नहीं बेटे ! देवता स्वर्ग में नहीं रहते।

मित्रो ! देवता एक प्रकृति का नाम है और राक्षस भी एक प्रकृति का नाम है। आकृति नहीं प्रकृति। राक्षसों की शक्ति कैसी होती है ? काली होती है। क्यों साहब दक्षिण भारत के लोग तो काले होते हैं, फिर ये सब राक्षस हैं ? नहीं बेटे ! ये राक्षस नहीं हो सकते। राक्षस कैसे होते हैं ? जिनके दाँत बड़े-बड़े होते हैं। हमारे पिताजी के दाँत बड़े-बड़े हैं तो क्या वे राक्षस हैं ? नहीं बेटे ! वे राक्षस नहीं हो सकते तो फिर बड़े दाँत वालों को और

काले चेहरे वालों को आपने कैसे राक्षस बता दिया? राक्षस सींग वाले होते हैं। सींग तो साहब गाय के होते हैं, तो गाय हो गई—राक्षस? अरे महाराज जी! आप क्या उलटी-पुलटी बात कह रहे हैं। हाँ बेटे! मैं उलटी बात कहकर यह समझा रहा हूँ कि यह जो आलंकारिक वर्णन किया गया है, यह प्रकृति का वर्णन है—आकृति का नहीं। जिनके चेहरे दुष्कर्मों और दुर्बुद्धि की वजह से कलंक लगे, काले-कलूटे हो गए हैं, वे आदमी राक्षस हैं।

आकृति नहीं, प्रकृति देखिए

जिनके दाँत बड़े हैं अर्थात् जो पेटू हैं। जो किसी भी कीमत पर सबका खाना चाहते हैं, जमा करना चाहते हैं। उनके बड़े-बड़े दाँत सियार जैसे, सिंह जैसे, कौए जैसे और कुत्ते जैसे हैं। जो हर किसी का खून पी जाएँ, इन आदमियों का नाम राक्षस है। राक्षसों के सींग बड़े होते हैं। मनुष्यों के तो मैंने सींग नहीं देखे हैं। नहीं साहब! मनुष्यों के भी होते हैं। हाँ बेटे! होते तो हैं। बिना कारण से इसको भी चोट मार दी, उसको भी चोट पहुँचा दी। इसको भी नुकसान पहुँचा दिया, उसको भी नुकसान पहुँचा दिया, ऐसे आदमी राक्षस होते हैं। तो महाराज जी! राक्षस की कोई आकृति नहीं होती? नहीं बेटे! आकृति कोई नहीं है, प्रकृति होती है। राक्षस वैसे ही होने संभव हैं, जैसे आप और हम।

देवता स्वर्ग में रहते हैं। हाँ बेटे! रहते होंगे, मैं कह नहीं सकता। देवता कोई मनुष्य बन सकता है? हाँ, देवता कोई आकृति नहीं है, देवता भी एक प्रकृति है। हम और आप जैसे मनुष्यों के बीच में बहुत से देवता भी हो सकते हैं। देवता कैसे होते हैं? देवता बेटे! गोरे रंग के होते हैं। साहब! यूरोप में सब गोरे रंग के रहते हैं, पंजाब में और सीमाप्रांत में भी सब गोरे रंग के रहते हैं तो क्या ये सब देवता हैं? नहीं बेटे! गोरी शकल से मेरा मतलब नहीं है। मेरा मतलब यह है कि जिनके विचार, जिनका व्यवहार, जिनके आचरण, जिनका दृष्टिकोण स्वच्छ है, गोरा है, शुद्ध है, निर्मल है, उज्ज्वल है— उनका नाम देव है।

क्यों साहब! देवता कभी तो बुढ़े होते होंगे? नहीं बेटे! देवता कभी बुढ़े नहीं होते। हमेशा जवान रहते हैं तो साहब जब प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु होती है तो देवताओं की भी मृत्यु होती होगी। हाँ बेटे! मृत्यु तो जरूर होती होगी, लेकिन बुढ़े नहीं होते। बुढ़ा किसे

कहते हैं? बुढ़ा उसे कहते हैं, जो आदमी थक गया हो, हार गया, निराश हो गया, टूट गया, जिसने परिस्थितियों के सामने सिर झुका दिया। जिसने यह कह दिया कि परिस्थिति बड़ी है और उससे लड़ने से इनकार कर दिया, वह आदमी बुढ़ा। जिस आदमी की जवानी टिटहरी के तरीके से बनी रहती है। कैसे? समुद्र बड़ा था, वह टिटहरी के अंडे बहा ले गया। टिटहरी ने कहा— समुद्र आप बड़े हैं तो ठीक है, लेकिन हम तो आपसे लड़ेंगे और लड़ते-लड़ते मर भी जाएँगे तो कोई हर्ज की बात नहीं है। मर ही तो जाएँगे, पर आपसे लड़ेंगे। जिनमें ये हिम्मत है, जुरत है, वे आदमी कौन हैं? वे आदमी देवता हैं।

मित्रो! देवता कभी बुढ़े नहीं होते, हमेशा जवान रहते हैं। क्यों साहब! ८० वर्ष के हो जाएँ तो भी जवान? गांधी जी ८० वर्ष के हो गए थे और ये कहते थे कि मैं तो १२० वर्ष जिऊँगा। ४० वर्ष वे और जीना चाहते थे। विरोधियों ने उन्हें मार डाला, वे जी भी सकते थे। पंडित नेहरू लगभग ७५ वर्ष के करीब जा पहुँचे थे, लेकिन सीढ़ियों पर चढ़ते हमने उनको बुढ़ापे में भी देखा। वे इस तरीके से चढ़ते थे, जिस तरीके से कोई बच्चा चढ़ता है। जिनके भीतर उमंग है, आशा है, उत्साह है, जीवन और जीवट है, वे आदमी देवता हैं। देवता उन्हें कहते हैं, जो दिया करते हैं। जिनकी वृत्ति हमेशा यह रहती है कि हम देंगे। क्या चीज देंगे? देने को तो हमारे पास कुछ है ही नहीं। अच्छा तो आपका मतलब है कि आपके पास पैसा नहीं है, आपको पैसे चाहिए। पैसे को ही आप सबसे बड़ी चीज मानते हैं। पैसा चौथे नंबर की शक्ति है और इस जमाने में तो मैं कहता हूँ कि विनाशकारी शक्ति है। पैसा भी कोई शक्ति होती है। पैसा कोई शक्ति नहीं होती। आदमी की शक्तियों में मूलभूत शक्ति वह है, जो आपके पास पूरी मात्रा में विद्यमान है और वह है—श्रम। पैसा उसी से आता है। उसे आप देना चाहें तो दानी बन सकते हैं।

श्रम का दान हजारी किसान

मित्रो! श्रम हमारे पास है। मैंने कितनी बार हजारी किसान का किस्सा कहा है। जो बेचारा पढ़ा-लिखा भी नहीं था, मालदार भी नहीं था। केवल अपनी मशक्कत को लेकर खड़ा हो गया और बिहार के गाँव-गाँव में जाकर आम के बगीचे लगाता फिरा। हजार गाँवों में आम

के हजार बर्गोचे अपनी जिंदगी में लगा दिए। हजारी किसान की वजह से जिले का नाम हजारीबाग पड़ा। चूँकि हजारी किसान ने हजार बाग लगाए थे, इसलिए भी हजारीबाग एक जिला है। क्यों साहब! आदमी के पास केवल परिश्रम हो तो। हाँ बेटे! तो भी काफी है। अन्य लोगों के पास, महापुरुषों के पास केवल परिश्रम था और क्या बताना? कुछ भी नहीं था, शरीर था उनके पास। पैसा था? पैसा भी नहीं था। मकान था? नहीं साहब! मकान भी नहीं था। कोई चीज नहीं थी, उनके पास, केवल श्रम था। श्रम के आधार पर भी हम समाज को बहुत कुछ देने में समर्थ हो सकते हैं।

मित्रो! हमारे पास देने के लिए बहुत सारी चीजें हैं। अक्ल हमारे पास इतनी जबरदस्त है कि हम चाहें तो अक्ल के माध्यम से व्यास के तरीके से, वसिष्ठ के तरीके से, कबीर के तरीके से, दादू के तरीके से, कितने अन्य लोगों के तरीके से इस दुनिया को ऐसी चीजें देकर जा सकते हैं, जिससे कि दुनिया हमारी अक्ल का लोहा मानती रहे। अक्ल हमारे पास है, श्रम हमारे पास है, समय हमारे पास है, बुद्धि हमारे पास है, भावना हमारे पास है, प्रतिभा हमारे पास है। हमारे पास इतने जखीरे भरे हुए पड़े हैं। इतने बड़े जखीरे को लेकर हम दुनिया में न जाने क्या-से-क्या कर सकते हैं। देने की वृत्ति अगर आपके पास हो और आपके पास धन नहीं है तो कोई हर्ज की बात नहीं है। फिर भी आप कुछ-न-कुछ देने में पूरी तरह से समर्थ हो सकते हैं। दुनिया की सेवा कर सकते हैं। देवता उन्हें कहते हैं, जिनमें देने की वृत्ति होती है, मैं चाहता हूँ कि आपको देवता बनाकर के जाऊँ। मैं चाहता हूँ कि यहाँ से जब आप विदा हों तो एक नए किस्म के आदमी बनकर देवता बन करके विदा हों।

आत्मदेवता ही जीवनदेवता

देवता बनने के लिए क्या करना पड़ेगा? साधना करनी पड़ेगी। साधना किसकी करनी पड़ेगी? बेटे! अपने जीवन की साधना करनी पड़ेगी। शंकर जी की कर लूँ साधना? नहीं बेटे! शंकर जी के पास तो भूत-पत्नीत, साँप, पार्वती जी, कार्तिकेय जी, गणेश जी और उनका शेर, बैल, उनका चूहा और मोर आदि बहुत सारे सेवा करने वाले तैयार हैं। तू सेवा साधना नहीं करेगा शंकर जी की तो कोई हर्ज नहीं है। तो किसकी सेवा करूँ? कस्मै देवाय हविषा विधेम। बेटे! अपनी सेवा

कर और किसकी सेवा करेगा? देवता की सेवा करूँगा। नहीं, देवता को तेरी सेवा की जरूरत नहीं है, उनके पास सब इंतजाम है। देवता अपना गुजारा कर लेते हैं तो गुरुजी! आपके पैर दबा दूँ। बेटे! हमको तो मरने की भी फुरसत नहीं है। गुरु जी पंखा झलेंगे। तब तो हमारा दिमाग और भी खराब करेगा, भाग... नहीं महाराज जी! आपकी सेवा करेंगे। क्या सेवा करेगा। आपके सिर में तेल लगाऊँगा। बेटे! जितने समय में सिर में तेल लगाएगा, उतने में तो हम बीस काम करेंगे, क्यों हमारा समय खराब करेगा? नहीं महाराज जी! विष्णु भगवान की सेवा करूँगा। बेटा! कोई जरूरत नहीं है, विष्णु भगवान को अपना काम करने दे और तू अपना काम कर।

मित्रो! जिस देवता की साधना मैं जीवन भर करता रहा हूँ, वह साधना मैं आपको भी सिखाना चाहता हूँ। मुझे एक संत का एक वाक्य याद आता है कि—“मुझे नरक में भेज दो, मैं वहीं अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा।” क्या ऐसा होना संभव है? हाँ, ऐसा संभव है। आदमी अपने श्रेष्ठ गुण, श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ आचरण लेकर के जहाँ कहीं भी रहेगा, वहाँ परिस्थितियाँ बदलती चली जाएँगी। यदि नरक में वह रहेगा तो स्वर्ग वहीं बनता चला जाएगा। युधिष्ठिर एक बार नरक भेज दिए गए थे। अपने अच्छे व्यवहार की वजह से उनसे सारे वातावरण को, परिस्थितियों को बदल दिया था और स्वर्ग बनाने में सफल हो गए थे। क्या ऐसा हो सकता है? हाँ बेटे! हो सकता है। जहाँ कहीं भी ऐसी श्रेष्ठ मनःस्थिति रहेगी, वहाँ की सारी परिस्थितियाँ, वातावरण को बदल सकती हैं और अपने लिए स्वर्ग बना सकती हैं। मैं चाहता हूँ कि आप स्वर्ग में रहें और नरक में से निकल जाएँ। आप नर-पशु के कलेवर में से निकल जाएँ, नर-कीटक के कलेवर में से निकल जाएँ और ऐसे कलेवर में रहें, जिसको देवता कहते हैं। आप देवता के तरीके से जिएँ।

देवों की विशेषताएँ

मित्रो! देवता की कुछ विशेषताएँ होती हैं और वे विशेषताएँ मैं चाहता हूँ कि आपके भीतर पैदा हो जाएँ। देवता की पाँच विशेषताएँ मैंने पढ़ी हैं। उन पाँच विशेषताओं की अगर आप जीवन में साधना शुरू करें तो आप देवता के स्तर पर प्रवेश कर सकते हैं और पाँचों वस्तुएँ पा सकते हैं। देवता के गुणों में, देवता के पास जो सिद्धि होती है, उनमें एक होती है—‘आप्तकाम’।

आप्तकाम किसे कहते हैं? आप्तकाम उसे कहते हैं, बेटे! जिसकी सब मनोकामनाएँ पूरी हो जाएँ। क्यों साहब! फिर हमारी भी मनोकामना पूरी हो जाएँगी? बेशक, आपकी मनोकामना पूरी हो जाएगी, अगर आप देवता बनने के लिए खड़े हो जाएँ तब। कैसे हो जाएँगी? आप्तकाम क्या होता है? कामना का स्तर बदल देता है। स्तर बदल देने की वजह से सारी-की-सारी समस्याओं का समाधान होना संभव है। दुनिया में से काँटे नहीं बीने जा सकते, पर हम जूते पहन सकते हैं। जूते पहनकर हम काँटों की कठिनाई से छुट्टी पा सकते हैं।

साहब! हमारी बड़ी-बड़ी कामनाएँ हैं। क्या कामना है आपकी? हमारी कामना है कि यह सारी दुनिया हरे रंग की हो जाए। और रेल, सड़क, खेत, आदमी सब रंगीन हो जाएँ। अच्छा तो बेटा! ला हमको ठेका दे दे, हम सारी दुनिया को हरे रंग की बना देंगे। सारी दुनिया को हरा बनाने के लिए कितना रुपया चाहिए? फिलहाल बेटे! तू मुझको सौ करोड़ रुपये दे दे, जिससे हम पेंट मँगा लें और सारी सड़कों और दीवारों की रंगाई करना शुरू कर दें। महाराज जी! सौ करोड़ तो मेरे पास नहीं हैं, फिर भी मैं आपको दे ही दूँ पेंट के लिए। फिर तो आप नहीं माँगेंगे? बेटे! फिर मैं सौ करोड़ लेबर के लिए माँगूँगा। तो महाराज जी! आप इसमें कितना समय लगाएँगे? बेटे! सौ करोड़ वर्ष में कर दूँगा। महाराज जी! फिर यह कैसे पूरा होगा। बेटे! तू सूरज को रँगवाना चाहता है, चंद्रमा को रँगवाना चाहता है, जमीन को रँगवाना चाहता है, आसमान को रँगवाना चाहता है, पेड़ों को रँगवाना चाहता है, समुद्र को रँगवाना चाहता है। फिर कैसे ये कम समय में रँग जाएगा। समय तो लगेगा ना? हाँ महाराज जी! टाइम तो लगेगा। अच्छा तो सौ करोड़ पेंट के लिए और सौ करोड़ लेबर के लिए जमा कर। तो महाराज जी! हो जाएगा? बेटे! मैं कह नहीं सकता कोशिश करूँगा तेरे लिए।

महाराज जी! तो फिर हमारी मनोकामना पूरी नहीं हो सकती क्या? बेटे! तेरी मनोकामना कभी पूरी नहीं हो सकती। महाराज जी! कोई ऐसा शॉर्ट तरीका बता दीजिए, जिससे कि हमारी मनोकामना पूरी हो जाए। हाँ बेटे! मैं एक तरीका बता सकता हूँ कि जिससे तेरी दुनिया सेकेंडों में हरी हो सकती है। बताइए महाराज जी! देख ये ले सवा दो रुपये का चश्मा और आँखों पर लगा ले। इससे सूरज भी हरा, चंद्रमा भी हरा, बादल भी हरे, जमीन भी

हरी, आसमान भी हरा दीखेगा। इसमें न तेरे सौ करोड़ रुपये ही लगेंगे और न सौ करोड़ वर्ष ही लगेंगे।

आप्तकाम हों

मित्रो! आप्तकाम होने के लिए कामना का स्तर बदलना पड़ता है। आप जिन कामनाओं को पूरी करना चाहते हैं, वो पूरी नहीं हो सकतीं। रावण की कामनाएँ पूरी नहीं हो सकीं, कंस की पूरी नहीं हो सकीं, हिरण्यकशिपु की पूरी नहीं हो सकीं। नेपोलियन की पूरी नहीं हो सकीं; सिकंदर की पूरी नहीं हो सकीं। फिर आपकी कैसे पूरी हो जाएँगी? हाँ, एक शर्त पर आपकी कामनाएँ पूरी हो सकती हैं। कैसे? आप कामनाओं का स्तर बदल दीजिए। स्तर कैसे बदला जाएगा, मैं आपको यह थोड़ी देर में बतलाऊँगा।

साथियो! देवता होने के लिए यह जरूरी है कि आपकी इच्छाएँ, आपकी कामनाएँ, जिस प्वाइंट पर लगी हुई हैं, उस प्वाइंट को आप बदल दीजिए। रेडियो किस नंबर पर लगा हुआ है? कहाँ से बोल रहा है? साहब! सीलोन से बोल रहा है। महाराज जी! सीलोन वाला तो बड़े गंदे गाने सुनाता है। हाँ बेटे! वह बड़े गंदे गाने सुनाता है। अच्छे गाने वाले स्टेशनों को आप सुन सकते हैं, बस जरा-सी सुई मोड़ दें। कहाँ मोड़ दूँ? विविध भारती पर लगा दें। आहा! ये तो बहुत अच्छा आ रहा है। फिर बेटे! सुई मोड़-सुई मोड़। अगर हम अपने विचारों की सुई मोड़ पाएँ-बदल पाएँ, अपने दृष्टिकोण को अगर बदल पाएँ तो जो जलन और खीझ अभी हमको खाए जा रही है और जब तक हम जिएँगे, शांत न हो सकेंगे। वह हमें अभी और जलाएगी। वह सब शांत हो सकती है।

तो क्या महाराज जी! ये कामनाएँ कभी पूरी नहीं हो सकतीं? हाँ बेटे! ये कभी पूरी नहीं हो सकतीं। जितनी तेरी कामनाएँ पूरी होती चली जाएँगी, उतनी ही उसी हिसाब से तेरी खीझ कम नहीं, वरन् बढ़ती चली जाएगी। संपत्ति बढ़ेगी तो तेरी खीझ बढ़ेगी। संतान बढ़ेगी तो तेरी खीझ बढ़ेगी। पद बढ़ेगा तो तेरी खीझ बढ़ेगी। हर चीज खीझ बढ़ाने वाली है। इच्छा या कामना दूर से इतनी खूबसूरत मालूम पड़ती है, लेकिन जब वह हमारे नजदीक आती है तो वह इतनी बेचैनी लेकर के आती है कि क्या कहने का है? जब तक ब्याह नहीं हुआ था, तब तक, हाँ, बेटा! तेरा ब्याह हो जाएगा। ब्याह हो जाएगा तो बहुत सुख पाएगा। अच्छा चल तेरा ब्याह कराता हूँ। यह आ गई बीबी। लाइए नायलॉन की साड़ी, लाइए जेवर, लाइए अँगूठी। अरे साहब!

दो सौ रुपए महीने मिलते थे और मौज करते थे, लेकिन यह कहाँ से आ गई? दो सौ रुपया तो कपड़े-लत्ते के लिए भी नहीं होगा। नहीं साहब! आप जाइए, चोरी कीजिए, कुछ भी कीजिए, पर पैसा कमाकर लाइए। फिर क्या हो गया? बीबी आ गई, फिर बच्चे पर बच्चा आ गया। अरे महाराज जी! ये क्या हुआ? ये तो बच्चों की परेशानी आ गई। बेटे तू तो यही कह रहा था न कि ब्याह होने से सुख मिलता है। ले ले, सुख कहाँ से मिलेगा।

सुख बाहर नहीं, अंदर है

मित्रो! ये जो इच्छाएँ हैं, ये केवल हमको खुशी भर दिखाती हैं, दे नहीं सकती। अगर आप सुख पाना चाहते हैं, शांति पाना चाहते हैं, संतोष पाना चाहते हैं तो आपको नया दृष्टिकोण ग्रहण करना पड़ेगा। अपने चिंतन का तरीका, सोचने का तरीका, मान्यताएँ, आस्थाएँ, निष्ठाएँ इन सबमें हेर-फेर करना पड़ेगा। अगर आप यह कर पाएँ तो आप पाएँगे कि आप कितने चैन से रह रहे हैं। कितनी शांति से रह रहे हैं। कितने उन्नतिशील, कितने अपने आपको संपन्न अनुभव कर रहे हैं। पहले दृष्टिकोण को तो बदलिए।

मित्रो! देवता बनने के लिए दृष्टिकोण का बदलना आवश्यक है। देवता की बहुत सारी विशेषताएँ हैं। देवता के पास धन बहुत होता है। कितना धन होता है? बेटे! बहुत ही धन होता है तो महाराज जी! मुझे भी देवता बना दीजिए। मैं तुझे बना सकता हूँ, लेकिन पैसा देकर के नहीं। पैसा दे करके तुझे बना भी दूँ तो तू सिकंदर के तरीके से अपने सारे धन को आँखों के सामने देखकर रोता हुआ जाएगा, जैसे कि सिकंदर रोया था। उसने कहा कि यह धन मेरे साथ नहीं जा सकता, जिसके लिए उसने अपनी सारी जिंदगी खरच कर डाली। यह सारा धन साले के लिए रह गया, बहनोई के लिए रह गया, जमाई के लिए रह गया, बेटे के लिए रह गया। हमारे लिए किस काम आया? हमने क्यों कमाया? सिकंदर ने अपने दोनों हाथ ताबूत से बाहर निकाल दिए। वह इसलिए निकलवा दिए कि देखने वाले यह देखें कि सिकंदर जो आया था, खाली हाथ आया था और खाली हाथ चला गया। जो कमाया था, वह जहाँ का तहाँ धरा रह गया।

अपनापन जुड़े तो खुशी

साथियो! फिर देवता धनी कैसे हो सकता है? बेटे! देवता धनी ऐसे होता है, जिसके धन की मैं तुझे फिलॉसफी

समझाना चाहता हूँ। धन क्या होता है? धन मित्रो! उसे कहते हैं, जिसको हम अपना समझ लें कि वह हमारा धन है और वह खुशी देता है। कैसे? मतलब यह घड़ी हमारी है। कौन ले गया घड़ी? कैसे बिगाड़ दी आपने घड़ी? घड़ी हमारी है और हमारे कमरे में रखी है तो हो गई न हमारी संपत्ति? अगर इसको बेच दें तब? तब आपकी हो गई। क्यों साहब! आपसे घड़ी ले गए थे, वह खराब हो गई। हाँ बहुत पुरानी थी जो चीज हमारी है, जिसको हम अपना मान लेते हैं, वही हमारी संपत्ति है, वही हमारी खुशी का माध्यम है। कोई भी चीज जिसको आप अपना मानते हैं, मकान को अपना मानते हैं, मोटर को अपनी मानते हैं, जमाई को अपना मानते हैं वही तो आपकी है।

क्यों साहब! अगर जमाई से लड़ाई हो जाए और हमारी लड़की से तलाक ले ले तब? तब वह हमारा जमाई नहीं है। तब कौन है? हमारा बैरी है और दुश्मन है। क्यों साहब! दो महीने पहले तो वह आपका जमाई था? हाँ दो महीने पहले था, लेकिन उसने तलाक दे दिया है, इसलिए हमारा बैरी है और विरोधी है। अच्छा साहब! क्या हो गया? व्यक्ति तो वही है। अरे व्यक्ति तो है वही, लेकिन हमने क्या बदल दिया? हमने अपना विचार बदल दिया। जिसका हम विचार करते हैं, जिसको हम अपना मान लेते हैं, वह चीज अपनी हो जाती है। वही अपनी संपत्ति हो जाती है, लेकिन यह भी सच कहाँ है? जिस जमीन पर हम बैठे हुए हैं, वह किसकी है? हमारी है। नहीं बेटे! यह हमारी नहीं है, यह ब्रह्माजी ने बनाई थी। कब बनाई थी? करोड़ों वर्ष पहले बनाई थी। जहाँ हम बैठे हुए हैं, उसे पटवारी के खाते में देख करके आ। लाखों आदमियों के नाम काटे जा चुके हैं और इससे आगे जब तक यह जमीन खतम होगी, तब तक हमारे जैसे लाखों आदमियों के नाम दर्ज होते जाएँगे और लाखों के नाम काटे जाएँगे।

अक्ल ठीक कर लें, सब ठीक हो जाएगा

महाराज जी! अभी तो आप कह रहे थे कि ये सब हमारी है। हाँ बेटे! है तो हमारी, लेकिन कैसे है? इसलिए कि हम मानते हैं कि ये हमारी है। जिसके ऊपर हम अपनी मान्यता डाल देते हैं, वह हमारी हो जाती है। अच्छा तो मान्यता के ऊपर है? हाँ बेटे! मान्यता के ऊपर है। जिसके ऊपर हम अपनेपन का टॉर्च डालते हैं, वही चीज अपनी दिखाई पड़ती है। जिसके प्रति हम अपना

टॉच बंद कर देते हैं, वह दिखाई नहीं पड़ती। अपनापन जिसके ऊपर फैला देते हैं, वही हमारी हो जाती है। देख मैं तुझे संपत्ति दिला सकता हूँ। मैंने तेरे नाम गंगा जी का पट्टा लिख दिया अब तू गंगा जी का मालिक है। नहीं महाराज जी! मैं कैसे मालिक हूँ? अरे बेटे! तू जा, गंगा जी में पानी पी और भरकर ले आ, कोई तुझे रोके तो मुझसे कहना। अगर तू अपने को गंगा जी का मालिक मान लेगा तो फिर तू उसका मालिक है। और देख तू हिमालय का मालिक है हरिद्वार से लेकर ऋषिकेश तक तुम्हारा है, तू चाहे जहाँ घूम। तुझे कोई रोकता हो तो मेरे पास आना। मैं कहूँगा कि ये सब इसका है। और क्या-

क्या है आपका? सूरज तेरा है, चाँद तेरा है, हिमालय तेरा है, जमीन तेरी है, आसमान तेरा है। हवा तेरी है आज से।

बेटे! स्वामी राम, अपने को राम बादशाह कहते थे और कहते थे कि मैं दुनिया का बादशाह हूँ। बादशाहत मिल सकती है? हाँ बेटे! मिल सकती है, अगर अपनी अक्ल ठीक कर ले तब। तेरी अक्ल जितनी संकीर्ण, जितनी छोटी होगी, उतना ही तू गरीब होगा, दरिद्र होगा और उतना ही पिछड़ा हुआ होगा। अपनी अक्ल को चौड़ा कर, समझ को चौड़ा कर और फिर देख, सारी दुनिया तेरी होती है कि नहीं। (क्रमशः)

□

देवसंस्कृति विश्वविद्यालय

शांतिकुंज-गायत्रीकुंज, हरिद्वार (उत्तरांचल) — २४९४११

उत्तरांचल विधानसभा द्वारा पारित 'देवसंस्कृति विश्वविद्यालय विधेयक २००२' के अंतर्गत स्थापित एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित तथा श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुंज, हरिद्वार द्वारा संचालित।

सत्र २००५ — ०६ हेतु प्रवेश सूचना

(अ) स्नातकोत्तर उपाधि पाठ्यक्रम	समयावधि	कुल सीट
१. एम० ए०/एम० एस० सी०/-नैदानिक मनोविज्ञान	२ वर्ष	२०
२. एम० ए०/एम० एस० सी०-मानवीय चेतना एवं योग विज्ञान	२ वर्ष	२०
३. एम० ए०-भारतीय संस्कृति एवं पर्यटन प्रबंधन	२ वर्ष	२०
४. एम० ए०-पत्रकारिता एवं जनसंचार	२ वर्ष	२०
(ब) डिप्लोमा पाठ्यक्रम		
१. एडवांस पी० जी० डिप्लोमा योग एवं कम्प्लीमेंटरी थैरेपी (DYCT)	१ वर्ष	२०
२. एडवांस पी० जी० डिप्लोमा मनोवैज्ञानिक निदान एवं मनोचिकित्सा	१ वर्ष	२०
(स) प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम		
१. प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम योगचिकित्सा	६ माह	३०
२. प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम ग्रामप्रबंधन	६ माह	३०
३. प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम धर्म विज्ञान	६ माह	४०
४. प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम-समग्र स्वास्थ्य प्रबंधन	६ माह	३०
५. प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम व्यवहार विकृतियाँ एवं मनोचिकित्सा	६ माह	३०
(द) प्रस्तावित पाठ्यक्रम		
१. एम० एस० सी०-बायो इन्फार्मेटिक्स	२ वर्ष	२०

उपरोक्त समस्त पाठ्यक्रमों की प्रवेश परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए निर्देश पुस्तिका एवं आवेदन पत्र रु० ५०/- के नकद भुगतान पर कुलसचिव कार्यालय से प्राप्त किए जा सकते हैं। डाक द्वारा आवेदन पत्र भेजने हेतु अपना प्रार्थना-पत्र कुलसचिव, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज-गायत्रीकुंज, हरिद्वार के नाम देय रु० १००/- के ड्राफ्ट के साथ भेजें।

प्रवेश के लिए अर्हता, आरक्षण, चयन प्रक्रिया के लिए निर्देश पुस्तिका एवं विश्वविद्यालय की वेबसाइट 'WWW.dsvv.org' का अवलोकन करें।

निर्धारित तिथियाँ: १. आवेदन पत्रों की बिक्री प्रारंभ होने की तिथि : १५ मार्च, २००५

२. पूरित आवेदन पत्र को विश्वविद्यालय में प्राप्ति की अंतिम तिथि: ०१ जून, २००५

दूरभाष : 91-1334-260723, 262094, 261367 (एक्सटेंशन : 405, 439, 401)

वेबसाइट : WWW.dsvv.org, awgp.org

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी

आत्मदेव की साधना-आराधना—२

(गतांक से आगे)

हमारा वंश

महाराज जी! आपके कितने बेटे हैं? हमारे बहुत बेटे हैं। पिछले वर्ष स्वर्ण जयंती साधना वर्ष (१९७५) में हमने अपना लक्ष्य कि आप हमारे साथ-साथ ४५ मिनट जप करना और जप करने वालों में अपना नाम लिखा देना। हमारे रजिस्ट्रों में अब तक एक लाख आदमियों के नाम लिखे हुए हैं। इस तरह एक लाख आदमियों ने हमारे साथ ४५ मिनट उपासना की। महाराज जी! तो ये आपके बेटे हुए? हाँ बेटे! हमारी 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका हिंदी में और दूसरी भाषाओं में निकलती है, उसके मेम्बर एक लाख से ज्यादा हो जाते हैं। ये सभी १२ रुपया साल पत्रिका की फीस जमा करते हैं, इसलिए हमारे बेटे हैं। नाती कितने हैं? एक-एक आदमी दस-दस आदमियों को अखबार, पत्रिका पढ़ाता है। इन सब को कह दिया है कि अखण्ड ज्योति जहाँ भी जाए, दस-दस आदमियों को पढ़ानी चाहिए तो हमारे पोते हैं १० लाख और परपोते? अभी ठहर जा बेटे! हमारे कुटुंबी बहुत हैं। अभी तो ७० साल की उम्र हुई है। अभी तो हमारे बेटे, पोते हो पाए हैं, अभी तो परपोते होंगे तब तूझे गिनाएँगे कि कितने हैं?

महाराज जी! ये कहाँ हैं आपके? इनमें से तो कोई कायस्थ है, कोई बनिया है। अरे बेटे! इसलिए कि इन्हें हम अपना मानते हैं, ये हमारे और हम इनके हैं। बेटे! अगर हम बूढ़े हो जाएँ, थक जाएँ और आपके घर में रहना चाहें और ये कहें कि आप हमको एक चारपाई की जगह और दो रोटी दे दिया करना तो आप में से कोई ऐसा है, जो मना करेगा कि मैं तो नहीं देता। आज के जमाने में जब बेटे बाप को निकाल देते हैं, बाप के लिए तो रोज दुआ करते हैं कि कब मरेगा या कब चला जाएगा! चार भाई होते हैं तो बाप से कहते हैं, अरे साहब! आप यहीं बैठे रहते हैं, बड़े भाई के पास भी जाया कीजिए, वहाँ भी तो रहा कीजिए! दूसरे भाई के पास जाते हैं, तो वह कहता है कि आप उस भाई के पास

क्यों नहीं जाते, आप यहाँ ही बैठे रहते हैं। एक भाई चाहता है कि दूसरे के यहाँ चले जाएँ और दूसरा चाहता है कि तीसरे के यहाँ चले जाएँ। हमारे बारे में भी क्या यही बात है, हर आदमी चाहेगा कि हम किसके घर जाएँ? जो पहले हाथ उठाएगा, उसी के यहाँ जाएँगे। अरे साहब! पहला नंबर हमारा है, पर उसके यहाँ भी चलिए। आप लोगों में से कोई यह तो नहीं कहेगा कि आप हमें नहीं चाहिए। आप हमारे हैं और हम आपके हैं।

मुहब्बत से बँधी जमा पूँजी

मित्रो! हमने आपको मुहब्बत की जंजीरों से बाँध लिया है, इसलिए आप हमारे बेटे और हम आपके पिता हैं। मुहब्बत की जंजीरों से आप दुनिया को बाँध लें, जीव-जंतुओं को, प्राणियों को बाँध लें तो सारी दुनिया आपकी है, उसके आप मालिक हैं। देवता हैं, देवता के पास असीम संपत्ति होती है। बाल-बच्चे हमने कमाए, पैसा हमने कमाया। कहाँ है साहब पैसा? हमारी बैंक में जमा है। कौन-सी बैंक में रखा हुआ है? ये सब लोग जो बैठे हैं, इनका नाम बैंक है। हमको अगर आवश्यकता पड़े और कहें कि दस-दस रुपये का मनीऑर्डर भेजो। यह कौन-सा महीना है? जनवरी। अगले महीने फरवरी में दस-दस रुपये के हिसाब से एक लाख आदमियों के दस लाख रुपये जमा हो जाएँगे। आपका जमा क्या है? हाँ जमा है, तो हमारा जमा कर लेते? नहीं बेटे! कोई चोर छीन ले जाएगा, इसलिए हम पैसे अपने पास नहीं रखते। क्यों साहब! बैंक में जमा नहीं किया? बैंक में हमारा विश्वास नहीं है। बैंक से ज्यादा ईमानदार आदमी हमको अपने बच्चे मालूम पड़ते हैं, बेटे-पोते मालूम पड़ते हैं। इसलिए हमने अपना धन लाखों, करोड़ों की तादाद में जमा करके रखा है और जब भी आवश्यकता पड़ती है, खट्ट से खरच करा लेते हैं, मँगा लेते हैं।

बेटे! हमने बहुत धन कमाया है। हमारी बहुत सारी संतानें हैं और हम देवता हैं। और माता जी की बेटियाँ?

माता जी की बेटियों की तो कुछ कहो ही नहीं, ये तो रानी मक्खी हैं। पिछले साल बेटियाँ थीं सौ, अब की बार हो गई दो सौ। छोटी-छोटी बेटियाँ चिल्लाती और रोती होंगी? नहीं बेटे! कोई मैट्रिक, कोई इण्टर, कोई बी० ए० तक पढ़ी हुई हैं। अभी ४५ लड़कियाँ तो ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट हैं। ये कब पैदा हुईं? ये बेटे! अभी जुलाई में पैदा हुई थीं। जुलाई में पैदा हुई और जनवरी में एम० ए० हो गई? नहीं साहब! माता जी की नहीं हैं। अच्छा ये माता जी की नहीं हैं तो फिर हम आपसे ये पूछते हैं कि लड़कियाँ जब विदा होती हैं तो ऐसे क्यों रोती हैं? फूट-फूटकर, बिलख-बिलखकर ऐसे रोती हैं, जैसे सास के घर जाने में लड़की रोती है। उससे भी ज्यादा दुखी होकर, फफक-फफककर, पल्ला पकड़कर, छाती से चिपटकर रोती हैं। माता जी हम यहाँ से जा रहे हैं। बेटे! तेरे बाप ले जा रहे हैं तो हम क्या कर सकते हैं? तू यहाँ रहना चाहे तो जिंदगी भर रह सकती है। मुहब्बत बाप-बेटी की माँ-बेटी से कम नहीं ज्यादा है। कहाँ से आ गई ये बेटियाँ? तो माता जी को कष्ट उठाना पड़ा होगा? नहीं बेटे! ये तो बिना कष्ट के पैदा हो गई। मुहब्बत की जंजीरें अगर हमारे पास हों तो सारी दुनिया हमारी हो सकती है और हम सबके हो सकते हैं।

देवत्व का अर्थ

मित्रो! यही है देवत्व। देवत्व का अर्थ है, हमारे भीतर अगर मुहब्बत हो तो व्यक्ति एक, ढंग दो, संपदा तीन, शांति चार और हम अजातशत्रु। देवता अजातशत्रु होते हैं। देवता का बैरी होता है? नहीं बेटे! देवता का कोई बैरी नहीं होता। क्यों साहब! उससे तो आप की लड़ाई है और वह तो आपसे बैर करता है। हाँ बेटे! उसे करने दे, हम बैर नहीं करते। वह तो आपको गाली देता है। हाँ बेटे! उसे देने दे, उससे क्या बनता है? हम तो नहीं देते, हम तो नहीं करते बैर। इसलिए जलन-दाह हमारे भीतर तो नहीं है। ईर्ष्या, क्रोध हमारे भीतर तो नहीं है। नहीं साहब! वह विरोध करता है। तो बेटा! उसे करने दे, हमें क्या नुकसान है? उसी का नुकसान होगा। देवता अजातशत्रु होते हैं। शत्रु कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकते। नहीं साहब! शत्रु तो नुकसान कर सकते हैं और मारकाट सकते हैं?

बेटे! मारकाट तो बुखार भी कर सकता है। नहीं साहब! वह तो आपको मार डालेगा। अरे बेटे! वह तो बड़ा आदमी है। मार भी सकता है, लेकिन मैं तो यह

कहता हूँ कि एक मच्छर, एक बिच्छू आदमी को मार सकता है। एक सुई भी आदमी को मार सकती है। मारना भी कोई आफत है। एक दियासलाई आदमी को मार सकती है। आठ आने का मिट्टी का तेल सिर पर डाल ले और एक छदाम की दियासलाई लगा ले, मार डालेगी सवा आठ आने में। मनुष्य को मार डालना भी कोई बड़ी बात है? देवता अजातशत्रु होते हैं। मैं चाहता हूँ कि आपको देवता बना दूँ तो मेरा शिविर पूरा हो जाए और हमारा आपको यहाँ बुलाना सार्थक हो जाए। देवता होना किस तरीके से संभव है?

जीवन-साधना बनाती है देवता

मित्रो! देवता होने के लिए थोड़े से प्रयास करने पड़ेंगे और उस प्रयास का नाम है—जीवन-साधना। साधना किसे कहते हैं? बेटे! अनगढ़ को सुगढ़ बनाने का नाम साधना है। मसलन ये जमीन जिस पर हम और आप निवास करते हैं। आज से लाखों वर्ष पहले जब बनी थी तब ये ऊबड़-खाबड़ जमीन थी। कहीं गड्ढे थे, कहीं क्या थे। मनुष्य ने मशक्कत की, इसको समतल बनाया, इस पर घास-पात लगाए, पेड़-पौधे लगाए, कुएँ बनाए, नहरें बनाई और ये जो ऊबड़-खाबड़ जमीन जिस पर चलने के लिए कहीं जगह नहीं थी, आज कैसी अच्छी जमीन दिखाई पड़ती है। समतल जमीन दिखाई पड़ती है। ये अनाज और फल पैदा करती है। साग और घास पैदा करती है। निवास करने के लिए यह जमीन सुगढ़ बना दी, सुसंस्कृत बना दी।

मित्रो! जीवन को सुसंस्कृत बना देना एक बहुत बड़ा काम है। हमारा व्यवहार और हमारा चिंतन बदले। हमारे चिंतन में संस्कृति और व्यवहार में सभ्यता आए। व्यवहार में जब हम सभ्यता ले आते हैं तो हम सुसंस्कृत हो जाते हैं। हमारे व्यवहार में शालीनता, शिष्टता और अच्छाई जब समाविष्ट हो जाती है तो उसको सभ्यता कहते हैं। सभ्यता से हम जीवन को परिष्कृत करते हैं। संस्कृति किसे कहते हैं? संस्कृति कहते हैं—विचार करने की शैली को, चिंतन को, भावना को और दृष्टिकोण को। जब हमारा दृष्टिकोण परिष्कृत होता हुआ चला जाता है तो फिर मजा आ जाता है।

साधना किसे कहते हैं? अनगढ़ चीजों को सुगढ़ बना लेने का नाम साधना है। मसलन सरकस के लोग शेरों को, हाथियों को, कुत्तों को सुधार करके ठीक कर

लेते हैं और वे कैसे-कैसे तमाशे दिखाते हैं, ढेरों पैसा कमा लाते हैं। लोग रीछों को सिखा लेते हैं, साध लेते हैं। बंदरों को, साँपों को साध लेते हैं और साध लेने की वजह से वे सब कैसे-कैसे कमाल दिखाते हैं, कैसी-कैसी करामात दिखाते हैं? उनके कमाल और करामात की वजह से बाजीगर अपना गुजारा कर लेते हैं, अपना पेट पाल लेते हैं। मित्रो! अगर रीछ को, बंदर को, साँप को, शेर को साध लेना संभव है तो अपने जीवन को साध लेना क्या संभव नहीं है? जीवन को साध लेने का नाम ही साधना है।

गुणों को साधिए

क्यों साहब! हमने सुना है कि जो लोग देवताओं की साधना करते हैं, वे मालदार हो जाते हैं। हाँ बिलकुल ठीक कहता है बेटे! देवता कौन-कौन से हैं? देवता का नाम है—हमारे गुण, हमारी हिम्मत। अगर हमारे भीतर हिम्मत हो तो हमारे सामान्य शरीर कितने बड़े, कितने समर्थ हो सकते हैं और क्या-से-क्या करते चले जा सकते हैं। नेपोलियन एक जरा-सा आदमी था और आल्प्स पहाड़ को चेलेंज करने लगा कि हमको रास्ता दीजिए, नहीं तो पैरों के नीचे रौंदकर फेंक देंगे। उसने कहा कि हम रास्ता देंगे। जिसको किसी ने रास्ता नहीं दिया, उसे आल्प्स ने रास्ता दिया। मित्रो! आदमी की हिम्मत और आदमी की जुर्रत ये क्या हैं? देवता हैं। इनका नाम क्या है? इनका नाम है—हनुमान जी। हनुमान जी ऐसे होते हैं? हाँ बेटे! ऐसे होते हैं। और कितनी विशेषताएँ हमारे अंदर हैं। इनमें से एक-एक गुण, एक-एक कर्म, एक-एक आदत, स्वभाव को हम बनाएँ तो हमको सिद्धियाँ मिल सकती हैं।

मित्रो! हमारे अपने जीवन की साधना में एक घंटा रोज पढ़ने का, अध्ययन का क्रम हमेशा रहा। टहलते भी रहे और एक घंटा पढ़े भी। दोनों का हमने जिंदगी भर सम्मिश्रण रखा है। इस सत्तर वर्ष की उम्र में से पंद्रह वर्ष तो आप निकाल दीजिए। पचपन साल तक हमने यह क्रम एक घंटा रोज स्वाध्याय का जारी रखा है। उस स्वाध्याय का परिणाम क्या हुआ? उसका परिणाम यह हुआ कि हमने दस लाख पन्ने पढ़ लिए, आप कागज पेंसिल लेकर हिसाब लगा लीजिए। हमने उपयोगी विषय पढ़े हैं, काम के विषय पढ़े हैं। किस्से कहानी नहीं पढ़े। नियमित रूप से, गंभीरतापूर्वक पढ़ा है और चिंतन से

पढ़ा है। उसका परिणाम क्या हुआ है? लोग ये कहते फिरते हैं कि गुरु जी तो जीवंत एन्साइक्लोपीडिया हैं। चलते-फिरते एन्साइक्लोपीडिया हैं।

नियमित साधना-स्वाध्याय

मित्रो! मेरे पचासों विषय समझे हुए हैं। जिनके विषय में विचार करना, चिंतन करना शुरू करता हूँ। आपने 'अखण्ड ज्योति' के लेख पढ़े हैं। कभी मैं शरीर विज्ञान पर लिखना शुरू करता हूँ तो लोग कहते हैं कि इन्हें सिविल सर्जन होना चाहिए। हाँ बेटे! मैं सिविल सर्जन हूँ। और क्या-क्या कहते हैं? जब मैं कानून के ऊपर और लॉजिक के ऊपर लिखना शुरू करता हूँ तो लोग कहते हैं कि ये आदमी कोई हाईकोर्ट का जज होना चाहिए। हाँ बेटे! मैं जज हूँ और मैंने ज्यूरिसप्रूडेंस और दूसरी चीजों के बारे में बहुत बारीकी से पढ़ा है। असंख्य विषय मैंने पढ़े हैं तो महाराज जी! समय कहाँ से लाए। बेटे! पढ़ने के लिए एक घंटा नियमित था। व्यस्तता के साथ पढ़ा। परिणाम क्या हुआ? उसने अथाह ज्ञान दे दिया। ये क्या चीज है? ये बेटे! स्वाध्याय के प्रति तन्मयता है। ये क्या है? सरस्वती की पूजा है तो क्या आप सरस्वती के पुत्र हैं? हाँ हम सरस्वती के पुत्र हैं, क्योंकि हमने स्वाध्याय से प्रेम किया है। स्वाध्याय के प्रेम में दिलचस्पी हो तो यही सरस्वती का प्रेम है। सरस्वती का यही प्रेम आपको निहाल करा सकता है, विद्वान बना सकता है। यह कोई अचंभे की बात नहीं है।

गुरु जी! आपने चारों वेदों के भाष्य किए हैं? हाँ किए हैं। अठारह पुराणों के? हाँ किए हैं। उपनिषदों के, दर्शनों के? हाँ किए हैं। २५०० किताबें भी लिखी हैं? हाँ बेटे! लिखी हैं तो कोई आपका स्टेनो है? नहीं बेटे! हमारा कोई स्टेनो नहीं है। कोई पी० ए० है आपका? नहीं, कोई पी० ए० नहीं है। आप ही लिखते हैं? हम ही लिखते हैं। ये कैसे हो गया? इतने लंबे जीवन का आप हिसाब लगा लीजिए। मैं आपको हिसाब लगाकर बता सकता हूँ कि आदमी इतने लंबे जीवन में पाँच घंटे रोज नियमित रूप से लिखे तो जो कुछ भी मैंने लिखा है, उससे ज्यादा लिखा जा सकता है। अरे महाराज जी! ये तो अचंभा है, जादू है। ये अचंभा नहीं है और जादू भी नहीं है, साधना है। साधना, क्रमबद्धता, नियमितता और व्यवस्था अगर जीवन में लाई जा सकती हो तो आदमी कमाल कर सकता है, चमत्कार दिखा सकता है।

अब भी सीख सकते हैं, आत्मदेव की साधना

मित्रो! मैं चाहता हूँ कि जिस आत्मदेव की उपासना मैं सारी जिंदगी करता रहा, आप भी उसको सीख पाएँ तो मजा आ जाए। अभी भी सीख लें, जिंदगी में जो दिन चले गए, सो चले गए। जो रह गए हैं वे इतने शानदार हैं कि आप उन्हीं को इस्तेमाल कर लें तो कोई खराब बात नहीं है। पंडित सातवलेकर ५५ साल की उम्र में ड्राइंग मास्टर से रिटायर हुए। रिटायर होने के बाद उन्होंने संस्कृत पढ़ना शुरू किया, वेदों को पढ़ना शुरू किया। बची हुई जिंदगी में उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा और जीवन के अंतिम समय तक वेदों के अनोखे विद्वान, वेदों के अनोखे भाष्यकार, न जाने क्या से क्या बन गए। इसी का नाम है—साधना। साधना जादू का नाम नहीं है, जैसा कि आम लोग समझते हैं। मंत्र बताइए, जादू की करामात दिखाइए। बेटे! कोई भी मंत्र नहीं है, कोई भी जादू नहीं है—साधना है।

स्वयं को ही सँभालना—साधना होगा

मित्रो! हर आदमी को अपने आपको सँभालना पड़ेगा। हर आदमी को अपने ऊपर अंकुश लगाने पड़े हैं। हर आदमी को अपने आप को व्यवस्थित बनाना पड़ा है, ठीक करना पड़ा है। नहीं साहब! हमको व्यवस्थित होने की जरूरत नहीं है। कोई देवी ठीक कर देगी। नहीं बेटा! कोई देवी अगर है तो तेरी अक्ल है। नहीं महाराज जी! शंकर जी को ठीक कीजिए, साधिए! शंकर जी अगर कोई हैं तो बेटे तेरी बुद्धि, तेरी अक्ल, तेरा साहस और तेरा पराक्रम है। बेटा! देवता काबू में आने वाले नहीं हैं। वे बड़े जबरदस्त और बड़े बेसिलसिले के हैं, वे किसी का कहना नहीं मानते। हम शंकर जी का पाठ करें तब? नहीं बेटे! शंकर जी नहीं मानेंगे, तुझे तो मारकर भगा देंगे। उनके गले में साँप बैठा है। जब तू जाएगा बस, साँप काट लेगा। मैं तो शंकर जी को प्रणाम करने आया था तो महाराज जी! वे प्रसन्न नहीं होंगे। नहीं तेरा शंकर जी तेरे भीतर बैठा हुआ है। उसको प्रसन्न करने की कोशिश कर, यही है वह शिक्षण जो इस शिविर में मैं आपको देने वाला था।

मित्रो! जीवन-साधना के बारे में मेरी इच्छा थी कि मैं आपको कुछ कीमती बातें, काम की बातें सिखाऊँ। पंचकोशों की उपासना मैं आपको कई दिनों से सिखा

रहा हूँ। हमारे व्यावहारिक जीवन में भी इसका समावेश होना चाहिए। स्थूल जीवन में और सूक्ष्म जीवन में भी इसका समावेश होना चाहिए। सूक्ष्म जीवन में पंचकोशों की उपासना आप किस तरीके से कर सकते हैं? इस बारे में आपको थोड़ी-सी जानकारी मैंने कई दिन से दी है। आपको अन्नमयकोश की उपासना, प्राणमयकोश की उपासना, मनोमयकोश की उपासना, विज्ञानमय और आनंदमयकोश की उपासना के बाबत समझाता रहा हूँ। इन पाँच कोशों की साधना की उपासनात्मक प्रक्रिया मैंने समझाई है, लेकिन अब मैं जीवन-साधना के संबंध में, जीवनदेवता के संबंध में पाँच उपासनाएँ आपको सिखाने का इच्छुक हूँ।

जीवन-साधना के पंचोपचार

मित्रो! पंचोपचार की पूजा आपने सुनी होगी। अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, चंदन वगैरह पाँच चीजों से देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। आपको मालूम है? हाँ साहब! मालूम है। पाँच कोश, पाँच देव, पाँच प्राण, पाँच तत्त्व। हाँ ये भी ठीक है। जीवन-साधना के पाँच प्रकार अर्थात् पंचोपचार जीवन-साधना के भी हैं। मैं चाहता था कि आपको आप सीख पाएँ तो मजा आ जाए। अगली अखण्ड ज्योति पत्रिका आपके पास आएगी, उसमें 'आध्यात्मिकता के पंचशील' नाम से लेख आया है, 'अपनों से अपनी बात' शीर्षक स्तंभ में। उसमें मैंने पाँच प्रार्थनाएँ की हैं। ये कहा है कि जो आदमी वास्तविक आध्यात्मिक होना चाहता हो, उसको पाँच मान्यताएँ, पाँच उपचार, पाँच धारणाएँ अपने जीवन में समाविष्ट करनी चाहिए। उसी का हवाला, उसी की जानकारी दे रहा हूँ।

मित्रो! आप अपनी नई दुनिया बसा लीजिए और उसी में रहना शुरू कीजिए। यह दुनिया जिसमें आप रहते हैं, बड़े चोरों और बड़े चालाकों की है। इसमें एक-से-एक चालाक, एक-से-एक धूर्त बैठा हुआ है। इन्हीं लोगों में आप शामिल रहेंगे तो ये आपका सफाया कर देंगे और आपको छूँछ बनाकर के छोड़ेंगे। अतः आप अपनी एक अलग दुनिया बसा लीजिए। गुरु जी! कहाँ बसाएँ? बेटे! तू अपनी एक अलग झोंपड़ी बना ले या कहीं जंगल में एक गुफा बना ले और वहीं रहना शुरू कर दे। नहीं, महाराज जी! फिर तो मेरा काम हर्ज हो जाएगा। तेरा काम हर्ज हो जाएगा तो अपने विचारों की

एक अलग दुनिया बसा ले। वह दुनिया कैसी हो? जिसमें तेरे मित्र, तेरे भाई, तेरे कुटुंबी, तेरे सलाहकार, मंत्री बिलकुल अलग रहते हों। यह दुनिया इन लोगों से भिन्न होनी चाहिए। अच्छे स्तर की होनी चाहिए।

अपनी दुनिया अलग बनाएँ

बेटे! हमारे तो मित्र अलग हैं। गुरु जी! आप तो अकेले रहते हैं। बेटे! हम अकेले कहाँ रहते हैं। हमारे साथ बहुत लोग रहते हैं। हमारी कमेटी में, हमारे कुटुंब में और खानदान में ढेरों आदमी हैं। नाम बताइए? बेटे! सातों ऋषि हमारे कुटुंबी हैं और हमारे कमरों में रहते हैं। जब कभी सलाह करनी होती है, पूछ-ताछ करनी होती है, सलाह-मशविरा करना पड़ता है तो हम अपनी बीबी से, बेटे से, भतीजों से, भानजे से, पड़ोसी से कोई भी सलाह नहीं करते। हम उन ऋषियों को बुलाकर सलाह करते हैं और पूछते हैं कि कहिए व्यास जी। आपका क्या मामला है? आप बताइए। वसिष्ठ जी की जीवात्मा का हम आह्वान करते हैं और पूछते हैं कि बताइए साहब! हम क्या काम करें? अत्रिऋषि को हम बुलाते हैं और खट-खट हमको सवाल-जबाब मिलते हुए चले जाते हैं, क्योंकि वे हमारे घनिष्ठ मित्र हैं। हमने इनको अपना मित्र बनाकर के रखा है।

मित्रो! सलाह-मशविरा के मामले में दुनिया में इसमें से एक भी आदमी ऐसा नहीं है, जो आपको आध्यात्मिक जीवन के बारे में मुनासिब सलाह देने में समर्थ हो सके। विभिन्न व्यक्तियों को सलाह देते हैं, गए-बीते आदमी हैं, हारे-थके आदमी हैं, गए-गुजरे आदमी हैं, टूटे हुए आदमी हैं, घटिया आदमी हैं। आपको ऊँचा उठाने वाली सलाह ये क्या दे सकते हैं? नहीं साहब! हमारे पिताजी आज्ञा दे देंगे, तब तो बेटा तेरा हो गया कल्याण। न तेरे पिताजी आज्ञा दें और न तू अच्छा कदम बढ़ाए। पिताजी की आज्ञा, बेटे की आज्ञा, बीबी की आज्ञा अगर इनकी आज्ञा के ऊपर आप टिके रहेंगे तो जिस स्तर के ये लोग हैं, जिस तरह की इनकी दुनिया है, उसी स्तर की वे सलाह देंगे।

योगी की दिनचर्या उलटी

इसलिए गीताकार ने कहा है कि योगी दिन में सोया करते हैं और रात में जगा करते हैं। जब दुनिया सोया करती है, तब योगी जगा करते हैं और जब योगी सोया करते हैं, तब दुनिया जगा करती है। क्या मतलब है

इसका? बेटे! इसका एक ही मतलब है कि दुनिया के विचार, दुनिया का दृष्टिकोण, दुनिया का चलन, दुनिया की रिवाजें अपनी जगह पर हैं, जो उन्हें मुबारक हों। लेकिन हमारे चलन, हमारी मान्यताएँ, हमारी निष्ठाएँ, हमारे आदर्श और क्रिया-कलाप, हमारा चिंतन और हमारी फिजियोलॉजी हमारी अलग दुनिया से प्रभावित होनी चाहिए। उसमें आप उन आदमियों को शामिल कीजिए जिनके चिंतन, चरित्र और आदर्श ऊँचे हों।

मित्रो! वास्तव में आप दो कदमों के आधार पर चल सकते हैं—एक आपका ईमान और दूसरा आपका भगवान। आप अपने ईमान से सलाह लीजिए, अपने भगवान से सलाह लीजिए कि हमको क्या करना चाहिए? आप इन दो की ही सलाह पर चलिए, अकेले चलने की जुरत इकट्ठी कीजिए। सूरज अकेला चलता है, चंद्रमा अकेला चलता है, हवा अकेली चलती है और आप अकेले चलिए। अरे साहब! लोग क्या कहेंगे? लोगों की आप सेवा कीजिए, लोगों की आप सहायता कीजिए, मदद कीजिए और दुनिया में उस तरीके से रहिए, जैसे कैदी जेलखाने में रहता है। कैदी जेलखाने में साहब का हुकुम मानता है, अमुक काम करता है, खेत जोतता है, तमुक काम करता है, लेकिन दिमाग कहाँ रहता है? दिमाग तो अपनी घरवाली के पास रहता है। जब जेलर पूछता है कि क्या कर रहा है रे? तो वह बोलता है कि हुजूर अभी तो घास छील रहा था। घास छील रहा था कि ऐसे ही बैठा था? हाँ साहब! बच्चों की याद आ रही थी। हमारी खेती-बारी सूख रही होगी। हमारी बीबी बीमार तो नहीं है? हमारे बाप का क्या हो रहा होगा? काम तो यहाँ करते हैं, लेकिन चिंतन घर का बना रहता है।

मित्रो! आप इस दुनिया में काम तो कीजिए, लेकिन कैदी के तरीके से। आप अपनी दुनिया अलग बसा लीजिए। यह दुनिया सिद्धांतों की दुनिया होगी, आदर्शों की दुनिया होगी। क्यों गुरु जी! तो क्या इसमें सलाहकारों की जरूरत पड़ेगी? हाँ बेटे! सलाहकारों की भी जरूरत है। आप हनुमान जी को सलाहकार बना लीजिए। अच्छा भगवान की भक्ति कैसे करनी चाहिए? बताइए स्वामी ब्रह्मानंद जी? आप गणेश जी की मूर्ति ले आइए, हनुमान जी, शंकर जी को ले आइए और उनकी आरती उतारिए। देवी का मंत्र हम बता देते हैं—बताइए? ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे.....। अच्छा यह है काली का

मंत्र ? हाँ बेटे ! मंत्र तो ठीक है, लेकिन भगवान की भक्ति अलग है।

भक्ति का मर्म

भगवान की भक्ति का अर्थ है—भगवान का कहना मानना और उनका काम करना। हनुमान जी ने भगवान की भक्ति की थी और कहा था—**राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम**। बेटे ! मैंने किस तरीके से भगवान की भक्ति की ? मैंने भजन किया कि नहीं, अनुष्ठान किया कि नहीं, जप किया कि नहीं, प्राणायाम किया कि नहीं—ये नहीं मालूम है, लेकिन दिन और रात मैं भगवान की भक्ति में लगा रहा। उनकी इच्छा, उनकी आज्ञा ही मेरे लिए सब कुछ है। अपनी कोई मनोकामना नहीं है। अच्छा गुरु जी ! आपने भी तो कुछ कहा होगा ? आपने भी तो वरदान माँगा होगा ? बेटे ! हम क्या वरदान माँगते ? जब हम भगवान के ही हो गए तो हमारे माँगने का सवाल ही कहाँ रहा ? इसलिए हमने कोई वरदान नहीं माँगा, कोई इच्छा नहीं जताई। क्यों साहब ! आपकी इच्छा क्यों नहीं हुई ? बेटे ! इच्छा तो थी, पर एक ही इच्छा थी—**राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम**।

सलाह लें दिव्यात्माओं से

मित्रो ! हनुमान जी अगर आपके सलाहकार हों तो वे इस तरह की सलाह दे सकते हैं। दूसरे लोग सलाह दे सकते हैं, तीसरे लोग सलाह दे सकते हैं। आप अपने सलाहकारों की एक नई दुनिया बसा लीजिए। अपनी एक अलग कमेटी बना लीजिए। अरे साहब। वे तो मर गए। नहीं बेटे ! दिव्य आत्मा कभी नहीं मरती। भगवान मर गए ? 'नहीं', भगवान नहीं मरे। उनकी शकल नहीं दिखाई पड़ती, इसलिए आप समझते हैं कि वे मर गए। मरने का शकल से कोई ताल्लुक नहीं है। गांधी जी मर गए ? नहीं बेटे ! वे जिंदा हैं। ईसामसीह ? वो भी जिंदा हैं। बुद्ध ? वो भी जिंदा हैं। दिव्य आत्माएँ कभी भी नहीं मरा करतीं। हमारे गुरु मर गए ? नहीं बेटे ! मरे नहीं, वे तो जिंदा हैं। गुरु जी ! वो तो बहुत दूर रहते हैं, बहुत दूर रहने से क्या मतलब है ? उनकी प्रेरणा तो विद्यमान है, उनका प्रकाश तो विद्यमान है, उनकी शिक्षाएँ तो विद्यमान हैं, उनके ग्रंथ तो विद्यमान हैं। विवेकानंद की मृत्यु हो गई ? नहीं बेटे ! उनकी मृत्यु नहीं हुई। उनकी सारी किताबें रखी हुई हैं। आप उनसे सलाह ले सकते हैं, प्रकाश ले सकते हैं। (क्रमशः) □

महाराज शीलभद्र तीर्थयात्रा के लिए जा रहे थे। रात्रि में उन्होंने एक आश्रम के निकट अपना पड़ाव डाला।

उसी समय राजा शीलभद्र बीमार हो गए। कुशल वैद्य-चिकित्सकों ने उन्हें स्वस्थ कर दिया। राजा ने आश्रमवासियों के एकांत जीवन पर विचार किया तो उन्होंने एक वैद्य स्थायी रूप से आश्रमवासियों की चिकित्सा के लिए रख दिया।

वैद्य को वहाँ रहते काफी समय बीत गया, किंतु कोई भी शिष्य या आचार्य अपनी चिकित्सा के लिए उनके पास नहीं आया। वैद्यराज ने एक दिन उकताकर आचार्य से इसका कारण पूछा।

आचार्य ने कहा—“वैद्यराज ! भविष्य में भी शायद ही कोई आपके पास चिकित्सा के लिए आएगा। प्रत्येक आश्रमवासी को सुबह से सायं तक श्रम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जब तक भूख परेशान नहीं करती, कोई भी भोजन नहीं करता। सब अल्पभोजी हैं। जब कुछ भूख शेष रह जाती है, तभी खाना बंद कर देते हैं। इस प्राकृतिक और स्वच्छ वातावरण में सभी को पवित्र वायु, प्रकाश मिलता है, यहाँ सर्वत्र जीवन छिटक रहा है। इसलिए कोई भी यहाँ बीमार नहीं पड़ता।”

वैद्यराज बोले—“आचार्य प्रवर ! स्वस्थ रहने के लिए यही मूलमंत्र है। तब मैं यहाँ रहकर क्या करूँ ? अब मेरा राजदरबार को लौटना ही उचित है।”

आचार्य को प्रणाम कर वैद्यराज आश्रम से वापस चले गए। प्राकृतिक जीवन और श्रम-संयम ही स्वास्थ्यरक्षा का मूल आधार है।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी

आत्मदेव की साधना-आराधना—३

(समापन किस्त)

मित्रो! अपनी एक ऐसी दुनिया बसा करके रखिए जिसमें आप उन श्रेष्ठ लोगों की सलाह लेना। इन स्वार्थी लोगों की सलाह मत लेना, इनकी तो सेवा, सहायता करना। ये तो बीमार हैं, इन बीमारों की सहायता करनी चाहिए। ये तो दुखियारे हैं, गरीब हैं, पिछड़े हुए हैं। इनकी सेवा करना, इनके ऊपर दया-करुणा करना, इनकी सहायता, मदद करना। बस, इससे आगे नहीं, महाराज जी! अगर इनकी सलाह मानें तो? बेटे! सलाह मानेगा तो तेरे लिए आध्यात्मिक जीवन, श्रेष्ठ जीवन जी सकना कभी संभव नहीं हो सकेगा। इनकी सलाहें किस काम की हैं? दो कौड़ी की सलाह हैं। क्यों साहब! अपनी अम्मा की सलाह तो मानूँ? नहीं बेटे! तू अम्मा की मत मानना। नहीं साहब! अम्मा तो हमारी मर गई। उसी ने हमारा ब्याह करा दिया था। कब करा दिया था? जब १३ वर्ष के थे, कहती थी कि मैं मर जाऊँगी, मेरे बेटे का ब्याह कराओ और वही अम्मा हमारे बड़े भाई से यों कहती थी कि बेटा! दूसरा ब्याह कर ले। इसके तीन लड़कियाँ हो गईं, नहीं तो मैं कुएँ में गिर जाऊँगी, जहर खा लूँगी। अम्मा के कहने से बड़े भाई ने दूसरा ब्याह कर लिया। तीन लड़कियाँ पहले थीं और सात दूसरी की हो गई।

बेटे! श्रेष्ठ चरित्र वाले व्यक्ति और महिलाएँ जहाँ कहीं भी हों, उनका तू कहना मान, उनकी शिक्षाएँ मान, उनके संदेशों, उनके निर्देशों पर चल। अगर ऐसा करेगा तो वह संतों की दुनिया, ऋषियों की दुनिया, ज्ञानियों और तपस्वियों की दुनिया तुझे सलाह और सहारा देती रहेगी। आगे बढ़ाती रहेगी, ऊँचा उठाती रहेगी और तू देवता बनने की जीवन-साधना के मार्ग पर चलता रहेगा। इनका कहना न मानेगा तब? तेरी मिट्टी पलीद हो जाएगी। मीरा के सामने एक ऐसा ही सवाल पैदा हो गया। मीरा के घर वाले न भजन-पूजा करने देते थे, न ध्यान करने देते थे, न संत के पास जाने देते थे, न कहीं प्रचार के लिए जाने देते थे और न जीवन का उद्देश्य पूरा करने देते थे। कहते थे कि यहीं कैदखाने में रहना पड़ेगा और

हमारा कहना मानना पड़ेगा। मीरा ने एक पत्र गोस्वामी तुलसीदास जी को लिखकर भेजा। बताइए महाराज जी! मैं घर वालों का कहना मानूँ या न मानूँ? मेरे घर वाले हैं तो बड़े-बूढ़े, हैं तो बुजुर्ग, पर बहुत तंग करते हैं। इनका कहना मानना चाहिए या नहीं मानना चाहिए?

क्या करें, तुलसीदास जी से सुनें

गोस्वामी तुलसीदास जी ने साफ तो कुछ नहीं लिखा कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, पर एक कविता मीरा के नाम लिख करके भेजी। कितनी सुंदर कविता है, जिसमें सारी-की-सारी फिलॉसफी, हमारा शिक्षण जो कि मैं आज आपको दे रहा हूँ। यह सारा शिक्षण मीरा के नाम गोस्वामी तुलसीदास जी के द्वारा लिखे पत्र में सम्मिलित है। वह पत्र कविता के रूप में है। उसमें उन्होंने लिखा—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।

तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।

बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितहि, भयेमुद-मंगलकारी॥

तो क्या आप भी त्यागने के लिए कह रहे हैं? नहीं बेटे! त्यागने के लिए नहीं कह रहा। मैं तो ये कह रहा हूँ कि इन मरीजों को त्यागने की जरूरत नहीं है। इन मरीजों को सलाह दे, इन मरीजों की हिफाजत कर, इन मरीजों की सेवा कर, पर इन मरीजों के कहने के मुताबिक तू चलने लगेगा, तो बेटे! तू इलाज नहीं कर सकेगा, डॉक्टर नहीं रह सकेगा। अपना दृष्टिकोण-अपना चिंतन अलग, अपनी मान्यताएँ-अपनी निष्ठाएँ अलग, अपना विश्वास और अपना निश्चय इन लोगों से अलग रख। महाराज जी! हमारी बीबी कह देगी तो हम गायत्री परिवार में आ जाएँगे। नहीं बेटे! तेरी बीबी नहीं कहेगी, तुझे आना हो तो आ, न आना हो तो मत आ। गुरुजी! कुछ ऐसी कृपा कर दीजिए कि हमारी धर्मपत्नी हमारी सहायक हो जाए। धर्मपत्नी तेरी सहायक नहीं होगी, तू इस लायक हो जा।

अपनी दुनिया अलग बसा लें

मित्रो! पहला वाला शिक्षण यह है कि आप अपनी एक दुनिया अलग बसा लीजिए। उसी में मौज से रहा कीजिए। छावनी में रहा कीजिए, मोरचे पर लड़ने जाया कीजिए और फिर छावनी में आ जाया कीजिए। गुफा में रहा कीजिए, जंगल में लकड़ी काटने जाया कीजिए और फिर गुफा में आ जाया कीजिए। मित्रो! यदि ऐसी गुफा बना लें तो आपके लिए संभव है कि आप आध्यात्मिक जीवन जिअें, कोई महत्वपूर्ण निश्चय-निर्णय करें। कोई महत्वपूर्ण कदम उठाएँ, अन्यथा आपको कोरी कल्पनाएँ आती रहेंगी कि मैं संत बनूँगा, ऐसा करूँगा, ये करूँगा, पर आप कुछ नहीं कर सकेंगे। आप जिस दुनिया में रहते हैं, उसके रिवाज, कायदे, नियम, उसके ढर्रे, उसके स्वभाव आपको इतने ज्यादा प्रभावित करते रहेंगे कि आपको एक कदम भी नहीं बढ़ने देंगे।

आपकी बीबी मान जाएगी तो बेटा नहीं मानेगा, बेटा मान जाएगा तो साला नहीं मानेगा, साला मान जाएगा तो जमाई नहीं मानेगा, पड़ोसी नहीं मानेंगे, सारा समाज नहीं मानेगा। सारे समाज की दीवार-दीवार, ईंट-ईंट आपसे कहेगी—अरे साहब! किस चक्कर में फँस गए हैं। आप यहाँ आइए हमारे पास और देखिए हमने इतनी बड़ी हवेली बना ली। कैसे बना ली आपने हवेली? अरे आप सब जानते हैं कि हम नंबर दो का काम करते हैं। कैसे बना ली? ये दीवार कहती है, ईंट कहती हैं, आदमी कहता है, मकान कहता है, संपत्तियाँ कहती हैं, आकर्षण कहता है, चोर कहते हैं सब कहते हैं। सबका शिक्षण एक ओर और आप एक ओर। तो क्या करें?

बेटे! इस दुनिया से भाग जा और गुफा में चला जा। कौन-सी गुफा में? मैंने बताया तो था, अपने मन की गुफा में। अपने मन में एक ऐसी गुफा बना ले, अपने मस्तिष्क में एक ऐसी दुनिया बसा ले, जिसमें कि श्रेष्ठ व्यक्ति, श्रेष्ठ आचार, श्रेष्ठ शिक्षाएँ भरी पड़ी हों। इतना अगर तू कर पाए तो समझ ले कि तेरी दुनिया बस गई। फिर इस दुनिया से लड़ने में तू समर्थ है, भव-बंधनों से लड़ने में समर्थ है। फिर लोगों की सेवा कर सकता है, प्रेम दे सकता है, मदद-सहायता कर सकता है, उनका मार्गदर्शन कर सकता है। तुझे उनके मार्गदर्शन पर चलने की जरूरत नहीं है। उनको श्रेष्ठ मार्गदर्शन, श्रेष्ठ शिक्षा दे, अगर ऐसा करेगा तो बेटे! यह पहला वाला शिक्षण,

पहली वाली पंचशील की शिक्षा है, जहाँ से आदमी देवता बनने का कदम बढ़ाता है। अपने निष्कर्ष स्वयं निकालता है, अपने निर्णय स्वयं करता है। तब उसके लिए संभव है कि वह ऊँचे मार्ग पर चलने में समर्थ हो सके। दूसरों की सलाह पर टिका, परावलंबी है तो उसके लिए कभी कुछ संभव न हो सकेगा। कल्पनाएँ तो करता रहेगा पर चल न सकेगा। बेटे! यह हुई नंबर एक बात।

इच्छाओं, आकांक्षाओं को बदलिए

नंबर दो—मित्रो! एक बात मैं आपसे यह कहूँगा कि जीवन की दिशाएँ एक धाराएँ जिस चीज से और जहाँ से प्रारंभ होती हैं, उस चीज का नाम है—मनुष्य की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ। अक्ल की खराबी नहीं है। इंद्रियों की शिकायत करना बेकार है। नहीं साहब! हमारी इंद्रियाँ नहीं मानती। बेटा! इंद्रियाँ भी कोई मानने जैसी चीज हैं क्या? इंद्रियाँ क्या होती हैं, कुछ भी नहीं होती? ये जो हमारी निष्ठाएँ, हमारी आकांक्षाएँ, हमारी इच्छाएँ हैं, वहाँ तू चल। इच्छाएँ हमारी क्या हैं? इस समय में हमारी भौतिक इच्छाएँ तीन हैं—वासना, तृष्णा, अहंता। हमने अपने आपको भूत मान लिया है। कौन हैं आप? हम तो भूत हैं। अरे तू तो अभी जिंदा है। नहीं महाराज जी! भूत हूँ। भूत कैसा होता है? जिसकी इच्छाएँ वस्तुओं और पदार्थों के साथ जुड़ी हुई हैं।

मित्रो! हमारा शरीर मिट्टी का बना हुआ है। इसकी इच्छा भी मिट्टी की चीजों की है। क्या खाना चाहता है? जलेबी, पकौड़ी, मिर्च का अचार खाना चाहता है। मिर्च क्या होती है? मिट्टी। नींबू क्या होता है? मिट्टी। जलेबी क्या होती है? मिट्टी। खाना कौन चाहता है? मिट्टी। ये क्या हैं? ये हमारी भौतिक इच्छाएँ हैं। हमारी जीभ की मिट्टी मिर्च की मिट्टी को खाना चाहती है। मित्रो! ये वासना है। हमारी जितनी भी इंद्रियाँ हैं, ये मिट्टी की बनी हुई हैं और मिट्टी की चीजें माँगती हैं। काम-वासना के अंग मिट्टी के बने हुए हैं। क्या चाहते हैं? मिट्टी का संपर्क, मिट्टी का सहयोग चाहते हैं। हमारी वासनाएँ, तृष्णाएँ भौतिक हैं। क्या चाहते हैं आप? बेटा चाहते हैं, मकान और रुपया-पैसा चाहते हैं, और क्या चाहते हैं? बस, ये ही चीजें चाहते हैं। मिट्टी चाहते हैं न? हाँ साहब! मिट्टी चाहते हैं।

तीसरी आकांक्षा क्या है? अहं। एक आदमी का अहं, मेरा बड़प्पन, मेरा यश, मेरा नाम, मेरा गौरव, मेरा श्रेय। अरे साहब! मेरे बेटे का ब्याह हुआ, मैंने ५० हजार

रुपया खरच किया और मेरे बेटे की बहू को ८१ तोले सोना चढ़ाया और मेरी लड़की की बरात में २५० बराती आए। मैं-मैं.....। सारे दिन मैं-ही-मैं चिल्लाता रहता है। मेरा अपमान हो गया, मेरा ये हुआ। मित्रो! ये ही तीन चीजें हैं, जिनके लिए हमारी सारी इच्छाएँ नियोजित हैं। अगर हम अपनी इच्छाओं का दायरा बदल दें तो वे इच्छाएँ जो कभी पूरी नहीं हो पाती हैं, पूरी होनी शुरू हो जाएँ। हमारा दृष्टिकोण यदि ऐसा हो जाए कि इन वस्तुओं के स्थान पर हम सिद्धांत और आदर्श अपनाएँ, सत्य पर चलना चाहें, ईमानदारी से रहना चाहें तो इसमें कोई कठिनता नहीं आती।

शांति भरा सुगम जीवन

मित्रो! हमारा जीवन सुगम है, अगर हम अपनी आकांक्षाएँ सत्य पर, न्याय पर टिका दें, सादगी और सिद्धांतों के ऊपर टिका दें तो इसमें कोई कठिनाई नहीं आ सकती। फिर हम शांति से जीवन जी सकते हैं। हमारी इच्छाएँ सेकिण्डों में पूरी होनी संभव हैं, अगर हमारी आकांक्षाएँ वस्तुपरक और पदार्थपरक न हों तो पदार्थों की भी आवश्यकता होती है। आप उस आवश्यकता को पूरा करने तक सीमित हो जाएँ तो आपकी ८० फीसदी समस्याएँ खत्म हो जाएँगीं। भौतिक आवश्यकताएँ हर आदमी के पास कामचलाऊ हैं, अगर आदमी उधर से संतोष कर ले और अपने सिद्धांतों को, आदर्शों को पूरा करने के लिए अपनी अक्ल और समय लगा दे तो जो समय और शक्ति हमारी निरर्थक खरच होती चली जाती है, उसे हम बचा सकते हैं और उस बची हुई शक्ति से ज्ञान का प्रसाद और भगवान की भक्ति इकट्ठा कर सकते हैं। अभी तो आपके पास न तो बचती है अक्ल, न बचता है मन, न बचता है समय और न बचता है श्रम। ये कौन ले जाता है? ये तीन चुड़ैलें जोर से पकड़ लेती हैं—एक हथकड़ी के रूप में, एक बेड़ी के रूप में और एक कमर के रस्से के रूप में। इनके बंधन ढीले करें तो आप श्रेष्ठता की, आदर्शों की, उत्कृष्टता की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं।

एक महत्वपूर्ण शिक्षण जीवन बदलने वाला शील यह है कि हम अपनी इच्छाओं को परिष्कृत करें। घटिया, छोटी, नगण्य और बेकार इच्छाएँ, जिनके बिना हमारा न कोई काम हर्ज हो रहा है और न जिनको प्राप्त करने से कोई उद्देश्य पूरा होता है। मित्रो! अगर आप अपने

दृष्टिकोण में हेर-फेर कर पाएँ तो जीवन की दिशा बदलने की ओर, महान कार्य करने की ओर, भगवान को प्राप्त करने, आत्मशक्ति का विकास करने और देवत्व की ओर चलने के लिए आप समय, श्रद्धा, आस्था सब चीजें पा सकते हैं।

कर्मयोगी बनिए, वर्तमान में रहिए

तीसरा वाला शिक्षण यह है कि आप अपने कर्तव्य को समझना शुरू कीजिए, कर्मयोगी बनिए, फर्ज, कर्तव्य पूरा करिए बस, परिणाम? परिणाम हम नहीं जानते बेटे! क्या होगा? हमने खूब अच्छी तरह से पढ़ा, खूब मेहनत की, लेकिन जिस दिन परीक्षा देने का समय आया, आ गया बुखार और फेल हो गए। क्यों साहब! ये क्या हो गया? बेटे! कर्म करना हमारे हाथ में है, फेल या पास होना हम नहीं जानते। भविष्य का अध्ययन करना छोड़ दीजिए। भविष्य का विचार छोड़ने का मतलब यह नहीं है कि आप यह विचार भी न करें कि हम किसी का भला करने जा रहे हैं या बुरा करने जा रहे हैं। आप तय कर लीजिए कि हमको ये काम करना है—जैसे हमें पढ़ना है, दुकान करनी है, खेती करनी है। पूरे परिश्रम, पूरी ईमानदारी के साथ काम कीजिए। पूरे परिश्रम, मेहनत से खेती की है, लेकिन बरसात न हो, अधिक वर्षा हो, टिड्डी आ जाए, कीड़े लग जाएँ तब! हम नहीं जानते कि कल क्या होने वाला है। कल की कल्पनाओं, कल की आकांक्षाओं में बेकार दिमाग न खराब करें। ये सोचें कि हम किसान हैं, पूरी मेहनत के साथ खेती करनी है, फसल बोनी है, अनाज उगाना है, खाद-पानी लगाना है बस, चूँकि हमने ईमानदारी से खाद लगाया, ईमानदारी से पसीना बहाया, ईमानदारी से रखवाली की, इतना ही संतोष करना हमारे लिए काफी है।

मित्रो! आप बुढ़े मत बनिए, बच्चे मत बनिए। बुढ़े कौन होते हैं? बुढ़े वे होते हैं, जो पिछली राम कहानी कहते रहते हैं। क्या बाबा आदम के जमाने की बातें करते रहते हैं? जिससे न हमारा कोई उद्देश्य पूरा होता है न कोई शिक्षा मिलती है। गड़े मुरदे उखाड़ने से क्या काम बनता है? बच्चे उन्हें कहते हैं, जो आगे की बात सोचते हैं। हमारा ब्याह हो जाएगा तो हवाई जहाज में बैठेंगे, यहाँ-वहाँ जाएँगे। ये हैं—भविष्य की कल्पनाएँ। बेटे! भविष्य की कल्पनाएँ करना बंद कर, भूतकाल की शिकायतें करना बंद कर। भूत अच्छा गया तो गया,

बुरा गया तो गया। उसने गलती की तो, तूने गलती की तो, अब भूतकाल तो किसी तरह वापस नहीं आ सकता। हमें आज क्या करना है, इस पर विचार कर।

मित्रो! कर्मयोगी वह है, जो वर्तमान पर दृष्टि रखता है। अपनी सारी समझ, अक्ल, बुद्धि, मेहनत और मनोयोग अपने कर्तव्य को, कर्म को अच्छा बनाने के लिए लगाता है। 'वर्क इज वर्शिप' अर्थात् काम को भगवान की पूजा इसलिए बताया गया है कि आदमी अपने काम को ईमानदारी से, जिम्मेदारी से करे। काम का मतलब केवल मशक्कत, केवल श्रम नहीं है। काम के साथ में ईमानदारी, एक—जिम्मेदारी, दो—सुरुचि-खूबसूरती, तीन—तन्मयता, तत्परता, उत्साह, जोश, बारीकी मिली हो प्यार मिला हो, चार—काम को हम ऐसे ढंग से करें कि सामान्य होकर भी असामान्य हो जाए। ऐसे असामान्य कार्यों को हम कर्मयोग कहते हैं। हमको और आपको कर्मयोगी बनना चाहिए, अगर हम कर्मयोगी बनते हैं और अपने दिमाग को संतुलित बनाए रखते हैं तो हमारी जिंदगी में आनंद आ जाता है।

समय का महत्त्व समझिए

मित्रो! हमारी शक्तियाँ तीन तरीके से खरब होती, बरबाद होती, नष्ट होती रहती हैं। आप देखें कि हमारा जीवन कितना निरर्थक चला गया तो पाएँगे कि तीन-चौथाई समय आपने ताश खेलने, नशेबाजी, यहाँ-वहाँ बैठे रहने में बेकार गँवा दिया। समय का ठीक तरीके से उपयोग किया होता तो समय काल था। रावण ने काल को अपनी पाटी से बाँधकर रखा था, इसीलिए रावण इतना बड़ा हो गया। समय को अगर आप बाँधकर, व्यवस्था बनाकर रखें तो समय न जाने क्या-से-क्या करता हुआ चला जाता है? बेटे! मैंने साहित्य की रचना की, सेवा कर ली, पूजा-भजन भी कर लिया, लोगों से मिल भी लिया, संगठन खड़ा कर लिया। ये सब कैसे करता हूँ? बेटे! मेरा समय बँधा हुआ है। नहीं महाराज जी! मैं तो जब मरजी होगी, मिलने के लिए आकर बैठ जाऊँगा। नहीं बेटे! जब चाहे तब न तो मिलने दूँगा, न बैठने दूँगा, तू नाराज होगा तो हो जा। मैं अपना समय देखूँ या तुझे देखूँ।

मित्रो, क्या करना चाहिए? हमको अपनी सामर्थ्यों को सार्थक, रचनात्मक कार्यों, सृजनात्मक और विकासोन्मुख कामों में लगाना चाहिए। जिसमें हमारा,

हमारे घर वालों का, हमारे पड़ोसियों का, समाज का और देश का विकास होता हो, दूसरों की भलाई होती हो। अपनी सामर्थ्यों का हम इस तरीके से नियोजन करने में समर्थ हो सकें। हम व्यर्थ, अनर्थ कार्यों और दुष्टता से बचें तो आप देखेंगे कि हमारे पास ढेरों-की-ढेरों शक्ति, सामर्थ्य, बुद्धि, अक्ल, भावनाएँ बाकी बच जाती हैं। हम उनको अगर सार्थक, सृजनात्मक कामों में लगाना शुरू करें तो आप देखेंगे कि कैसा चमत्कार होता है, आपके जीवन में। आपको ऊँचा उठने का, आपकी उन्नति के लिए कैसे रास्ता खुलता है। आप जो भी लक्ष्य बना करके चलेंगे, उसमें विद्वान बनते हुए चले जाएँगे। स्वास्थ्य-संवर्द्धन का मन हो तो आप पहलवान बन सकते हैं। भगवान का भक्त बनने का अगर मन हो तो वही अक्ल, वही समझ, वही शक्ति, वही साधन और पैसा आपको भगवान की ओर बढ़ाता हुआ चला जाता है। आत्म निरीक्षण कीजिए, अपने को देखिए, समझिए।

शरीर व जीवात्मा दोनों का ध्यान रखें

मित्रो! अगर आपको श्रेष्ठ जीवन जीना है, देवत्व की दिशा में बढ़ना है तब, एक काम जरूर करना। आपकी दुकान में दो पार्टनर हैं। दोनों का हिस्सा, दोनों के शेयर का हिसाब-किताब रखना। कोई पार्टनर किसी से चालाकी, बेईमानी न करने पाए। जिसका जितना लाभांश है, उसको उतना मिल जाए। जिसका जितना हक है, दोनों को मिल जाए। आपके दो बेटे हैं? हाँ साहब! कहीं ऐसा न हो कि एक बेटे को तो सारा माल दे दें और दूसरा बेटा विचारा ऐसे ही हाथ मलता रह जाए। नहीं महाराज जी! ऐसा अन्याय तो नहीं करेंगे। हाँ बेटे! अन्याय मत करना। तेरी दुकान में कितने हिस्सेदार हैं? दो हिस्सेदार हैं तो उनको भी मुनाफा देता है कि नहीं। महाराज जी! दिया करूँ? हाँ बेटे! उसे दिया कर। तेरे पिता की संपत्ति जो मिली, वह सब तेरे पास है और तेरा एक भाई भी है। भाई का शेयर, हिस्सा नहीं देगा क्या? नहीं महाराज जी! सारा मैं ही खा जाऊँगा। नहीं, उसको भी दे, दोनों खाओ, ईमानदारी की, न्याय की बात है।

मित्रो! हमारे जीवन की दुकान में भी दो हिस्सेदार हैं। कौन-कौन हिस्सेदार हैं? एक हमारा शरीर और एक हमारी जीवात्मा। एक हमारा कलेवर और एक हमारा प्राण। इसका जो मुनाफा होता हो, दोनों को बराबर-बराबर दें। शरीर की देख-भाल कर, मैं ये थोड़े ही

कहता हूँ कि शरीर को खाना, कपड़ा मत दे। शरीर की व्यवस्था भी कर, लेकिन सारा-का-सारा यदि शरीर को चला गया और जीवात्मा को नहीं तो जीवात्मा हमारी भूखी, तड़पती रही, व्याकुल रही, उसके लिए कुछ न कर सका। सारी जिंदगी जीवात्मा ने पुकारा कि हमें भी कुछ मिलना चाहिए। अच्छा, तुम्हें भी मिलना चाहिए। मित्रो! जब बच्चा रोया करता है तो उसकी माँ दूध में अफीम घोलकर पिला देती है और बच्चा सो जाता है। हमारी जीवात्मा भी जब रोई, चिल्लाई तो अफीम की गोली घोल-घोलकर इसको पिला दी।

अफीम की गोली क्या? माला आहा! ये बात है। माला में क्या होता है? नमः शिवाय-नमः शिवाय और क्या कह रहा है? श्रीकृष्ण शरणं मम-श्रीकृष्ण शरणं मम। श्रीकृष्ण मेरी शरण में आ जा, इसका मैंने ये अर्थ लगाया। इससे क्या फायदा हो जाएगा? इससे ये फायदा हो जाएगा कि श्रीकृष्ण भगवान की गाय, बछड़े, बंसरी, कपड़े सब मेरे पास आ जाएँगे।

माला और भलाई

बेटे! मनुष्य को जीवन अमानत के रूप में दिया है। ये ऐसे कामों के लिए दिया है कि इस दुनिया के, भगवान के उद्यान में हम माली के तरीके से काम करें। उसे सुव्यवस्थित, समुन्नत और श्रेष्ठ बनाएँ। भगवान के पी० ए० के तरीके से, इन्जीनियर के तरीके से, उसके सेक्रेटरी के तरीके से कुछ काम करें। मित्रो! ये काम करना हमारा उद्देश्य था और आवश्यक था। अगर हमने ये किया होता तो मजा आ जाता हमारी जिंदगी में, लेकिन हम ऐसा न कर सके और जीवात्मा के हिस्से में कुछ नहीं पड़ा। अरे महाराज जी! हमने जीवात्मा को माला दे तो दी। अच्छा बेटे! तो ये बता क्या कमाता है? ५५० रुपये कमाता हूँ तो ऐसा कर कि तू ५५० रुपया तो दे दिया कर जीवात्मा को, भगवान को और शरीर को, शरीर को बेटे तू माला दे दिया कर। माला से क्या काम चलेगा शरीर का? बेटे! माला चबा लिया कर और पहन लिया कर। अच्छा, महाराज जी! रात को ठंड लगे तब? ठंड लगे तो ओढ़ लिया कर माला को। नहीं, भगवान तो माला खाकर चुप रह जाते हैं। अच्छा भगवान के हिस्से में माला और तेरे हिस्से में मलाई। नहीं बेटे! भगवान माला खाकर चुप नहीं रहते।

भगवान तेरा श्रम माँगता है, तेरा पसीना माँगता है, तेरा समय, तेरा वक्त माँगता है। तेरा ईमान, तेरी भावना

और तेरी श्रद्धा माँगता है। मित्रो! जीवात्मा परमात्मा के लिए और शरीर यात्रा दोनों के लिए हमारा संतुलित विभाजन होना चाहिए। संतुलित विभाजन का मैंने नाम रखा है—अंशदान। अंशदान के लिए मैंने कहा था कि आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश अंशदान के बिना संभव नहीं है। हमारी दो संपदाएँ हैं—एक भगवान की दी हुई, एक मनुष्य की दी हुई। भगवान की दी हुई संपदा का नाम है—समय। समय को जहाँ भी आप खरच करेंगे, उसी के बदले में ये नोट-रुपये हैं। आप इनको बाजार में ले जाइए और चाहे जो खरीद लाइए। समय के बदले में आपको पैसा, स्वास्थ्य, विद्या, लोक-परलोक कुछ भी खरीद लीजिए। ये भगवान की संपत्ति है और मनुष्य की कमाई है—पैसा। ये दोनों ही साधन हमारे पास हैं, इन दोनों साधनों का उपयोग आप विभाजित रूप से किया कीजिए।

ईमानदार बनिए, हिस्सेदारी में

मित्रो! भौतिक जीवन के लिए हमारे समय का कितना हिस्सा लगाना है और आध्यात्मिक जीवन के लिए, परमार्थ जीवन के लिए कितना समय लगाना है, विभाजित कीजिए और साफ-साफ बताइए कि कितना हिस्सा देना चाहते हैं। नहीं साहब! हम तो जीवात्मा को रुपया में दो आने देंगे और शरीर को मुनाफे में से चौदह आने देंगे, चल कुछ तो दे। महाराज जी! मैं तो कुछ भी नहीं दूँगा, बेटे! जीवात्मा को भगवान को अँगूठा मत दिखा। नहीं चावल चढ़ा दूँगा, रोली चढ़ा दूँगा। भगवान को तू बहकाए मत कि चावल-रोली चढ़ा दूँगा, धूपबत्ती चढ़ा दूँगा। अच्छा तू अपने शरीर को ही धूपबत्ती दिखा दिया कर। नहीं महाराज जी! शरीर का तो धूपबत्ती से काम नहीं चलेगा तो फिर भगवान का कैसे काम चल जाएगा। भगवान जी पर चंदन चढ़ाऊँगा, अच्छा तो तू चंदन अपने ऊपर चढ़ा ले। नहीं महाराज जी! चंदन से मेरा काम नहीं चलेगा तो भगवान का काम कैसे चलेगा?

इसलिए मित्रो! जो हमारी संपदाएँ हैं, उनके बारे में हमें ईमानदार होना चाहिए और नेक होना चाहिए। हमको कुछ इस तरह से विभाजन करना चाहिए कि हमारे समय का इतना हिस्सा शारीरिक जीवन के लिए और इतना परमात्म जीवन के लिए। इतना लोक-मंगल के लिए और इतना हमारे लिए। हमारे धन का भी एक हिस्सा विभाजित होना चाहिए। हम जो धन कमाते हैं,

उसके बारे में ऋषि कहते हैं—तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् जो केवल अपने लिए कमाता है और स्वयं ही खाता है, वह चोर है। सांसारिक दृष्टि से वह चोर नहीं है। मान लीजिए आपको ५५० रुपये तनखाह मिलती है। आप ५५० रुपये खाइए। संसार की दृष्टि से कोई आफत नहीं आ सकती। आप इनकमटैक्स का पैसा दे दीजिए और घर बैठिए। आप ईमानदार और शरीफ हैं, लेकिन आध्यात्मिक जीवन के तरीके से आप शरीफ नहीं हो सकते।

समाज का ऋण चुकाएँ

आध्यात्मिक जीवन आपसे यह कहता है कि आप समाज के ऋणी हैं। समाज ने आपको ज्ञानवान बनाया है। समाज का लाभ लेकर के आपको अनाज मिलता है। समाज का लाभ लेकर के आप कपड़े पहनते हैं। समाज का लाभ लेकर के आपने शिक्षा पाई है। समाज का लाभ लेकर के आपको सवारियाँ मिली हैं। समाज का लाभ लेकर के आपको दवा-दारू का इंतजाम हुआ है। समाज का लाभ लेकर के आपका विवाह हुआ है। नहीं साहब! तो कहाँ से हुआ है तेरा विवाह? किसी और की पैदा की हुई बेटी को साथ लिए फिरता है और ऊपर से ये कहता है कि समाज का कोई ऋण नहीं है। तेरे ऊपर ऋण है, तू समाज का ऋणी है। इस ऋण को चुकाने के लिए जो हमारे पास है, उसका एक मुनासिब हिस्सा निकालने के लिए हमको कोशिश करनी चाहिए।

मित्रो! आप आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते हैं तो सचाई पर आइए, वास्तविकता पर आइए। इस कठोर सचाई को, वास्तविकता को समझिए। अगर आप

वास्तविक अध्यात्म को पाना चाहते हैं, वास्तविक भगवान को पाना चाहते हैं, वास्तविक उन्नति करना चाहते हैं, वास्तविक प्रतिभा को चाहते हैं, वास्तविक देवत्व चाहते हैं तो उसकी वास्तविक कीमत चुकाइए।

पंचशीलों की साधना—पंचाग्नि विद्या

मित्रो! ये आध्यात्मिकता के पंचशील हैं तो कठोर और कठिन। कठोर इसलिए कि हमारे स्वभाव में नहीं आते और हमको भय मालूम पड़ता है। अरे साहब! ये करेंगे तो आफत आ जाएगी और ये कैसे होगा? इसका जो भय है, वास्तव में वही दिक्कत का कारण है। अगर आप आध्यात्मिक जीवन पर चलें, पंचशील का जीवन जिएँ, जीवात्मा की, आत्मदेव की पूजा पंचोपचार के ढंग से करें तो आपको मालूम पड़ेगा कि पंचशील कितने सरल हैं, सरस हैं। वर्तमान जीवन, स्वार्थी जीवन, घटिया-नारकीय जीवन, पापी-पतित जीवन की अपेक्षा वह जीवन सरल है, शांतिमय है और सुखद है। वही आदमी समुन्नत है और उसकी सिद्धियाँ प्रत्यक्ष हैं। मित्रो! मैं चाहता था कि आप देवत्व की ओर बढ़ते, देवत्व के पंचतप करते, पंचाग्नि विद्या को अपनाते। नचिकेता के तरीके से पंचाग्नि विद्या में अपने आपको तपाते। पंचशीलों को ग्रहण करते और अपने व्यक्तित्व को उभारते और श्रेष्ठ बनाते, व्यक्तित्व को समुन्नत बनाते। उसके बदले में वे सिद्धियाँ पाते जो महापुरुषों ने पाई, ज्ञानियों ने पाई, तपस्वियों ने पाई, देवमानवों ने पाई। उन सिद्धियों से आप इसी जीवन में संपन्न हो जाते, अगर आप जीवन देवता की, आत्मदेव की साधना करने के लिए हिम्मत इकट्ठी कर सकते तब। आज की बात समाप्त। ॥ ॐ शान्ति ॥ □

बादशाह को एक कर्मचारी नौकर की आवश्यकता थी। तीन उम्मीदवार सामने पेश किए गए। बादशाह ने पूछा—“यदि मेरी और तुम्हारी दाढ़ी में साथ-साथ आग लगे तो पहले किसकी बुझाओगे?”

एक ने कहा—“पहले आपकी बुझाऊँगा।” दूसरे ने कहा—“पहले अपनी बुझाऊँगा।” तीसरे ने कहा—“एक हाथ से अपनी और दूसरे हाथ से आपकी बुझाऊँगा।”

बादशाह ने तीसरे आदमी की नियुक्ति कर दी और दरबारियों से कहा—“जो अपनी उपेक्षा करके दूसरों का भला करता है, वह अव्यावहारिक है। जो स्वार्थ को ही सर्वोपरि समझता है, वह नीच है और जो अपनी और दूसरों की भलाई का समान रूप से ध्यान रखता है, उसे ही सज्जन कहना चाहिए। मुझे सज्जन की आवश्यकता थी।” सो उस तीसरे आदमी की नियुक्ति की गई।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी

जीवन के कायाकल्प हेतु स्वर्णिम सूत्र

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

क्रिया में उतरिए

देवियो, भाइयो! आपको अब तक हमने सिद्धांतों की जो बहुत-सी बातें बताई हैं, वे आपको अपने विचार-क्षेत्र में स्थिर रखने की हैं और भावना-क्षेत्र में समावेश करने की हैं। विचार-क्षेत्र और भावना-क्षेत्र के अलावा एक क्षेत्र और बच जाता है-वह है क्रिया-क्षेत्र। आपको क्या करना चाहिए, यह स्पष्ट रूप से समझ करके जाइए। लोग कुछ करने को ही सब कुछ समझते हैं, पर मैं इसे ही सब कुछ नहीं समझता। चिंतन और भावना की भूमिका को मैं बहुत अधिक मानता हूँ, लेकिन कृत्यों के बारे में भी हम लापरवाह नहीं हो सकते। कृत्यों की उपेक्षा भी नहीं कर सकते। कर्म की उपेक्षा हम कैसे करेंगे! ज्ञान का अपना स्थान है, भक्ति का अपना स्थान है, लेकिन कर्मयोग भी तो कोई चीज है। गीता में तो कर्मयोग का ही उपदेश दिया है। इसलिए आपको क्या कर्म करने हैं, इसके बारे में थोड़ी-सी संक्षेप में जानकारी कराए देते हैं। इनको आप नोट कर लीजिए और यहाँ से जाने के बाद इन क्रियाओं के बारे में बहुत सावधानी से आचरण कीजिए।

यहाँ से जाकर आप अपनी साधना को नियमित कर लीजिए। साधना के बारे में एक ही खराबी है कि लोग साधना उपेक्षा से करते हैं। समय का ध्यान नहीं रखते। कभी करते हैं, कभी नहीं करते। अश्रद्धापूर्वक करते हैं, इसलिए साधना भी अस्त-व्यस्त हो जाती है। साधना भी चिकित्सा और व्यायाम के तरीके से है। आप व्यायाम समय पर नियमित रूप से करेंगे तो व्यायाम का फायदा मिलेगा। कभी आपने सौ बैठक लगा लीं, कभी दो बैठक लगा लीं, फिर तीन दिन बंद कर दीं। छह दिन बहुत जोर से किया तो व्यायाम का लाभ मिलने के स्थान

पर हानि होगी। घी कभी आपने छटाँक भर खा लिया, कभी पाव भर खा लिया, कभी आधा किलो खा लिया, कभी एक बूँद पी लिया, ऐसे कहीं बात बनती है क्या? दवा की एक सीमा है, एक मर्यादा है। उसकी खुराक होती है। च्यवनप्राश अवलेह आया तो एक छटाँक खाएँगे, तीन छटाँक खाएँगे। कल एक रत्ती सवेरे खाएँगे, आज दोपहर को खाएँगे, तीन दिन बिलकुल नहीं खाएँगे। कहीं ऐसे लाभ होते हैं?

मित्रो! नियमितता का बहुत लाभ है। उपासना की नियमितता का भी बहुत लाभ है। यहाँ से जाने के बाद आप अपनी उपासना को बिलकुल नियमित बना लीजिए। उसमें आलस्य-प्रमाद की वजह से कभी कोई गलती न होने पाए, इसके लिए आप दो बंधन लगा दीजिए। भोजन से पहले अथवा सोने से पहले। आप बंधन बाँध लीजिए कि भजन नहीं हो सकता तो ठीक है, खाना भी नहीं खाएँगे। नहीं साहब! खाना तो बहुत जरूरी है तो चलिए सोएँगे नहीं। रात को आप एक घंटे, आधा घंटा बाद सोइए। जो भी आपने उपासना का क्रम बना रखा है, उसको पूरा कर लीजिए। आप भोजन में 'डिले' नहीं कर सकते तो सायंकाल को सोने में देर कर लीजिए, अगर आप बहुत व्यस्त हैं तो। कोई व्यक्ति ऐसा व्यस्त नहीं है जो कि आधा घंटे का समय नहीं निकाल सकता हो। न्यूनतम उपासना आधा घंटे की हमने बना दी है, आधा घंटे की इस उपासना को प्रज्ञायोग कहा है।

समग्र जीवन-साधना

प्रज्ञायोग में ये सारी बातें-जप, ध्यान, चिंतन, मनन बता दिया है। ये जीवन की समग्र साधना है। इससे अधिक अच्छा साधना का 'कॉम्बिनेशन' और कहीं नहीं हो सकता। इसमें ब्रह्मविद्या से लेकर तपश्चर्या तक, योगाभ्यास से लेकर के संयम, साधना तक का सारा समावेश हो गया है। अब प्रज्ञायोग को तो मैं यहाँ नहीं बता सकता, वह अपनी छोटी पुस्तिकाओं, परचों में छपा

हुआ है। बस, आप प्रज्ञायोग का नियम बना लीजिए, वह आधा घंटे में पूरा हो जाता है। आधा घंटे के हिसाब से दैनिक उपासना आप करते रहिए। इतना तो आप कम-से-कम कर ही सकते हैं, ज्यादा-से-ज्यादा तो आप चाहे कुछ करें। हमने कम-से-कम की मर्यादा बना दी है, कम-से-कम दस पैसे तो आप लोकहित के लिए निकालिए ही। ज्यादा का बंधन नहीं है, आप चाहे जितना निकालें। आप दस रुपये रोज निकालिए, कौन मना करता है। इसी तरीके से एक घंटे समय की बात कही है, वह न्यूनतम है। इससे कम मत कीजिए, ज्यादा भले ही कीजिए।

साथियो! उपासना का मतलब सिर्फ एक है-अपने कषाय-कल्मषों का परिष्कार, अपनी पात्रता का संवर्द्धन, अपने गुण-कर्म-स्वभाव में विशेषताओं का समावेश। अगर आपने अपनी उपासना को दूसरे फूहड़ लोगों के तरीके से धिनौना बना रखा होगा तो वह उपासना भी नहीं रह जाएगी। उपासना को आप कामनाओं के साथ मत जोड़िए। उपासना को आप जब कामनाओं के साथ जोड़ देते हैं तो उसका स्वरूप ही नष्ट हो जाता है और वह एक धिनौनी वस्तु बन जाती है, उसका सब महत्त्व ही चला जाता है।

सार्थक उपासना समाप्त हो गई

एक आप ही हैं ऐसे गंदे आदमी, जो आपने भगवान की भक्ति का न जाने कैसा स्वरूप बना दिया है। हिंदू समाज के ऊपर मुझे बड़ा क्रोध आता है कि हमने अपने उच्चस्तरीय दर्शन को ही खत्म कर दिया। उपासना को, भगवान को, साधना की विधि को ही खत्म कर दिया। कम-से-कम इसे तो जिंदा रखना चाहिए था। इसको तो केवल आत्मकल्याण के लिए, अंतरात्मा की शांति के लिए जोड़कर रखना चाहिए था। कामनाएँ-ही-कामनाएँ। दुष्टो! कामना ही खा जाएगी तुमको। भगवान की भक्ति का जो आनंद तुम ले सकते थे, उसे भी कामना के नरक में ढकेल करके इसका महत्त्व भी खो बैठोगे और तो तुम्हारे पास कुछ है नहीं, थोड़ी-सी बात राम-नाम लेने की, पूजा-उपासना की हाथ आई थी। शायद वह आपकी जीवात्मा के काम आ सकती थी, पर अब आप तो उसको भी गिराए डाल रहे हैं। आप तो ऐसा मत करना, अच्छा। दूसरे लोग क्या करते हैं, उन्हें ही करने देना।

मित्रो! आप अपनी उपासना को सिर्फ आत्मपरिष्कार के लिए, अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए रखना। अपने गुण-कर्म-स्वभाव के संवर्द्धन के लिए ही उपासना का लक्ष्य रखना। आप चमत्कारों के लिए, तमाशा देखने के लिए मत रखना। उपासना में क्या तमाशा होते हैं? नहीं साहब! ये चक्र चमकेंगे, कुंडलिनी चमकेगी और रात को सपने दीखेंगे, गणेश जी दीखेंगे और आज्ञा चक्र चमकेगा। तमाशे दीखेंगे, आपके अपने सिनेमा हो रहे हैं क्या? अगर आपने सिनेमा और तमाशा देखने के लिए उपासना की है तो आपको धिक्कार है। मुझे ये कहना पड़ेगा कि आपने अभी आध्यात्मिकता का, उपासना का अ, आ, इ, ई भी नहीं पढ़ा। आपको तो इसके प्रारंभिक सिद्धांतों की भी जानकारी नहीं है। लोगों में कैसी गंदी हवा चल पड़ी है। इस गंदी हवा में आप भी बहेंगे क्या? आप मत बहिए और न चमत्कार देखिए।

सही मार्ग पर चलना सबसे बड़ा चमत्कार

मित्रो! आदमी के अंदर एक यही चमत्कार है कि दुनिया कैसे धिनौने रास्ते, गए-बीते रास्ते पर चल रही है, पर आप एक अच्छा रास्ता अख्तियार करते हैं। अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं, अपनी राह आप बना लेते हैं। इससे बड़ा चमत्कार और क्या हो सकता है! आप अपने भीतर से अंतःप्रेरणा को विकसित होने दीजिए और ये अनुभव होने दीजिए कि भगवान के नजदीक आने के बाद में उनकी विशेषताओं का, उनकी प्रेरणा का लाभ मिलेगा। उनकी दौलत का नहीं, उनकी प्रेरणाओं का लाभ लीजिए। इस तरीके से अगर आप दैनिक उपासना में आधा घंटे का समय लगाते रहे तो मजा आ जाएगा।

आदमी की जिंदगी में बहुत सारी बुराइयाँ हैं, जिनको हम 'क्राइम' कहते हैं। दूसरों को नुकसान पहुँचाने वाली चीजें-चोरी, उठाईगीरी वगैरह, लेकिन एक और भी क्राइम (अपराध) है-अपने ऊपर हमला करना, आत्महत्या कर बैठना। दूसरों की हत्या करना, दूसरों के भविष्य को अंधकारमय बना देना तो बुरी बात है, लेकिन अपने भविष्य को अंधकारमय बना लेना, अपनी ही आत्महत्या कर डालना, ये कौन-सी अच्छी बात है। आलस्य और प्रमाद को मैं इसी संज्ञा में गिनता हूँ, इससे निजात पाना। शरीर की दृष्टि से जो आदमी निकम्मे, निठल्ले बैठे रहते हैं, पसीना नहीं बहाते और समय को बरबाद करते रहते हैं। इन आलसियों-प्रमादियों को मैं

क्या कहूँ, जो बैल के तरीके से मेहनत तो करते रहते हैं, पर उसमें मनोयोग लगाते ही नहीं, दिलचस्पी लेते ही नहीं, कर्म को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाते ही नहीं, उसकी बारीकी समझते ही नहीं हैं। महज शरीर से काम कर दिया, बेगार भुगत दी तो बात कैसे बने? आप अपनी कार्यपद्धति में से आलस्य और प्रमाद को हटा देना। आप जिम्मेदारी, वफादारी और स्फूर्ति को शामिल करना। अगर ऐसा करेंगे तो आप देखेंगे कि जिंदगी का जो समय, श्रम आपके पास बचा है, जो शक्ति बची है, उसके आपको कितने बड़े चमत्कार मिलते हैं और कितनी सिद्धियाँ मिलती हैं।

दो सूराख : आलस्य और प्रमाद

साथियो! आदमी ने अपना सब कुछ गँवा दिया। इस गँवाने में बहुत सारे सूराख थे, उनमें से दो बड़े सूराख प्रमाद और आलस्य हैं। दिमागी और शारीरिक कायरता, ये आदमी के सबसे बड़े दुर्गुण हैं। दुर्गुण और भी बहुत से हैं—नशा वगैरह, पर इस दुर्गुण से तो पग-पग पर आदमी अपने आप को बरबाद करता जाता है। आप आलस्य और प्रमाद से बचने की हर क्षण कोशिश करना। अपना टाइमटेबल (दिनचर्या) बनाना, व्यस्त रहना, खाली समय मत जाने देना। विश्राम करना हो तो टाइम से करना। काम की चाल को धीमी मत करना, पूरी स्फूर्ति से और मेहनत से करना, जिससे उसका कुछ आउटपुट तो निकले। सारे दिन इधर-उधर बैठ गए, ढीले-पोले मन से, बेगार भुगतने की तरह काम करने के बाद उसका कोई परिणाम निकलता है क्या? नहीं। आप आलस्य-प्रमाद को यहाँ छोड़कर जाना और मेहनतकश-परिश्रमशील और कर्मयोगी बनकर जाना तो बहुत अच्छा होगा।

इसके सिवाय आपको मेरा एक और शिक्षण है कि आप अपने कुटुंब में रहते होंगे, वह चाहे पुराना कुटुंब हो, चाहे नया बना लिया हो, जैसा भी हो। आप इस कुटुंब के बारे में दो खयाल हटा देना और दो खयाल बढ़ा देना। एक खयाल यह हटा देना कि आप इस कुटुंब के मालिक हैं और इनकी मरजी को पूरा करके आप इनकी प्रसन्नता को ग्रहण करेंगे। अगर यह खयाल करते रहेंगे तो आपके कुटुंब में कभी शांति नहीं होगी। लोगों की मरजी पर चलेंगे, कितनी तरह की मरजियाँ हैं? औरत आपसे कुछ चाहती है, बेटे आपसे कुछ और

चाहते हैं, कोई क्या चाहता है, कोई क्या? ये जो चाहना हैं, उनमें से अधिकांश अनैतिक होती हैं, अस्वाभाविक होती हैं। ऐसी होती हैं, जिनमें कि वे हराम की, विलासी जिंदगी जीना चाहते हैं और आपसे सहायता चाहते हैं, ऐसा मत करना।

हर सदस्य को स्वावलंबी बना दीजिए

मित्रो! अपने कुटुंब के बारे में आप दो-तीन बातों का ध्यान रखिए। पहली यह कि कुटुंब के हर आदमी को स्वावलंबी बनाना है। उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करना आपका काम है। वे चाहे बच्चे हों, बुढ़े हों, औरत हों, चाहे जवान हों, हरेक के लिए आप यही दृष्टिकोण रखिए कि उन्हें स्वावलंबी बना देंगे। आप अभी हैं, भगवान न करे, कल आप न रहें तो ये किसके सहारे खड़े होंगे। आपकी बीबी किसके सहारे गुजारा करेगी, इसलिए उसे स्वावलंबी बनाइए—एक, संस्कारवान बनाइए—दो। उन्हें संपन्न बनाना तो आपके हाथ की बात नहीं है, पर संस्कारवान बना सकते हैं। आप लाख-करोड़ रुपया अपनी औरत के लिए छोड़कर मरें, यह मुमकिन नहीं है, क्योंकि ऐसी परिस्थिति नहीं है, व्यापार नहीं है, साधन नहीं हैं, फिर लाख-करोड़ रुपया कैसे कमा पाएँगे, रोजाना का गुजारा करना तो मुश्किल पड़ता है। लोग 'रोज कुआँ खोदते हैं रोज पानी पीते हैं' फिर यह उम्मीद करना व्यर्थ है कि कोई आदमी इतनी बड़ी दौलत छोड़कर मरेगा, जिससे पीछे वालों का गुजारा हो जाए। आप हरेक को स्वावलंबन की शिक्षा दीजिए। बच्चे थोड़े बड़े हो जाएँ, तब से उनको कुछ काम सिखाइए। पढ़ने भी दीजिए, लेकिन पढ़ने के साथ-साथ उनसे घर का कोई ऐसा काम करा सकते हैं, जिससे यदि पैसे कमाए न जाएँ, पर बचाए तो जा सकते हैं। कपड़े धोने से लेकर टूट-फूट की मरम्मत तक ऐसे ढेरों काम हैं। बचत करना भी कमाई के बराबर है।

पंचशीलों का परिपालन

मित्रो! आप अपने कुटुंब में पंचशीलों का समावेश कीजिए, ये पंचशील पंचरत्नों के बराबर हैं। पहला—श्रमशीलता—मेहनतकश। आपके कुटुंब के हर आदमी को परिश्रमशील होना चाहिए। आपके घर का एक भी आदमी हरामखोर और कामचोर न हो। अगर आप ऐसी कोशिश करें तो समझना चाहिए कि आपने अपने घर

वालों के लिए एक बेशकीमती दौलत छोड़कर रखी है। दूसरी बात पंचशीलों में 'सुव्यवस्था' है। इसमें सफाई भी आती है, सुसज्जा भी आती है। हर चीज को यथास्थान रखा जाए। अस्त-व्यस्त, यहाँ-वहाँ पड़ी हुई चीजें गंदगी फैलाती हैं, लेकिन यथास्थान रखा गया कूड़ा भी सुंदर मालूम पड़ता है। सुव्यवस्था हर चीज में हो-समय की, खान-पान की सुव्यवस्था, टाइमटेबल की सुव्यवस्था, चीजें रखने की, सफाई की सुव्यवस्था। अपने घर में हर ओर देखिए कि आपका घर स्वच्छ रहता है या नहीं। घर वालों की दिनचर्या सुव्यवस्थित है या नहीं। सुव्यवस्था का आप ध्यान रखें।

पारिवारिकता के पंचशील में तीसरा गुण 'शालीनता', शराफत, भलमनसाहत का है। जो आदमी आपके विरोधी हैं, या जो नुकसान पहुँचाते हैं, उनसे लड़िए तो जरूर, मैं ये तो नहीं कहता कि खराब आदमियों से लड़ना नहीं चाहिए, उनकी बदमाशी बरदाश्त करनी चाहिए, लेकिन आप ये लड़ाई लड़ते हुए भी अपनी शराफत जारी रखिए। शराफत, शालीनता को मत गँवाइए। शराफत गँवा देंगे तो बहुत बुरी बात है। सज्जनता आपकी संपदा है, वह आपके स्वभाव का अंग है। आप शराफत, सज्जनता और शालीनता को कम मत होने दीजिए।

चौथा गुण है-'मितव्ययता' का, किफायतशारी का। पैसा कमाना समझदारी हो सकती है, लेकिन सबसे ज्यादा समझदारी उस पैसे को खर्च करने में है। जो लोग बेहिसाब पैसा खर्च करते हैं, उसके बदले में बहुत-सी बुराइयाँ, विलासिता और दुर्व्यसन खरीद लेते हैं। पैसा फजूलखर्च करना बुरी बात है। कंजूसी करना? कंजूसी तो मैं सिखाता ही नहीं हूँ। मैं तो ये कहता हूँ कि आप अपने पैसे को ऐसे काम में खर्च कीजिए, जिससे आपका हित होता हो, आपके बच्चों का हित होता हो, समाज का हित होता हो। किसी हित के काम में खर्च कीजिए। अपव्यय मत कीजिए, फैशन में मत खर्च कीजिए, फजूलखर्चची मत कीजिए। अगर आप फजूलखर्चची की आदत डाल लेंगे तो आप देख लेना आपके घर वाले लोग थोड़े दिन में कर्जदार, ऋणी हो जाएँगे। रिश्ततखोर हो जाएँगे, बेईमान हो जाएँगे और सारी-की-सारी जीवन की सुव्यवस्था गँवा देंगे। मितव्ययता का सूत्र है-'सादा जीवन उच्च विचार।' जिसका सादा जीवन होगा, जो किफायतशार होगा, ऊँचा जीवन उसी का रह सकता है और किसी का नहीं।

मित्रो! आप अपने घर में 'उदार सहकारिता' के पाँचवें सूत्र को स्थान दें। घर-परिवार में एकदूसरे का सहकार हो, ऐसा नहीं कि खाना खाया और भागे। बड़े लड़के से कहिए कि छोटे भाई को एक घंटा पढ़ाया करो। बड़ों को चाहिए कि छोटे की सहायता करें, छोटे बड़ों का आदर-सम्मान करें। घर में हर आदमी सराय के तरीके से रहता है। जैसे भटियारों की सराय में मुसाफिर आते हैं, रात को सोते हैं, रोटी खाकर भाग खड़े होते हैं, आपका परिवार ऐसा नहीं होना चाहिए। इसमें सहकारिता, एकदूसरे की सेवा जुड़ी रहनी चाहिए। एकदूसरे के प्रति मुहब्बत जुड़ी रहनी चाहिए। अगर आपने ये पंचशील

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनन्य भक्त मथुरा बाबू ने एक बार उन्हें बड़ा कीमती वस्त्र लाकर दिया। उसे पहनकर परमहंस देवी के ध्यान में बैठ गए। ध्यान पूरा होने के बाद जब वे भगवती को ढंडवत्-प्रणाम करने लगे तो प्रणाम करते समय उनके मन में क्षणभर को यह विचार उठा कि कहीं मूल्यवान कपड़े में धूल न लग जाए।

बाद में आत्मनिरीक्षण के समय उन्हें इस विचार का स्मरण आया तो उन्होंने निश्चय किया कि ध्यान में बाधक इस मूल्यवान वस्त्र को पहनना नहीं चाहिए और उन्होंने वह वस्त्र वापस कर दिया।

..... अपने कुटुंब में शामिल कर लिए तो समझना कि आप यहाँ जो पंचकोशों का जागरण करने आए हैं, वह सफल हो गया।

कुटुंब के माली बनिए, मालिक नहीं

साथियो! पंचशीलों को फिर एक बार याद रखिए-श्रमशीलता-एक, सुव्यवस्था-दो, सज्जनता-तीन, मितव्ययता-चार और उदार सहकारिता-पाँच। इन पाँचों को पहले आप अपने जीवन में लाने की हरचंद कोशिश कीजिए, फिर आपकी देखा-देखी परिवार के दूसरे सदस्यों

में ये गुण आएँगे। आप अपने भीतर इनको बढ़ाइए और घर के दूसरे लोगों को समझाइए। यदि समझाने से न मानें तो आप दबाव भी डाल सकते हैं। कुटुंब को प्यार करना ही एक काम नहीं है, दबाव डालना भी एक काम है। 'एक आँख प्यार की और एक आँख सुधार की' हममें से हरेक आदमी को रखनी चाहिए। अगर आपको किसी को सुधारना है तो एक आँख टेढ़ी रखिए, किसी को मुहब्बत देनी है तो एक आँख सीधी भी रखिए। दोनों तरीके अपनाएँगे तो ही बात बनेगी। आप हरेक के ऊपर झल्लाते रहेंगे, नाखुश होते रहेंगे तो भी बात बनने वाली नहीं है और अनावश्यक रूप से किसी की प्रशंसा करते रहेंगे, प्यार देते रहेंगे तो भी बात बनने वाली नहीं है, दोनों का समान रूप से इस्तेमाल कीजिए।

आप अपने कुटुंबियों के माली बनकर रहिए, मालिक मत बनिए। मालिक बनेंगे तो बहुत हैरान होंगे। आप सिर्फ अपना यह कर्तव्य मानकर चलिए कि इनको पानी लगाना है, काट-छाँट करनी है और रखवाली करनी है। मालिक बनने की कोशिश करेंगे तो आप अपना मानसिक संतुलन गँवा बैठेंगे। किसी के आप मालिक बनेंगे और उसने आपका कहना न माना तब? तब आप हैरान, परेशान हो जाएँगे। आप अपनी धर्मपत्नी और दूसरे परिजनों के लिए अपने कर्तव्य और फर्जों को पूरा कीजिए। ये आशा मत कीजिए कि दूसरे भी अपना कर्तव्य निभाएँगे। हो सकता है, दूसरे परिजन अपना फर्ज न निभाएँ, तब आप क्या करेंगे।

मित्रो! आप एक काम और करना कि अपनी संकीर्णता को यहाँ छोड़कर के जाइए। आप यहाँ से उदार हो करके जाइए। आप याचक मत बनिए। आप अभावग्रस्त न रहिए। आप कंगले और दरिद्र होकर के जीवन न जिएँ। आपके पास क्या कमी है, जरा बताना तो सही? अभी आपने अभावों की जो एक फेहरिस्त बना रखी है कि हमारे पास ये कमी है, वो कमी है। अब आप एक नई फेहरिस्त बनाइए कि हमारे पास दूसरों से ये ज्यादा है, लाखों से ये ज्यादा है। अगर इस तरह की फेहरिस्त बना लें तो आपके अपने सौभाग्य का कोई ठिकाना नहीं रहेगा। फिर आप अपने आप ये अनुभव करेंगे कि हम कहाँ-से-कहाँ आ गए। आप क्या-क्या करेंगे? आप स्वाध्याय, सत्संग को अपने जीवन का

आवश्यक अंग मानिए। सत्संग किस तरीके से करें? सत्संग तो मिलना मुश्किल है, पर अपने घर वालों को नसीहत देने का, शिक्षा देने का, कथा कहने का क्रम जारी रखिए। स्वाध्याय का हरेक परिजन अपना नियम बना ले। आपको उचित और मुनासिब शिक्षाएँ कहीं से नहीं मिल सकतीं, वे केवल स्वाध्याय से मिलेंगी।

स्वाध्याय से बड़ा कोई तप नहीं

प्राचीनकाल में सत्संग भी होते थे, संत-महात्मा होते थे, ज्ञानी-गुणी होते थे, पर अब न कहीं संत हैं, न कहीं महात्मा हैं। न कहीं ज्ञानी हैं, न कहीं गुणी हैं। अगर हैं भी तो उनके पास इतना टाइम नहीं है कि आप किसी से दो-चार मिनट बात करेंगे। आपके लंबे समाधान कौन करेगा? रात भर कौन बैठेगा आपके पास, दो-दो घंटे सिर कौन फोड़ेगा? आप उनके पास किस तरीके से रहेंगे? वे अपना काम छोड़ करके आपके पास कैसे आएँगे? इसलिए एक ही तरीका है सत्संग का और वो सत्संग बहुत ही शानदार चीज है। उसका आसान तरीका है-स्वाध्याय। आप जब किसी पुस्तक को पढ़ते हैं तो उसके लेखक से उसी वक्त मिलना शुरू कर देते हैं। आप चाहें तो विवेकानंद से मिल लीजिए, गांधी जी से, विनोबा जी से मिल लीजिए, ऋषियों से मिल लीजिए। आप जिससे मिलना चाहें, उसी वक्त मिल लीजिए, ये कैसे हो सकता है, उनको मरे तो बहुत दिन हो गए। उनको मरे बहुत दिन हो गए, पर साहित्य को बने बहुत दिन नहीं हुए, इसलिए स्वाध्याय अवश्य करना।

मित्रो! आप यह अनुभव करना कि आप शरीर नहीं, आत्मा हैं। आप यहाँ से अपनी हैसियत बदलकर के जाइए। आपने सारी जिंदगी शरीर की दृष्टि से अपने आप को छोटा या बड़ा समझा है और जिंदगी भर शरीर के लिए ही जिए हैं। शरीर को खिलाना-पिलाना, शरीर को देखना, शरीर को शोभायमान बनाना, शरीर का ध्यान रखना यही तो किया है आपने। अब यहाँ से नया जन्म लेकर के जाना-आत्मा का जन्म। आपकी मूलसत्ता आत्मा है, शरीर तो आपका वाहन है, इसलिए आपको आत्मा का हित, आत्मा का संतोष देखना पड़ेगा। आत्म-कल्याण की बात सोचनी पड़ेगी और आपका भविष्य किस तरीके से शानदार बने, इस पर विचार करना पड़ेगा।

इसलिए आप अपनी आत्मा का भी ध्यान रखिए। शरीर और आत्मा दोनों को ही महत्त्व दीजिए।

शरीर और आत्मा : दोनों के लिए पुरुषार्थ

साथियो! आपके पास जो समय है, उसे दो हिस्सों में बाँट दीजिए। आपके पास साधन है, उसे दो हिस्सों में बाँट दीजिए— आधा शरीर के लिए और आधा आत्मा के लिए। अगर आप ऐसा करेंगे तो आप पुण्य की बात सोच पाएँगे, परमार्थ की बात सोच पाएँगे, लोक-मंगल की बात सोच पाएँगे और न केवल सोच पाएँगे, वरन उसके लिए व्यावहारिक कदम भी उठा पाएँगे। आप अपनी आत्मा के लिए समयदान कीजिए। आपका सारे का सारा समय शरीर के लिए खर्च हो जाता है, अब आप आत्मा के लिए भी समय निकालिए। परोपकार के लिए समय निकालिए, परमार्थ के लिए समय निकालिए। आप केवल शरीर के लिए और कुटुंबियों के लिए ही क्या सारा समय खर्च कर देंगे? नहीं, आप अपनी आत्मा के लिए भी समय निकालिए। आप अंशदान निकालिए। आपके पास जो साधन हैं, वे सारे-के-सारे साधन औलाद के लिए मत खर्च कर डालिए। इसमें दूसरे भी हिस्सेदार हैं, आत्मा भी हिस्सेदार है। आत्मा के लिए भी अपने साधनों को निकालिए। लोक-मंगल के लिए साधन, परमार्थ प्रयोजनों के लिए साधन, सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन के लिए साधन, आज के युग को बदल जाने के लिए साधन चाहिए। आपके साधन, आपका समय, आपका अंशदान और समयदान—ये नियमित रूप से उसमें लगते रहने चाहिए।

अंशदान-समयदान नियमित

मित्रो! बात बहुत पुरानी हो गई, जब टोकन के रूप में हमने इनको आरंभ कराया था, तब हमने कहा था कि दस पैसे नित्य देना, लेकिन आज दस पैसे किसे कहते हैं—बताइये? दस पैसे वाली पैंतीस वर्ष पुरानी बात है। आज तो पैंतीस वर्ष बाद महँगाई कहाँ आ गई? आजकल दस पैसे में क्या आता है। चाय अस्सी पैसे की आती है और दस पैसे का क्या आएगा—१/८ कप चाय अर्थात् एक घूँट चाय आएगी। एक घूँट चाय से आप भगवान का, समाज का और देश का—सबका ऋण पूरा कर लेंगे क्या? आप हर काम में महँगाई बरदाश्त कर रहे हैं।

खाने में महँगाई बरदाश्त कर रहे हैं, कपड़े में महँगाई बरदाश्त कर रहे हैं, रेल किराए में महँगाई बरदाश्त कर रहे हैं तो समाज के हित के लिए क्यों महँगाई बरदाश्त नहीं करेंगे? आप उदार बनिए, अंशदान के बारे में उदार बनिए। एक घंटे समयदान के लिए कभी हमने कहा था, जब शुरू में आप बच्चे थे, अब आप बड़े हो गए हैं। अब समाज के लिए समय भी ज्यादा निकालना और अपना अंशदान भी निकालना।

मित्रो! अगर ये बातें आप याद रखकर जाएँगे तो मैं कहूँगा कि आपने न्यूनतम कार्यक्रमों को समझ लिया और उसके लिए आपके जो फर्ज और कर्तव्य थे, उसके बारे में नोट कर लिया। इन्हीं आवश्यकताओं को पूरा कराने के लिए और आपको यही प्रेरणा देने के लिए मैंने

खड़ाऊँ पहनकर पंडित जी मंदिर की ओर चले। कदम बढ़ने के साथ खड़ाऊँ से भी खट-खट का स्वर निकल रहा था। पंडित जी को यह आवाज पसंद न आई। वह एक स्थान पर खड़े होकर खड़ाऊँ से पूछने लगे—“अच्छा यह तो बताओ कि पैरों के नीचे इतनी दबी रहने पर भी तुम्हारे स्वर में कोई अंतर क्यों नहीं आया?”

खड़ाऊँ ने पैरों के नीचे दबे-दबे ही पंडित जी की जिज्ञासा शांत करते हुए कहा—“मैं तो जीने की इच्छुक हूँ, पंडित जी इस संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं जो दूसरों के दबाव में आकर अपना स्वर मंद कर लेते हैं, उन्हें तो जीवित अवस्था में भी मरा हुआ मानती हूँ।”

इस कल्प-साधना शिविर में आपको बुलाया था। आप कल्प-साधना का यह शिविर समाप्त करके जाइए, लेकिन इन मोटी-मोटी बातों को अवश्य ध्यान में रखिए, जिनको हमने कर्मयोग के नाम से, क्रियायोग के नाम से आपके सामने पेश किया है। आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शांति ॥

□

विचार-क्रांति ही एकमेव उपचार (पूर्वार्द्ध)

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

देवियो, भाइयो! मनुष्य के शरीर में दो चीजें हैं—एक उसकी रचना अर्थात् काया और दूसरी चेतना। काया का संबंध खाने-पीने से है, सोने-उठने से है और इंद्रिय भोगों से है। पशु का छोटा-सा जीवन जिस तरीके से काया के ऊपर टिका रहता है, उसी तरीके से यदि मनुष्य का जीवन भी टिका रहे तो यह मानना चाहिए कि मनुष्य के जीवन का कोई महत्त्व न बन सका और उसके जीवन का कोई उद्देश्य पूरा न हो सका। खाने-पीने और बच्चे पैदा करने के जंजाल में वह फँस गया। यह भी कोई जीवन है क्या? नहीं, यह कोई जीवन नहीं है। यह बहुत ही घटिया और पशुओं जैसा नारकीय जीवन है।

मानवीय चेतना-विचारणा ही है विशेषता

मित्रो! मनुष्य के पास जो कुछ भी विशेषता और महत्ता है, जिसके कारण वह स्वयं उन्नति करता जाता है और समाज को ऊँचा उठा ले जाता है, वह उसके अंतर की विचारधारा है। जिसको हम चेतना कहते हैं, अंतरात्मा कहते हैं, विचारणा कहते हैं। यही एक चीज है, जो मनुष्य को ऊँचा उठा सकती है और महान बना सकती है। शांति दे सकती है और समाज के लिए उसे उपयोगी बना सकती है। मनुष्य की चेतना, जिसको हम विचारणा कह सकते हैं, किस आदमी का विचार करने का क्रम कैसा है? बस, असल में वही उसका स्वरूप है। आदमी लंबाई-चौड़ाई के हिसाब से छोटा नहीं होता, वरन जिस आदमी के मानसिक स्तर की ऊँचाई कम है, वह आदमी ऊँचे सिद्धांत और ऊँचे आदर्शों को नहीं सुन सकता। जो व्यक्ति सिर्फ पेट तक और संतान पैदा करने तक सीमाबद्ध रहता है, वह छोटा आदमी है। उसे अगर एक इंच का आदमी कहें तो कोई अचंभे की बात नहीं है। उसकी तुलना कुएँ के मेंढक से करें, तो कोई अचंभे की बात नहीं है। कीड़े-मकोड़ों में उसकी गिनती करें तो कोई बात नहीं है।

साथियो! मनुष्य का स्तर और मनुष्य का बोध उसके ऊँचे विचारों पर टिका हुआ है। जब कभी भी मनुष्य के ऊँचे विचार होते हैं तो उसका जीवन देवत्व जैसा दिखाई पड़ता है। गरीब हो तो क्या? अमीर हो तो क्या? गरीबी से आदमी का क्या बनता-बिगड़ता है? अमीरी में गेहूँ की रोटी खा सकता है और गरीबी में मक्का की रोटी खा सकता है। इससे क्या बनता-बिगड़ता है? अमीर आदमी रेशमी कपड़े पहन सकता है तो कौन खास बात है? और गरीब आदमी मोटे-झोटे कपड़े पहन सकता है तो कौन-सी खास बात है? आदमी में एक कानी-कौड़ी के बराबर भी कोई खास फरक नहीं आता है। मनुष्य का स्तर जब बढ़ता है तो उसके विचार करने के क्रम और सोचने के तरीके के ऊपर टिका रहता है। मनुष्य की महानता उसी के ऊपर टिकी रहती है। मनुष्य की शांति भी उसी पर टिकी हुई है। गौरव भी उसी पर टिका हुआ है। परलोक भी उसी पर टिका हुआ है और समाज के लिए उपयोगिता, अनुपयोगिता भी उसी पर टिकी हुई है। इसलिए हमको अपना सारा ध्यान इसी बात पर रखना चाहिए कि विचार करने का तरीका और सोचने का तरीका बदल जाए।

पिछले दिनों जब हमारे देश के नागरिकों की विचारणा का स्तर बहुत ऊँचा था, तब शिक्षा के माध्यम से और अन्य वातावरणों के माध्यम से, धर्म और अध्यात्म के माध्यम से यह प्रयत्न किया जाता था कि आदमी ऊँचे किस्म का सोचने वाला हो और उसके विचार, उसकी इच्छा-आकांक्षा और महत्वाकांक्षाएँ नीच श्रेणी के जानवरों जैसी न होकर महापुरुषों जैसी हों। जब ये प्रयास किए जाते थे तो अपना देश कितना ऊँचा था! यहाँ के नागरिक देवताओं की श्रेणी में गिने जाते थे और यह राष्ट्र दुनिया के लोगों की आँखों में स्वर्ग जैसा दिखाई पड़ता था। इस महानता और विशेषता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए धर्म और अध्यात्म का सारा ढाँचा खड़ा किया गया है।

धर्म-अध्यात्म का ढाँचा : उद्देश्य

मित्रो! ईश्वर के बारे में इतना ज्यादा लिखा और कहा गया है कि मैंने बारीकी से देखा और यह सोचा कि पूजा-पाठ से लेकर ईश्वर की चर्चा और लीला कहने

तक, इस सबका क्या प्रयोजन है? मुझे एक ही प्रयोजन जान पड़ा कि ईश्वर—परब्रह्म तो अपार शक्ति है। वह नियामक शक्ति है और आदमी के काम को देखती रहती है और आदमी के चाल-चलन, आदमी के विचार-कार्य के अनुसार फल देती रहती है। उसे किसी आदमी की प्रशंसा से और निंदा से क्या मतलब है? गाली देने से क्या मतलब है? जब मैंने यह विचार किया कि पूजा-पाठ से लेकर धर्म-अध्यात्म तक का सारा ढाँचा किस वजह से खड़ा किया गया है और इसका क्या मतलब है? तो मैंने पाया कि इसका एक ही मतलब है। और कोई दूसरा मतलब नहीं है कि इन सारे-के-सारे कलेवरों में जकड़ा गया मनुष्य ऊँचे किस्म के विचार करना सीखे। आदर्शवादी विचारों को अपने मन में—अंतरंग में स्थापित किए रह सके। यही मनुष्य जीवन की महानतम सेवा है और मनुष्य जीवन की महानतम सफलता है।

मित्रो! जिस मनुष्य के मन में श्रेष्ठ किस्म के विचार रहते हों और इस तरह के विचार रहते हों, जो उसके व्यक्तिगत जीवन को पवित्र बना सकें और जो उसके व्यक्तिगत जीवन के दोष-दुर्गुणों का समाधान कर दें। इस तरह के विचार, जो मनुष्य को उदार बना दें और जो मनुष्य को स्वार्थपरता और संकीर्णता के जाल-जंजाल से निकाल दें। वे विचार, जो मनुष्य की परिधि को, सीमा को अपने शरीर से आगे बढ़ाते हैं, अपने कुटुंब से आगे बढ़ाते हैं और अपने बच्चों से आगे बढ़ाते हैं और इतना विशाल बना देते हैं कि वह सारे समाज का अंग हो जाता है। सारे समाज की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझता है और सारे समाज की सुविधाओं को अपनी सुविधा समझता है। सारे समाज के कष्टों को अपने कष्ट समझता है। सारे समाज की सेवा को अपनी सेवा समझता है। जब इतना ऊँचा स्तर मनुष्य का हो जाए तो समझना चाहिए कि इसके पास धर्म की मान्यता आ गई। सही अध्यात्म की समझ आ गई। ईश्वर की भक्ति आ गई।

हर काम : ऊँचे दृष्टिकोण से

साथियो! यह सारे का सारा जो कुछ भी हमारा दार्शनिक ढाँचा खड़ा हुआ है, इसी आधार पर खड़ा हुआ है। अगर यह स्तर मनुष्य का बना रहा तो जो कुछ भी आदमी काम करेगा, उसमें शान उत्पन्न हो जाएगी, उसी में सुख और सुविधा उत्पन्न हो जाएगी। ईमानदार

आदमी अगर तिजारत करेगा तो उस तिजारत से सारी जनता को बहुत लाभ होगा और आदमी का वक्त बच जाएगा और जरा-सी चीजें खरीदने वालों को बहुत संतोष होगा और जो भी अच्छी चीजें उसे चाहिए थीं, खरीदनी थीं, मिल जाएँगी। बस, उसको एकदूसरे के प्रति प्रेम और विश्वास देना पड़ेगा। व्यापार हो तो क्या, अध्यापन हो तो क्या, मजदूरी हो तो क्या—कोई भी काम क्यों न हो, अगर मनुष्य ऊँचे दृष्टिकोण से करे तो वह छोटा-सा काम भी समाज के लिए बहुत उपयोगी हो सकता है और व्यक्ति की शान और गुणों को ऊँचा उठा सकता है। फिर हर आदमी यही कोशिश करेगा कि मेरा काम अच्छे किस्म का हो और मेरी इज्जत अच्छे काम के साथ जुड़ी हो। पैसा कम लेता हो या ज्यादा, लोग इस बात की सराहना करें कि किसी आदमी ने इसको बड़े मनोयोग, बड़ी दिलचस्पी और बड़ी मेहनत के साथ किया है। फिर उसकी इज्जत और आबरू लोगों की आँखों में भी बढ़ेगी और अपनी आँखों में भी। अपने आप को यह मालूम पड़े कि हम ईमानदार, शरीफ, नेक, कर्तव्यपरायण और वचन के पाबंद हैं। आदमी की ऊँचाई इसी बात पर टिकी हुई है।

साधनों का स्तर गिरा

इस ऊँचाई को कायम रखने के लिए, विवेकशीलता को कायम रखने के लिए इस तरह के विचारों की आवश्यकता है, जो मनुष्य को ऊँचा उठाएँ। इसे दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि हमारे पास विचार करने के जितने भी क्रम और साधन थे, वे सारे-के-सारे अस्त-व्यस्त और भ्रष्ट हो गए। जरा साहित्य की ओर देखना। साहित्य की दुकान पर जब हम जाते हैं और प्रेस में जो कूड़ा-कबाड़ा छपते देखते हैं। पत्र-पत्रिकाएँ जो हमारी आँखों के सामने आती हैं, इन्हें देखकर जी में आता है कि इन्हें जला दिया जाए या अपना सिर फोड़ लिया जाए या अपनी आँखें फोड़ ली जाएँ। यह भी कोई साहित्य है क्या, जो आदमी को अधःपतन की ओर ले जाता है, गिरावट की ओर ले जाता है। जो कुछ भी हम देखते हैं—ज्ञानवर्द्धन की सामग्री, कला और दूसरी चीजें, यहाँ तक कि धर्म-अध्यात्म के नाम पर जो नसीहतें दी जाती हैं, जो शिक्षण दिए जाते हैं, वे भी कैसे गंदे और फूहड़ किस्म के हैं। जी में आता है कि धर्म और पूजा-पाठ की इन किताबों को इकट्ठा करके इनमें दियासलाई लगा

दी जाए या इनको जब्त कर लिया जाए। जाने कौन-कौन सी किताबें हैं, जिनमें न जाने क्या-क्या कूड़ा-कबाड़ा भरकर के रख दिया है, जो आदमी को ऊँचा उठाने की अपेक्षा और नीचे गिराती हैं। आदमी के चरित्र को और बदनाम करती हैं तथा आदमी को जो दिशा या प्रेरणा देती हैं, उसे और घटिया किस्म का बना देती हैं।

मित्रो! सारे-के-सारे विषयों में हम यह देखते हैं कि मनुष्य की अक्ल, मनुष्य की समझ और ऊँचाई को नीचे गिराने के लिए न जाने क्या-से-क्या चारों ओर से कबाड़ा इकट्ठा किया गया है कि आदमी घटिया होता हुआ चला जाता है। आदमी को घटिया बनाने से बचाने के लिए उन साधनों की जरूरत है, जो मनुष्य के विचारों में परिवर्तन लाते हों, ऊँचाई लाते हों, श्रेष्ठता लाते हों, शान लाते हों, इज्जत की भावना लाते हों। इस तरह का सारे-का-सारा कलेवर और ढाँचा खड़ा किया जाना चाहिए, जिससे कि आदमी के विचार करने की शैली कुछ ऊँची उठे, श्रेष्ठ बने। आदमी श्रेष्ठ नागरिक बनेगा तो अपनी राजनीति ठीक हो जाएगी, व्यापार सही हो जाएगा। श्रेष्ठ नागरिक बनेगा तो अपने कुटुंब और परिवार में बड़े प्यार और इज्जत के साथ, शान के साथ रहेगा। उसका स्वास्थ्य सही रहेगा। उसके बालक अच्छे बनेंगे। उसके पैसे की आमदनी जो कुछ भी है, उसका बेहतरीन इस्तेमाल होगा। तब व्यक्ति अपने आप को स्वर्ग में रहता हुआ अनुभव करेगा और सारे समाज में शांति आएगी—अगर व्यक्ति का स्तर ऊँचा हो जाए तब।

विचार-शैली बदले

इसलिए हमारे लिए मनुष्य जाति की सेवा का सबसे बड़ा काम यह है कि आदमी के विचार करने की शैली को उत्कृष्ट बनाने के लिए बेहतरीन किस्म के उपचार और योजनाबद्ध रूप से काम किए जाएँ। युगनिर्माण योजना यही करती हुई चली आ रही है। उसका पहला कदम यह है कि मनुष्य अपने सोचने की शैली में आमूलचूल परिवर्तन करे। पिछले हजारों वर्ष का समय ऐसा भयंकर रहा है, जिसमें सामंतवाद से लेकर पंडावाद तक हमारे धर्म के ऊपर छाया रहा। उसने यह कोशिश की कि आदमी को बौद्धिक दृष्टि से गुलाम बना दिया जाए, ताकि उनके चंगुल में फँसे हुए लोग, जिनको चले कहते हैं, भगत कहते हैं, धर्मप्रेमी कहते हैं, इनकी बुरी तरह से हजामत बनाई जा सके। उनको उल्लू बनाया जा

सके। पिछले दिनों बौद्धिक क्षेत्र में एक ओर पंडावाद हावी रहा, जिसने मनुष्य की कोई सेवा नहीं की। धर्म के नाम पर, अध्यात्म के नाम पर, पूजा-पाठ के नाम पर, तीर्थयात्रा के नाम पर आदमी को राई-रत्ती भर ऊँचा नहीं उठाया गया। सही बात यह है कि इन मामलों ने आदमी को और अनैतिक बना दिया, अंधविश्वासी बना दिया। पंडावाद के द्वारा समाज की वास्तव में बहुत हानि हुई है।

मनुष्य को अपनी अपूर्णता बुरी लगी। उसने पूर्ण बनने की सोची और उपाय पूछने ब्रह्माजी के पास पहुँचा।

ब्रह्माजी ने उसका अभिप्राय समझा और कहा—“वत्स! सत्य को धारण करना पूर्णता है। जिसके पास जितना सत्य होगा, वह उतनी ही पूर्णता प्राप्त कर लेगा। सो जा, तू सत्य की उपासना कर।”

मनुष्य ने विनीत भाव से पूछा—“भगवन् ! सत्य की उपासना कैसे होती है?” प्रजापति ने कहा—“उचित जिज्ञासा करते हुए उसका श्रद्धापूर्वक सही समाधान खोजने की चेष्टा को उपासना कहते हैं। इसी आधार से पूर्णता प्राप्त होती है।”

प्रसन्नतापूर्वक मनुष्य लौट आया। उसने प्रयत्न भी आरंभ किया, पर परंपरागत रूढ़ियों के आगे उसका बस न चला, सत्य की उपासना अधूरी ही बनी रही।

पंडावाद और सामंतवाद—दो कारण गिरावट के

जिस प्रकार से पंडावाद के द्वारा विचार के क्षेत्र में हानि हुई है, उसी प्रकार राजसत्ता जिनके हाथ में रही, जिनको सामंत कहते हैं, राजा कहते हैं, उनको हम डाकू कहते हैं। उन लोगों ने सिर्फ अपने महल, अपनी अय्याशी और विलासिता के लिए सोचा। समाज का शोषण किया और बराबर यह कोशिश कि कहीं ऐसा न हो जाए कि विचारशीलता फैल जाए और लोगों में अनीति के विरुद्ध

बगावत का भाव पैदा हो जाए। न्याय की भावना की बात उदय हो जाए कि हम लोग इनका समर्थन क्यों करें? इसी बात की कोशिश पंडावाद ने भी की कि लोग समझदार न होने पाएँ। लोग समझदार हो जाएँगे तो हमारे चंगुल से, हमारे हाथ से शिकार निकल जाएँगे। इसी बात की कोशिश सामंतवाद ने भी कि आदमी को घटिया किस्म से विचार करना सिखाया जाए। अगर विचारशील, समझदार और चरित्रवान लोग हो जाएँगे तो उन पर हावी होना और अपनी मनमानी करना हमारे लिए मुमकिन नहीं रहेगा।

मित्रो! दोनों ही तरीकों से बराबर यह कोशिश की गई कि आदमी के विचार करने की शैली गिरा दी जाए और घटिया बना दी जाए। यही कारण था कि हम हजार वर्षों तक गुलाम हो करके रहे, इसकी वजह क्या थी? पंद्रह सौ मुसलमान हिंदुस्तान में आए और एक हजार वर्ष तक बुरी तरह से हमारे ऊपर हुकूमत करते रहे। कैसे-कैसे नृशंस अत्याचार करते रहे, जैसे कि दुनिया की रवायत में कहीं कभी दिखाई नहीं पड़ते, लेकिन हम बुजदिलों के तरीके से, कायरों के तरीके से, मरे हुए लोगों के तरीके से उनके अत्याचारों को सहते रहे। हम जरा भी सिर ऊँचा नहीं उठा सके, कुछ कर नहीं सके। ज्यादा-से-ज्यादा जी में आया तो भक्ति की बात कह दी, मीरा जी का गीत गा दिया और रावण जी का गीत गा दिया—बस, खेल खत्म हो गया। हम कुछ भी नहीं कर सके—क्यों? क्योंकि आदमी के विचार करने का स्तर गिरा हुआ है, घटिया है, जिसने हमें मुद्दतों तक गुलाम रखा। हम अभी भी बौद्धिक गुलामी में बुरे तरीके से जकड़े हुए हैं। राजनीतिक गुलामी दूर हो गई तो क्या, बौद्धिक गुलामी जहाँ-की-तहाँ है। अक्ल की दृष्टि से हम बुरे तरीके से गुलाम हैं।

अभी भी गुलाम हैं हम

सामाजिक कुरीतियों को ही लें तो उनमें न कोई तुक है और न कोई बात है। अरे साहब! हमारी कुलदेवी है और कुलदेवी पर ही हमारे बच्चे का मुंडन होगा। कुलदेवी कहाँ रहती है? दो हजार मील दूर रहती है। दो हजार मील पर क्या करोगे? बच्चे का मुंडन कराने ले जाएँगे। फिर क्या हो जाएगा? देवी पर बाल चढ़ा देंगे। क्या करेगी देवी? बालों को खाएगी? नहीं, वह तो रोटी भी नहीं खाती। यदि बाल न चढ़ाएँ तो? तो बच्चे को

बीमार कर देगी या मार डालेगी? देवी है या चुड़ैल? इस तरह की चुड़ैलों को देवियाँ बना दिया गया, कुलदेवी बना दिया गया है। और पागल आदमी कलकत्ता (कोलकाता) से रवाना होता है और उसकी कुलदेवी वहाँ जैसलमेर में रहती है, दो हजार रुपया किराया खरच करके बच्चे का मुंडन कराके आता है। वह समझता है कि उसने देवी के ऊपर जाने क्या एहसान कर दिया या देवी ने उसके ऊपर एहसान कर दिया।

मित्रो! इस तरीके के पागलों से सारा समाज भरा हुआ पड़ा है। हम बौद्धिक दृष्टि से गुलाम हैं। हमारी सामाजिक कुरीतियाँ कैसी बेहूदी हैं कि हमारा सारा पैसा खा जाती हैं, अक्ल खा जाती हैं और न जाने क्या-से-क्या खा जाती हैं और हम इधर-से-उधर, यहाँ-से-वहाँ मारे-मारे डोलते हैं, जिसमें न कोई अक्ल है और न कोई विवेक की बात।

हम देखते हैं कि लोग बौद्धिक दृष्टि से किस तरीके से गुलाम हैं। जन्मपत्रियों की बात को ही ले लीजिए, जन्मपत्री का जंजाल ऐसा खड़ा हुआ है कि लाखों आदमी इसी से उल्लू बने फिरते हैं। मंगल आ गया, राहु आ गया, चंद्रमा आ गया, शुक्र आ गया, चंद्रमा इन्हीं के ऊपर आ गया आदि। ये ही कुँवर और ये ही राजा साहब बने बैठे हुए हैं। चंद्रमा इन्हीं के पीछे-पीछे फिरेंगे। चंद्रमा के पास कुछ काम ही नहीं है। इन्हीं को मारेंगे, इन्हीं को प्यार करेंगे। इन्हीं पर लक्ष्मी बरसाएँगे, इन्हीं को हानि पहुँचाएँगे। यही जो रह गए हैं नबाव कहीं के! चंद्रमा इन्हीं के पीछे फिरेंगे। बेवकूफ कहीं के। इस तरीके से बेअक्ली और बेवकूफी का कोई अंत है क्या? कुछ अंत नहीं है। इसी तरीके से नैतिक चीजों के बारे में बेअक्ली का अंत है क्या? नहीं है।

नैतिक मूल्य गिरे हैं

सामाजिक कुरीतियों का कहाँ तक वर्णन किया जाए। इनका वर्णन नहीं करता मैं। नैतिकता के मूल्य के बारे में भी आदमी इस तरीके से पिछड़ता चला गया है कि आदमी के जी में न जाने कैसे विश्वास जम गया है कि हम अगर बेईमान होकर जाएँगे तो मालदार हो जाएँगे। कामचोरी करेंगे तो हमारी तरक्की हो जाएगी। यह करेंगे तो हमारा यह हो जाएगा। भ्रष्ट आदमी का आज मन ऐसा ही घटिया हो गया है। मेरे मन में ऐसा विचार आता है कि सारी-की-सारी विचार करने की शैली को बदल

दूँ। एक और जमाना ऐसा आया था कि जिस जमाने में हर आदमी के विचार करने का ढंग बहुत ही घटिया और बहुत ही नीच हो गया था। फिर क्या हुआ? भगवान ने अवतार लिया था और वह परशुराम जी का अवतार था। परशुराम जी के अवतार ने हाथ में एक कुल्हाड़ा लिया और उस कुल्हाड़े से आदमियों के सिर काट डाले। उनसे सारी दुनिया के कई बार सिर काट डाले।

सिर काटना अर्थात् दुर्बुद्धि का उपचार

मित्रो! कई बार मैं विचार करता था कि सिर काट डालने का क्या मतलब है? आदमी का सिर काट डालने से क्या आदमी बदल जाएगा? मरने के बाद भूत हो जाएगा, पलीत हो जाएगा और फिर तंग करेगा, मक्कारी करेगा। इस तरीके से मार डालने से क्या हो सकता है? फिर दिमागों को बदलने की बात मेरी समझ में आई कि आलंकारिक रूप से परशुराम भगवान का अवतार हुआ था। इसी उद्देश्य के लिए हुआ था कि दुर्गुणों को, लोगों की अक्ल को और लोगों की समझ को बदल दें। लोगों की अक्ल और समझ को हम बदल दें तो आदमी की नित्यनवे फीसदी समस्या अपने आप हल हो जाएगी। समस्या कुछ है ही नहीं।

मनुष्य की जितनी भी समस्याएँ हैं, सब उसकी बेअक्ली की पैदा की हुई समस्याएँ हैं। संतान नहीं होती है तो बहुत ही अच्छी बात है। इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है? संतान नहीं है तो आप अकेले हैं। मियाँ-बीबी दो आदमी रहिए और अपना बचा हुआ पैसा समाज के लिए लगाइए। खुशहाली से रहिए, सैर

कीजिए। बच्चे के पालन करने की जिम्मेदारी नहीं है, रोने-चिल्लाने की जिम्मेदारी नहीं है। दवा-दारू की जिम्मेदारी नहीं है। बताइए, इसमें क्या बात है? नहीं साहब! हमारे बच्चा नहीं होता, हम तो दुखी हैं। हमारी मनोकामना पूर्ण हो जाए तो अच्छा है। हमारे बच्चा हो जाए तो अच्छा है बेवकूफ कहीं का! इस तरीके से बेअक्ली और बेवकूफी हमारे रोम-रोम में इस बुरे तरीके से छि गई है कि मनुष्यों को मैं क्या कहूँ? मैं उसको जानवर ही कह सकता हूँ।

मनुष्य को जरूरत है समझदारी की

आज मनुष्य एक ऐसा जानवर हो गया है, जिसको समझदारी सिखाई जानी चाहिए। इसके लिए दूसरी चीजें, जिनको हम शारीरिक आवश्यकताएँ कहते हैं और जिनको हम आर्थिक समस्याएँ कहते हैं, अगर पहाड़ के बराबर भी ऊँचा करके रख दी जाएँ तो आदमी का रस्ती भर भी भला नहीं हो सकता। हम देखते हैं कि गरीब आदमी दुखी है, जबकि अमीर आदमी उससे भी ज्यादा हजार गुनी परेशानी में, उलझनों में, क्लेशों में पड़े हुए हैं; क्योंकि उनके पास विचार करने की कोई शैली नहीं है। अगर उनके पास कोई विचार रहा होता तो इतना अपार धन उनके पास पड़ा हुआ है, जिसे न जाने किस काम में लगा दिया होता और उस काम के द्वारा समाज में न जाने क्या व्यवस्था उत्पन्न हो गई होती। न जाने समाज का कैसा कायाकल्प हुआ होता। लेकिन नहीं, वही धन बेटे में, पोते में, जमीन और जेवर—सब में ऐसे ही तबाह होता चला जाता है। (क्रमशः) □

“वर्षा समीप है, अब छत पर मिट्टी डाल लेनी चाहिए।” पत्नी ने पति को सुझाव दिया। पति थे दीर्घ सूत्री, बोले—“ऐसी क्या जल्दी है, डाल लेंगे। मिट्टी डालने में कितना समय लगता है।” पत्नी बेचारी चुप हो गई।

फिर आकाश में कुछ-कुछ बादल घिर आए, पत्नी बोली—“देखिए, बरसात सिर पर आ गई, अब मिट्टी डाल लेनी चाहिए।” पति महोदय ऊँघते हुए बोले—“अजी! कोई रात में ही बादल नहीं बरस पड़ेंगे, बादल तो रोज ही आते हैं।”

वह दिन भी निकल गया और मिट्टी छत पर पड़ी ही नहीं।

एक दिन एकाएक आँधी आई और अपने साथ बादलों के झुंड बहा लाई, देखते-ही-देखते आकाश काला पड़ गया, बिजली तड़की और तेज वृष्टि प्रारंभ हो गई। कई दिन तक घनघोर वर्षा हुई, परिणाम यह हुआ कि पूरा मकान धराशायी हो गया।

पति महोदय रोने लगे—“अब इन बच्चों का क्या होगा?” इस पर पत्नी ने संक्षिप्त उत्तर दिया—“वही, जो शेखचिल्लियों के बच्चों का होता आया है।”

विचार-क्रांति ही एकमेव उपचार (उत्तरार्द्ध) —गतांक से जारी

समझदारी का शिक्षण

मित्रो ! आज आदमी के पास कोई लक्ष्य, कोई दिशा नहीं है। हमारे पास विद्या है तो हम इसका क्या करें? पैसा है तो इसका क्या करें? समाज के सामने ढेर लगी समस्याओं का हल किस तरीके से करें, कुछ समझ में नहीं आता। बेअक्ली की इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए यह आवश्यकता अनुभव की गई कि लोगों को समझदारी सिखाई जाए। समझदारी केवल ज्योमेट्री, इतिहास, भूगोल को नहीं कहते। समझदारी उसे कहते हैं, जिसके द्वारा सही चिंतन करने के बाद में आदमी व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं, समाज की समस्याओं और अपने युग की समस्याओं का समाधान कर सके। ऐसी जानकारी का नाम ज्ञान है। आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की समझी गई है कि हजार वर्ष की गुलामी के बाद आदमी के विचार करने का ढंग भ्रष्ट हो गया है, उसका कण-कण दूषित और विकृत हो गया है। इसको उखाड़ करके फेंक दिया जाए और सोचने के नए तरीके लोगों के दिमागों में स्थापित किए जाएँ। विवेकशीलता के आधार पर क्या बात सोची जानी चाहिए और क्या नहीं सोची जानी चाहिए? क्या किया जाना चाहिए और क्या नहीं किया जाना चाहिए, कौन सी दिशा गलत है और कौन सही है? इसका शिक्षण किया जाए? यह शिक्षण करना मानव जाति की, समाज की सबसे बड़ी सेवा है।

साथियो ! अपने युगनिर्माण योजना के युग-परिवर्तन के कार्यक्रम में पहला स्थान इसी को दिया गया है। हमने ये कोशिश की है कि इस तरह के विचारों की एक धारा और उसकी पद्धति की संहिता का निर्माण किया जाए, जो मनुष्यों के गलत सोचने के स्थान पर सही सोचने का मार्गदर्शन कर सके। मैंने ढेरों पुस्तकें पढ़ी हैं, लेकिन ऐसा साहित्य कहीं नहीं है, जो आदमी को और उलझन में डालने की बजाय उसको सही सोचने का तरीका सिखाए। सही सोचने का तरीका सिखाने के लिए युगनिर्माण योजना ने ऐसा साहित्य,

ऐसी विज्ञप्तियाँ, ऐसे ट्रैक्ट कम-से-कम मूल्य पर छापे हैं, जिसको पढ़ने के बाद आदमी को स्वतंत्र चिंतन की दिशा मिले। आदमी को यह प्रकाश मिले कि हमारे सोचने का सही तरीका क्या है, समाज की समस्याओं का वास्तविक स्वरूप क्या है, व्यक्ति की उलझनों का वास्तविक कारण क्या है, उनका समाधान किस तरीके से किया जा सकता है? अगर यह राह मिल जाए तो बीमारियों का निदान हो जाएगा कि समाज में फैली हुई विकृतियों का एकमात्र कारण मनुष्य का गलत सोचना है। अगर गलत सोचने की बात को आदमी जान ले और सही सोचना शुरू कर दे, तो मजा आ जाए।

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयास

मित्रो! मनुष्य जाति के सामने साधन उत्पन्न करने के लिए युगनिर्माण योजना ने एक प्रयास आरंभ किया और वैसी विचारधारा का निर्माण किया। यह इस युग की महती सेवा है कि आदमी को क्रमबद्ध रूप से सामाजिक, नैतिक, बौद्धिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में सच्चिंतन करना कैसे सिखाया जाए? यह प्रयास अन्यत्र नहीं शुरू हुआ था, आज अपनी संस्था के द्वारा शुरू हुआ है। इसके द्वारा कितना साहित्य लिखा गया है, कितने विचारों का एक समूह इकट्ठा किया गया है, इसका मूल्यांकन आज की परिस्थिति में नहीं हो सकता। इसका मूल्यांकन बहुत दिन पीछे होगा, जब लोग समझेंगे कि गलत दिशा में जाने वाले जनसमूह को सही दिशा में लाने के लिए जो मोड़ दिया गया, उस मोड़ को देने का श्रेय किसका है और किसने ऐसा मोड़ दिया? यह मोड़ मानव जाति की महती सेवा है, ऐतिहासिक सेवा है।

युगनिर्माण योजना द्वारा अपने ज्ञानयज्ञ के माध्यम से संपर्क रखने वालों से यह प्रार्थना की गई है कि लोगों को अपने समय का एक अंश और अपने धन का एक अंश निकालना चाहिए। उसे इस बात के लिए खर्च करना चाहिए कि लोगों के विचार करने का क्रम किस तरीके से बदला जाए, सुधारा जाए।

समयदान, अंशदान की यह आवश्यक शर्त लगाई गई है। प्रयत्न यह किया गया है कि इस संगठन से प्यार रखने वाला हर सदस्य उसकी सदस्यता शुल्क के रूप में एक घंटा समय दिया करे और कम-से-कम दस पैसे तो दिया करें। दस पैसे कोई बड़ी रकम नहीं होती है। एक प्याला चाय पच्चीस पैसे की आती है। गरीब-से-गरीब और अमीर-से-अमीर आदमी के लिए कुछ मुश्किल नहीं है, अगर उसके मन में इसकी महत्ता समा जाए तब। अगर महत्ता समाई नहीं तो एक कानी-कौड़ी भी भारी मालूम पड़ती है।

सद्ज्ञान विस्तार हेतु अंशदान

व्यक्ति शराब पीने में, सिनेमा देखने में पंद्रह रुपये खर्च करके आता है। अच्छे काम के लिए कहा जाए तो चवन्नी में ही उसका प्राण निकल जाता है। आदमी जिस चीज का मूल्य नहीं समझता, उसके लिए जरा भी खर्च नहीं कर पाता। लेकिन अगर वह उसका मूल्य समझता हो तो एक रोटी, आधी रोटी का टुकड़ा भी आसानी से खर्च कर सकता है। एक रोटी बीस पैसे की आती है। आधी रोटी तो हम कुत्ते को रोज ही फेंक देते हैं। आधी रोटी को फेंक देना कौन सी मुश्किल की बात है—अगर आदमी की समझ में आ जाए कि ज्ञान नाम की भी दुनिया में कोई चीज होती है। ज्ञान की भी उपयोगिता है। ज्ञान का भी समाज में कोई मूल्य है। अगर ये बातें उसकी समझ में न आएँ तो उसे यह समझाना है कि इस जमाने में ज्ञान कितना आवश्यक है। इससे पहले इसकी इतनी ज्यादा आवश्यकता कभी नहीं हुई।

मित्रो! पुराने जमाने में कम-से-कम पचास फीसदी विकृतियाँ थी, जिसमें बीस फीसदी बौद्धिक थीं। आज तो हमारी अक्ल सौ फीसदी विकृत हो गई है, इसमें कहीं भी कोई पाँव रखने को जगह नहीं मालूम पड़ती। किसी आदमी के दिमाग को तोड़ा या खोला जाए और उसको खोलकर पढ़ा जाए तो मालूम पड़ेगा कि इसका अस्सी-नब्बे फीसदी दिमाग पागल हो गया है। सारा मस्तिष्क विकृत जैसा है, इसमें सही सोचने की शैली और माददा जरा भी नहीं है। इसलिए हमको यह घोर प्रयत्न करना पड़ेगा कि हममें से हर आदमी एक घंटा समय उस साहित्य को दूसरे लोगों को पढ़ाने, सुनाने और समझाने के लिए, स्वयं अपने आपको पढ़ने और समझने के लिए लगाए।

समयदान के साथ-साथ दस नए पैसे की जो बात कही गई है, वह रकम बहुत छोटी है, उससे भी कुछ काम चल सकता है। बंदूक किसी के पास हो और बारूद न हो, कारतूस न हो तो क्या काम चलेगा? हमारे घरों में घरेलू पुस्तकालय होना ही चाहिए। यह बहुत बड़ी संपत्ति के बराबर है। किसी घर में जेवर है कि नहीं, गाय-भैंस है कि नहीं, मकान है कि नहीं, तसवीर है कि नहीं। सबसे पहले यह देखा जाना चाहिए कि इसको बौद्धिक खुराक पूरा करने के लिए हमारे घर में चौका है कि नहीं है। जिस घर में चौका न हो, रोटी का इंतजाम न हो, आटा न हो, दाल न हो, वह कैसा घर? उस घर में आदमी जिएँगे कैसे? जिस तरीके से शरीर की भूख होती है, उसी तरीके से मन की भी भूख होती है और आत्मा की भी भूख होती है मन और आत्मा की भूख को बुझाने के लिए जहाँ रसोड़ा (रसोई) न हो, चौका न हो तो जानना चाहिए कि यह भूतों का घर है।

ज्ञानयज्ञ हेतु पुस्तकालय

मित्रो! प्रत्येक घर में एक छोटी लाइब्रेरी होनी ही चाहिए। यह लाइब्रेरी ऐसी होनी चाहिए कि जिससे घर के बच्चों को, भाई और बहनों को, पढ़े-लिखों को या तो पढ़ाया जा सके या सुनाया जा सके। उनका बौद्धिक परिष्कार करने के लिए कुछ साधन-सामग्री तो होनी ही चाहिए। साधन-सामग्री के बिना उनको क्या सिखाया जाए, क्या पढ़ाया जाए, क्या सुनाया जाए? इस तरीके से उस साधन-सामग्री को घर की एक संपदा के रूप में, एक तिजोरी के रूप में, एक जेवर के रूप में, एक अँगूठी के रूप में घर में रखा जाना चाहिए, और वह धन प्रत्येक घर में खर्च किया जाना चाहिए, जिसकी न्यूनतम मात्रा दस पैसे कही गई है। युगनिर्माण योजना ने इस बात का प्रयत्न किया है कि इस तरह का साहित्य तैयार किया जाए, ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ निकाली जाएँ, जो इस युग की बौद्धिक भूख को बुझाने में समर्थ हों और ऐसे साहित्य को प्रत्येक आदमी अपने घर में रखे। उसके लिए दस पैसे खर्च करे। यह दस पैसा चिड़ियों को दाना चुगाने के लिए नहीं है और गऊओं को घास खिलाने के लिए नहीं है, हवन आहुतियाँ देने के लिए नहीं है। यह सिर्फ एक ही काम के लिए माँगा गया है कि इसको ज्ञानयज्ञ के लिए खर्च किया जाए। इस तरह का साहित्य अपने घर में रखा जाए, अर्थात् घर में एक लाइब्रेरी स्थापित की जाए। इस घरेलू लाइब्रेरी के द्वारा

अपना स्वयं का, अपने कुटुंब का, अपने पड़ोसियों का और अपने रिश्तेदारों का बौद्धिक परिमार्जन करने के लिए एक क्रम बनाया जाए।

मित्रो! समय को खर्च करने के लिए भी बात इसीलिए की गई है कि अगर हम केवल साहित्य रख दें और पुस्तकालय खोल दें, घर में रख दें या किसी लाइब्रेरी में रख दें तो उससे कुछ बनने वाला नहीं है। आज मनुष्य की ज्ञान की भूख मर चुकी है। उसकी मरी हुई भूख को जगाने के लिए केवल साहित्य को रख देना काफी नहीं है, वरन उसकी इच्छा को जगाना भी जरूरी है। हमने देखा है कि उपन्यास पढ़ने वाले, गंदी किताबें पढ़ने वाले ढेरों हैं। वे लाइब्रेरियों में जाते हैं और पैसा देते हैं, किताबें खरीदते हैं, नॉवेल खरीदते हैं, गंदी किताबें खरीदते हैं, और उन पर पैसा खर्च करते हैं, लेकिन अगर अच्छी किताबें लेने के लिए कहा जाए तो मुँह मोड़ लेते हैं और कहते हैं कि ये हमें अच्छी नहीं लगतीं, हमको फुरसत नहीं है, समय नहीं है। इसकी वजह एक ही है कि जीवन जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न के ऊपर उनकी कोई इच्छा नहीं है। उनकी इच्छा सो गई है, वे जीवन के स्वरूप को भूल गए हैं। जीवन की आवश्यकताओं के बारे में उन्हें कोई ज्ञान नहीं है।

रुचि जाग्रत करनी होगी

हमारा पहला काम लोगों की मनःस्थिति के अनुसार पुस्तक पढ़ाना नहीं है, वरन पहला काम उनकी रुचि को जाग्रत करना है। किसी एक जगह किताबों का गट्ठा रख देने से यह काम बनने वाला नहीं है। इसके लिए घर-घर जाना पड़ेगा। विचारों की उपयोगिता, विचारों का मनुष्य के जीवन पर प्रभाव और विचारों का नैतिक और राष्ट्रीय जीवन पर प्रभाव आदि बहुत कुछ हमको उन्हें सिखाना और समझाना पड़ेगा और शुरुआत करनी पड़ेगी, ताकि आदमी की समझ में यह आ जाए कि विचारों का भी कोई मूल्य होता है। सही विचार करना आ जाए तो हम अपनी आंतरिक और बाह्य जीवन की समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हो सकते हैं।

इस प्रकार इतनी बात समझ में आ जाए कि इसके लिए घर-घर जाना पड़ेगा, बहस करनी पड़ेगी और समझाना पड़ेगा, रुचि पैदा करनी पड़ेगी। वोट माँगने के लिए जिस तरीके से चालाकियाँ इस्तेमाल की जाती हैं, खुशामदें की जाती हैं, उसी चालाकी और खुशामद के साथ-साथ हमें घर-घर, जन-जन के पास जाना

पड़ेगा। अगर हम ऐसा नहीं कर सकते हैं तो लोकरुचि की ओर नहीं जाया जा सकता। लोकरुचि नहीं जगाई जा सकती तो साहित्य की क्या कीमत, लाइब्रेरी की क्या कीमत? कुछ कीमत नहीं है। वह कूड़े के बराबर है। पुस्तकें छापकर रखते चले जाइए, या कोई आदमी खरीद लाए और एक लाइब्रेरी खोल दे या एक कोने में डाल दे तो उसे दीमक खाएगी, चूहे खा जाएँगे। इससे क्या बनने वाला है?

चलता-फिरता पुस्तकालय

मित्रो! आज सबसे बड़ा प्रश्न यही है कि लोकरुचि ज्ञान की ओर से जो अस्त-व्यस्त हो गई है, उसको इस तरीके से जगाएँ—इसके लिए झोला पुस्तकालय चलाने की बात कही गई है। दस नया पैसा और एक घंटा समय देने की बात कही गई है। आप कहीं भी जाएँ—अपने ऑफिस में जाएँ, रेलगाड़ी में जाएँ, सफर में जाएँ, रिश्तेदारी में जाएँ एक छोटा बैग अपने पास रखें। उसमें ५-२५ किताबें, जो बड़ी उपयोगी हैं और बौद्धिक क्रांति के लिए मार्गदर्शन करती हैं, उनको अपने साथ लेकर जाएँ और जिस किसी आदमी से हमारी बात-चीत हो—बात-चीत का सिलसिला शुरू हो अपने मिशन की बात करके थोड़ी सी रुचि जाग्रत करके और उसका लाभ एवं माहात्म्य बता करके एक पुस्तक चुपके से उसकी ओर खिसका दी जाए और पढ़ने के लिए कहा जाए। उसके पास किताब पढ़ने लायक समय न हो तो जो विज्ञप्तियाँ हैं, उनको पढ़ने के लिए कहा जाए और उसको वापस लिया जाए।

लोगों को पढ़ने के लिए देना और वापस लेना—ये पढ़े-लिखे लोगों के लिए ठीक है, लेकिन इस देश में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या तो बहुत कम है। अधिकांश लोग तो बिना पढ़े ही हैं। बिना पढ़े लोगों को जहाँ भी मौका मिल जाए, वहाँ इकट्ठा कर लें। चाहे जहाँ इकट्ठा बैठे हों, उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि आपके पास दो-चार मिनट का समय हो तो एक बात आपको सुना दूँ क्या? अगर वे कहें कि सुनाइए तो एक विज्ञप्ति सुना दीजिए। दस मिनट में यह खत्म हो जाती है। यह विज्ञप्तियाँ बड़ी मजेदार हैं। वहाँ सुना दीजिए, यहाँ सुना दीजिए, घर में सुना दीजिए, रेलगाड़ी में सुना दीजिए, मोटर-बस में सुना दीजिए। इस तरीके से बिना पढ़ों को ये पुस्तकें सुनाई जा सकती हैं, पढ़ों को पढ़ाई जा सकती हैं। इस विचारधारा को हममें से हर आदमी को

मिशनरी स्पिरिट के द्वारा फैलाने की कोशिश करनी चाहिए।

ज्ञानमंदिरों की स्थापना

साथियो! मैंने एक और बात ये कही है कि हर जगह ज्ञानमंदिर स्थापित किए जाने चाहिए। ज्ञानमंदिर अर्थात्—चल पुस्तकालय। चल पुस्तकालय आज की सबसे बड़ी महती आवश्यकता है। पुस्तकालय खोलने को मैं ज्यादा महत्त्व नहीं दूँगा। पुस्तकालय कोई आदमी खोल ले और किताबें मैंगाने लगे, फिर भी पढ़ने वाले सब बेवकूफी की किताबें पढ़ेंगे, अखबार पढ़ेंगे, पत्रिकाएँ पढ़ेंगे। अच्छी किताबों को कोई नहीं छुएगा। हमको लोकरुचि जगाने के लिए—जिस तरीके से चाय पिलाने वाले लोग और चाय का प्रचार करने वाले लोग घर-घर जाते थे और फोकट में चाय पिलाते थे। एक पैसे का चाय का पैकेट बेचते थे। चाय की प्रशंसा करते थे। उन चाय वालों के तरीके से हमको ठीक वही काम करना पड़ेगा। उसी रास्ते पर चलना पड़ेगा। झोला पुस्तकालय के माध्यम से हमको घर-घर जाना चाहिए, यह भी एक तरीका है, लेकिन उससे भी अच्छा तरीका यह है कि एक धकेलगाड़ी बना ली जाए और उस पर चल पुस्तकालय बना दिया जाए।

पहले लोग तीर्थयात्रा करते थे और भगवान के घर पर जाते थे। अब भगवान को यात्रा करनी चाहिए और लोगों के घरों पर जाना चाहिए। मरीज जब बच्चा था, तो अस्पताल जाता था, डॉक्टर से कहता था कि नब्ज देखिए, लेकिन जब मरीज का बुरा हाल हो जाता है और वह चलने लायक नहीं रहता तो डाक्टर को ही जाना पड़ता है और डॉक्टर को ही नब्ज देखनी पड़ती है। डॉक्टर को ही मरीज के सामने खड़े रहना पड़ता है और जब उसकी हालत ज्यादा खराब हो जाती है तो वह सेवा भी करता है। आज समाज की हालत उसी तरह की है, वह अस्पताल जाने की स्थिति में नहीं है और डाक्टर से प्रार्थना करने की स्थिति में नहीं है। आज तो वह लंघन की बीमारी की तरीके से चारपाई पर पड़ा हुआ है। हम समाजसेवी डॉक्टरों को, लोकप्रेमियों को ज्ञानमंदिर पर लोगों को बुलाने की उम्मीद नहीं रखनी चाहिए, बल्कि ज्ञानमंदिर को उनके घर पर पहुँचाना चाहिए। मरीज दवा लेने अस्पताल आएँगे, यह नहीं हो सकता, अब तो दवा को मुँह में डालने के लिए चम्मच सहित जाना पड़ेगा और उनकी नसों में ग्लूकोज चढ़ाना पड़ेगा।

घरेलू गाड़ियाँ : ज्ञानरथ

मित्रो! आज हमारे समाज की यही स्थिति है, हमारे मानव जीवन की यही स्थिति है। इसके लिए चल पुस्तकालयों को बहुत महत्त्व दिया गया है और यह कहा गया है कि हर गाँव में एक धकेलगाड़ी बना ली जाए। दो सौ से तीन सौ रुपये की ठोस चार पहिए की अच्छी गाड़ी बन जाती है। उसको कवर्ड कर दिया जाए और अच्छे ढंग से बना लिया, अथवा कम पैसे हैं तो खुला भी रखा जा सकता है। इस तरह धकेलगाड़ी में

.....
भगवान बुद्ध परिव्रजन करते हुए एक ब्राह्मण के घर ठहरे। जब ब्राह्मण को मालूम हुआ कि वह बुद्ध हैं तो उसने जी भरकर गालियाँ दीं, अपशब्द कहे और तुरंत निकल जाने को कहा।

बुद्ध देर तक सुनते रहे। जब उन सज्जन ने बोलना बंद किया तो उन्होंने पूछा—“द्विजवर ! आपके यहाँ अतिथि आते होंगे तो आप उनका सुंदर भोजन और मिष्टान्न से स्वागत करते होंगे ?” ‘इसमें क्या शक ?’ उन्होंने कहा और यदि किसी कारणवश मेहमान उसे स्वीकार न करे तो आप उन पकवानों को फेंक देते होंगे ?

“फेंक क्यों देते हैं, हम स्वयं ग्रहण कर लेते हैं।” उसने विश्वासपूर्वक उत्तर दिया।

तो हम आपकी यह गालियों की भेंट स्वीकार नहीं करते, अपनी वस्तु आप ग्रहण करिए। यह कहकर बुद्ध मुस्कराते हुए वहाँ से चल पड़े।

.....
रखकर के युगनिर्माण साहित्य, जिसमें पहले विज्ञप्तियाँ आती हैं, इसके बाद में ट्रेक्ट आते हैं, उसको लेकर के घर-घर जाया जाए और उसको पुस्तकालय कहा जाए, बिक्री केंद्र नहीं। पहले हर आदमी को एक-एक विज्ञप्ति पढ़ने को दी जाए, जो विचारशील लोग हैं। जब वे रुचि लेने लगे तो ट्रेक्ट दिए जाएँ। अगर विज्ञप्ति किसी ने ले ली और वापस नहीं किया, फेंक दी तो जानना चाहिए कि अभी ये इसी लायक हैं कि विज्ञप्तियों से ही इनको ट्राई किया जाए। विज्ञप्तियों से ही कई दिनों तक उन्हें ट्राई करते रहना चाहिए और जब यह मालूम पड़े कि थोड़ी रुचि जाग्रत हुई, तब किताब देनी चाहिए।

शुरू में ही आपने किताब दे दी तो वह पढ़ नहीं पाएगा, बोर हो जाएगा और फेंक देगा। फिर आप शिकायत करेंगे कि हमारी किताब को पढ़ा नहीं, फेंक दिया।

साथियो! इस तरीके से विज्ञप्तियों के आधार पर रुचि जानना, थोड़ी बात-चीत करना, माहात्म्य बताना, लोगों को समझाना कि इस विज्ञप्ति को पढ़कर अमुक व्यक्ति ने अपने जीवन में लाभ उठाया, आप भी पढ़िए। हमको यह पसंद आया और हमको यह लाभ हुआ, आप भी पढ़िए। इस तरह की प्रशंसा और माहात्म्य बताने के बाद में आदमी की थोड़ी रुचि का जाग्रत होना संभव है। इस तरीके से धकेलगाड़ियाँ, चल पुस्तकालय सामूहिक रूप से चलाए जाने चाहिए अथवा व्यक्तिगत रूप से पुस्तकों की बिक्री हो जाए तो भी अच्छी बात है। अगर बिक्री हो जाती है तो आदमी अपने घर पर पुस्तकें रखेगा और अगर बिक्री नहीं होती तो पढ़ाने का काम तो चल ही रहा है। बिक्री हो जाए तो अच्छी बात है। उसके लिए प्रयत्न भी करना चाहिए कि लोग पुस्तकें खरीदें, लेकिन खरीदना ही हमारा मूल उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य अपना पुस्तकालय है, बिक्री क्रम चलाना नहीं है, दुकान चलाना नहीं है, कोई फेरी लगाना नहीं है, धंधा करना नहीं है, वरन लोगों में ज्ञान की धारा को वितरण करना है।

योजना छोटी परिणाम महान

चल पुस्तकालय, झोला पुस्तकालय, दस नया पैसा अपनी घरेलू लाइब्रेरी के लिए निकालना और एक घंटा

समय लोक-मंगल के लिए, ज्ञानयज्ञ के लिए, प्रचार-प्रसार करने के लिए—यह आज की हमारी कार्यशैली है। यह है तो जरा सी, छोटी सी योजना, लेकिन हम देखते हैं कि इस प्रयास के द्वारा अगर समाज में नया जीवन लाया जा सका और लोगों के सोचने का तरीका बदला जा सका, लोगों के अंदर प्राण पैदा किया जा सका, लोगों के अंदर उल्लास-उत्साह पैदा किया जा सका, लोगों को सच्चिंतन की दिशा दी जा सकी तो निश्चित रूप से मनुष्य जो आज दिखाई पड़ता है, वह कल नहीं रहेगा, और जो समाज आज दिखाई पड़ता है, वह कल नहीं रहेगा आज जो विकृतियाँ सारे समाज को भ्रष्ट किए हुए हैं, वे कल नहीं रहेंगी। जमाना अवश्य बदल जाएगा। जमाना बदलने के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता ज्ञान की है। इन चिन्तारियों की मशाल अगर जलाए रखी जा सके तो हम न केवल भारतवर्ष की, वरन समस्त विश्व की, समस्त प्राणिमात्र की, सारे जड़-चेतन जगत की महती सेवा कर सकते हैं। ज्ञानयज्ञ हमारा विश्व-कल्याण का यज्ञ है। उसको केवल भौतिक दृष्टि से हजार गुना, लाख गुना बढ़ा माना जाना चाहिए और हर विचारशील को ज्ञानयज्ञ के लिए अपने हिस्से का कर्तव्यपालन करने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

आज की बात समाप्त।

“ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः शान्तिरेधि ॥”

॥ ॐ शान्तिः ॥



गांधी जी उन दिनों अफ्रीका में थे। उनके साथ जर्मनी के निवासी कैनल बैक रहते थे। दोनों में अच्छी मित्रता थी। वहाँ के पठानों को गांधी जी की नीति पसंद न आई तो वह नाराज हो गए।

कैनल बैक को ऐसा अनुभव हुआ कि यह पठान कभी भी गांधी जी पर आक्रमण कर सकते हैं। अतः उन्होंने गांधी जी की सुरक्षा हेतु एक रिवाल्वर की व्यवस्था कर ली। गांधी जी के साथ कैनल बैक को कहीं जाना होता। वह अपने कोट की जेब में रिवाल्वर छिपा कर ले जाते, गांधी जी को इसका पता लगा तो उन्होंने उनके साथ रिवाल्वर रखने का कारण पूछा।

कैनल बैक बोले, “मुझे ज्ञात हुआ है कि कुछ पठान आपसे रुष्ट हो गए हैं। पता नहीं कब आप पर आक्रमण कर दें।”

बापू बोले, “मेरी रक्षा का दायित्व ईश्वर के हाथ में था और अब आप उसे अपने हाथ में ले रहे हैं। यह भी खूब रही। आपने मेरे प्रति मैत्री और आत्मीयता का भाव रखने के कारण ईश्वर के अधिकार को छीनने का साहस किया।”

कैनल बैक अब क्या कहते ! उन्होंने रिवाल्वर निकालकर बाहर फेंक दिया।

अध्यात्मवादी को न कहीं भय होता है, न सुरक्षा की चिंता।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—

भक्ति संबंधी भ्रांतियाँ एवं उसका सच्चा विज्ञान भाग—१

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

सीपों और बाँसों की शिकायत

देवियो-भाइयो! जब स्वाति नक्षत्र आया और स्वाति नक्षत्र में वर्षा हुई तो बरसात से सीपों में मोती पैदा हो गए। बाँसों में वंशलोचन पैदा हो गए। सबने खुशियाँ मनाई, लेकिन बहुतों ने ये शिकायत की कि हमारे अंदर मोती क्यों नहीं पैदा हुए? थोड़ी-सी सीपों के अलावा सभी सीपें इकट्ठी होकर जमा हो गईं और शिकायत करने लगीं कि आपने हमारे अंदर मोती क्यों नहीं पैदा किए? हमारी पुकार को क्यों नहीं सुना? स्वाति की बूंदों ने जवाब दिया कि आप में से जिन सीपियों ने मुँह खोलकर रखा था और जिन सीपों में मोती पैदा करने की ताकत थी, उनको हमारी सहायता मिली और मोती पैदा हो गए। जिन सीपों की बनावट ऐसी नहीं थी कि उनमें मोती पैदा किए जा सकें और जिन सीपों ने मुँह नहीं खोले, वे खाली हाथ रह गईं और खाली हाथ रहना पड़ेगा। जिन बाँसों के पेड़ों के अंदर सूरख नहीं थे, उनमें वंशलोचन पैदा नहीं हो सका। पेड़ों की शिकायत अपनी जगह पर कायम और स्वाति बूंदों की सफाई अपनी जगह पर कायम। ये शिकायतें तो होती रहेंगी और होती रहनी चाहिए कि हमने भगवान की भक्ति की, पूजा की, उपासना की, जप-अनुष्ठान किए फिर भी हम खाली हाथ रह गए। शिकायत अपनी जगह पर सही और जवाब एवं समाधान अपनी जगह पर सही है। आपने मुँह क्यों नहीं खोला? अपने अंदर विशेषता पैदा क्यों नहीं की? जिससे हमारी स्वाति की बूँदें तुम्हारे अंदर प्रवेश करने के बाद में मोती बना देने में समर्थ होती। तुमने यह क्यों नहीं किया?

चट्टानों को भी है शिकवा

मित्रो! एक बार बहुत जोर से वर्षा हुई। सब जगह पानी-ही-पानी दिखाई देने लगा, लेकिन चट्टानों ने शिकायत की कि हमको इस पानी से कुछ भी फायदा नहीं हो सका। वर्षा ने हमारे साथ अन्याय किया, पक्षपात किया। हजार वर्षों से एक भी घास पैदा नहीं हो रही है। हजारों इंच वर्षा हो गई, पर घास का एक तिनका तक पैदा नहीं हुआ तो क्या यह शिकायत गलत है? बिलकुल सही है। सौ फीसदी सही है। यह बादलों का बड़ा अन्याय व पक्षपात है। ये कहीं हरियाली पैदा करते हैं, कहीं तालाब बना देते हैं, लेकिन इन चट्टानों को कोई फायदा नहीं पहुँचा सकते। क्यों साहब! ये शिकायतें सही हैं? हाँ, शिकायतें तो बिलकुल सही हैं, लेकिन जवाब उससे भी ज्यादा सही हैं। आपने अपने अंदर मुलायमियत क्यों पैदा नहीं की? अगर आपने अपने अंदर मुलायमियत पैदा की होती, अपने भीतर गड्ढे बनाए होते, तो हमने आपके भीतर तालाब, झरने, गड्ढे भर दिए होते। आप क्यों नहीं अपने भीतर गड्ढे बनाते? मुलायमी क्यों नहीं अपने भीतर पैदा करते?

साथियो! समाधान अपनी जगह पर सही है। भगवान अपनी जगह पर सही है और भक्त अपनी जगह पर सही है। हमने आपका जप, ध्यान, पूजन किया, अनुष्ठान किया, भजन किया। वो तो सब कुछ ठीक है आपका, लेकिन जप-पूजन किस काम के लिए किया जाता है, वह काम आपने क्यों नहीं किया? तो आपको रिझाने के लिए कौन-सा काम किया जाता है? नाच-कूद करते तो हैं। भगवान को रिझाने के लिए नाच-कूद करने की कोई जरूरत नहीं है। आपका नाच-कूद देखने के लिए भगवान को फुरसत नहीं है। बाजीगर तरह-तरह की छलाँग लगाते, तमाशे दिखाते हैं। बच्चों को बहकाने के लिए यह काफी

है, लेकिन बड़े आदमियों को उन बहकावों को देखने की कोई फुरसत नहीं है।

पात्रता है कि नहीं ?

मित्रो! आपका अनुष्ठान देखने के लिए गायत्री माता को फुरसत नहीं है। उनके पास जरा-सा भी समय नहीं है कि आप कितना नाच-कूद कर सकते हैं, कितनी बाजीगरी दिखा सकते हैं और कितनी तरह के खेल-खिलौने कर सकते हैं। आपका खेल-खिलौना देखने को उनको फुरसत कहाँ है? उनको एक ही चीज देखने की फुरसत है कि आपके अंदर पात्रता कितनी है। आपको कोई सुख मिला या और कोई दूसरी बात हुई, यह न किसी को सुनने की जरूरत है और न किसी के सुनने से फायदा है। आध्यात्मिकता का एक ही उद्देश्य है और दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है, वह उद्देश्य यह है कि आदमी की पात्रता का विकास हो। बादल पानी तो बरसा सकते हैं, लेकिन पानी से फायदा उठाने के लिए कोई-न-कोई बरतन घर में रखना पड़ेगा। एक कटोरी आपके आँगन में रखी है तो एक ही कटोरी पानी मिलेगा। यदि एक बालटी आँगन में रखी है तो आपको एक बालटी भर पानी मिलेगा। एक गड़ढा बना करके रखा है तो गड़ढा भर पानी मिलेगा।

मित्रो! आपको भगवान से, बादलों से कोई शिकायत नहीं करनी चाहिए। आप अपने आपसे शिकायत कीजिए कि अपने अंदर हमने पात्रता का विकास क्यों नहीं किया; जिसकी वजह से भगवान जी को झूख मारकर आना पड़ता। अब तो मैं ये कहता हूँ कि भगवान जी को झूख मारकर हमारे चरण चूमने पड़ते, जैसे कि हम भगवान जी के चरण चूमते हैं। आप भगवान को मजबूर कीजिए, भगवान पर दबाव डालिए और भगवान को विवश कर दीजिए लाचार कर दीजिए, इस बात के लिए कि वे आपकी मदद करें और सहायता करें। आप लाचार क्यों नहीं करते भगवान जी को? आप भगवान जी को लाचार कीजिए—अपने चरित्र के द्वारा, अपने गुण, कर्म और स्वभाव के द्वारा। वास्तव में भक्ति का सारा आधार जो खड़ा हुआ है, वह भगवान के ऊपर दबाव डालने के लिए नहीं है, वरन अपने ऊपर दबाव डालने के लिए है। भक्ति अपने भीतर प्यार और मुहब्बत जगाने के लिए की जाती है।

कब मानें कि भक्ति का विकास हो रहा है

साथियो! हमारे भीतर प्यार का माददा जगे, हमारे भीतर मुहब्बत का माददा जगे तो समझना चाहिए कि हमारे भीतर भक्ति का विकास हो रहा है। अभी तो हमारा दिल पत्थर जैसा कठोर, चट्टान जैसा कठोर है, जिसके कारण हमको किसी के ऊपर दया नहीं आती है। हम किसी के दुःख से पिघलते नहीं हैं; क्योंकि मुरगी मरती है तो मरे, हमको तो जायका चाहिए। जीभ को जायका चाहिए। अरे साहब! मुरगी की जान चली जाएगी तो हमें कोई ऐतराज नहीं है। जान निकलती रहे, आप हमको विटामिन लाकर दीजिए। बेटे! हम पत्थर के बने हुए हैं, कठोर बने हुए हैं। हम चट्टान हो गए हैं, हमें किसी के ऊपर दया-धर्म करने की जरूरत नहीं है। हमारे पड़ोस के आदमी दुखी फिरते हैं तो फिरें, हम क्या कर सकते हैं? दूसरों को हमारी सेवा की जरूरत है तो हम क्या कर सकते हैं? हमारा पैसा, जो अय्याशी में खर्च होता चला जा रहा है, जो संग्रह में खर्च होता चला जा रहा है, जो निठल्लों और निकम्मों के लिए जमा होता हुआ चला जा रहा है। आपकी एक-एक पाई की उन लोगों के लिए जरूरत है जो पिछड़ गए हैं, जो घायल होकर गिर पड़े हैं, उन्हें आपके पैसे की जरूरत है।

नहीं साहब! हम तो अपना पैसा किसी को नहीं दे सकते। हम तो जमा कर सकते हैं और अपनी औलाद को दे सकते हैं। अरे! तू पत्थर का, चट्टान का बना हुआ है, फौलाद का बना हुआ है, ऐसी धातु से बना हुआ है, जिसे हम अष्टधातु कह सकते हैं। तेरा कलेजा अष्टधातु का बना हुआ है, फौलाद का बना हुआ है। अष्टधातु का, फौलाद का जिनका दिल बना हुआ है, उन्हें किसी के ऊपर दया नहीं आती। वे सेवा करने के लिए जरा भी तैयार नहीं होते। अपनी धुलाई और सफाई करने में तनिक भी विश्वास नहीं करते। मित्रो! मैं कैसे कह सकता हूँ कि यह भक्ति है?

धिनौनी भक्ति-विडंबना भरा स्वरूप

मित्रो! भक्ति का स्वरूप पिछले दिनों बहुत ही धिनौना होता हुआ चला गया। लोगों ने परावलंबन का अर्थ भक्ति समझा। भगवान जी की खुशामद कीजिए, चापलूसी कीजिए और भगवान जी से ये माँगिए, भगवान जी से वो माँगिए। यह परावलंबन आध्यात्मिकता के

मूलभूत सिद्धांतों के खिलाफ है। भीख माँगना अध्यात्मवाद के मूल सिद्धांतों के खिलाफ है। मुझसे अगर कोई ये कहे कि चोर बुरा होता है या भिखारी? तो मैं दोनों का मुकाबला करते हुए चोर को कम सजा दूँगा और भिखारी को ज्यादा सजा दूँगा; क्योंकि भिखारी ने अपना ईमान गँवा दिया, अपनी आस्था गँवा दी, अपना स्वाभिमान गँवा दिया और सब कुछ गँवा दिया। भीख माँगने के लिए उतारू हो गया। चोर ने भीख नहीं माँगी। चोर ने कहा कि जो कोई जोखिम होगा, सो उठाएँगे। हम अपनी इज्जत नहीं गँवा सकते और किसी के आगे पल्ला नहीं पसार सकते। पल्ला न पसार करके चोर चला गया और डाका डालने लगा, जेब काटने लगा। जोखिम उठाकर के चोर छत पर चढ़ गया। कुत्ता काट खाएगा तो काट खाए, जख्म हो गया तो हाँ जाए। जेल जाना पड़े तो जाएँगे, पिटाई होगी तो खाएँगे, लेकिन किसी आदमी के सामने हम अपनी इज्जत-आबरू नहीं गँवाएँगे और किसी के सामने फोकट में कुछ माँगने के लिए चापलूसी नहीं करेंगे।

परावलंबी मत बनिए

साथियो! भिखारी की बनिस्बत मुझे चोर पसंद है। नापसंद तो मैं चोर को भी करता हूँ, लेकिन भिखारी को ज्यादा नापसंद करता हूँ; क्योंकि भिखारी ने अपना स्वावलंबन गँवा दिया। भिखारी ने अपना आत्मसम्मान गँवा दिया, आत्मगौरव गँवा दिया। बेटे! जिसने अपना आत्मगौरव गँवा दिया, वह खाली हो गया, निरर्थक हो गया। अब यह अगर भगवान का भक्त हो गया तो भी मैं क्या कर सकता हूँ? मित्रो! भगवान की भक्ति का तरीका तो आपको मालूम होना चाहिए। सुदामा जी इच्छा लेकर के भगवान श्रीकृष्ण के पास गए थे कि उनको कुछ मिलना चाहिए। सुदामा से भगवान जी ने कहा—“भाईसाहब! हमारे यहाँ कायदा कुछ अलग है। हम पहले लोगों से कुछ माँगते हैं कि आपके पास क्या है निकालिए? तब हम आपको देने के लिए तैयार हैं। जो भी आपके पास हो, पहले हमारे हवाले कीजिए, फिर हम विचार करेंगे कि हमारे पास जो है, सो हम आपको दे सकते हैं कि नहीं दे सकते।” सुदामा जी अपनी पोटली बगल में दबाए बैठे थे, संकोच की वजह से। उन्होंने कहा—“भगवान की भक्ति का तरीका यहाँ से प्रारंभ होगा कि आपकी पोटली में जो कुछ भी है, उसे हमारे हवाले कीजिए।” भगवान जी ने जबरदस्ती उनसे

पोटली छीन ली। पोटली जब खाली हो गई तब भगवान जी ने कहा—“अच्छा आप खाली हो गए, लीजिए अब हम भी खाली होते हैं।” भगवान जी के पास जो कुछ भी सामान था, वह सब उन्होंने द्वारका से पोरबंदर भेज दिया, सुदामानगरी को भेज दिया। उन्होंने कहा—“आप खाली हो गए हमारे लिए और हम खाली हो गए आपके लिए।”

मित्रो! भक्ति की बात यहाँ से शुरू हुई है, आप भी वहीं से शुरू कीजिए। ऐसा नहीं हो सकता कि ये हमारी चीज है और हम इसे बगल में दबाकर रखेंगे, लेकिन आपसे लेंगे। बेटे! ये संभव नहीं है, हम खुशामद कर सकते हैं, चापलूसी कर सकते हैं, चावल, धूपबत्ती खिला सकते हैं। मुबारक हो आपकी धूपबत्ती और चावल आप इसे अपने पास रखिए। अच्छा साहब! तो हम चौबीस हजार जप करके सुना सकते हैं। वह भी आपको मुबारक। चौबीस हजार जप सुनने की अपेक्षा हमारे लिए ये ज्यादा अच्छा है कि सीलोन रेडियो लगा लें और अपना टेपरिकॉर्डर खोल लें, रिकॉर्डप्लेयर खोल लें और लता मंगेशकर के बड़िया-बड़िया गाने सुनें। चौबीस हजार अनुष्ठान सुनने की हमें फुरसत नहीं है। आपके चौबीस हजार के अनुष्ठान में कोई गाना नहीं है, कोई बजाना नहीं है। चल-पागल कहीं का।

भक्ति का विज्ञान समझें

मित्रो! क्या करना पड़ेगा? आपको असलियत समझनी पड़ेगी। असलियत कड़ुवी है तो रहे, भक्ति का विज्ञान आपको जानना चाहिए। भक्ति का विज्ञान है—आदमी की जिंदगी में मुहब्बत का सराबोर होना। हम भगवान की इस व्यायामशाला में भक्ति का अभ्यास करते हैं, प्यार का अभ्यास करते हैं, मुहब्बत का अभ्यास करते हैं। प्यार करने का अभ्यास कैसे किया जाता है? प्यार कैसे होता है, जरा बताना? प्यार करने का दुनिया में एक ही तरीका है कि जिसको हम मुहब्बत करते हैं, उसको कुछ दें। बच्चे को हम प्यार करते हैं तो उसके लिए खिलौने, टॉफी आदि लाकर देते हैं। गुब्बारा और कपड़े लाकर देते हैं; क्योंकि हम उसको प्यार करते हैं। त्रीबी को हम प्यार करते हैं, उसके लिए सेंट की शीशी लाकर देते हैं, रूमाल, साबुन, कंधा, नायलॉन की साड़ी लाकर देते हैं। सिनेमा का टिकट लाकर देते हैं। प्यार-

मुहब्बत में देने के अलावा और कुछ नहीं है। भगवान की भक्ति अगर आपके पास है तो आप देना शुरू कीजिए, जैसे हम धूपबत्ती, चंदन, रोली, मिष्ठान, फूल आदि लाकर देते हैं। दीजिए, देने से शुरू होती है भगवान की भक्ति। भक्ति का मतलब है मुहब्बत और मुहब्बत का मतलब है—देना।

देने के बाद लें

मित्रो! जब हम देना शुरू करते हैं तो क्या हो जाता है? हमारा वो अधिकार हो जाता है कि पाने के लिए हम अपने आपको पात्र साबित कर सकें। हम नाक से गंदी हवा निकाल देते हैं तो इस बात के अधिकारी हो जाते हैं कि हमको नई वाली साँस मिले। पेट में से जब हम भरे हुए मल को निकाल देते हैं तो इस बात के अधिकारी हो जाते हैं कि नई खुराक हम पाएँ। नई खुराक पाने के लिए देना आवश्यक है। पेड़ पुराने वाले पत्ते जब गिरा देते हैं तो बाद में मिलती हैं नई कोपलें। नहीं साहब! हमको कोपलें दीजिए तब हम अपने पुराने पत्ते गिराएँगे। नहीं बेटे! ऐसा नहीं हो सकता, पहले पुराने पत्ते गिरा तब नई कोपलें पा। नहीं साहब! हम पुराने पत्ते कायम रखेंगे और नई कोपलें भी दीजिए। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हम आपको बढ़िया-से-बढ़िया नई कोपलें देंगे, लेकिन पहले पत्ते गिराकर दिखाइए। नहीं साहब! पुराने पत्ते हम नहीं गिरा सकते। नहीं बेटे! पुराने पत्ते गिराने पड़ेंगे तब नई कोपलें मिलेंगी। भक्ति इसी का नाम है। भक्ति भावावेश का नाम नहीं है, जैसा कि आम लोग समझते हैं।

भावावेश नहीं है भक्ति

आम लोग भावावेश को भक्ति कहते हैं। उनकी दृष्टि में भक्ति कैसी होती है? भक्ति ऐसी होती है, जैसे—आदमी नाचते हैं, कूदते हैं, उछलते हैं, आँखों में से आँसू बहाते हैं। ऐसी भक्ति का तमाशा तो मैंने कई जगह देखा। अब मैं नाम नहीं बताना चाहता; क्योंकि आप लोग स्वयं जानते होंगे। एक बार मैं वहाँ गया तो लोग मुझे कीर्तन में ले गए। बोले—अरे साहब! ऐसा कीर्तन तो आपने कभी नहीं देखा होगा, हम ऐसा कीर्तन दिखाकर लाएँगे। चला गया वहाँ, मैंने अपनी जिंदगी में ऐसा बढ़िया कीर्तन कभी नहीं देखा था। लोग ऐसे नाच रहे थे और नाचते-नाचते इस कदर बेहोश हो जाते थे, जैसा चैतन्य महाप्रभु के बारे में

सुना है। चैतन्य महाप्रभु के बारे में सुना था कि भक्ति में जब वे कीर्तन करते थे तो बेहोश हो जाते थे, गिर पड़ते थे और जो कोई आ जाता था, उससे लिपट जाते थे और रोने लगते थे, हँसने लगते थे। उनके होश-हवाश गायब हो जाते थे। ठीक ऐसा ही कीर्तन मैंने एक बार देखा—लोग 'हारे-रामा-हारे कृष्णा।' गा रहे थे, आपस में लिपट गए, गिर पड़े, उठा लिए, बड़ा मजेदार कीर्तन हो रहा था। मैंने कहा कि भाई! यह बहुत जबरदस्त कीर्तन है। अरे गुरुजी! आपको मालूम नहीं, ये क्या मामला है? क्या है, बताइये? रविवार का दिन है। इन्होंने सुबह ही सब इंतजाम कर रखा है। ये लोग वकील, मुंशो आदि बहुत बड़े लोग हैं और ये सब शराब पीते हैं, शराब पी कर के इन्होंने इसे भक्ति का रूप बना लिया है। कीर्तन करते हैं और ये सब शराब के नशे में धुत हैं। धुत होकर, 'हारे रामा-हारे कृष्णा' कर रहे हैं। उछल-कूद कर रहे हैं, आँसू टपका रहे हैं। ऊह रहे हैं भावावेश आ गया, भक्ति का भूत आ गया, भूत की भक्ति आ गई। क्या यही भक्ति है? पागल कहीं का।

मित्रो! भक्ति ऐसी नहीं हो सकती। भक्ति का इन भावों से कोई ताल्लुक नहीं है। ये क्षणिक आवेश हैं। अभी क्षण भर में प्रेम का आवेश आ सकता है और अभी क्षण भर में बुराई का आवेश आ सकता है। आवेशों में कोई दम नहीं है और न कोई सार्थकता है। हाँ, है तो निरर्थकता मात्र। मित्रो! भक्ति का ताल्लुक जैसा आम लोगों ने समझा है, वैसा है नहीं। गुरुजी! पहले हमको भगवान पर बड़ा प्यार आता था, पर अब तो ठंडा हो गया। बेटे! वो तो भावावेश है, जब किसी आत्मीय व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो आदमी को बड़ा रोना आता है। छह महीने बाद जब कोई पूछता है कि आपके पिताजी मर गए थे तो वही कहता है कि हाँ साहब! पिताजी बुढ़े थे और मर गए। अब तो हमारा सारा काम चल रहा है तब तो हमें बड़ा रोना आता था। रोना क्या है? भावावेश है। इसी तरह विवाह हुआ था तो बड़ी खुशी हो रही थी। बड़े उछल रहे थे कि आज विवाह हो रहा है। विवाह हुए दो वर्ष हो गए। क्यों साहब! विवाह का दिन है, आज तो प्रसन्न हैं? अरे साहब! विवाह क्या हुआ, आफत आ गई। बीबी आ गई, बाल-बच्चे हो गए। अब तो कोई खुशी नहीं है, उस दिन तो कितनी खुशी थी। भावावेश कभी टिकाऊ नहीं होता है।

भक्ति एक दर्शन, एक विज्ञान

साथियो! भावावेश कभी किसी के टिकाऊ नहीं हो सकते। भावावेश जाएगा तभी भक्ति आएगी। भक्ति को अगर आप भावावेश मानते हैं तो मैं कहता हूँ कि आप गलती पर हैं। भक्ति का अर्थ आप नाच-कूद मानते हैं और नाच-कूद कर भगवान को पाने का स्वाँग बनाते हैं तो मैं कहूँगा कि ये आपका विशुद्ध भावावेश है और अज्ञान है। भक्ति एक सिद्धांत पर टिकी हुई है, भक्ति एक आदर्श पर टिकी हुई है। भक्ति एक फिलॉसफी है, भक्ति एक जीवन की प्रक्रिया है। अगर आप उसको ग्रहण कर सकते हैं तो मैं आपको वचन दे सकता हूँ, विश्वास दिला सकता हूँ कि भक्ति आपका फायदा करके जरूर दिखाएगी और भक्ति के चमत्कार आपको जरूर देखने को मिलेंगे, लेकिन भक्ति सही होनी चाहिए। भक्ति का यही अज्ञान इस समय सब जगह फैला हुआ है। भक्त और भक्ति दोनों ही डूबने वाले हैं। मित्रो! भक्ति का एक इतिहास मैं देखता हूँ कि पिछले दिनों इसका कितना बड़ा रिएक्शन हुआ था, कितनी बड़ी प्रतिक्रिया हुई थी। ऋषियों ने, तत्त्वदर्शियों ने कहा था कि ऐसी भक्ति बेकार है, हटाओ इस भक्ति को जो व्यक्ति को कर्तव्य विमुख बनाती हो।

मित्रो! जब भगवान भक्ति के बिना प्रसन्न नहीं हो सकते तो चलिए हम भक्ति के धुरें उखाड़ते हैं। भगवान बुद्ध आए। उनसे शून्यवाद की स्थापना की। शून्यवाद माने नास्तिकवाद। नास्तिकवाद माने भगवान ऐसा नहीं है, जो खुशामद से पाया जा सकता हो, चापलूसी से पाया जा सकता हो। भगवान बुद्ध की सारी फिलॉसफी पढ़िए। वह शून्यवाद फिलॉसफी है। उन्होंने कहा कि कोई भगवान नहीं है, शून्य है। उन्होंने भगवान को मानने से इनकार कर दिया और कहा कि दुनिया में कोई भगवान नहीं है। जब यह बुद्धवाद सारी दुनिया में तेजी से फैलता हुआ चला गया तो क्या आप समझते हैं कि आस्तिकता के सिद्धांत भगवान को न मानने से कमजोर हो गए? नहीं। सिद्धियों की उनमें कमी आ गई? नहीं। चमत्कार में कोई कमी आ गई? नहीं आई। मनुष्य के गौरव-गरिमा में कोई कमी आ गई? नहीं, कोई कमी नहीं आई। उन्होंने वह आधार हटा दिया तो भी भगवान को मानने से इनकार कर दिया तो भी कोई कमी नहीं आई।

बुद्ध का उदाहरण

मित्रो! बुद्ध स्वयं भगवान हो गए और भगवान के अंदर जो विशेषताएँ होनी चाहिए, जो गौरव-गरिमा होनी चाहिए, चमत्कार होने चाहिए, जो सिद्धियाँ होनी चाहिए, वे सब उनके अंदर थीं। अंगुलिमाल उनके सामने आया तो काँपने लगा। उन्होंने कहा कि तेरे पास तलवार की ताकत है तो चला। अंगुलिमाल जब तलवार चलाने को उद्यत हुआ तो उन्होंने कहा कि हमारे पास आकर तलवार चला, वहाँ से क्या दिखाता है? पास आया तो काँपने लगा। जमीन पर गिरा तो भगवान बुद्ध ने उसकी तलवार को उठा करके अलग फेंक दिया। उन्होंने कहा—“मूर्ख किस पर तलवार चलाता है? आत्मा पर तू तलवार चला सकता है? आ इधर, उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा कि जा, आज से तू डाकू नहीं, संत है।” अंगुलिमाल डाकू संत हो करके चला गया। हिंदुस्तान से बाहर उसे विदेश भेज दिया। कंबोडिया गया, वर्मा गया, जावा गया, सुमात्रा गया और जितने मध्यपूर्वी देश हैं उनमें अंगुलिमाल घूमता रहा।

इसी तरह आम्रपाली नामक एक वेश्या आई थी भगवान बुद्ध का शील डिगाने के लिए। जब उनके पास आई तो काँपने लगी और काँपकर जमीन पर गिर पड़ी और यह कहने लगी कि पिताजी मैं तो नरक की एक कीड़ी हूँ, आपके पास उद्धार पाने के लिए आई हूँ। उन्होंने कहा—“बेटी! तू नरक की कीड़ी नहीं है, तू कन्या है।” आज से तेरे अंदर की वेश्या की मृत्यु हो गई। आज से तेरे भीतर से संत का जन्म हो गया। उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरा तो आम्रपाली वेश्या से संत हो गई और संघमित्रा के तरीके से वह हिंदुस्तान से बाहर गई थी। वह श्रीलंका और दूसरे देशों में गई और उसने ढेरों-के-ढेरों विहार बनाए थे। नालंदा का बौद्धविहार उसी के पैसे से बना था। तक्षशिला विश्वविद्यालय का जीर्णोद्धार हर्षवर्द्धन के पैसे से हुआ था, लेकिन नालंदा के विश्वविद्यालय का विकास आम्रपाली के पैसों से हुआ था। भगवान बुद्ध ने उसकी शान बदल दी। हर्षवर्द्धन को उन्होंने क्या-से-क्या बना दिया। अशोक को उन्होंने क्या-से-क्या बना दिया। समय को उन्होंने कहाँ-से-कहाँ बदल दिया। उस समय जहाँ पाप और अनाचार की धाराएँ बहती चली जा रही थीं, उन्हें अपनी ताकत से उन्होंने उखाड़कर फेंक दिया। वे शक्ति के पुंज थे।

(क्रमशः)

□

भक्ति संबंधी भ्रांतियाँ एवं उसका सच्चा विज्ञान भाग—२

मित्रो! नास्तिकता की वजह से क्या भगवान बुद्ध में कोई कमी आ गई? नहीं बेटे! कोई कमी नहीं आई और न आ सकती है। भगवान को माने या न माने, किंतु अगर आस्तिकता के सिद्धांत अपने जीवन में धारण कर सकता हो तो आदमी भगवान का सच्चा भक्त हो सकता है। सच्चा ईश्वरवादी हो सकता है, जैसे कि भगवान बुद्ध ईश्वर को न मानते हुए भी हो गए। मित्रो! पिछले दिनों भक्ति के नाम पर फैले अज्ञान ने, जिसे हम परावलंबन कहते हैं, जिसका एक अमेरिकन महिला ने खूब व्यंग्य उड़ाया है। यह महिला हिंदुस्तान आई थी। उसने एक बड़ी मजेदार किताब लिखी है—‘स्लेक्स ऑफ दि गॉड्स’—देवताओं के गुलाम। कभी मौका मिले तो आप उसे पढ़ना। हिंदुस्तानियों के ऊपर उसने आक्षेप लगाया है और कहा है कि ये हिंदुस्तानी बौद्धिक दृष्टि से गुलाम हैं और ऐसे जरखरीद गुलाम हैं कि किसी-न-किसी की गुलामी किए बिना जिंदा नहीं रह सकते। इसलिए उसने यह हिमायत की कि जिस जमाने में यहाँ अँगरेज थे, उस समय हिंदू बिना गुलामी के रह नहीं सकते थे। इसलिए उन्हें किसी-न-किसी का गुलाम रहना पड़ेगा। राजनीतिक दृष्टि से तो क्या, भावनात्मक दृष्टि से भी वे गुलाम हैं।

उसने अपनी पुस्तक में बार-बार आक्षेप लगाया है कि ये गुलाम हैं। देवताओं के बिना ये अपने बच्चों की ब्याह-शादी नहीं कर सकते, क्योंकि शुक्र देवता डूब गया। अब ब्याह नहीं हो सकता। आ हा.....अब सूरज किधर चलेंगे? अब दिल्ली जाना है तो वह कौन-सी दिशा में है? अच्छा दक्षिण दिशा में है। उधर तो बृहस्पति जी दिशाशूल लेकर बैठे हुए हैं। दिल्ली की तरफ गाड़ी में बैठ करके गए तो दिशाशूल तीर-कमान चला देगा और आपको शूल के मारे मार डालेगा। दिल्ली आज मत जाना। ओ हो.....ये दिशाशूल जो बैठा हुआ है, अब यात्रा नहीं हो सकती। चूल्हा बनाने के लिए तो मुहूर्त, चक्की बनाने के लिए तो मुहूर्त, शादी करने के लिए तो मुहूर्त, खाने के लिए, टट्टी जाने के लिए, नहाने के

लिए—सब काम के लिए मुहूर्त। मुहूर्त के बिना ये कुछ नहीं कर सकते। चारों तरफ बैठे हुए देवी-देवता इनको पकड़ लेंगे और कान उखाड़ देंगे, दाँत तोड़ देंगे। देवताओं के बिना इनका गुजारा नहीं हो सकता।

वास्तविकता क्या ?

उसने कहा कि मानसिक दृष्टि से ये इतने परावलंबी लोग हैं कि अपने जीवन की समस्याओं का समाधान करने के लिए देवताओं के बिना इनका गुजारा नहीं हो सकता। इसलिए परलोक वाले देवता हों या चाहे न हों, पर अँगरेजों को देवता के रूप में इनके ऊपर रहना चाहिए, नहीं तो ये किसी और के गुलाम हो जाएँगे। अँगरेजों के चंगुल से छूटेंगे तो चायना वालों के गुलाम हो जाएँगे। गुलामी के बिना इनको चैन नहीं है। गुलामी इनकी मनोवृत्ति है। गुलामी इनकी फिलॉसफी, गुलामी इनकी शक्ति है। ऐसा उसने छापा है। जब मैंने उसकी किताब पढ़ी तो पहले मुझे बहुत गुस्सा आया। फिर जब मैंने धीरे-धीरे सारे अध्याय पढ़े, यह जानने के लिए कि देखें इसने जो आक्षेप लगाए हैं, वे हमारे ऊपर लागू होते हैं कि नहीं होते। जब मैंने इस दृष्टि से देखा तो माना कि सौ फीसदी यह बात सही है कि हम मानसिक दृष्टि से गुलाम, अपना भाग्य बनाने के लिए गुलाम, भविष्य बनाने के लिए गुलाम, अपनी समस्याओं को हल करने के लिए गुलाम और अपनी मनोकामनाओं को पूरा करने के लिए देवी-देवताओं के गुलाम हैं। इस मनःस्थिति और परिस्थिति को लेकर तब ढेरों लोग आग-बबूला हो गए थे, पर वास्तविकता तो यही थी।

मित्रो! भगवान को सही तरीके से जानने को लेकर तब एक और भी धर्म फैला हुआ था। उसका नाम था—जैन धर्म। जैन धर्म क्या है? जैन धर्म को जरा पढ़िए, उसने भगवान का ऐसा सफाया किया है कि उसका नामोनिशान मिटा दिया गया है। उसने कहा कि कोई भगवान नहीं होता और भगवान की भक्ति की जरूरत

नहीं। आप जैन धर्म की फिलॉसफी पढ़िए, जैन धर्म के सिद्धांत पढ़िए, उसमें भगवान का नाम भी नहीं है। उसमें से भगवान का नाम काटकर फेंक दिया गया है। ठोकर मारकर भगवान को भगा दिया है। कौन से भगवान को? जो हमारी मनोकामना पूरी करने में सहायता करता है, उस भगवान को उन्होंने मारकर फेंक दिया है। जैन धर्म में भगवान की कोई गुंजाइश नहीं है। इसी तरह बौद्ध धर्म में भी भगवान की कोई गुंजाइश नहीं है। मित्रो! भगवान की गुंजाइश तो थी और है ही, लेकिन वो भगवान, जो हमारी चापलूसी से प्रसन्न हो जाता है। वो भगवान, जो हमारी खुशामद का इंतजार करता रहता है। वो भगवान, जिसे हमारी धूपबत्ती के बिना चैन नहीं, वो भगवान, जो हमारे साथ में रियायत और हमारी सिफारिश करता रहता है—हमारे पूजा-पाठ के खेल-खिलौने देख करके। ऐसे भगवान को दोनों धर्मों से हटा दिया गया।

देववाद के नाम पर अज्ञान

मित्रो! हिंदू धर्म में उसी जमाने में एक और क्रांति हुई है। लगभग उसी जमाने में और समकालीन क्रांतियाँ हुईं। तब प्रत्येक क्षेत्र के प्रगतिशील लोगों ने समझा कि यह हमारे लिए नुकसानदेह चीज है। यह हमारे लिए हानिकारक चीज है। यह मनुष्य के उत्थान में कोई सहायता नहीं करती, वरन मनुष्य के अधःपतन में सहायता करती है। देववाद के नाम पर, पूजा-पत्री के नाम पर, मंत्र-तंत्रों के नाम पर, मनोकामना के नाम पर यह जो अज्ञान फैला दिया गया है, सिवाय नुकसान के और कुछ भी नहीं कर सकता। हिंदू धर्म में एक और समकालीन महर्षि हुए हैं। उनका नाम था—जगद्गुरु शंकराचार्य। आद्य शंकराचार्य ने वेदांत की फिलॉसफी का प्रतिपादन किया। वेदांत क्या है? वेदांत का अर्थ है—नास्तिकवाद। नास्तिकवाद का अर्थ क्या होता है? नास्तिकवाद का अर्थ ये होता है कि भगवान के लिए जो परावलंबन है, उसे काटकर फेंक दिया जाए। आप वेदांत के सारे ग्रंथों को पढ़ते चले जाइए, पंचदशी को पढ़ लीजिए, ब्रह्मसूत्र को पढ़ लीजिए, सब ग्रंथों को पढ़ लीजिए और पता लगाकर आइए कि वेदांत में क्या है? **अयमात्मा ब्रह्म** अर्थात्—यह जो आत्मा है, इसी का सफाई किया हुआ हिस्सा, जिसको श्रेष्ठ कहें, भगवान है। **तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, चिदानंदोऽहम्, सच्चिदानंदोऽहम्, सोऽहम्**—ये सारे-के-सारे जितने भी वेदांत के महावाक्य हैं, ये सिर्फ

यह बताते हैं कि आपको भगवान की तलाश में बाहर जाने की और झूख मारने की कोई जरूरत नहीं है। भगवान की खुशामद करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

मित्रो! हवा की खुशामद करने की कोई जरूरत नहीं है। सूरज की खुशामद करने की कोई जरूरत नहीं है। आप धूप में जाकर बैठ जाइए और सूरज की गरमी तथा रोशनी का फायदा उठाइए। नहीं साहब! हम सूर्य

ईसा अपने शिष्यों के साथ धर्म प्रचार के लिए जा रहे थे। रास्ते में रेगिस्तान पड़ा, दूर तक कोई गाँव दिखाई न देता था। भोजन की समस्या उत्पन्न हुई तो ईसा ने कहा—“जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे इकट्ठा कर लो और मिल-बाँटकर खाओ।”

शिष्यों के पास कुल मिलाकर पाँच रोटी और थोड़ी-सी तरकारी निकली। गुरु ने उसे इकट्ठा किया और मंत्रबल से अन्नपूर्णा बना दिया। शिष्यों ने उसे भरपेट खाया और जो भूखे भिखारी उधर से निकले, वे भी उसी से तृप्त हो गए।

सोलोमन नामक शिष्य ने पूछा—“गुरुवर! इतनी कम सामग्री में इतने लोगों की तृप्ति का रहस्य क्या है?”

ईसा ने कहा—“हे शिष्यो! धर्मात्मा वह है जो खुद की नहीं, सबकी बात सोचता है। अपनी बचत सबके काम आए, इस विचार से ही तुम्हारी पाँच रोटी अक्षय अन्नपूर्णा बन गई। जो जोड़ते हैं, वे ही भूखे रहेंगे। जिन्होंने देना सीख लिया है, उनके लिए तृप्ति के साधन आप ही आ जुटते हैं।”

नारायण की प्रार्थना करेंगे कि वे हमारे घर में आकर के दीपक जला जाया करें और हमारे घर में रोशनी कर जाया करें। नहीं बेटे! सूरज भगवान को कोई फुरसत नहीं है। तू धूप में बैठ जाया कर और सूरज के कायदे का फायदा उठा। नहीं महाराज जी! हम तो प्रार्थना करेंगे कि सूरज भगवान अपने नियम बिगाड़ दें और हमारे घर में घुस आया करें और रात को चार घंटे बैठा करें और चले जाया करें। नहीं बेटे! ऐसा नहीं हो सकता। भगवान

का एक कायदा और भगवान का एक कानून है। उसी पर चलना पड़ेगा, इसके अलावा दुनिया में और कोई तरीका नहीं है, जिसका आप फायदा उठा सकते हों।

आत्मशोधन पहली आवश्यकता

मित्रो! यह प्रक्रिया अनादिकाल से चली आ रही है कि हमने भगवान के लिए अपने आत्मसंशोधन की प्रक्रिया को जारी रखा। हमने अपने आप को धोया, अपने आप को साफ किया, अपने आप को इस लायक बनाया कि भगवान का निवास वहाँ होना संभव हो सके। अवागढ़ महाराज ने एक बार पंडित मोतीलाल नेहरू को किसी सलाह के लिए अपने यहाँ बुलाया। उन दिनों वे एक हजार रुपया रोज अपनी फीस लिया करते थे। अवागढ़ महाराज के यहाँ जब पंडित जी आए तो उन्होंने क्या काम किया? सबसे पहले अपने नहाने-धोने और टट्टी-पेशाब वगैरह जाने के स्थान देखे। उन्होंने देखा कि यहाँ तो दुर्गंध आ रही है। उन्होंने कहा अरे भाई! हमें बीमार करोगे क्या? यहाँ तो हम नहीं रह सकते। अवागढ़ महाराज ने तुरंत दूसरा इंतजाम किया। उनके लिए नए कमोड मँगाए और नई जगह बनवाई, जहाँ गंदगी न पैदा होती हो और बदबू न आती हो। भगवान को आप बुलाना चाहते हैं तो बेटे! तुझे नहीं मालूम कि क्या करना पड़ता है? कल गवर्नर आ रहा है। सबकी अक्ल लग रही है कि देखिए कूड़ा हटाइए, सड़क साफ कीजिए, रास्ता बंद कीजिए। नाली को यहाँ से निकालिए, यहाँ से अमुक सामान उठाइए। गवर्नर के आने पर कितनी आफत आ रही है और सफाई में कितना पैसा खर्च करना पड़ रहा है।

मित्रो! अगर भगवान आपके पास आए, तब क्या करना पड़ेगा? तब बेटे! रोम-रोम साफ करना पड़ेगा। अपनी नस-नस साफ करनी पड़ेगी। इससे कम में काम नहीं चल सकता। गंदगी में आकर भगवान क्या करेगा? अवागढ़ महाराज के यहाँ जब वे तब के मामूली से वकील गंदगी पसंद न कर सके और जब गवर्नर आ रहे हैं तो ट्रैफिक पुलिस वाले, पुलिस वाले लग रहे हैं। हम लग रहे हैं, सारे कर्मचारी लग रहे हैं। आप लग रहे हैं, कार्यकर्ता लग रहे हैं। साफ करो, साफ करो....! क्यों साहब! साफ करने से क्या मिलेगा? साफ करने से यह मालूम पड़ेगा, समझ में आएगा कि ये इस लायक हैं कि इनके यहाँ जाया जा सकता है। अगर हम दरवाजे तक

कुत्ते की टट्टी का ढेर लगा दें तब? तब मित्रो! गवर्नर साहब कहेंगे कि ये बड़े घटिया आदमी हैं। भगवान के लिए तो कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। बस, एक काम करना पड़ेगा—अपने आपकी सफाई। अपने आपकी धुलाई को अगर समझ सकते हों तो मैं आपको यह कह सकता हूँ कि आपने अध्यात्मवाद का आदर्श स्वीकार कर लिया, आपने अध्यात्मवाद से फायदा उठाने का सही रास्ता जान लिया। इससे कम में कोई रास्ता नहीं है। नहीं साहब! हम तो देवता की खुशामद करेंगे। बेटे! अगर देवता की खुशामद से फायदे हुए होते तो ये लोग, जो मंदिरों में सवेरे से लेकर शाम तक सारे दिन आरती उतारते हैं, घंटी बजाते हैं, सवेरे चार बजे से उठकर रात के नौ बजे तक ये सारे दिन भगवान जी के गोरखधंधे में लगे रहते हैं। इतने पर भी इन बेचारों को न खाने के लिए रोटी का इंतजाम है, न बीमारियों से बचने के लिए दवा खरीदने का पैसा है, न बाल-बच्चे किसी काम के हैं, न औरत का ठिकाना है, न रहने के लिए मकान है। खुशामद से ही सब कुछ हो गया होता तो ये पुजारी लोग अब तक मालदार हो गए होते। न लक्ष्मी ने कोई हिमायत की और न नारायण ने कोई हिमायत की। लक्ष्मीनारायण जी का आप तो जप करते हैं, फिर भी उन्होंने एक पैसे का भी फायदा नहीं दिया?

पुजारी क्यों है खाली हाथ ?

मित्रो! आपको यह बात समझ में क्यों नहीं आती कि जो पुजारी मंदिर में बारह घंटे और सोलह घंटे पूजा करने, काम करने के बाद खाली हाथ है, वहीं आप पंद्रह मिनट या आधा घंटा पूजा करके यह मानते हैं कि हमारी ये मनोकामनाएँ पूरी हो सकती हैं और हमको यह फायदा हो सकता है। आपको यह बात समझ में नहीं आती, इतनी भी अक्ल नहीं है, इतनी भी बुद्धि आपकी काम नहीं करती। नहीं साहब! बुद्धि से क्या फायदा? हम तो ऐसे ही ले लेंगे। यहाँ तो अँधेरगरदी चल रही है, जो कोई खुशामद कर लेता है, उसका उल्लू सीधा हो जाता है। बेटे! ऐसा कोई कायदा नहीं है। भगवान बड़े कायदे से चल रहा है। यह दुनिया बड़े कायदे से चल रही है। सूरज कायदे से चल रहा है। धरती कायदे से चल रही है। हवा कायदे से चल रही है। समुद्र कायदे पर टिके हुए हैं और मनुष्य के जीवन की उन्नति भगवान के कृपा-कायदे पर टिकी हुई है। नहीं साहब! बिना कायदे

के चल रही है और ऐसे ही जो कोई उनकी खुशामद कर लेता है, पा लेता है। नहीं बेटे! ऐसा नहीं है।

परब्रह्मरूपी भगवान

मित्रो! आप कहेंगे कि ये सारे-का-सारा पूजा-उपासना का विधान किसलिए बनाया गया है? चलिए मैं समझाता हूँ आपको कि पूजा-उपासना का विधान किस मकसद से चलाया गया है। आप उसके असली मकसद को नहीं समझते, केवल बाहरी क्रियाकलाप को समझते हैं। बाहरी क्रियाकलाप को आप यह मान लेते हैं कि यही सब कुछ है और जिस काम के लिए बनाया गया है, उस ओर ध्यान नहीं देना चाहते। यही आपकी गलती है। आपको यह समझना चाहिए कि पूजा-उपासना का सारे-का-सारा स्वरूप किसलिए बनाया गया है? चलिए पहले तो मैं यह कहूँगा कि भगवान किसलिए बनाया गया है। भगवान बनाया गया? हाँ, भगवान बनाया गया है। एक भगवान तो वो है, जो सारी दुनिया में छाया हुआ है और उस भगवान को हम नहीं समझ सकते, उस भगवान को हम नहीं जान सकते। वह इतना बड़ा भगवान है। भगवान की बात तो जाने दीजिए, हम फिजिक्स को नहीं जान सकते—फिजिक्स जो साइंस है। यह साइंस हमारी जमीन पर किसी और तरीके से काम कर रही है। यहाँ एटम दूसरे तरीके से काम करता है। जमीन का जो दूसरा वाला हिस्सा है—हवा का, उस पर आप चले जाइए। वहाँ का जो एटम है, पक्का नहीं, कच्चा एटम है। वहाँ से आप दो हजार मील (लगभग ३००० किमी०) ऊपर चले जाइए, वहाँ पर आप एक ऐसी हवा पाएँगे कि पहाड़ के तरीके से आग के शोले जलते हुए कहीं-से-कहीं भागते चले जा रहे हैं। कहीं नीली रोशनी होती है, फुलझड़ियाँ जल रही हैं। कहीं पीली रोशनी दिखाई पड़ती है। कहीं हवा के ऐसे चक्र-भँवर जैसे दिखाई पड़ते हैं। उन्हें देख करके आप हैरान हो जाएँगे कि हम भूतों की दुनिया में कहाँ आ गए?

मित्रो! मैं जमीन की ग्रेविटी की बात कहता हूँ। यहाँ के एटमास्फियर का जो दूसरा वाला हवा का हिस्सा है, वहाँ की परिस्थितियाँ और यहाँ की परिस्थितियाँ अलग हैं। यहाँ की फिजिक्स, यहाँ की हवा का दबाव अलग है। यहाँ की अमुक गैस और अमुक गैस के पैदा होने की प्रतिक्रिया अलग है; जबकि दो हजार मील (लगभग ३००० किमी०) ऊपर के गैस का तरीका, उसकी

फिजिक्स अलग है। राहु की फिजिक्स अलग है, केतु की फिजिक्स अलग है। जितने भी लोक-लोकांतर हैं, सबकी फिजिक्स अलग-अलग है। आप इस फिजिक्स को तो समझते नहीं हैं, फिर भगवान को क्या समझेंगे? भगवान बहुत बड़ा है, विशाल है। वह इतना विशाल है कि हम उसका वर्णन नहीं कर सकते कि वह कितना

अकाल का वर्ष/ बवापुर (महाराष्ट्र)
के श्री नामदेव वाडेकर के घर आज चूल्हा नहीं जला था; क्योंकि राशन की दुकान पर अनाज नहीं मिला था। ब्लैक में खरीदने का प्रयास किया, पर वहाँ भी कमी पड़ चुकी थी। ऐसी स्थिति में इधर-उधर से माँगने पर भी कहाँ से मिलता ?

उनके पड़ोसी शिवाजी लाड़ को इस बात का पता चला तो वे अपने घर से अनाज की गठरी बाँधकर लाए और उनके घर रख गए। उनके घर में अन्न की कमी नहीं थी। श्री नामदेव कंट्रोल रेट से पैसे देने लगे तो वे बोले—“अनाज बेचना मेरा धर्म नहीं। मैं तो पड़ोसी धर्म निभा रहा हूँ।” हम दोनों समय भरपेट भोजन करें और पड़ोसी के घर चूल्हा न जले, यह कैसे देखा जा सकता है !

अपना ही नहीं, अपने पड़ोसी का भी ध्यान रखना मानव धर्म है।

विशाल है। हमारी अक्ल ऐसी है, जैसे मक्खी-मच्छर के बराबर। हम इस ब्रह्मांड की कल्पना नहीं कर सकते; क्योंकि हमारी अक्ल बहुत कम है। जिस मंदाकिनी में, नीहारिका में हम लोग रहते हैं, उसमें दस अरब तारे हैं। वे सब एक-एक सूरज के बराबर हैं। एक सूरज की कल्पना करना ही हमारे लिए मुश्किल हो रहा है कि वह कितना लंबा-चौड़ा है? कितना उसका विस्तार है? फिर उतने तारों की कल्पना हम कैसे करेंगे और फिर एक-

एक नीहारिका इतनी दूर है। एक-एक नीहारिका का प्रकाश, जो एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील के (लगभग तीन लाख किमी०) हिसाब से चलता है और यहाँ हजारों वर्षों बाद पहुँचता है। कितनी दूरी है? बेटे! दूरी की हम कल्पना नहीं कर सकते। यह हमारी कल्पना से बाहर है।

नेति-नेति

मित्रो! ब्रह्म को 'नेति-नेति' कहा गया है। इस ब्रह्मांड के बारे में भी और भगवान के बारे में भी तथा इस पृथ्वी के बारे में भी यही बात है। उस भगवान की हम कल्पना नहीं कर सकते, जो सर्वव्यापी है। वह भगवान हमारे काबू से बाहर है। भगवान का स्वरूप समझने के लिए हमारे पास कोई शक्ति नहीं है। हमारे शरीर में जो छोटे-छोटे जीवाणु हैं, वे किस तरीके से पैदा होते रहते हैं और किस तरीके से मरते रहते हैं? इस छोटे से जीवाणु के भीतर जो एक न्यूक्लियस काम करता है, वह सूरज के बराबर शक्तिशाली है। बेटे! हम इसकी क्षमता की कल्पना नहीं कर सकते। इसी तरह हम भगवान की शक्ति का चिंतन नहीं कर सकते। भगवान का स्वरूप जानना हमारे काबू के बाहर है। भगवान की गतिविधियों के बारे में जो वेदों ने कहा है—'नेति-नेति।' यह हमारे चिंतन से बाहर है। हमारी अक्ल मच्छर के बराबर और भगवान पहाड़ के बराबर है। फिर हम कैसे कल्पना कर सकते हैं, उस भगवान की, जो सर्वशक्तिमान सत्ता के रूप में लोक-लोकांतरों में, ब्रह्मांडों में समाया हुआ है। उसके कायदे और कानूनों तक को हम जान नहीं पाते हैं, फिर हम कैसे कह सकते हैं, उस भगवान के बारे में जो विराट है और विशाल है।

हमारा बनाया भगवान

मित्रो! जो भगवान हमारे पास है, जिसकी हम खुशामद करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं। यह भगवान क्या है? यह तो हमारा बनाया हुआ है। आप विश्वास रखिए, यह सभी भगवान हमारे गढ़े हुए हैं। अगर ये भगवान हमारे बनाए हुए न होते तो दुनिया में केवल एक ही भगवान की कल्पना रही होती। इस दुनिया का नियामक एक ही भगवान है। **एकं सद्ब्रह्म बहुधा वदन्ति**—एक ही ब्रह्म है और उस एक ही ब्रह्म के असंख्य नाम दिए गए हैं, लेकिन हमारे पास ढेरों-के-ढेरों ब्रह्म हैं और ढेरों-के-

ढेरों भगवान हैं। आपका भगवान कौन सा है? साहब! लंबी मूँछों का। आपका भगवान? लंबी पूँछ वाला। आपका भगवान? दाढ़ी रखाए हुए। आपका भगवान? खप्पर लिए हुए। आपका भगवान? जीभ निकालता हुआ। ऐसे-ऐसे ढेरों भगवान हैं कि हम क्या कह सकते हैं। एक भगवान सख्त वेजिटेरियन हैं—पानी छानकर पीजिए, जीव हिंसा मत होने दीजिए, सड़क झाड़कर चलिए, किसी पर पाँव न पड़ जाए। ये हैं भगवान नंबर एक। अच्छा साहब! ये तो बहुत अच्छे भगवान हैं। भगवान नंबर दो—बकरी के बिना काम नहीं चलेगा, मुरगे के बिना काम नहीं चलेगा, आमलेट या अंडे के बिना काम नहीं चलेगा। यह हैं—नॉन वेजिटेरियन। अरे साहब! आप नॉन वेजिटेरियन हैं या वेजिटेरियन? वेजिटेरियन लोगों ने भगवान जी को वेजिटेरियन बना लिया है और नॉन वेजिटेरियन ने भगवान जी को नॉन वेजिटेरियन बना लिया है। सारे-के-सारे भगवान, जो आपको देवी-देवताओं के नाम पर दिखाई पड़ते हैं, ये सब खालिश मनुष्यों के बनाए हुए हैं। ये इसलिए बनाए गए हैं, ताकि हमारे ध्यान का उद्देश्य पूरा हो सके, ध्यान को बिखरने से रोका जा सके, ताकि हम जो ध्यान करते हैं, किसी-न-किसी छवि पर उसे रोक सकें।

कल्पना ने रचा है भगवान को

मित्रो! एक दिन मैंने आपको बताया था कि हमारा जीवन कैसा होना चाहिए और हम क्या बनना चाहते हैं? हमारा लक्ष्य क्या है? इसके लिए हमने अपने-अपने इष्टदेव मुकर्रर किए हुए हैं। एक दिन मैंने ताजमहल का हवाला दिया था, जहाँ मॉडल बना हुआ रखा है। एक दिन दयालबाग का हवाला दिया था, जहाँ मॉडल बना हुआ रखा है। हम जैसा बनना चाहते हैं, भगवान भी हमने वैसे ही बनाए हैं। ये हमारे बनाए हुए भगवान हैं। जिसकी जैसी मरजी होती है, वह वैसे बना लेते हैं। क्यों साहब! श्रीकृष्ण भगवान काले रंग के थे या गोरे रंग के? बेटे! हमने तो देखे नहीं। तो साहब! छापेखाने से जो छपे हुए आते हैं, वे ऐसे ही भगवान थे? ये भगवान तो गोल-मटोल चेहरे वाले हैं। शायद असली श्रीकृष्ण भगवान जो रहे हों, आँखें गड़ढे में धँसी रही हों और हो सकता है श्रीकृष्ण भगवान की नाक हमारे जैसी लंबी रही हो। नहीं महाराज जी! श्रीकृष्ण भगवान ऐसे थे, कल देखे थे हमने। बेटे! ये हमने कल्पना से बना लिए हैं।

अगणित मान्यता, अगणित भगवान

मित्रो! जितने भी देवी-देवता बनाए हैं, हमने अपनी-अपनी कल्पना से बनाए हैं। किसी की देवी सिंह पर सवार है, किसी की देवी नंग-धड़ंग जीभ निकालती हुई और बारह भुजा वाली है। किसी की देवी चंडी दो भुजाओं वाली है। किसी की देवी उल्लू पर बैठी हुई है, किसी की किसी पर बैठी हुई है। कितनी देवियाँ हैं—कोई खप्पर लिए, कोई जीभ निकाले हुए, कोई सोने के जेवर पहने हुए, कोई मुंडमाला पहने हुए है। बेटे! इतनी देवियाँ दुनिया में कहाँ से हो सकती हैं? कोई देवी नहीं है। दुनिया में एक ही देवी है, जिसका नाम है—भगवान। उसी को माता कहा गया है, उसी को पिता कहा गया है। उसी को—त्वमेव माता च पिता त्वमेव कहा गया है। एक ही सर्वशक्तिमान के कल्पित नाम, कल्पित तरु हैं।

ये सब हमारी कल्पनाएँ हैं, जो देवियों के नाम पर, देवताओं के नाम पर, गणेश जी के नाम पर, महादेव जी के नाम पर, हनुमान जी के नाम पर कितने सारे देवी-देवता बना करके रखे हैं। बेटे! अभी ये कम हैं। कितने होने चाहिए? पुराने जमाने में तैंतीस कोटि मनुष्य थे यहाँ और हर आदमी का एक भगवान अलग था। अभी हम कितने हो गए हैं—साठ करोड़।* अतः साठ करोड़ देवता तो कम-से-कम होने ही चाहिए। ज्यादा हो जाएँ तो भी कोई हर्ज नहीं। हर आदमी की अपनी-अपनी कल्पना, अपनी-अपनी मान्यता, अपने-अपने विचार और अपने-अपने सिद्धांत के हिसाब से चाहे जितने देवी-देवता बनाए जा सकते हैं और बन सकते हैं। बनते रहे हैं और बनेंगे। (क्रमशः)

□

* तत्कालीन आँकड़े (१९७३-७४ के)

कीचड़ में लोटते और गंदगी चाटते उस शूकर को धिनौना जीवन जीते देखकर नारद जी को बड़ी दया आई। वे उसका उद्धार करने की बात सोचने लगे।

महर्षि उस वराह के पास पहुँचे और स्नेहपूर्वक बोले—“इस धिनौनी रीति से जीना गहिँत है। चलो, तुम्हें स्वर्ग पहुँचा देते हैं।”

नारद जी की बात सुनकर वराह तैयार हो गया और उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

रास्ते में उसे स्वर्ग के बारे में अधिक जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई, सो पूछ ही बैठा—“वहाँ खाने, लोटने और भोगने की क्या-क्या वस्तुएँ हैं?”

नारद जी उसे स्वर्ग का मनोरम वर्णन विस्तारपूर्वक बताने लगे। कुतूहलपूर्वक वह उन्हें सुनता रहा। बात पूरी हो चुकी तो उसने दूनी जिज्ञासापूर्वक पूछा—“खाने के लिए गंदगी, लोटने को कीचड़ और सहचर्या के लिए वराहकुल है या नहीं?”

महर्षि ने असमंजस में पड़ते हुए कहा—“मूर्ख! इन निकम्मी चीजों की वहाँ क्या जरूरत है? वहाँ तो देवताओं के अनुरूप वातावरण है और वैसे ही श्रेष्ठ पदार्थ सुसज्जित हैं। उन्हें पाकर के जीवधारी धन्य हो जाते हैं।”

वराह को नारद जी के उत्तर से कोई समाधान नहीं मिला। भला, मैले की टोकरी, गंधयुक्त कीचड़ और वराहकुल के बिना भी सुख मिल सकता है !

शूकर ने आगे चलने से इनकार कर दिया और वह वापस लौट पड़ा।

प्राणी का आंतरिक स्तर ऊँचा उठे बिना उसे उत्तम स्थिति का लाभ मिल सकना संभव नहीं हो सकता।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी -

भक्ति संबंधी भ्रांतियाँ एवं उसका सच्चा विज्ञान भाग- ३

रोज पैदा हो रहे हैं नए देवता

मित्रो! जो पुराने देवी-देवता थे, वे सब रिटायर्ड हो गए, बरखास्त हो गए। कौन-कौन से बरखास्त हो गए। वेदों के देवता बिलकुल अलग थे, जो आज के देवताओं से कोई माने नहीं रखते। एक था पूषा, आपने सुना है कभी? पूषा तो साहब! बिहार में है, जहाँ गेहूँ की फसल तलाशी जाती है। अरे नहीं बेटे! वो नहीं है। पूषा एक देवता था। वह बड़ा जबरदस्त था। हमने तो नाम भी नहीं सुना। वेदों के काल में जो वैदिक देवता माने जाते थे, बेटे! आज उनका कोई नाम भी नहीं मालूम होता। पौराणिक देवता जो आए, वे भी बेटे! अब धीरे-धीरे समाप्त होते चले जा रहे हैं; जैसे—विष्णु भगवान। विष्णु भगवान का तो उत्तर भारत से बाँयकाट हो गया। और ब्रह्माजी का? ब्रह्माजी तो बिलकुल रिटायर हो गए। उनका तो पता भी नहीं है, वे तो बहुत बुढ़े हो गए और बाबा जी के तरीके से बैठे रहते हैं।

बेटे! अब नए-नए भगवान, नए-नए देवता पैदा होते चले जा रहे हैं; मसलन—संतोषी माता। संतोषी माता अभी निकलकर आई हैं। मेरे देखते-देखते पैदा हुई और देखते-देखते जवान हो गई। ये बड़ी जबरदस्त हो गई हैं और सब जगह फैलती हुई चली जा रही हैं। ये संतोषी माता दस साल बाद मर जाएँगी, फिर कोई और पैदा होंगी। देवी-देवता इतने हो गए हैं कि मक्खी और मच्छर के तरीके से, मेंढक और बंदरों के तरीके से रोज मरते हैं और रोज पैदा होते हैं। जहाँ कहीं भी जाइए, ये हमारी कुलदेवी और कुलदेवता हैं। सारे हिंदुस्तान में जाइए और पता करके आइए कि कुलदेवियाँ कितनी हैं, कुलदेवता कितने हैं। मैं समझता हूँ कि लाखों की तादात में कुलदेवियाँ और कुलदेवता हैं। उनके नेचर को आप देखेंगे तो हैरान होना पड़ेगा।

देवी माता संबंधी भ्रांतियाँ

ये कहाँ रहती हैं देवी खोडयारी माता? ये जैसलमेर में रहती हैं। कलकत्ते (कोलकाता) का मारवाड़ी भागते-भागते वहाँ पहुँचता है। कहाँ? जैसलमेर। बीबी को, मोहल्ले

वालों को, बुआ जी को, पंडित जी को लेकर पहुँचता है। चार हजार रुपया खर्च करता है। किसके लिए? देवी पर मुंडन होगा। फिर क्या करेगी देवी? बाल खाएगी? बाल तो बेटे! तू कलकत्ते (कोलकाता) से भी पेटो में बंद करके भेज सकता था। लो महाराज जी! देवी को बाल खिला देना। नहीं महाराज जी! देवी तब प्रसन्न होती है, जब उसके सामने ही फ्रेश माल, गरमागरम माल, नया माल आता है। पुराना माल नहीं खाती देवी। बाल खाती है या माल? अरे महाराज जी! माल तो यहाँ भी बहुत है। वे तो बाल खाती हैं। धत् तेरे का, बाल खाती है देवी! पारवाड़ी की देवी अलग, फलाने की देवी अलग। बेटे! मुझे इतना गुस्सा आता है कि कई बार आग-बबूला हो जाता हूँ इन देवी-देवताओं के अज्ञान के नाम पर। सो भी ऐसे-ऐसे, जो बाल खाए बिना काम नहीं चला सकते, जिनको न रोटी की जरूरत है, न पूरी-कचौरी की। और बाल खाने को नहीं मिलें तब? फिर देखना देवी का हाल। इसको दुखार बुला देगी, उसको बीमार कर देगी, उसके पैसे का नुकसान कर देगी। अरे बाबा, देवी! तू तो देवी है, फिर नुकसान क्यों करती है? ऐसी देवी सारे हिंदुस्तान में फैल गई हैं। सारे देश में देवी-देवताओं के, भक्ति के और भगवान के नाम पर अज्ञान फैल गया है। फिर असलियत क्या है? असलियत जो है, वह आपको जाननी ही चाहिए। आखिर देवता क्या हैं?

देवता क्या हैं, अंततः

देवता हैं मित्रो! मनुष्य के गुण, मनुष्य के कर्म और मनुष्य के स्वभाव। हनुमान जी प्रतीक हैं—बल के और व्रत में ब्रह्मचर्य के। चंडी प्रतीक हैं—संघशक्ति और संगठन की। सरस्वती प्रतीक हैं—कला एवं ज्ञान की। गायत्री प्रतीक हैं—भावनाओं से जुड़ी सद्बुद्धि की। जितने भी देवी-देवता हैं, वे मानवीय गुणों के प्रतीक हैं। ये बात अगर आपकी समझ में आ जाए तो ये समझ भी आएगी कि देवताओं का अनुग्रह पाने के लिए आपको अपने जीवन में

गुणों का विकास, कर्मों का विकास, स्वभाव का विकास करना पड़ेगा। मानवीय श्रेष्ठता को निरंतर बढ़ाने के लिए कमर कसकर चलना पड़ेगा; ताकि हमारे अंदर जो महानता है, वह विकसित होती हुई चली जाए।

शंकर जी कहाँ होते हैं ? बेटे ! हमें नहीं मालूम कहाँ होते हैं और कहाँ नहीं होते। आपने देखे हैं ? हमने तो नहीं देखे। और आपने देखे हैं ? हाँ महाराज जी ! सपने में देखे हैं। सपने की कोई कीमत नहीं होती, सपने तो ख्वाब होते हैं। मित्रो ! शंकर भगवान क्या हो सकते हैं ? शंकर भगवान श्रेष्ठ गुणों का समुच्चय और समन्वय हैं। शंकर जी का उदाहरण मैं आपको समझाना चाहूँगा। शंकर जी की शक्ति-सूरत आप देखिए, उनके सिर से गंगाजी निकलती हैं। क्यों साहब ! किसी के सिर में से गंगाजी निकलेंगी तो आदमी करवट कैसे लेगा, सोचिए। अगर मैं बैठा रहूँ और सिर में से पानी निकलता रहे तो पानी जमीन पर गिरेगा और बहता चला जाएगा, लेकिन मैं कभी सोऊँ तब, करवट लूँ तब ? पानी में सिर में से निकलता है तो नाक में, कान में और मुँह में घुसेगा कि नहीं, फिर मैं मरूँगा कि जिऊँगा ? शंकर भगवान चौबीस घंटे बैठे रहते हों, तब तो मैं नहीं कहता, लेकिन उनको कभी भी सोने का मौका मिला होगा तो गंगाजी उनके नाक-कान में घुस गई होंगी और शंकर जी उसमें डूब गए होंगे।

आलंकारिक विवरण देवी-देवताओं के

मूल के

मित्रो ! यह एक अलंकार है। जिसमें यह बात बताई गई है कि जिस शक्ति या जिस व्यक्ति के मस्तिष्क में से ज्ञान की गंगा निकलती है, शुद्ध-पवित्र विचार निकलते हैं। ऐसे विचार जो मनुष्य को शुद्ध-पवित्र बनाने में समर्थ हों। उस आदमी का, उस देवता का, उस शक्ति का नाम शंकर, जिसके मन-मस्तिष्क में से हमेशा ज्ञान की गंगा प्रवाहित होती हो। शंकर जी के सिर पर चंद्रमा टँगा हुआ है। चंद्रमा कैसे टाँगा जा सकता है ? वह तो बेटा ! फुटबॉल के तरीके से गोल-मटोल है। चंद्रमा को सिर पर टाँगना हो तो उसके दो ही तरीके हो सकते हैं—एक तो सिर में सुराख करके उसमें से बोल्ट कस दिए जाएँ अथवा स्टैंड लगा दिया जाए। यहाँ हमारे सामने रखनी हो गेंद तो स्टैंड पर गेंद रखी रहा करेंगे और हम अपना सिर उसके पास लगा दिया करेंगे। एक और तरीका है कि आप रस्से या तार लाइए,

उससे गेंद को चारों तरफ से हमारे सिर में बाँध दीजिए। नहीं साहब ! शंकर जी के सिर पर तो चंद्रमा टँगा हुआ है। बेटे ! चंद्रमा एक अलंकार है, जिसका अर्थ होता है—संतुलन। शांति का प्रतीक है, चंद्रमा। हमारा मस्तिष्क प्रत्येक परिस्थिति में संतुलित रहना चाहिए।

मित्रो ! घबराहट, हैरानी, परेशानी, जलन—इन सारी बातों में हमारा दिमाग अशांत रहता है और हमारे ढेरों-के-ढेरों नुकसान होते रहते हैं। हम जिस समस्या का समाधान करने के लिए चलते हैं, उसका समाधान तो नहीं होता, बल्कि समस्या और भी उलझती चली जाती है। प्रत्येक परिस्थिति में, मुसीबत में, शोक में भी अपने दिमाग के बैलेन्स को आप सही रखिए। जो मुसीबत आई है, उसका रास्ता निकालने के लिए अपने दिमाग के अलावा और है क्या आपके पास ! दिमाग का बैलेन्स सही रख सकें, इसके लिए आप सिर के ऊपर चंद्रमा टाँगिए। यह क्या चीज है ? यह बेटे ! शिक्षा है, दिशा है, धारा है और एक फिलॉसफी है जिंदगी की।

शिक्षण एवं दिशाधारा

शंकर जी की आँखें होती हैं तीन। तीन कैसी आँखें होती हैं ? बेटे ! शंकर जी की एक आँख ऐसी है कि जब कभी उसे खोल देते हैं और उससे जिस किसी को देखते हैं, वह जल करके भस्म हो जाता है; जैसे कामदेव को एक दिन शंकर जी ने आँख खोलकर देखा तो वह तुरंत जल करके राख हो गया। तो महाराज जी ! अगर मैं जाऊँ शंकर भगवान के सामने तो ? बेटे ! तू ऐसे वक्त जाना जब महादेव जी सोकर के नहीं उठे हों। सोकर के उठते ही शायद आँखों को मलते हों और आँख खुल गई तो समझ लेना। तू गया तो इसलिए कि मनोकामना पूरी करा करके लाऊँगा, पर शंकर जी ने खुली आँख से देख लिया तो, तेरा सफाया हो जाएगा। सो तू मत जाना। कौन से वक्त जाऊँ ? नौ बजे के बाद, जब शंकर जी कुल्ला-उल्ला करके, आँख-मुँह धोकर चश्मा पहनकर ठीक हो जाते हैं, तब जाना। महाराज जी ! ऐसी आँख होती है ? बेटे ! कोई आँख नहीं है। फिर यह क्या है ? तीसरी आँख विवेक की आँख, दूरदर्शिता की आँख, टेलीस्कोप की आँख, जिससे हमको परलोक दिखाई पड़ता है, जिससे नरक दिखाई पड़ता है, जिससे पुनर्जन्म—अगला जीवन दिखाई पड़ता है, जिससे हमको बुढ़ापा दिखाई पड़ता है।

दूरदर्शिता एवं विवेक का प्रतीक

मित्रो! हमको तो केवल आज का फायदा दिखाई पड़ता है, कल क्या परिणाम होगा, यह दिखाई नहीं पड़ता। हम वह चीजें खाते हैं कि कल हमारा पेट खराब हो जाए तो क्या? दावत खाने जाते हैं तो खाते ही चले जाते हैं। अरे बाबा पेट में दर्द हो जाएगा। अरे साहब! कल दर्द होगा तो लवणभास्कर चूर्ण खा लेंगे, आज तो खा ही लेने दीजिए। आज खाता है और घंटे भर की बात भी नहीं मालूम तुझे। नहीं महाराज जी! जो कुछ होगा, सो देखा जाएगा। मित्रो! हम और आप वो आदमी हैं, जिनको अभी इसी वक्त का फायदा याद है, दूर का नुकसान, दूर का फायदा ध्यान में नहीं आता। अगर यह हमको याद आया होता तो हमने अपनी जिंदगी का क्रम ऐसे बनाया होता कि हमारा वर्तमान जीवन, बुढ़ापे का जीवन, भावी जीवन, मरने के बाद का जीवन शानदार बना होता। आज के फायदे के लिए हमने सब कुछ गँवा दिया। हमारी वह तीसरी आँख, जिसको हम टेलीस्कोप कह सकते हैं, जिससे हमको अपना भविष्य दिखाई पड़ता है।

मित्रो! शंकर जी के पास थी यह आँख। जब कामदेव आया तो उन्होंने इस आँख को खोला। अच्छा आप पधारे हैं। कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है और अपने जबड़े में जखम कर लेता है। जबड़े के जखम से जो मुँह में खून टपकता है, उसे समझता है कि न जाने कैसा जायका आ रहा है। कहिए कामदेव साहब! आप सूखी हड्डी हैं न? हाँ साहब! और हम लोग कुत्ते हैं न, हाँ! देखिए हम अपनी जवानी, अपना शौर्य, अपना तेज, अपना ओजसू, बारूद के तरीके से और फुलझड़ी के तरीके से सब जलाते हैं और यह समझते हैं कि न जाने हमने क्या कमा लिया और क्या फायदा उठा लिया। मित्रो! यह काम-वासना का स्वरूप शंकर जी की समझ में आया और उन्होंने काम-वासना को मारकर भगा दिया। कामदेव को जला दिया। विवेक अगर हमारे पास आए तो हम असंख्य बुराइयों, असंख्य दुर्बलताओं को, कमजोरियों को सहज ही मारकर भगा सकते हैं। यह है शंकर जी की तीसरी आँख। जिस सिद्धांत में यह तीसरी आँख जुड़ी हुई हो, जिस व्यक्ति के जीवन में यह तीसरी आँख जुड़ी हुई हो, वह शंकर अथवा शंकर का भक्त है।

मित्रो! शंकर भगवान गले में मुंडों की माला पहने हुए

हैं। क्या मतलब? शंकर जी ने कंकालों से बनी मुंडों की माला गले में पहन रखी थी। आप भी अगर मुंडों की माला गले में पहन करके रखें और यह देखें कि हमारी बीबी मुंड, हमारा बच्चा मुंड, हमारा शरीर मुंड है। ये सब हड्डियों के जंजाल और हड्डियों के जखीरे मरे हुए पड़े हैं और हमारे गले में बँधे हुए हैं। खोपड़ी वाला कंकाल, जो हमको अपना दिखाई पड़ता है, उसके साथ मौत और जिंदगी को मिला करके—समन्वय करके रखा होता तो मजा आ जाता। एक कंधे पर आपने मौत का हाथ पकड़ रखा होता और दूसरे कंधे पर जिंदगी का हाथ रखा होता तो मौत और जिंदगी के समन्वय से मित्रो! आपकी जिंदगी राजा परीक्षित जैसी हो गई होती। अगर आपने मौत को समझा होता तो सिकंदर के तरीके से आपको अफसोस न करना पड़ता।

मौत को याद रखिए

मित्रो! सिकंदर जब मरने को हुआ तो उसने कहा कि हमारा सामान लाइए, हम लेकर के जाएँगे। लोगों ने कहा कि यह सामान आपके साथ नहीं जा सकता। सामान तो जमीन का था और यहीं रहने वाला है, आप क्या कर सकते हैं। आपने जो इस्तेमाल कर लिया, वह आपका है, वाकी तो सब यहीं का है। सिकंदर की आँख खुली तो उसने कहा कि मुझसे कितनी बड़ी गलती हो गई। मुझे अगर यह मालूम होता कि यह दौलत, जिसके लिए मैंने अपनी सारी जिंदगी गँवा दी, यह मेरे साथ चलने वाली नहीं है, यह मेरे काम आने वाली नहीं है। चार रोटी खाने के अलावा पाँचवीं रोटी मुझे नसीब नहीं हो सकती। अगर यह मुझे मालूम रहा होता तो मैंने अपनी जिंदगी सुकरात के तरीके से, ईसा के, बुद्ध के तरीके से शानदार बिताई होती। मैं ऐसी घटिया जिंदगी जीने को क्यों तैयार होता? उसने अपने हाथ ताबूत से बाहर निकालने को कहा और बोला कि लोगों से कहना कि सिकंदर बड़ा होशियार था और बड़ा बेवकूफ भी। हीरे-मोतियों जैसी जिंदगी उसे जिस काम के लिए मिली थी, उसमें इस्तेमाल न कर सका। बेकार के, बेवकूफी के कामों में जिंदगी को गँवा बैठा। सिकंदर के दोनों हाथ ताबूत से बाहर निकाल दिए गए। लोगों ने देखा कि सिकंदर खाली हाथ माँ के पेट से पैदा हुआ और यहाँ से भी खाली हाथ चला गया। अगर यह बात आप समझते कि मौत और जिंदगी के दो पहियों के ऊपर हमारी जिंदगी की गाड़ी चल रही है, तब सही नीति निर्धारित करने का विचार करते।

आज हम लाखों-करोड़ों वर्ष जीने की कल्पना करते हैं, मौत तो कभी ख्वाब में भी नहीं आती। मौत अगर हमारे ख्वाब में आती तो हम कैसी शानदार जिंदगी जी पाते।

प्रतीकों को समझें

शंकर भगवान के गले में साँप पड़े हुए हैं। वे जिन लोगों को अपना मित्र बना करके रखते थे, वो थे बेचारे—**तन झीन कोऊ अति पीन, पावन कोऊ अपावन तन धरे**। कमजोर आदमी, बीमार आदमी, गए-गुजरे आदमी। जापान के गांधी कागावा का मैं एक दिन हवाला दे चुका हूँ। उन्होंने पिछड़े हुए लोगों के लिए, दीन-दुखियों के लिए अपनी जिंदगी गँवा दी। मैं एक दिन बाबा साहब आटे का हवाला दे चुका हूँ। उन्होंने गरीबों, कोढ़ियों के लिए अपनी जिंदगी गँवा दी। हमारे समाज में चारों ओर कोढ़ी और अंधे फैले पड़े हैं। क्या आप उनकी सहायता नहीं कर सकते? कोढ़ी और अंधा कौन? आप और हम। हम और आप नैतिक दृष्टि से कोढ़ी और अंधे ऐसे, जिनको अपना भविष्य, अपना व्यक्तित्व, अपना लोक-परलोक कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। इन अंधों को, कोढ़ियों को, शराबियों को, पिछड़ों को, पापियों को सहायता की जरूरत है, जो हमें करनी चाहिए।

नहीं साहब! हम शंकर जी की भक्ति करते हैं। बड़ी भक्ति करता है! तीन घड़ों में सूराख करके, पानी भरकर तिपाई पर रख देता है। सावन के महीने में शंकर जी के सिर पर सारे दिन टप-टप पानी टपकता रहता है। शंकर जी को जुकाम हो गया, मलेरिया बुखार आ गया, पानी में नहाते-नहाते। महाराज जी! शंकर भगवान मेरी मनोकामना पूरी नहीं करेंगे? बेटे! तूने, महीने भर हो गया, शंकर जी को न तो कुछ खाना खिलाया, न दवाई दी, फिर तुम्हारी मनोकामना कैसे पूरी करेंगे? अच्छा महाराज जी! मैं शंकर जी के लिए दवा लेकर आऊँ। ये लीजिए, आक के फूल खा लीजिए और ये धतूरे के फल खा लीजिए। तूने महादेव जी को धतूरे के फल खिला दिए और उन्हें ज्यादा बुखार आ गया। वे बीमार पड़ गए और चेले ने उनकी झोली में जो कुछ माल था, सब निकाल लिया। शंकर जी की झोली में बिहार गवर्नमेंट की लॉटरी के नंबर और गुजरात गवर्नमेंट की लॉटरी के टिकट के नंबर रखे थे, वे सब नंबर चुरा ले गया और शंकर भगवान ताकते रह गए। जालिम और जाहिल कहों का, यही है तेरी शंकर जी की भक्ति!

सच्ची भक्ति : गुणों का परिष्कार

मित्रो! इन्हीं बेकार की बातों को, बेवकूफी की बातों को लोग समझते रहते हैं कि हम भगवान की भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं। कहाँ है यह भक्ति और पूजा? मित्रो! भक्ति वह हो सकती है, जिसमें कि हम मुहब्बत, अपने चरित्र और अपने व्यक्तित्व द्वारा समाज को श्रेष्ठ और उपयोगी बनाते हैं। इससे कम में कोई भक्ति नहीं हो सकती और ज्यादा भक्ति की कोई जरूरत नहीं।

शंकर जी की उपासना का स्वरूप मैंने बताया। अगर आप उनके भक्त हैं तो अपने गुण, कर्म और स्वभाव का

एक व्यक्ति बड़ा निकम्मा था। हालाँकि वह खूब मोटा-ताजा, शक्तिशाली और स्वस्थ था, परंतु काम कुछ नहीं करता था, इसलिए लोग उसे 'साँड़' कहकर पुकारते थे। एक दिन वह कहीं जा रहा था। सामने से आता दिखाई दिया एक साँड़ (नंदी)। उसके पीछे ही साँड़ का मालिक बाबा जी भी आ रहा था। उस निकम्मे व्यक्ति ने साँड़ को देखकर मौज से कहा—“आओ मित्र भाई! हम तुम गले मिलें। हम दोनों में अंतर ही क्या है?”

“और तो सब बराबर हैं, पर एक अंतर है। वह यह कि इसे समय पर घास मिल जाती है और तुम्हारी भगवान जाने!”—बाबा जी बोला।

निकम्मे तथा आलसियों से पशु-जानवर भी अच्छे रहते हैं।

परिष्कार अपने जीवन में समन्वित कीजिए। मशक्कत कीजिए, अपने आप से लड़ाई कीजिए, अपने आप को तपाइए, भूखा मारिए, अपने आप को अनुशासन में रखिए। ऐसा करेंगे तो मैं आपको शंकर जी का भक्त कह सकता हूँ।

मित्रो! गायत्री माता की जो मूर्ति है, उसके सामने हम और आप रोज जप करते हैं। आप उसके कलेवर को तो समझते हैं, पर प्राणों को क्यों नहीं समझते। गायत्री माता का प्राण। वह मानवता की देवी, आदर्शों की, सिद्धांतों की,

शालीनता, उत्कृष्टता, आदर्शवादिता की, विवेकशीलता की देवी है। **धियो यो नः प्रचोदयात्** यह देवी है, आप इसकी उपासना कीजिए। नहीं महाराज जी! हम तो हंस पर बैठी देवी की उपासना करते हैं। चलिए, मैं आपसे कहना चाहूँगा कि यह भी अलंकार है। हंस जैसी जिंदगी बनाइए, नीर और क्षीर का विवेक करना सीखिए, उचित और अनुचित का फरक करना सीखिए। मोती खाइए और कीड़े खाने से इनकार कर दीजिए। तालाबों में जो हंस पाया जाता है, वह तो कीड़े खाता है, मोती कहाँ मिलते हैं बेचारे को। नीर-क्षीर का विवेक करना कहाँ आता है। यह तो पानी पीता है। न बेचारे को दूध मिलता है, न नीर-क्षीर-विवेक करता है। गायत्री माता का हंस ऐसा होना चाहिए, जैसा एक विवेकशील मनुष्य होता है। जो उचित और अनुचित का—यह करने लायक है, यह न करने लायक; यह करूँगा, यह नहीं करूँगा; इधर चलूँगा, इधर नहीं चलूँगा— २४ घंटे यह फरक करता है। उस आदमी का नाम है—हंस। अगर आप हंस का जीवन जीएँ तो मैं आपसे वायदा करता हूँ कि गायत्री माता की शक्ति अनायास ही आपके ऊपर आएगी और सवारी करेगी।

हंसवृत्ति विकसित करें

हंस को गायत्री माता कंधे पर रखकर चलती है या हंस गायत्री माता को कंधे पर रखकर चलता है, बताइए जरा? हंस गायत्री माता को कंधे पर रखकर चलता है। आप अगर हंस हैं तो गायत्री माता को कंधे पर बिठाकर चाहे जहाँ लेकर जा सकते हैं। कैसे? जैसे अभी युगांडा में हवाई जहाज पकड़ ले गए थे। कौन? छापामार। आप छापेमार के तरीके से गायत्री माता को कंधे पर बिठाइए, चलिए हमारे घर। नहीं बेटे! हम तो स्वर्गलोक जाना चाहते हैं। नहीं—आप स्वर्गलोक नहीं जा सकतीं हमारे साथ चलिए। हंस जहाँ चलेगा, वहीं गायत्री माता को चलना पड़ेगा। अगर आप हंस हैं तो गायत्री माता को मजबूर कर सकते हैं।

माता का भाव, देवी का भाव;

भोग्या का नहीं

गायत्री माता क्या हैं? गायत्री माता बेटे! उन सिद्धांतों का, आदर्शों का नाम हैं, जिनसे हमारी आँखें और हमारा दिमाग ठीक हो जाता है। हमने आपको जवान नारी का एक फोटो छापकर दिया है। जवान नारी की मंदिर में स्थापना की हुई है। हमने आपसे यह कहा है कि इसको माता

कहिए। नारी मात्र को माता मानकर चलिए; अर्थात् जहाँ भी आपको श्रेष्ठता दिखाई पड़े, मनुष्य के भीतर जो राम चमचमा रहा है, उसे देखिए। मनुष्यों के भीतर जो शैतान चमचमा रहा है, उसे मत देखिए। हमने यह कहा था और गायत्री माता उसी सौंदर्य का प्रतीक हैं, ताकि आप जवान महिला को माता के रूप में देखना शुरू करें। गांधारी के तरीके से आँखों में वह ताकत पैदा करें, जिससे पट्टो खोलकर जिसको भी आप देखें तो वज्र का होता चला जाए। आप नारी को शिवाजी के तरीके से देखें। एक मुसलमान महिला को देखकर उन्होंने कहा कि काश! इतनी खूबसूरत अगर हमारी माँ होती तो हम कितने सुंदर होते! यही वह रहस्य था भवानी तलवार का, जो उनके हाथ में आई और वह अक्षय विजय करते चले गए। गांडीव किस चीज का बना हुआ था? गांडीव बेटे! बाँस का बना हुआ था। अर्जुन जब स्वर्गलोक गए तो देवताओं ने एक अप्सरा को उनके पास भेजा। अप्सरा ने जाकर अर्जुन से कहा कि आपके जैसा एक बच्चा हमको चाहिए तो उन्होंने कहा कि हमारे जैसा बच्चा तो नहीं मालूम कि आपको मिलेगा या नहीं मिलेगा, पर हम आपकी इच्छा अभी पूरी कर सकते हैं। आप कुंती के तरीके से हमारी माँ और हम आपके बेटे बन जाते हैं। आप हमारे सिर पर हाथ रखिए और कहिए बेटा और मैं आपके चरणों की धूल उठाकर सिर पर लगा लेता हूँ। आप मेरी माँ बन जाइए और समझिए कि आपकी मनोकामना पूरी हो गई।

अध्यात्म सिद्धांतवाद का नाम

बेटे! यह सिद्धांतवादिता है, आदर्शवादिता है। इसी का बना था गांडीव, जिसने सारे महाभारत को जीत करके दिखा दिया। लड़ाई हथियारों से नहीं होती, कलाई से होती है। बंदूक काम नहीं करती, काम करती हैं—कलाइयाँ और ताकत। ताकत तो क्या काम करेगी, असली काम करेगी आदमी की हिम्मत। आदमी की जो हिम्मत है, उसे आत्मबल कहते हैं। मित्रो! इसी आत्मबल का नाम भगवान है। इसी का नाम सिद्धियाँ, इसी का नाम चमत्कार है। आत्मबल बढ़ाने के लिए आपको शालीन होना चाहिए। समुन्नत, श्रेष्ठ और आदर्शवादी होना चाहिए। अगर आप आदर्शवादी बनने के लिए तैयार हैं तो मैं कह सकता हूँ कि भगवान आपको गांडीव के तरीके से अक्षय हथियार देने को तैयार हैं। अगर आप शिवाजी के तरीके से चरित्रवान बन सकते

हैं तो आपको वह अमोघ भवानी तलवार मिल सकती है, जिसका पराजित होना कभी संभव नहीं है। आपको गांधारी के तरीके से शक्ति मिल सकती है, अगर आप गायत्री के उपासक हों, तब।

मित्रो! सावित्री और सत्यवान कथा आपने पढ़ी होगी। सत्यवान को सावित्री ने वरण किया था और उसको मृत्यु के मुँह से छुड़ाकर लाई थी। सावित्री किसे कहते हैं? यह व्रटे! गायत्री का नाम है और सत्यवान माने चरित्रवान। अगर आदमी चरित्रवान है तो गायत्री माता उसकी स्वयं तलाश करती है कि कहाँ बैठा है सत्यवान। वह सारी दुनिया में चक्कर लगाती है सत्यवान को ढूँढ़ने के लिए। ये लड़कियाँ गाती रहती हैं—**कहाँ छिपा बैठा है सच्चा इनसान, खोजते जिसे स्वयं भगवान।** वह इनसान कहाँ छिपा बैठा है, जिसको कि भगवान की तलाश है। भगवान इनसान को तलाशता है। इनसान को भगवान को तलाशने को कोई जरूरत नहीं है। भगवान तलाशता है, अगर इनसान के भीतर इनसानियत हो, तब। हमने इनसानियत तो गँवा दी और भगवान के लिए खुशामद करते हैं। सड़े हुए आदमी, गले हुए आदमी, निकम्मे आदमी, चोर-उचकके आदमी क्या जाएँगे भगवान के यहाँ! मित्रो! सफाई की

जरूरत है और यही है आध्यात्मिकता का उद्देश्य।

हमारा लक्ष्य, इष्ट : देवत्व

देवताओं की स्थापना का मतलब यही है कि हम अपने जीवन में देवत्व का समाविष्ट करें। देवत्व हमारा लक्ष्य हो, देवत्व हमारा इष्ट हो। हम देवताओं की लाइन में खड़े हों, देवताओं की पंक्तियों में अपना नाम लिखाने की कोशिश करें। आज तो हमने राक्षसों की लाइन में अपना नाम लिखा रखा है। हमारा विचार, हमारे कर्म, हमारी इच्छाएँ, हमारी कामनाएँ, हमारी भावनाएँ, हमारे अभ्यास, हमारी आदतें सब-की-सब ऐसी निकम्मी बनी पड़ी हैं कि हमें देख करके कोई आदमी नफरत ही कर सकता है। ऐसी स्थिति में अगर भगवान के दरबार में जाएँ तो सिवाय घृणा के और क्या मिल सकता है हमको? मित्रो! अगर आपको आध्यात्मिकता से लाभ उठाने हों तो आपको देवताओं का स्वरूप धारण करना पड़ेगा। देवताओं को प्रसन्न करने के बारे में जो प्रक्रियाएँ हैं, उनको आप समझिए। पंचोपचार पूजन, षोडशोपचार पूजन का क्या मतलब है, इसका मतलब समझिए। इसका उद्देश्य समझिए।

(क्रमशः समापन अगले अंक में)



पिता ने बहुत समझाया—“बेटा! शराब मनुष्य को बरबाद कर देती है।” पर बेटे ने एक न सुनी, वह नियमित रूप से सुरा की उपासना करता रहा।

एक दिन उसने अपने मित्र के साथ खूब शराब पी और नशे में धुत्त हो गया। उसकी सारी विचारशक्ति नष्ट हो गई। उसने मित्र से पूछा—“क्यों जी! मेरी मृत्यु के बाद क्या होगा?” “होगा यह कि तुम्हारा शरीर कब्र में डाल दिया जाएगा।”—साथी ने उत्तर दिया। लड़का बोला—“अजी यह तो मुझे भी पता है, तुम उसके बाद की बात बताओ?” मित्र ने कहा—“फिर क्या होगा, तुम्हें मिट्टी से ढँककर कब्र बना दी जाएगी।” लड़का ठठाकर हँसा और कहने लगा—“मूर्ख! इतना तो मुझे भी पता है, तू यह बता उसके बाद क्या होगा?” मित्र ने हँसकर कहा—“बरसात होगी और पड़ोसी तुम्हें खूब रौंदेगा।”

“अच्छा तो पड़ोसी की यह हिम्मत!” लड़का चिल्लाया और लाठी लेकर दौड़ा। पकड़ते-पकड़ते उसने पड़ोसी का सिर सीरा बना दिया। वह तो पुलिस आ गई, नहीं तो मारकर ही छोड़ता। पुलिस उसे पकड़कर ले गई और हवालात में बंद कर दिया।

प्रातःकाल उसने पिताजी को संदेश भेजा—“पिताजी! अब मैं समझ गया, नशा सचमुच मनुष्य से वह सब करा सकता है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।”

कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः

(श्रीमद्भगवद्गीता के 'ज्ञान-विज्ञान योग' नामक सातवें अध्याय की युगानुकूल व्याख्या—द्वितीय किस्त)

प्रस्तुत अध्याय का नाम 'ज्ञान-विज्ञान योग' है। कर्मयोग की समग्र व्याख्या के बाद भगवान इस प्रकरण से भक्तियोग में प्रवेश कर रहे हैं। इस अध्याय में मूलतः संपूर्ण पदार्थों में कारणरूप में विद्यमान भगवत्सत्ता की व्यापकता की चर्चा है। भगवान को कैसे जानें, उनके ज्ञान-विज्ञान के कर्म को किस तरह पहचानें, आसुरी स्वभाव वाले एवं भगवद्भक्त कैसे होते हैं, अन्य देवताओं की उपासना सकाम भक्त किस-किस तरह करते हैं एवं क्या प्रतिफल वे पाते हैं, यह सारा विवरण तीस श्लोकों वाले इस अध्याय में दिया हुआ है।

पिछली कड़ी (दिसंबर, २००५) में आपने पढ़ा कि भगवान ने भक्ति को कितना महत्त्व दिया है। इस अध्याय के माध्यम से भक्तिरूपी मर्म को, कर्म व ज्ञान के बीच की गाँठ को अर्जुन को आत्मसात् कराना चाहते हैं। पहले श्लोक में ही वे उनके प्रति अनुरक्ति, शरणागति की महत्ता का वर्णन करते हैं। फिर दूसरे श्लोक में कहते हैं कि वे अर्जुन को यह ज्ञान, विशेष अनुभव से भरे ज्ञान (विज्ञान) और ज्ञान (तत्त्वदर्शन) के साथ कह रहे हैं, ताकि वह अध्यात्म दर्शन की समग्रता जान सके। इसे जान लेने पर फिर कुछ भी शेष नहीं रह जाता, यह भी वे स्पष्ट कर देते हैं। अब इसी व्याख्या को विस्तार से और आगे के श्लोकों के साथ पढ़ें—

भागवत कर्म की बुनियाद : भक्ति

भगवान कहते हैं कि अर्जुन की आसक्ति अनन्य प्रेम के साथ उन्हीं के आश्रय में रहते हुए योगी बनते हुए विकसित हो। भगवान में अनुरक्ति, भगवान के प्रति शरणागति होगी तो वह भक्ति का ज्ञान व विज्ञान समझ सकेगा। इसे जान लिया तो फिर योग की पराकाष्ठा पर पहुँचना सुनिश्चित है। हमारी आसक्ति ईश्वरीय गुणों में हो, आदर्शों के समुच्चय भगवत्सत्ता में हो, न कि भोग के विषयों में उलझाने वाले पदार्थों में। भक्ति में बड़ा प्रताप है। यदि ईश्वर को सर्वतोभावेन समर्पण कर दिया जाए तो अनेकानेक समस्याओं का स्वतः समाधान हो जाता है; दैनंदिन जीवन के झंझावात हटते-मिटते चले जाते हैं; ऋद्धि-सिद्धियों का अंतराल में रहस्योद्घाटन होने लगता है। संभवतः इसी महिमा के कारण देवर्षि नारद ने भक्तिसूत्रों का शुभारंभ अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः जैसे प्रथम सूत्र से किया है—“अब हम भक्ति को जीवन में उतारने के माहात्म्य की चर्चा करते हैं।” अथ का अर्थ यह कि अब सारे बौद्धिक संदेहों-शंकाओं-ऊहापोहों का निवारण कर पूर्वाग्रहों से मुक्ति पा

हम भक्ति की चर्चा करते हैं। बुद्धि से परे जाकर ही भक्ति को पाया जा सकता है। भक्ति विकसित हुई तो फिर संसार में कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता; ऐसा योगेश्वर का मत है।

भगवान चाहते हैं कि वह समस्त ज्ञान, जो तर्क से, बौद्धिक ज्ञान से परे है व जिसकी बुनियाद पर भागवत कर्म किया जाएगा, अधिक पूर्णता के साथ अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को वे बता दें। यह ज्ञान उस भगवत्सत्ता के स्वरूप का ही समग्र व अखंड ज्ञान हो सकता है। वे भगवान ही सब कर्मों के मूल कारण हैं और जिनकी सत्ता में अवस्थित होने पर कर्मयोगी ज्ञान के द्वारा मुक्त हो सकता है (यह समग्र प्रतिपादन प्रथम छह अध्यायों में हो चुका)। ऐसा होने पर अर्जुन को उस दिव्य ज्ञान का प्रकाश मिलेगा, जिससे अब तक वह जो सीख चुका, उसकी यथार्थता भी सिद्ध हो सकेगी। परमेश्वर ही प्रेम और भक्ति के परम उत्कर्ष वाले स्वरूप हैं। यही बात भगवान प्रथम दो श्लोकों में समझाते हैं—“मुझमें अपने मन को आसक्त करके और मुझे अपना आश्रय बनाकर योगसाधन द्वारा तुम मुझे बिना किसी संशय के समग्र

भक्ति संबंधी भ्रांतियाँ एवं उसका सच्चा विज्ञान - ४



(समापन किस्त)

परमपूज्य गुरुदेव अपनी अमृतवाणी द्वारा इस महत्त्वपूर्ण प्रवचन में आज अध्यात्म के क्षेत्र में विशेषतः भक्ति संबंधी भ्रांतियों की बात बता रहे हैं। तीन किस्तों से आप इसे पढ़ रहे हैं। वे देवता की परिभाषा बताते हैं। उनके आलंकारिक रूपों से हम क्या शिक्षण लें, यह हमें समझाते हैं; विशेषतः शंकर जी एवं गायत्री माता के उदाहरणों द्वारा। वे बताते हैं कि अध्यात्म सिद्धांतवाद का नाम है। देवताओं की स्थापना उनकी धारणा के मूल में यही है कि हम अपने जीवन में देवत्व को समाविष्ट करें। अब इस समापन किस्त में आगे पढ़ें—

षोडशोपचार का मर्म

मित्रो! पंचोपचार अथवा षोडशोपचार पूजन करके देवताओं को प्रसन्न किया जाता है। षोडशोपचार का क्या मतलब है, यह आप समझिए तो सही। पंचोपचार का उद्देश्य तो समझिए। नहीं साहब! उद्देश्य तो हम नहीं समझते। हम तो चावल खिलाएँगे, धूपबत्ती व दीप जलाएँगे, पानी पिलाएँगे, फूल चढ़ाएँगे और सब देवताओं की हजामत बनाएँगे। नहीं बेटा! ऐसा नहीं हो सकता। ये सारे-के-सारे खालिस प्रतीक हैं। हम जल चढ़ाते हैं—‘पाद्यं समर्पयामि,’ ‘अर्घ्यं समर्पयामि,’ ‘स्नानं समर्पयामि।’ क्या मतलब है? हम अपना श्रम, अपना पसीना लगाएँगे भगवान के लिए, श्रेष्ठ कामों के लिए। समाज, लोक-मंगल, विराट ब्रह्म के लिए हम श्रम का पसीना बहाएँगे, उनके पाद धुलाएँगे पसीने के द्वारा, यह है—‘पाद्यं समर्पयामि।’ इस पानी से क्या काम बनेगा। नहीं साहब! एक चम्मच जल से हम भगवान जी को नहलाएँगे। भगवान जी तो बहुत बड़े हैं? हाँ महाराज जी! हमसे तो चौगुने, सौगुने बड़े हो सकते हैं। फिर उन्हें तो पीछे नहलाना, पहले तू एक चम्मच पानी से नहा करके दिखा। नहीं महाराज जी! ‘स्नानं समर्पयामि।’ बेकार की बात मत कर, किसे करा रहा है स्नान? स्नान की जो वृत्ति, जो भावना है, उसके पीछे रहस्य छिपा है कि हम पहले स्वयं अपनी सफाई करेंगे, अंतरंग से स्नान करेंगे। यह हमारा भगवान

और ईमान जो गंदा, कलुषित हो गया है, आप इसको स्नान कराइए। यह ही है ‘स्नानं समर्पयामि।’

‘अक्षतान् समर्पयामि’ का क्या मतलब है? मित्रो! इसका मतलब एक ही है कि हमारी जो कमाई है, उसका एक अंश हमें भगवान को देना चाहिए। अक्षत इसका स्मरण दिलाते हैं कि हम जो पैसा कमाते हैं, उसमें से आपका हिस्सा निकालते हैं, लीजिए यह अंशदान—‘अक्षतान् समर्पयामि।’ हम सब नहीं खाएँगे, जो कमाएँगे, उसका थोड़ा हिस्सा अपने लिए रखेंगे और शेष लोक-मंगल के कार्यों में लगाएँगे। हे भगवान! हमारे भीतर इतनी निष्ठा जगाना कि हम कम-से-कम में अपना गुजारा करें और अधिक-से-अधिक धन आपको देते चले जाएँ। इसका प्रतीक (सिंबल) है—‘अक्षतान् समर्पयामि।’

पुष्प जैसे बनिए

मित्रो! हम भगवान जी को फूल इसलिए चढ़ाते हैं कि हमारा फूल जैसा जीवन, हँसता-हँसाता हुआ जीवन, खिलता-खिलाता हुआ कोमल जीवन बने। अगर आपको यह विश्वास हो जाए कि हम फूल जैसा जीवन जिएँगे, फूल जैसे बनेंगे तो आपका जीवन भगवान के चरणों पर, भगवान के गले पर, भगवान के मुकुट पर विराजमान होने का अधिकारी बन सकता है। नहीं साहब! हम तो भगवान जी को फूल खिलाएँगे। क्या करेंगे भगवान जी फूल खाकर के? वे तो चारों ओर घूमते रहते हैं। जहाँ

कहीं बगीचा दिखाई पड़ेगा, वहीं जा बैठेंगे और फूल सूँघते रहेंगे। क्यों भगवान जी! क्या मामला है? अरे साहब! बहुत दिनों से फूल सूँघने को नहीं मिले थे, सो आ गए, यहाँ फूलों की महक आती रहती है। तो फिर यहीं रहिए न? हाँ, जहाँ खुशबू आएगी, वहीं रहेंगे। बेटे! भगवान को खुशबू और बदबू से, फूल और पत्ती से कोई ताल्लुक नहीं है। फूल हम भगवान को नहीं चढ़ाते, बल्कि अपने ईमान को चढ़ाते हैं और भगवान के बहाने अपने आपको सिखाते हैं कि तुझे फूल जैसा बनना चाहिए। हमारा भगवान जो हमारे भीतर सो गया है, उसको हम नसीहत देते हैं, उसको सिखाते हैं, उसको बहलाते-फुसलाते हैं कि आप फूल बनिए। भगवान क्या करेंगे फूल का?

चंदन-सी सुगंधि एवं प्रकाशवान जीवन

मित्रो! भगवान जी को चंदन हम इसलिए लगाते हैं कि हमारी जिंदगी चंदन जैसी सुगंधित बननी चाहिए। साँप और बिच्छू हमारे आस-पास रहें, लेकिन हम उनका जहर अपने ऊपर स्वीकार न करें। हम साँप-बिच्छूओं को भी तरावट और खुशबू देते चले जाएँ। हमारे समीप जो काँट उगे हों, उनको भी हम खुशबू देते और अपने समान बनाते चले जाएँ। अगर हमारी यह वृत्ति और यह पर्यास रहे तो हमारा चंदन चढ़ाना सार्थक। मित्रो! हम जो दीपक जलाते हैं, प्यार से भरा लबालब जीवन। उसमें बर्तिका अर्थात् लगन और उसके भीतर प्रकाश। जलता हुआ प्रकाश हमारे जीवन को प्रकाशित करे। हम प्रकाशवान जीवन जिँएँ तो हमारा दीपक जलाना सही है। बेटे! भगवान जी को दीपक की कोई जरूरत नहीं है। भगवान जी का तो दिन में सूरज जलता रहता है और रात में चाँद। उनको तैरे दीपक का क्या करना है। दीपक तो हम अपने आपको दिखाते हैं। अपने मन को, बुद्धि को, चित्त को, अपने अंतर को दिखाते हैं कि हम दीपक होकर के जिँएँ। दीपक हमारा लक्ष्य होना चाहिए। अगर यह वृत्ति हमारे पास हो तो मैं समझूँगा कि भगवान की तरफ आपका मन चलने लगा।

आत्मशोधन : मूल लक्ष्य

मित्रो! ढेरों-की-ढेरों उपासनाएँ हमने आपको बता दी हैं। उन सब के पीछे एक ही उद्देश्य है, दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है। भगवान को बहकाना और भगवान को फुसलाना उनका उद्देश्य नहीं है, बल्कि अपने आपका

परिशोधन और अपने आपका परिष्कार। बस, सारी उपासनाओं का इतना ही उद्देश्य है। भगवान के भजन से लेकर जप-तप और ध्यान करने तक का एक ही उद्देश्य है। भगवान पर इसका कोई असर नहीं हो सकता। असर होगा तो आपके ऊपर कि आप सही होते जाएँगे और सही होते ही भगवान खिंचते हुए चले आएँगे। जैसे मैं एक दिन आपसे कह रहा था कि पेड़ों में वह ताकत होती है कि बादलों को खींच करके ले आते हैं।

\\ \\

कोर्टमार्शल के सम्मुख तात्या टोपे को उपस्थित करने के बाद अंगरेज न्यायाधीशों ने कहा—“यदि अपने बचाव के लिए तुम्हें कुछ कहना है तो कह सकते हो।”

“मैंने ब्रिटिश शासन से टक्कर ली है।”

तात्या ने स्वाभिमानपूर्वक कहा—“मैं जानता हूँ कि इसके बदले मुझे मृत्युदंड प्राप्त होगा। मैं केवल ईश्वरीय न्याय और उसके न्यायालय में विश्वास करता हूँ, इसलिए अपने बचाव के पक्ष में कुछ नहीं कहना चाहता।”

नियमानुसार उन्हें फाँसी ही दी गई। बधस्थल पर ले जाते समय उनके हाथ-पैर बाँधे जाने लगे तो वे बोले—“तुम मेरे हाथ-पैर बाँधने का कष्ट क्यों करते हो, लाओ, फाँसी का फंदा मैं स्वयं अपने हाथों से पहने लेता हूँ।”

कर्तव्य का पालन करते हुए मृत्यु भी आ जाए तो श्रेष्ठ है।

\\ \\

आप भी भगवान को खींच करके ले आ सकते हैं, अगर आपके पास वह चुंबक है—मैग्नेट है, जिसको मैं चरित्र कहता हूँ। जिसको मैं लोकसेवी बुद्धि और वृत्ति कहता हूँ। अगर यह चीज है तो आपके पास भगवान जी आ जाएँगे। आपको भगवान जी के पास जाने की कोई जरूरत नहीं है। सारी-की-सारी प्रक्रियाएँ इसी के लिए बनाई गई हैं। आत्मशोधन की प्रक्रिया, देवपूजन की प्रक्रिया के बारे में थोड़ा-सा प्रकाश मैंने डाला।

जप क्या है? जप है बेटे! रगड़। जप किसे कहते हैं? जप बार-बार का रेपिटिशन है। रेपिटिशन क्या है? जैसे हम मिट्टी लेते हैं और हाथ धोते हैं। अरे साहब! यह क्या कर रहे हैं आप? बेटे! हम हाथ माँज रहे हैं, रगड़ रहे हैं। बरतन को बार-बार माँजते हैं। जप मानें रिपीट करना। फिर बार-बार क्यों करते हैं? जैसे पत्थर के ऊपर रस्सी की रगड़ पड़ती है तो निशान पड़ जाता है। यह हमारा पत्थर वाला दिल है, इस पर राम नाम की रस्सी की हम बार-बार रगड़ लगाते हैं। बार-बार गायत्री मंत्र का जप करते हैं, २४००० गायत्री मंत्र का जप करते हैं, ताकि इस पत्थर जैसे, चट्टान जैसे दिल पर निशान पड़ें। साबुन हम बार-बार लगाते हैं, क्या मतलब है? बेटे! यह रेपिटिशन हो रहा है। हम बार-बार कपड़े धोते हैं। अरे ऐसे धोया कीजिए कि कपड़े पर पानी डाल दिया और निचोड़ दिया। नहीं, कपड़ा साफ करने के लिए रगड़ना जरूरी है। यह रेपिटिशन है।

अपनी धुलाई-धुनाई ही जप

मित्रो! रेपिटिशन माने अपने आपकी धुलाई, अपने आपकी धुनाई। जप करने का मतलब जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, यही है और यही होना चाहिए। हम भगवान को बार-बार पुकारते हैं, जिसको हमने खो दिया है। उसको हम याद करते हैं कि हमारा हीरा चला गया, हमारा जीवन, हमारा प्राण चला गया। इसीलिए हम भगवान को, गायत्री माता को बार-बार पुकारते हैं। सीता जी को रावण चुरा ले गया था। रामचंद्र जी हर जगह पुकारते फिरे—सीता-सीता-सीता। हजारों बार उन्होंने पुकारा, पेड़ों से, पत्तों से पूछा, रिपीट करते रहे बार-बार सीता-सीता-सीता। दिन और रात सीता-सीता चिल्ला रहे थे कि हमारी सीता को कोई चुरा ले गया, हमारे ईमान को कोई चुरा ले गया। हमारी आस्थाएँ चली गई, हमारा लक्ष्य, हमारा आदर्श चला गया। बेटे! हमारा भी सब कुछ चला गया। हम लाश के, छूँछ के तरीके से, सड़े हुए, मरे हुए इंसान के तरीके से आदर्श विहीन, सिद्धांतविहीन, पेट और औलाद के लिए जिंदा रहने वाले कृमि-कीटकों के तरीके से जी रहे हैं। हमारी इंसानियत चली गई, खो गई। जिसको हम गायत्री माता के रूप में पुकारते हैं और कभी २४००० जप, कभी १०८ बार जप करते हैं।

गज और ग्राह की लड़ाई में एक ग्राह था और एक था गज। ग्राह ने पकड़ लिया गज का पाँव और पानी में

घसीट ले गया। गज चिल्लाया था। उसने १०८ बार भगवान का नाम लिया था। मित्रो! हमारी तो चारों-की-चारों टाँगें और एक हमारी सूँड़ और एक हमारी पूँछ, छहों को छह ग्राहों ने पकड़ लिया है और ये हमें भवसागर में डुबोने के लिए ले जा रहे हैं। एक ग्राह का नाम काम, एक ग्राह का क्रोध, एक का लोभ, एक का मोह, एक का मद और एक का मत्सर। ये छह के छहों पकड़कर हमको डुबोने ले जा रहे हैं। हम गज के तरीके से चिल्लाते हैं। हे भगवान! हम डूबे जा रहे हैं, आपकी भुजाएँ लंबी हों तो आप आइए और हमको इस पाप-पंक में से बचाइए। हम आपसे और कुछ नहीं माँगते।

क्या करें, प्रभु से प्रार्थना

रवींद्रनाथ टैगोर की एक कविता, जिसमें उन्होंने यह प्रार्थना की है कि हे भगवान! जब हम आपसे मुसीबत से छुटकारा प्राप्त करने की प्रार्थना करें तो आप इनकार कर देना। आप हमसे यह कहना कि अपनी गलतियों से मुसीबतें बुलाई हैं, गलती ठीक कीजिए। हे भगवान! जब हम आपसे संपत्ति माँगें तो आप देने से इनकार कर देना और यह कहना—हमने आपको ये कलाइयाँ और यह अक्ल इसलिए दी कि आप इनका ठीक तरीके से इस्तेमाल कर रहें होते तो आपने चैन की जिंदगी जी होती, संतोष की जिंदगी जी होती। आप हमारी कोई मदद मत करना, लेकिन अगर आप दया करते हों भक्तवत्सल हों और आपके पास कोई वरदान हो तो एक ही वरदान देना कि हम जब पाप के पंक में गिर रहे हों, तो अपनी लंबी वाली भुजाएँ फैला करके हमको रोक लेना, ऊँचा उठा लेना, बस और हमको कोई चीज नहीं चाहिए।

मित्रो! हमको भगवान से एक ही प्रार्थना करनी चाहिए कि पाप के पंक में गज के तरीके से जो गिरते-डूबते चले जा रहे हैं, उनका उद्धार अगर कर सकते हों तो कर दीजिए। राम नाम की, गायत्री माता की पुकार अगर हम द्रौपदी के तरीके से करते हैं कि हम नंगे हुए जा रहे हैं, हे भगवान! आइए और हमारे जीवन को बचा लीजिए। यह मनुष्य का जीवन तो गया। बस, यही है राम नाम का जप, गायत्री मंत्र का जप, इसी का नाम है अनुष्ठान। नहीं महाराज जी! जप करने से भगवान प्रसन्न हो जाते हैं। बेटे! मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता। नाम लेने से कोई प्रसन्न क्यों हो जाएगा, क्या वजह है?

नहीं साहब! राम नाम लेने से उद्धार हो जाता है। गलत, नाम लेने से किसी का उद्धार नहीं हुआ, न कभी हो सकता है। हाँ, अगर आप राम नाम लें और वाल्मीकि के तरीके से राम का काम भी करें तो मैं आपकी बात समझ सकता हूँ। अजामिल के तरीके से आप राम नाम लें और अजामिल ने जिस तरीके से बकरे काटना बंद कर दिया था, आप भी गलत काम करना बंद कर दें तो मैं समझूँगा कि आपने राम का नाम लिया है।

काम करें हम राम का

मित्रो! जितने भी संत हुए हैं, जिनके राम नाम की महत्ता के बारे में हम बताते रहते हैं। उनमें से प्रत्येक संत ने अपने पापों को एक क्षण में काटकर फेंक दिया। आपका भी राम का नाम यदि सही रहा होगा तो आपने पापों को छोड़ दिया होगा। चाहे वह राम के नाम का असर हो तो मुबारक और आपकी भक्ति का असर हो तो मुबारक। मैं झगड़े में नहीं पड़ता, जो राम का काम कर रहा होगा और राम का नाम ले रहा होगा तो उसके सत्परिणाम जरूर निकलने चाहिए, जैसा कि गोस्वामी जी ने राम नाम का माहात्म्य बताया है। बेटे! बिजली के निगेटिव और पोजिटिव दो तार नहीं मिलेंगे तो बिजली का करंट पैदा नहीं हो सकता। आदमी का चरित्र और आदमी का भजन, ये दोनों नहीं मिलेंगे तो कोई भी भजन सार्थक नहीं हो सकता। राम का नाम, आदमी का चरित्र, आदमी की समाजनिष्ठा, आदमी की उदारता, इनका हर हाल में समन्वय होना चाहिए। अगर यह समन्वय नहीं है तो कोई अच्छा परिणाम नहीं हो सकता। राम नाम के जप की महत्ता, ध्यान की महत्ता यही है।

मित्रो! हम बहिर्मुखी जीवन जीते हैं, इसलिए बाहर की समस्याएँ हम पर हावी रहती हैं। अभी हम आँख बंद कर ध्यान करते हैं तो हमें बाहर की चीजें दिखाई देती हैं। जो शक्तियाँ, विभूतियाँ, जो चमत्कार और संपदाएँ भीतर भरी पड़ी हैं, वे हमें दिखाई नहीं पड़तीं। पेड़ का बाहर वाला हिस्सा हमको दिखाई पड़ता है, जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं। जीवन की प्रगति, जीवन की शांति, जीवन की उन्नति की जड़ें हमारे भीतर हैं। जड़ों को खोजिए, जड़ों को कुरेदिए, जड़ों में खाद-पानी लगाइए, ताकि आपका पेड़ बढ़ने लगे, फलने-फूलने लगे। जड़ें हमारे भीतर हैं, पर वे दिखाई नहीं देतीं। कस्तूरी हमारे भीतर है, बाहर नहीं है। ध्यान से हम अपने बहिर्मुखी जीवन

को अंतर्मुखी बनाते हैं और भीतर के भगवान को खोजते हैं। अपना चरित्र और अपना भविष्य देखने की कोशिश करते हैं। ध्यान का उद्देश्य है कि हम अपने भीतर देखें और हमने जो गँवा दिया है, जो भुला दिया है, उसको खोजें कि वह कहाँ है। हमारे सामने बड़ी भारी गुत्थी है कि जो हमारी शांति थी, सिद्धि थी, वह कहीं चली गई, खो गई। हम उसकी तलाश करते हैं कि उसे कौन ले गया? हम कहाँ भूल गए? कहाँ भटक गए? मेले में हम कैसे खो गए? अपना नाम कैसे भुला बैठे? अपना रास्ता कहाँ भूल गए? अभी न तो यह पता है कि हम कहाँ से

अलबानिया की रानी एलिजाबेथ एक दिन समुद्री यात्रा पर जा रही थी। तूफान आया और जहाज बुरी तरह डगमगाने लगा। मल्लाहों का धीरज टूट गया और वे डूबने की आशंका व्यक्त करने लगे। रानी ने गंभीर मुद्रा में मल्लाहों से कहा—“अलबानिया के राजपरिवार का कोई सदस्य अभी तक जलयान की दुर्घटना में डूबा नहीं है। मैं जब तक इस पर सवार बैठी हूँ, तब तक तुममें से किसी को भी डूबने की आशंका करने की जरूरत नहीं है।” मल्लाह निश्चित होकर डाँड चलाते रहे। तूफान ठंडा हुआ और जहाज शांतिपूर्वक निश्चित स्थान पर पहुँच गया। यदि उन्हें घबराहट रही होती तो अस्त-व्यस्त काम करते और जहाज को डुबो बैठते।

आए हैं और कहाँ जा रहे हैं? अपना लक्ष्य भुला बैठे, दिशा भुला बैठे। मेले में इस कदर मशगूल हो गए कि तमाशा देखा तो तमाशा वाले के पास खड़े हो गए, नाच वाले को देखा तो वहाँ खड़े हो गए। बाजीगर को देखा तो वहाँ खड़े हो गए। मिठाई वाले को देखा तो वहाँ खड़े हो गए। मेले-ठेले में ही खो गए। अरे अभाग! तुझे जाना कहाँ है? ध्यान कर कहाँ से आया और कहाँ जाना है?

ध्यान का अर्थ—लक्ष्य का चिंतन

मित्रो! ध्यान की यह प्रक्रिया भगवान को प्रसन्न करने के लिए नहीं है। भगवान जी ध्यान में आते हैं तो, नहीं आते हैं तो, इससे कोई मतलब नहीं है। आपका

मतलब यह होना चाहिए कि हमारा ध्यान अपने जीवन की तरफ है कि नहीं, लक्ष्य की ओर है कि नहीं है। बेटे! ध्यान का मतलब इतना ही है—जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ कि ध्यान का मतलब है—एकाग्रता, तन्मयता। मन नहीं भागना चाहिए। महाराज जी! मेरा मन तो भागता है। तो भागने दे। बेटे! मन को एक जगह केंद्रित नहीं किया जा सकता। दिमाग की बनावट ही ऐसी है कि वह एक जगह ठहर नहीं सकता। एक जगह ठहरेगा तो, या तो समाधिस्थ हो जाएगा या आदमी पागल हो जाएगा। आदमी का दिमाग ठहरने के हिसाब से नहीं बनाया गया है। ध्यान में जो आपको गणेश जी की मूर्ति दिखाते हैं, वह सिर्फ इसलिए दिखाते हैं कि हमारा जो ध्यान है, वह गणेश जी की सूँड़, गणेश जी का चूहा, गणेश जी का अंकुश, गणेश जी की मिठाई, गणेश जी के दांत, गणेश जी की तोंद, गणेश जी की आँखें—ये सारे के सारे मन को एक छोटे से दायरे में घुमाते रहें। बस, इसीलिए चित्र या मूर्तियाँ बना दी गई हैं।

मन ठहर सकता है? नहीं। मन रुकेगा नहीं। मन मीरा का भी रुका नहीं, मन रामकृष्ण परमहंस का भी रुका नहीं, चैतन्य महाप्रभु का रुका नहीं। हर समय कहते रहते थे—**घायल की गति घायल जाने, जो कोई घायल होय**। वैज्ञानिक का भी मन ठहरता नहीं है। एकाग्र तो होता है, लेकिन एक दिशा में सोचता रहता है कि यह केमिकल इसमें मिला देंगे तो यह बन जाएगा। मन एकाग्र है बेशक, लेकिन अपने विषय में तेजी से चल रहा है। आप ध्यान से मन को एकाग्र करें, लेकिन अपनी दिशा और धारा के बारे में विचार करें। हमारा जीवन कहाँ चलना है? हमें क्या बनना है? कहाँ जाना है? अपने लक्ष्य के संबंध में जिस समय आप एक ही विषय पर विचार कर रहे होंगे, आपका चिंतन-मनन तन्मय होकर चल रहा होगा, जीवन-लक्ष्य—महानता प्राप्ति के बारे में आप प्लानिंग कर रहे होंगे, मैं समझ लूँगा कि आप ध्यान में, समाधि में बैठे हुए हैं। मैं जब लेख लिखने के लिए बैठता हूँ तो इतना तन्मय हो जाता हूँ कि आप मेरे पास से निकल जाइए तो मुझे यह पता नहीं चलता कि कौन आया और कौन चला गया। मैं ध्यान मग्न रहता हूँ, लेकिन उस वक्त मेरा दिमाग इतनी तेजी से काम करता रहता है कि एक सेकंड के भीतर हजारों विचार, हजारों रिफ्लेक्स आ जाते हैं। मेरा दिमाग उस समय इतना एक्टिव—सक्रिय होता है कि अगर

आप देखेंगे तो कहेंगे कि इस वक्त तो इन्होंने हद कर दी। लट्टू जब घूमता है तो मालूम पड़ता है कि टिका हुआ है, परंतु वह इतनी तेजी से घूमता है कि उसकी चाल मालूम नहीं पड़ती।

गहरे डूबकर ध्यान करें

मित्रो! ध्यान का अर्थ यह है कि आप मनन और चिंतन इस तेजी के साथ करें कि आज की दुनिया से अपने आपको अलग कर लें और अपने जीवन के संबंध में, अपने लक्ष्य के संबंध में, अपने परिष्कार के संबंध में इतने ज्यादा गहरे डूब जाएँ कि उसके अलावा कोई और चीज समझ में ही न आए। मित्रो! यह ध्यान की प्रक्रिया है। नहीं साहब! ध्यान में हमारा मन भाग जाएगा तो? तो भागने दीजिए, इससे आपके ध्यान में कोई फरक नहीं पड़ने वाला है। कैसे? चलिए मैं विधि बता देता हूँ। आपका मन जहाँ कहीं भी जाए, आप यह मानकर चलिए कि यह भगवान का रूप है। यह जो संसार है, हर जगह यह विराट ब्रह्म है। इससे बाहर तो मन कहीं नहीं जाएगा। नहीं, महाराज जी! रहेगा तो इसी में। तो बस, यह मान लीजिए कि सारा जगत विराट ब्रह्म है और मन ब्रह्म की परिक्रमा कर रहा है और ब्रह्म में घूम रहा है। फिर चाहे वह पेड़ हो, जल हो, पहाड़ हो या सिनेमाघर हो। सब जगह यह मानकर चलिए कि यह भगवान का स्वरूप है। सारी सृष्टि में ब्रह्मसत्ता समझाई हुई है और हमारा मन जहाँ कहीं भी जा रहा है, सब जगह ब्रह्म के दर्शन कर रहा है। चलने दीजिए मन को, कहाँ जाएगा मन। मन एकाग्र नहीं होता और न ही आपको इसकी आवश्यकता है। आप तो अपने लक्ष्य और अपने उद्देश्य के ऊपर मनन और चिंतन में, स्वाध्याय और सत्संग में इतना तन्मय हो जाइए कि अपने जीवन की दिशाधारा के संबंध में विचार करने के अलावा कोई और विचार ही न आए। बस, समझ लीजिए कि आपके ध्यान का उद्देश्य पूरा हो गया।

नहीं साहब! आप ऐसा उपाय बताइए कि जिससे मन भागने न पाए। बेटे! मन भागेगा, यह रुकेगा नहीं। हमारा मन लिखते समय और पूजा करते समय बिल्कुल भागता है। पूजा करते समय हमारा मन इतना सक्रिय होता है कि आप इसे जरा खोल करके देख लीजिए। भगवान के पास, भगवान की समीपता, भगवान का प्यार और हमारा समर्पण आदि के भाव हमारे भीतर

इतने ज्यादा उठते हैं कि हम काँपने लगते हैं। विचारों को बंद कर दीजिए? नहीं, विचार बंद नहीं हो सकते। विचारों को दिशा दीजिए, धारा दीजिए। बस, यही ध्यान है।

सोऽहम्, एकोऽहम्

मित्रो! 'सोऽहम्' का अर्थ यह है कि भगवान हमारे जीवन में समाविष्ट हो गए और हमने अपने 'अहं' को बाहर निकाल दिया और 'सो' हमारे भीतर समाविष्ट हो गया। भगवान का स्वामित्व हमारे शरीर में, भगवान का स्वामित्व हमारी इंद्रियों में, भगवान का स्वामित्व हमारे रोम-रोम पर, भगवान का स्वामित्व हमारे पैसों पर हो गया। अगर ये विचार हमारे मन में आएँ तो 'सोऽहम्' की उपासना सही है, जिससे भगवान और हम एक हो जाते हैं। 'सो' माने वह और 'अहं' माने मैं। हम दोनों एक हो जाते हैं। दोनों की सत्ता एक है। जिस तरह दूध और पानी मिल जाते हैं। ऐसे ही हम—पानी और भगवान—दूध दोनों को आपस में मिला दिया। भगवान के विचार हमारे, हमारी इच्छाएँ भगवान की और भगवान की इच्छाएँ हमारी हो गई। इस तरह की एकता आप स्थापित कर लें। 'एकोऽहम्' स्थापित कर लें तो फिर द्वैत खत्म हो जाएगा और अद्वैत रह जाएगा। द्वैत को मिटा लेना और अद्वैत को स्थापित कर लेना, सबमें अपने आपको देखना और अपने में सबको देखना, अद्वैत की यह वृत्ति 'सोऽहम्' की उपासना है।

मित्रो! 'खेचरी मुद्रा' अपने भीतर से ही रसपान करने को कहते हैं। मस्तिष्क मध्य स्थित सहस्रार हमारा ब्रह्मलोक है। इस ब्रह्मलोक में क्षीरसागर भरा हुआ है, कैलाश भरा हुआ पड़ा है। इसी में क्षीरसागर है, मानसरोवर है। कैलाश पर्वत इसी में है। इसी में शेषशायी विष्णु सोए हुए हैं—हमारे श्रेष्ठ विचारों के रूप में। इसका हम ध्यान करते हैं—अपनी जिह्वा द्वारा आनंद और उल्लास के रूप में। यही खेचरी मुद्रा हो जाती है। यह उपासना का अंतिम चरण और अंतिम बिंदु है। प्रारंभिक चरण और प्रारंभिक बिंदु वहाँ से प्रारंभ होता है, जहाँ हमने आपको ४५ मिनट की उपासना के अंत में समर्पण योग सिखाया है। जल का पात्र लेकर के हम जाते हैं और सूर्य भगवान के सामने जल चढ़ा देते हैं। इसका क्या मतलब है? बेटे! सूर्यनारायण तो कितने लंबे-चौड़े हैं। उनके सामने यह जो जरा-सा पानी हम गिरा रहे हैं, इससे उनको क्या फायदा होगा? इतना पानी वहाँ तक जाएगा

तो उन तक पहुँचने में कितना समय लगेगा। अगर चंद्रमा की तरह रॉकेट से सूरज तक पानी भेजेगा तो भी उन तक पहुँचने में सालों लग जाएँगे। तब तक क्या वे प्यासे रहेंगे? उनका तो दम निकल जाएगा। बेटे! यह मतलब नहीं है इसका। उनको पानी की जरा-सी भी जरूरत होगी तो जरा-सी आग निकालेंगे और समुद्र का सारा पानी भाप बनाकर पी जाएँगे। उनके पास इसका इंतजाम है। तेरे पानी के बिना उनका कोई हर्ज नहीं होगा।

सूर्यार्घ्य किसलिए?

साथियो! सूर्यनारायण तो एक ही बात चाहते हैं—उस सूर्यरूपी प्रकाश को, सूर्यरूपी भगवान को हम अपने जीवन का जल समर्पित करें। लोटे में रखी हुई जलरूपी जो हमारी जीवन-संपदा है, देहरूपी छोटे से घटाकाश के भीतर जो कुछ भी जलरूपी संपदा कैद है, इसको हम खाली करते हैं और भगवान को चढ़ाते हैं। जब हम जल चढ़ाते हैं और अपने आपको भगवान को सौंप देते हैं तो मित्रो! इसका क्या परिणाम होगा? इसका परिणाम यह होगा कि हमारे मन में यह भाव आएगा कि हमारे जीवन का जल भाप बन जाए, फैल जाए, बिखर जाए और कहीं भी ओस की बूँद बनकर टपके और तरावट लेकर जाए, सड़ने न पाए। इस छोटे से घड़े में सड़ने न पाए। हमारी अक्ल, हमारा श्रम, हमारी संपदा इस छोटे से घड़े के दायरे में रहकर सड़ने न पाए। इसको हम फैला दें और इसको उदात्त बनाते हुए चले जाएँ तो समझना चाहिए कि सूर्य भगवान को अर्घ्य चढ़ाने का उद्देश्य पूरा हो गया।

समर्पण का शिक्षण

मित्रो! सूर्य भगवान को अर्घ्य चढ़ाने के संबंध में रवींद्रनाथ टैगोर की एक कविता मुझे अक्सर याद आती रहती है और मैं उसे बड़े मजे और बड़े प्यार से सुनाया करता हूँ। रवींद्रनाथ टैगोर ने गाया है—“मैं गया दरवाजे-दरवाजे पर भीख माँगने के लिए। अनाज से भर ली मैंने झोली। एक आया भिखारी, उसने पसारा हाथ, हमको भी दे कुछ, जो तेरे पास है। मैंने बड़ी कंजूसी से, बड़ी हिम्मत को इकट्ठा किया और एक दाना निकाल करके उस भिखारी की हथेली पर रखा। भिखारी उस दाने को लेकर हँसता-मुस्कराता चला गया। मैं आया अपने घर और घर आकर के मैंने देखा, एक बड़ा-सा सोने का दाना उस अनाज के बीच में रखा हुआ था। समझ गया मैं

कि ये सोने का दाना कहाँ से आया।” रवीन्द्रनाथ टैगोर ने गाया—मैं सिर धुन-धुन के पछताया कि मैंने अपनी सारी झोली के दाने क्यों न भिखारी के हाथ में दिए, ताकि वो मेरी झोली के सारे समूचे दाने सोने के होकर के आ गए होते।

मित्रो! जिन्होंने अपने दाने भिखारी के हाथ पर रखे, भगवान के हाथ पर रखे, उनके दाने लाखों गुने होकर के आ गए और सोने के होकर के आ गए। गांधी के दाने सोने के होकर के आ गए। बुद्ध के दाने सोने के होकर के आ गए। नानक के दाने सोने के होकर के आ गए। सुदामा के दाने सोने के होकर के आ गए और हमारे दाने सोने के होकर के आ गए। मित्रो! यही परंपरा रही है। यही है समर्पण योग। यही है भगवान की बैंक में जमा करना। यही है अपने आपको खाली करना। फिर से भर जाने के लिए इससे कम में कोई बात नहीं बनती और इससे छोटा कोई सिद्धांत नहीं होता। यही है वह शिक्षण, जो समर्पण योग के नाम पर, सूर्य भगवान को जल चढ़ाने के नाम पर हम आपको सिखाते हैं। चाहे जप हो, चाहे ध्यान हो, चाहे खेचरी मुद्रा हो, चाहे ‘सोऽहम्’ साधना हो। चाहे देवपूजन की प्रक्रिया हो, चाहे आत्मशोधन हो, चाहे जल चढ़ाना हो अथवा कोई अन्य

प्रक्रिया क्यों न हो। सबका उद्देश्य केवल एक है कि व्यक्ति अपने आपको देखे, अपने आपको समझे, अपनी समीक्षा करे और अपने आपको सुधारे, अपने को ठीक करे।

यही है पूजा-पाठ की फिलॉसफी

मित्रो! अगर हम अपने आपको ठीक कर पाए तो हमारी जिंदगी की हर समस्या ठीक होती हुई दिखाई पड़ेगी। भगवान, जिसको हम गलत समझते हैं, वह भी सही रूप में सामने आए, अध्यात्म का यही शिक्षण है, यही साइंस है और यही पूजा-पाठ की फिलॉसफी है। मुझे उम्मीद है कि आप इसे समझने की कोशिश करेंगे। अगर आपने यह समझा, इसको स्वीकार किया तो मैं समझूंगा कि सत्य के आप नजदीक आ गए और वहाँ आ गए जहाँ कि ऋषियों ने अध्यात्म की शुरुआत की थी। अध्यात्म का विस्तार किया था। आज तो अध्यात्म भ्रमवादी जंजाल का, अज्ञान का एक आवरण मात्र रह गया है। अगर अज्ञान के आवरण में से निकलकर वास्तविकता के नजदीक जाएँ तो आप यही पाएँगे, जैसा कि मैंने निवेदन किया। आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शान्तिः ॥

सम्राट पुष्यमित्र का अश्वमेध सानंद संपन्न हुआ और दूसरी रात को अतिथियों की विदाई के उपलक्ष्य में नृत्योत्सव रखा गया।

यज्ञ के ब्रह्मा महर्षि पतंजलि उस उत्सव में सम्मिलित हुए। महर्षि के शिष्य चैत्र को उस आयोजन में महर्षि की उपस्थिति अखरी। उस समय तो उसने कुछ न कहा, पर एक दिन जब महर्षि योगदर्शन पढ़ा रहे थे तो चैत्र ने उपालंभपूर्वक पूछा—“गुरुवर! क्या नृत्यगीत के रसरंग चित्तवृत्तियों के निरोध में सहायक होते हैं?”

महर्षि ने शिष्य का अभिप्राय समझा। उन्होंने कहा—“सौम्य! आत्मा का स्वरूप रसमय है। रस में उसे आनंद मिलता है और तृप्ति भी। वह रस विकृत न होने पाए और शुद्ध स्वरूप में बना रहे, इसी सावधानी का नाम संयम है। विकार की आशंका से रस का परित्याग कर देना उचित नहीं। क्या कोई किसान पशुओं द्वारा खेत चर लिए जाने के भय से कृषि करना छोड़ देता है? यह तो संयम नहीं, पलायन रहा। रस रहित जीवन बनाकर किया गया संयम-प्रयत्न ऐसा ही है, जैसे जल को तरलता और अग्नि को ऊष्मा से वंचित करना। सो हे भद्र ! भ्रम मत करो।”

रस नहीं, हेय और त्याज्य तो उसकी विकृति है।



परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी —

परिष्कृत अध्यात्म हमारे जीवन में उतरे — ?

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

मध्यकाल की विकृति

देवियो, भाइयो! मध्यकालीन परंपरा में भौतिक आधार पर भगवान को प्राप्त करने की कोशिश की जाने लगी और भगवान को भौतिक बना दिया गया। भगवान को भौतिक बनाने से क्या मतलब है? भौतिक से मतलब यह है कि एक इनसान एक आदमी जैसा होता है, भगवान का स्वरूप भी एक आदमी जैसा बना दिया गया। एक आदमी जैसे मिट्टी, पानी, हवा का बना हुआ होता है, लगभग वही स्वरूप भगवान का बना दिया गया। और भगवान की इच्छाएँ? इच्छाएँ वही बना दी गईं, जो कि एक आदमी की होती हैं। आदमी खाना माँगता है और भगवान प्रसाद माँगता है। लाइए सवा रुपये का प्रसाद, हनुमान जी को लड्डू खिलाइए। हनुमान जी का पेट भर दीजिए और काम हो जाएगा। भगवान जी को कपड़ा पहनाइए। क्यों? आपको कपड़े पहनने चाहिए न, इसलिए भगवान जी को भी कपड़े पहनाइए। गायत्री माता पर साड़ी चढ़ाइए। और क्या-क्या दें? जो कुछ भी, हमको खुशामद की जरूरत है। आप हमारी निंदा करेंगे तो हम आपको गालियाँ सुनाएँगे। आपको हमसे कुछ काम निकालना है तो आप हमारी चापलूसी कीजिए, खुशामद कीजिए, पंखा झललिए, हाथ जोड़िए, पाँव छूँइए और पैर धोइए। हम व्यक्ति हैं, मनुष्य हैं, इसलिए हमारे लिए भेंट लेकर के आइए। पान खिलाइए, सुपारी खिलाइए, इलायची दीजिए, पैसा दीजिए। कुछ दीजिए हमको तो हम आपसे प्रसन्न हो सकते हैं।

साकार और निराकार भगवान

इसी तरह भगवान को आदमी बना दिया गया। आदमी को भौतिक बना दिया गया और भौतिक आदमी का जैसा ईमान, जैसी इच्छाएँ, जैसी कामनाएँ होती हैं,

वैसा ही भगवान को बना दिया गया। मध्यकाल में भगवान की बड़ी दुर्गति की गई। तो क्या भगवान का कोई स्वरूप नहीं है? बेटे! भगवान का स्वरूप तो है। साकार और निराकार भगवान के दो स्वरूप हैं, परंतु ये किसलिए हैं और उनका उद्देश्य क्या है? साकार मूर्तियाँ बनाई तो गई हैं, पर हैं नहीं साकार। साकार से हमको अंदाजा लगाना पड़ता है कि चेतनात्मक भगवान क्या होना चाहिए। हमने शंकर भगवान की मूर्तियाँ गोल-मटोल बनाकर रखी हैं। इसका मतलब यह है कि सारे विश्व-ब्रह्मांड में विराट ब्रह्म समाया हुआ है। इसलिए हमने शंकर भगवान की और शालग्राम की गोल मूर्ति बनाई थी। जिस तरह से हम ग्लोब दिखाकर अपने बच्चे को यह सिखाते हैं कि सारा विश्व पृथ्वी के ग्लोब जैसा है, गोल गेंद जैसा है। हमने भगवान का स्वरूप बताने के लिए कि सारे ब्रह्मांड में एक सत्ता काम करती है, एक शक्ति काम करती है, जो कण-कण में समाई है, नस-नस में समाई हुई है, हर जगह में समाई हुई है। इस सारे विश्व-ब्रह्मांड में संव्याप्त इस विराट को लोगों को समझाने के लिए कि ये जो सारा विश्व विराट है—“सीय राममय सब जग जानी। करऊँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥” है।

इष्ट लक्ष्य

मित्रो! सारे विश्व-ब्रह्मांड में भगवान समाया हुआ है। इसीलिए हमने शंकर भगवान की और शालग्राम की मूर्ति ग्लोब के रूप में बनाई थी, पर उस सिद्धांत को समझा नहीं गया। समझा यह गया कि शंकर भगवान गोल-मटोल हैं। अरे भाई! जब गोल-मटोल हैं, तो तू पानी क्यों चढ़ा रहा है? खाना किसलिए खिला रहा है? ये तो गोल-मटोल हैं, इनके तो मुँह नहीं है, आँखें नहीं हैं। नहीं, महाराज जी! ये तो पाँच मुँह के हैं। बेटे! ये बेकार की बातें हैं। शंकर जी ऐसे नहीं हैं। हमने मूर्तियाँ बनाई थीं और भगवान को साकार बनाया था। किसके लिए? इसलिए साकार बनाया था कि हमारे जीवन का एक लक्ष्य होना चाहिए। भगवान को हम ‘इष्ट’ कहते

हैं। इष्ट माने हैं लक्ष्य। लक्ष्य आप किसे कहते हैं? इष्ट या लक्ष्य उसको कहते हैं कि हमको बनना क्या है? हमें क्या बनना चाहिए? इसके लिए हमने कई तरह के ठप्पे-साँचे बना करके रखे थे कि हमको यह बनना है। दयालबाग, आगरा में एक विशालकाय मंदिर बन रहा है—गुरुजी की समाधि। उसके लिए एक मॉडल बना हुआ रखा है कि यह ऐसे बनेगा। ताजमहल जब बन रहा था तो उसको बनाने से पहले शाहजहाँ ने ताजमहल का एक मॉडल बनवाया था, जो वहाँ के म्यूजियम में अभी भी रखा हुआ है। इंजीनियरों ने मुलायम पत्थर का एक मॉडल बनाकर दिया था कि देखिए साहब! इसकी लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई ऐसी है। बादशाह ने उसे घटा-बढ़ाकर पास कर दिया कि हाँ ये मॉडल ठीक है तो उसी अंदाज से, उसी नाप-तोल एवं प्रपोर्शन (अनुपात) के हिसाब से ताजमहल बनना शुरू हो गया था।

हमें बनना क्या है?

साथियो! नक्शे कागज पर बनाए जाते हैं और मॉडल मिट्टी के अथवा दूसरी चीज के बनाए जाते हैं। मॉडल के आधार पर, नमूने के आधार पर चीजें बनती हैं। मूर्तियाँ या मनुष्य के जो स्टैच्यू बनते हैं, पहले मूर्तिकार मिट्टी का बना लेते हैं, फिर उसी के हिसाब से काट-छाँटकर पत्थर का बना लेते हैं। कोई ढलाई होती है तो पहले साँचा बना लेते हैं। साँचे में मेन चीज को गरम करके पिघला देते हैं और पिघला करके उसमें ढाल देते हैं। ढालने के बाद चीज तैयार हो जाती है। हमने भी एक मॉडल तैयार किया हुआ है, एक इष्टदेव तैयार किया हुआ है कि आखिर हमें बनना क्या है। हमने योगेश्वर कृष्ण का—पूर्णपुरुष का एक मॉडल बना करके रखा है कि हमको पूर्णपुरुष बनना है, योगेश्वर बनना है। इसीलिए हम कृष्ण की उपासना करते हैं। कृष्ण कैसे होते हैं? कृष्ण ऐसे हो सकते हैं, ताकि हम भूल न जाएँ, इसका यह एक नमूना, एक मॉडल रखा हुआ है। हमको मर्यादा पुरुषोत्तम राम बनना है, इसलिए हमने राम की मूर्ति बना करके रख दी है और हम यह हर वक्त ध्यान में रखते हैं कि हमारा लक्ष्य और हमारा इष्ट राम हैं। हमने शंकर भगवान बना करके रखा है और उसके भीतर बहुत सारे गुणों का समावेश करके रखा है। बहुत-सी बातें शंकर भगवान में बनाकर रखी हैं और हर वक्त उनका ध्यान रखते हैं कि हमारा इष्ट शंकर है। हमारा लक्ष्य शंकर बनना है।

शंकर जी से जुड़ी वृत्तियाँ

हमारे लक्ष्य क्या-क्या हैं? इसके लिए हमने नमूने के लिए खिलौने के भीतर तरह-तरह की आकृतियाँ बना दी हैं और उन आकृतियों के भीतर कुछ संदेश, कुछ उद्देश्य, कुछ लक्ष्य, कुछ विचारणाएँ, कुछ प्रेरणाएँ भरकर रख दी हैं, जैसे शंकर के खिलौने के भीतर भर दी हैं। शंकर की मूर्ति खिलौना है? हाँ, खिलौना है। ऐसा कोई शंकर नहीं है, जैसा कि हमने बना करके रखा है। हमने खिलौने में बहुत सारी वृत्तियाँ समावेश करके रखी

एक बार भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए अनेक भिक्षु अपने गुरु के साथ आए। वे आते ही बड़ा शोर-गुल कर रहे थे। भगवान बुद्ध ने उनके गुरु को खबर भेजी कि उन्हें शील का अभ्यास ठीक से कराएँ, फिर उन्हें लाएँ। उनके गुरु ने वर्ष भर उन्हें शील का अभ्यास कराया। जब ये भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आए, तब भगवान चुपचाप शांत भाव से बैठ गए। वे रात्रि भर बैठे। आनंद बुद्ध को बार-बार उन भिक्षुओं के बैठे रहने की खबर देता, परंतु भगवान कुछ न बोलते। सवेरा होने पर देखा गया कि सभी भिक्षु भगवान बुद्ध की तरह ही समाधिरथ हैं।

अंतःकरण की वृत्तियाँ अनुशासित हो जाने पर थोड़े प्रयास से ही सद्गति मिल जाती है।

हैं। शंकर भगवान के सिर में से गंगाजी का पानी निकलता है। इसका क्या मतलब है? हमारे मस्तिष्क में से, हमारे विचारों में से ज्ञान की गंगा—विचारधारा जो प्रवाहित होनी चाहिए, वह गंगा जैसी निर्मल होनी चाहिए। यह मॉडल का लक्ष्य है, जो उसके पीछे पहेली के रूप में और कहानी के रूप में छिपा हुआ है। यह हमारा लक्ष्य है। शंकर भगवान के सिर पर चंद्रमा टिका हुआ है, इसका क्या मतलब है? चंद्रमा का अर्थ है—शांति, संतुलन। हमारे मस्तिष्क में शांति और संतुलन का स्वरूप रहना चाहिए। शंकर भगवान के गले में मुंडों की माला पड़ी हुई है। इसका मतलब है कि हर समय हमको मौत याद

रहनी चाहिए और हमारा घर श्मशान में होना चाहिए। हमको याद रहना चाहिए कि हमको मरना है।

शंकर भगवान विभूतिवान थे। उनके पास कोई संपत्ति नहीं थी। अतः हमको भी बिना भौतिक संपत्ति से निस्पृह होना चाहिए। शंकर भगवान के अंदर क्या-क्या विशेषताएँ थीं। वे साँपों को गले से लगाते थे। हम भी पिछड़े हुए लोगों को, दुष्ट लोगों को गले लगाकर उन्हें ठीक कर सकते हैं, जैसे भगवान बुद्ध ने अपने समान कितनों को बना लिया। शंकर भगवान की तरह से हम भी यह कर सकते हैं कि हम अपनी भूत-प्रेतों की सेना बना करके रहें। भूत-प्रेतों से मतलब है—पिछड़े हुए लोग—बैकवर्ड लोग। बैकवर्ड से मेरा मतलब केवल अछूतों से नहीं है, वरन बैकवर्ड वे लोग हैं, जो भावनात्मक दृष्टि से, नैतिक दृष्टि से, चारित्रिक दृष्टि से गिर गए, पिछड़ गए, वे सब लोग बैकवर्ड हैं। गुरुजी! हमने तो यह सुना है कि सरकारी हिसाब से अछूतों को बैकवर्ड कहते हैं। नहीं बेटे! बैकवर्ड अछूतों को ही नहीं कहते। अछूत तो केवल पैसे की दृष्टि से बैकवर्ड हैं, सामाजिक दृष्टि से बैकवर्ड हैं। नीयत की दृष्टि से, भावना की दृष्टि से, चरित्र की दृष्टि से दूसरे लोग भी बैकवर्ड हैं। हमको उन्हें भी साथ लेकर चलना पड़ेगा। बैकवर्ड कौन हैं? बैकवर्ड है तू। नीयत के हिसाब से और चरित्र के हिसाब से पिछड़ा हुआ आदमी, गिरा हुआ आदमी, घटिया आदमी और निकम्मा आदमी—नैतिक दृष्टि से पतित और भौतिक दृष्टि से पीड़ित। पीड़ित और पतित लोगों को, जिनको कि शंकर भगवान की सेना के भूत-प्रेत कहते थे। शंकर भगवान उनकी सेना बना करके रखते थे। **तन खीन कोउ अति पीन पावन, कोउ अपावन गति धरें।** इन पावन और अपावन लोगों को अपनी संगति में लेकर उनकी सेवा करते थे।

आज के सच्चे भगवान

मित्रो! मैंने एक दिन आपसे जापान के गांधी कागावा का वर्णन किया था। उन्होंने अपनी सारी ज़िंदगी दुखियारों के लिए, पीड़ितों और पतितों के लिए निछावर कर दी थी। बेटे! वे कौन थे? वे शंकर भगवान थे। हिंदुस्तान में भी कोई इस तरह का शंकर भगवान हुआ है? एक दिन हम आपको बाबा साहब आपटे का नाम सुना रहे थे और कह रहे थे कि कोढ़ियों की सेवा करने के लिए, दुखियों की सेवा करने के लिए उन्होंने अपनी सारी ज़मीन खरच

कर दी। उन्होंने उनके लिए एक विद्यालय बनाया, जो आज एक विश्वविद्यालय के रूप में है। सारी ज़िंदगी दुखियारों के लिए, पीड़ितों और पतितों के लिए निछावर कर देने वाले बाबा साहब आपटे को आप क्या कहेंगे? आप चाहें तो शंकर भगवान कह सकते हैं। नहीं साहब! शंकर भगवान तो वहाँ रहते हैं। बेटे! वे कहीं नहीं रहते, वे यहीं ज़मीन पर रहते हैं और इन्सान के रूप में रहते हैं। ये हमारे इष्ट और लक्ष्य हैं। अगर तू लक्ष्यों को समझ पाया होता तो मजा आ जाता। भगवान की भक्ति धन्य हो जाती और भगवान का भक्त भी धन्य हो जाता, पर हम क्या कर सकते हैं। इस अज्ञानता के जमाने में जहाँ के प्रत्येक क्षेत्र में अनैतिकता और अवांछनीयता सिद्धांतों के नाम पर, आदर्शों के नाम पर फैली पड़ी है। अगर वहाँ भगवान की भी मिट्टी पलीद हो जाए तो हर्ज की क्या बात है? बेटे! हमको मांस खाने की आदत है। उस आदत को पूरा करने के लिए हम देवी का बहाना लेते हैं और देवी पर बकरा चढ़ाते हैं और खुलेआम खाते हैं। और कहते हैं कि यह तो भगवान का प्रसाद है। देवी नाराज हो जाएगी, आप भी खाइए। धर्म के नाम पर गुनाह, यही है मध्यकालीन परंपरा और यही मध्यकालीन परंपरा आज हमारे और आपके सिर पर छाई हुई है।

हमारी आध्यात्मिक धरोहर

बेटे! हमारी उपासना—जैसे कि कल मैंने आपको बताया था कि यह हमारे जीवन का अध्यात्म, ऋषियों का अध्यात्म, प्राणवान अध्यात्म, जिसकी प्रतिकृति और प्रतिच्छाया को हमने अपने जीवन में चरितार्थ करने की कोशिश की है। यह कोई नया मजहब या नया धर्म नहीं है। प्राचीनकाल के ऋषियों ने जिस तरह से अध्यात्म का उपयोग किया, उसकी फिलॉसफी जो कुछ भी थी। जिस आधार पर उन्होंने भगवान का पल्ला पकड़ा, जिस आधार पर उन्होंने आत्मिक उन्नति की, वही आधार हमारे हैं, जिनको कि हम अपने निजी अनुभव के रूप में इस शिविर में आपको सुनाते और समझाते चले आ रहे हैं। हमारा व्यक्तिगत अनुभव और ऋषियों का अनुभव एक है। आध्यात्मिक जीवन एक है। आध्यात्मिक जीवन सामर्थ्य का पुंज है। तो क्या धन का भी पुंज है? हाँ, धन का भी पुंज है, सामर्थ्य का भी पुंज है और पैसे का पुंज है। जो मालदार आदमी होते हैं, वे अपनी संपदा का उपयोग नहीं करते, हम जानते हैं, लेकिन जो अध्यात्मवादी

होते हैं, उनकी संपत्ति का कोई ठिकाना नहीं होता। चाणक्य की संपत्ति का कोई ठिकाना नहीं था। वह बहुत मालदार था। जब वह उस संपदा को एक बच्चे के ऊपर बिखेरता हुआ चला गया तो उसे चंद्रगुप्त बना दिया और चक्रवर्ती राजा बना दिया। इतिहास बताता है कि चंद्रगुप्त का साम्राज्य जितना बड़ा था, उतना बड़ा साम्राज्य कोई नहीं हुआ। अफगानिस्तान हिंदुस्तान में था। 'समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान' के नाम से हमने एक पुस्तक लिखी है, जिसमें यह बताया गया है कि हिंदुस्तान कहाँ-कहाँ तक फैला हुआ था। इसमें इंडोनेशिया, सिंगापुर, मलाया तक आ जाते हैं। ये जो मध्य पूर्व के देश हैं, वे सब इसमें आ जाते हैं। इतना बड़ा हिंदुस्तान था।

इतिहास के उदाहरण

इस सारे के सारे हिंदुस्तान साम्राज्य का एक ही चक्रवर्ती सम्राट था। उसका नाम था—चंद्रगुप्त। चंद्रगुप्त कौन था? बेटे! वह एक नाइन का बेटा था। नाई कौन होता है? हजामत बनाने वाला। चाणक्य ने उससे कहा कि हम आपको राजा बनाना चाहते हैं, चक्रवर्ती सम्राट बनाना चाहते हैं। वह हँसने लगा और बोला—आपको मालूम नहीं है कि मैं कौन हूँ? आप कौन हैं? हम नाई हैं और वर्तमान राज परंपरा के हिसाब से अछूत राजगद्दी पर नहीं बैठ सकता। ये सारे राजा मुझे मार डालेंगे कि एक अछूत राजगद्दी पर कैसे बैठ गया? उस जमाने में सवर्ण गद्दी पर बैठ सकते थे, राजपूत बैठ सकते थे, पर अछूत नहीं बैठ सकते थे। आज तो कोई रुकावट नहीं है, पर उस जमाने में रुकावट थी। उन्होंने कहा कि कोई हर्ज की बात नहीं है। आप अछूत हैं तो क्या हुआ, हम आपको अपना बल देते हैं और अपनी संपत्ति देते हैं, शक्ति देते हैं। चाणक्य का बल लेकर, चाणक्य की शक्ति और वैभव लेकर चंद्रगुप्त सम्राट बन गया। और क्या-क्या किया चाणक्य ने? बेटे! चंद्रगुप्त के जमाने में वह नालंदा विश्वविद्यालय का डीन था। नालंदा विश्वविद्यालय में इकतीस हजार विद्यार्थी पढ़ते थे।

अभूतपूर्व स्थापना : नालंदा विश्वविद्यालय

पुराने जमाने में विश्वविद्यालय खोलना हँसी-खेल नहीं था। आज तो फीस ले लीजिए, बोर्डिंग की फीस ले लीजिए, खाने का पैसा, मेस की फीस जमा कराइए और स्कूल चला दीजिए। चार-पाँच सौ रुपये महीना पब्लिक

स्कूल की फीस ली जाती है और बच्चों को मजे में रख लेते हैं। प्राचीनकाल में ऐसा नहीं था। प्राचीनकाल में मनीऑर्डर कहाँ से आते, जब डाकखाने ही नहीं थे। जहाँ कहीं भी विद्यालय होते थे, वहाँ के संचालकों को ही प्रबंध करना पड़ता था। विद्यार्थियों के निवास, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा, पुस्तकों व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खर्च करना उसका काम था, जो विद्यालय चलाता था। नालंदा विश्वविद्यालय में तो तीस-इकतीस हजार विद्यार्थी पढ़ते थे और इतने विद्यार्थियों में कितना खर्च होता है, हम जानते हैं। हमारे चौके में चार-पाँच सौ आदमियों का भोजन होता है। इतने लोगों का भोजन किसे कहते हैं? इसे तैयार करने में क्या खर्च पड़ता है? आपका पहनावा तो हमारे जिम्मे नहीं है, हम आपको साबुन नहीं देते। और आपकी कोई जिम्मेदारी हमारे ऊपर नहीं है, केवल आपको हम भोजन करा देते हैं—चार सौ आदमियों को। लेकिन चाणक्य तो तीस-इकतीस हजार आदमियों का खर्च उठाता था। इसमें बहुत खर्च होता था। नालंदा विश्वविद्यालय में केवल विद्यार्थी ही नहीं, अध्यापक भी रहते थे। एक हजार तो रहते ही होंगे। एक हजार अध्यापकों का क्या खर्च हो सकता है? वेतन कितना हो सकता है? गुजारा क्या हो सकता है? बिल्डिंगों का मेन्टीनेन्स क्या हो सकता है? आप समझते हैं। बहुत खर्च होता है।

ओढ़ी हुई शानदार गरीबी

मित्रो! नालंदा विश्वविद्यालय का खर्च कौन उठाता था? एक ही आदमी उठाता था और उसका नाम था—चाणक्य। चाणक्य तो महाराज जी! बड़ा गरीब था। हाँ बेटे! वह इतना गरीब था कि जहाँ राजधानी थी और जिसका वह प्रधानमंत्री था, उससे तीन मील (लगभग ५ किमी०) दूर अपनी झोंपड़ी बनाकर रहता था और रोज पैदल जाता था। पैदल जाकर के अपनी सब्जी-रोटी बनाता था और रात को वहीं विश्राम करता था, संध्या करता था। सवेरे उठता था, उपासना करता और फिर रोटियाँ बनाता, खाता और फिर पैदल आता था एवं गुप्त साम्राज्य के प्रधानमंत्री का भी काम करता था। नालंदा विश्वविद्यालय के डीन का भी काम करता था और उपासना भी करता था। गरीब था? हाँ बेटे! बहुत गरीब था। संत लोग गरीब क्यों रहते हैं? बेटे! गरीबी उनकी शान है। गरीबी का गौरव और महत्त्व बढ़ाने के लिए,

अपरिग्रह का गौरव बढ़ाने के लिए और संपन्नता का गौरव और महत्ता गिराने के लिए संत गरीब रहते हैं। लोगों को यह कहते हैं कि आपकी जो यह दलील है कि हमारे पास पैसा होगा तो हम खुशहाल होंगे। पैसा होगा तो सम्मान मिलेगा। पैसा होगा तो हमारी सेहत अच्छी रहेगी। पैसे के बिना मुसीबत आएगी और पैसे के बिना हम दुखियारे रहेंगे। इस लोक मान्यता को कंडेम करने के लिए—निरस्त करने के लिए संत गरीबी का जीवन जिया करते हैं। संत कहते हैं कि देखिए, हमारे पास सामान कम है, लेकिन हमारे सम्मान में कोई कमी नहीं आई। देखिए, हमारे पास पैसा कम है, लेकिन हमारे स्वास्थ्य में, हमारी प्रसन्नता में, हमारी खुशी में कोई कमी नहीं आई। इसलिए मनुष्य का वैभव की ओर से मन पीछे करने के लिए संत गरीबी का जीवन जीते हैं और अपने भीतर तपश्चर्या की शक्ति को कायम रखने के लिए गरीबी का जीवन अपनाते हैं।

अध्यात्म की शानदार परंपरा

मित्रो! गरीबी एक शान है। गरीबी एक परंपरा है, एक सिद्धांत है, अगर यह गरीबी स्वेच्छा से स्वीकार की गई हो तब। गरीबी अगर अपनी बेवकूफी और कमजोरी से स्वीकार की गई हो तो बेटे! वह एक लानत है। लेकिन अगर स्वेच्छा से स्वीकार की गई है तो हम उसे तपश्चर्या कहेंगे, योग-साधना कहेंगे। संत तपस्वी होते हैं। उनका व्यक्तिगत जीवन गरीबों जैसा होता है, कम खर्च का होता है, लेकिन जब वे अपने वैभव को बाँटते हैं तो लोगों को निहाल कर देते हैं। यही है अध्यात्म की वह परंपरा, जिसमें कि आधार स्वयं संपन्न दिखाई नहीं देते, लेकिन संपन्नता बिखेरते फिरते हैं। ऐसा अध्यात्म प्राचीनकाल में था और ऐसा अध्यात्म अभी भी हो सकता है, अगर उसको सही तरीके से अपनाया जाए।

उपासना का मर्म

अध्यात्म की सही परंपरा क्या हो सकती है? यह कल मैंने आपसे निवेदन किया था कि अध्यात्म चार हिस्सों में बाँटा हुआ है। अध्यात्म एक नहीं है, इसके चार हिस्से हैं, चार टुकड़े हैं और चारों टुकड़े अपने आप में पूर्ण हैं। चारों टुकड़े ऐसे हैं, जिनमें से एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। चारों क्या-क्या हैं? एक चीज मैं कल आपसे कह रहा था—साधना। साधना और उपासना वास्तव में एक ही चीज हैं, पर उपासना क्योंकि बदनाम

हो गई। उसको लोगों ने सस्ता खेल-खिलौना मान लिया, इसलिए मैंने उपासना का नाम बदल दिया है और मैं उसे साधना शब्द कहता हूँ। असल में मेरा मतलब साधना करने से उपासना करना है। उपासना और साधना दोनों एक ही चीज हैं। उपासना किसे कहते हैं? बेटे! उपासना नजदीक बैठने को कहते हैं, लेकिन नजदीक बैठने के बारे में एक बात आपको और ख्याल में रखनी पड़ेगी। वह यह कि नजदीक बैठना शरीरों का नहीं है। शरीरों का नजदीक बैठना कैसा होता है? मंदिर में पत्थर का एक खिलौना रखा हुआ है और हमारा पत्थर का शरीर उस पत्थर के नजदीक जा बैठे। आप तो यही उपासना समझते हैं न कि उपासना माने चौकी के पास बैठना, मंदिर में भगवान के पास बैठना। भगवान कहाँ है? वह रखा तो है चौकी पर और उसी के पास बैठने को उपासना कहते हैं। नहीं बेटे! वह भगवान स्थूल है, जो हमारी चौकी पर रखा हुआ है और हमारा यह शरीर भी जो उसके पास बैठा हुआ है, स्थूल है। उपासना स्थूल की बात नहीं है, क्योंकि उपासना में हम जिस भगवान के पास बैठते हैं, वह भगवान चेतन है और हमारी जो जीवात्मा बैठती है, वह भी चेतन है। चेतन का चेतन के साथ बैठना उपासना का मूलभूत उद्देश्य है। हमारी चेतना, हमारा चिंतन, हमारी भावना जब भगवान की चेतना के साथ, भगवान की भावना के साथ बैठती है और लिपट जाती है, तब क्या होता है? वह हमारी उपासना होती है। इस उपासना में शक्ति आती है, आनंद आता है, रस आता है। उपासना में अनुभूति होती है, मस्ती आती है, जब हमारा अंतःकरण भगवान के अंतःकरण के साथ लिपट जाता है, तब।

विधि नहीं विधा!

बेटे! मेरी उपासना का यही सार है कि हमारा अंतःकरण भगवान के अंतःकरण से किस तरीके से लिपट सकता है? मैं कैसे उपासना करता हूँ? अभी जो मैंने बताया बेटे! यही गायत्री मंत्र की मेरी उपासना है। नहीं साहब! आप कोई और मंत्र कहते होंगे। गायत्री मंत्र में कोई और बीज मंत्र लगाते होंगे। नहीं, मैं और कोई बीज मंत्र नहीं लगाता। चौबीस अक्षर जिसके अंदर हैं और जिसकी तीन व्याहृतियाँ हैं, यही गायत्री मंत्र है। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं करता। तो फिर आप अलग विधि से करते होंगे, जिससे आपको चमत्कार

होता होगा। बेटे! विधि नहीं, विधा। पूछ कि वह क्या होती है? विधि तो हम उसे कहते हैं, जिसको कि हम कर्मकांड कहते हैं। चीजों की इधर-उधर हेरा-फेरी करना, जीभ से अल्लम-गल्लम बकते रहना और हाथों से चीजों का इधर से उधर करते रहना, हाथ को इधर कर देना, उधर कर देना, हाथ की यों मुद्रा बना देना। ये क्या हैं? ये बेटे! कलेवर हैं। वास्तव में जो उपासना मैं करता रहा हूँ, वह ऐसी है जिसमें हमारा अंतःकरण भगवान के अंतःकरण के नजदीक होता चला गया। उपासना में हमारा अंतःकरण और भगवान का अंतःकरण किस तरह से एक हो जाता है, आपको उदाहरण देकर बताता हूँ।

हम दो नहीं, एक हो जाएँ

कभी-कभी सवेरे मैं एक कप चाय बनाता हूँ। बिजली का एक छोटा-सा हीटर लगा रखा है। जब हम बटन दबा देते हैं तो बिजली का करंट चालू हो जाता है और जो इसमें क्वाइल लगे हुए हैं, बिजली के प्रवाह से उनके सारे तार लाल हो जाते हैं। वे इतने लाल हो जाते हैं

कि अगर हम गलती से उन्हें छू लें तो बिजली हमारी जान ले लेगी। वे क्वाइल ऐसे होते हैं। तो उपासना में आप क्या करते हैं? उपासना में हम यह करते हैं कि भगवान की शक्ति हमारी अंतरात्मा में, हमारे क्वाइल में—लोहे के तार में आकर के इस तरीके से समा जाती है कि हमको यह फरक करना मुश्किल होता है कि हमारा अंतःकरण और भगवान का अंतःकरण एक है अथवा दो हैं। दोनों के अंतःकरण एक हो जाते हैं। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब यह है कि जिस तरीके से भगवान चिंतन करता होगा, भगवान की जो इच्छाएँ रही होंगी, भगवान जैसा उदात्त और उदार रहा होगा, हम प्रयत्न यह करते हैं कि हमारी मनःस्थिति और भगवान की मनःस्थिति दोनों का मूल्यांकन, दोनों का लेखा-जोखा और दोनों का स्वरूप एक हो जाए। जब तक एक नहीं हो जाता, तब तक हम यही कोशिश करते हैं कि हमारी भावनाओं का स्तर भगवान की भावनाओं के स्तर के बराबर हो जाए।

(क्रमशः)

□



मिट्टी के टीले पर बैठे हुए संत अनाम अस्ताचलगामी भगवान सूर्य को बड़े ध्यान से देख रहे थे। वे देख रहे थे, किस प्रकार एक दिन महाशक्तियों का वैभव नष्ट हो जाता है।

संत अनाम इन्हीं विचारों में डूबे थे कि एक आदमी उनके समीप आया और प्रणाम कर चुपचाप खड़ा हो गया। मुस्कराते हुए संत अनाम ने पूछा—“वत्स! मुझसे कुछ काम है?”

आर्गतुक ने विनय की—“भगवन्! मैं पुरुदेश का धनी सेठ हूँ। तीर्थयात्रा के लिए चलने लगा तो मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा—‘आप इतने स्थानों की यात्रा करेंगे। कहीं से मेरे लिए शांति, सुख और प्रसन्नता मोल ले आना।’ मैंने अनेक स्थानों पर ढूँढ़ा, पर तीनों वस्तुएँ कहीं नहीं मिलीं। आपको अत्यंत शांत, सुखी और प्रसन्न देखकर ही आपके पास आया हूँ। संभव है, आपके पास ही वे वस्तुएँ उपलब्ध हो जाएँ।”

संत अनाम फिर मुस्कराए और अपनी कुटिया के भीतर चले गए। एक निमिष के उपरांत ही लौटकर आए और एक कागज की पुड़िया देते हुए बोले—“यह अपने मित्र को दे देना, और हाँ, तब तक इसे कहीं खोलना मत।”

आर्गतुक पुड़िया लेकर चला गया और मित्र को दे दी। मित्र ने एकांत में ले जाकर उसे खोला और उसमें रखी ओषधि का सेवन करके कुछ दिनों में ही सुखी, शांत और प्रसन्न हो गया। एक दिन वह धनी सज्जन मित्र के पास जाकर बोले—“मित्र! मुझे भी अपनी ओषधि का कुछ अंश दे दो तो मेरा भी कल्याण हो जाए।”

मित्र ने पुड़िया खोलकर दिखाई। उसमें लिखा था—“अंतःकरण में विवेक और संतोष से ही स्थायी सुख, शांति और प्रसन्नता मिलती है।”





परिष्कृत अध्यात्म हमारे जीवन में उतरे — २

मनःस्थिति बेल जैसी हो

मित्रो! उपासना के समय असली कीमत भावना की है। लोग तो वही स्थूल बातें करते रहते हैं कि उपासना के समय हमारा मन नहीं लगता। उपासना के समय प्रकाश नहीं दीखता, गणेश जी नहीं दीखते और न जाने क्या-क्या बकते रहते हैं। ये सब बकवास हैं। उपासना का अर्थ यह है कि भगवान की भावनाएँ, भगवान का स्तर एवं हमारी भावनाएँ और हमारा स्तर दोनों को एक होना चाहिए। क्या कुछ कमी रह जाती है? हाँ बेटे! कुछ कमी भी रह जाती है। हम एक होने में पूरी तरह सफल नहीं हो पाते, पर कोशिश करते हैं कि जितना ज्यादा नजदीक हो सकें, उतना ज्यादा नजदीक होने का हम प्रयत्न करें। इसके थोड़े से उदाहरण हमारे सामने आते हैं। कौन-कौन से उदाहरण सामने आते हैं? एक उदाहरण यह सामने आता है लता का—बेल का। बेल बड़ी कमजोर होती है, बड़ी असमर्थ होती है। बेल बहुत पतली होती है। वह जमीन पर फैल सकती है, पर ऊँचे नहीं उठ सकती, लेकिन जब वह पेड़ से लिपटती हुई चली जाती है तो इतनी ऊँची हो जाती है, जितना ऊँचा पेड़ है। हम यह कोशिश करते हैं कि उपासना के समय हम भगवानरूपी पेड़ के साथ अपनी अंतरात्मारूपी बेल को लिपटाते हुए चले जाएँ और उसकी ऊँचाई, उसकी गरिमा, उसकी महिमा के बराबर अपने नाचीज व्यक्तित्व और अस्तित्व को उठाते हुए चले जाएँ। हमारी मनःस्थिति यही होती है—बेल जैसी।

निष्काम भाव सोऽहम्

महाराज जी! और कैसी मनःस्थिति होती है? बेटे! हम अपनी मनःस्थिति को इस तरह बनाने की कोशिश करते हैं कि हमारी कामनाएँ खत्म हो जाएँ और हमारी कामनाओं पर भगवान की कामनाएँ काम करें। हम खाली हो जाएँ और खाली हो करके उसके भीतर भगवान अपना काम करने के लिए स्वाधीन हो जाएँ। स्वच्छंद हो जाएँ। 'सोऽहम्' की उपासना में हम इसी की बात कहते

हैं। जब 'हम्' कहते हैं, तब अपने अहंकार को निकाल देते हैं। और 'सो' को अपने भीतर प्रवेश कराते हैं। 'सोऽहम्' की उपासना में इसी मान्यता का वर्णन किया गया है और हम अपनी उपासना में इन्हीं भावनाओं को, इन्हीं वृत्तियों को विकसित करने की कोशिश करते हैं। क्या करते हैं आप? बेटे! हम यह भावना करते हैं कि हम खाली हो गए हैं और मन खाली करके फेंक दिया है और भगवान से कहा कि आपकी जैसी मरजी हो, वही वृत्ति पैदा कीजिए, वही आकांक्षा पैदा कीजिए और हमारी आकांक्षा को निकाल दीजिए।

मित्रो! हमारे भीतर चार शैतान समाए हुए हैं। पहला शैतान कौन है? वासना। वासना के गर्त में हम घिरे हुए हैं और आपकी कृपा को लेकर उसको भी इसी नरक में डालना चाहते हैं। दूसरे हम तृष्णा के जंजाल में, तृष्णा के दलदल में फँसे हुए हैं और आपका अनुग्रह, आपकी कृपा और आपके वरदान को भी घसीटकर इसी नरक में डालना चाहते हैं। हम बड़े दुष्ट हैं। आपकी महिमा और आपकी गरिमा को हम झपटना चाहते हैं, छीन लेना चाहते हैं। तीसरा अपने अहं की पूर्ति करने के लिए, अपनी अमीरी बढ़ाने के लिए, अपना वैभव बढ़ाने के लिए, अपना यश बढ़ाने के लिए हम आपके अनुग्रह को इसी नरक में डालना चाहते हैं। अंतिम अपनी उद्विग्नता और विक्षोभों के कारण हम जो अशांत रहते हैं, चाहते हैं कि हमारे विक्षोभों का समाधान करने के लिए आपका अनुग्रह काम करे। अपने लिए हम आपका इस्तेमाल करना चाहते हैं। आमतौर से हर आदमी की इच्छा यही होती है कि भगवान की कृपा, भगवान का प्यार हम किसी तरह से झपट लें। झपट लेने के बाद उसका इस्तेमाल अपने स्वार्थों के लिए, अपने लोभ को पूरा करने के लिए, अपने मोह को पूरा करने के लिए, अपने अज्ञान को पूरा करने के लिए, अपने अहं को पूरा करने के लिए खरच करें। प्रायः लोगों की यही वृत्ति रहती है।

भगवान के पीछे चलिए

मित्रो ! एक दिन भगवान ने मुझसे कहा था कि देख भाई ! अगर तू मेरे साथ चलना चाहता है, तो मैं बड़ा हूँ और तू छोटा है। तू मेरे पीछे चलना चाहता है कि मुझे अपने पीछे चलाना चाहता है ? हमने कहा कि हम ऐसी गुस्ताखी नहीं कर सकते कि हम जैसे घटिया आदमी आपसे यह कहें कि आप पीछे चलिए और हम जो हुक्म दें, उसे आपको पूरा करना चाहिए। तो फिर हमारे पीछे चलेगा ना ? कोशिश यही करूँगा। तो फिर हमारे पीछे चल, हमारे निर्देशों पर चल। प्रकाश के पीछे चल और छाया की ओर से मुख मोड़ना शुरू कर। मित्रो ! मैंने अपना मन बदल दिया और 'अबाउट टर्न' कर दिया। जब मैं उपासना प्रारंभ करता हूँ तो एक ईमानदार आदमी की तरह से करता हूँ, बेईमान आदमी की तरह से नहीं करता। ईमानदार भक्त की तरह से अपनी मनःस्थिति बनाने की कोशिश करता हूँ। अपने को बाँसुरी की तरह से खाली कर देता हूँ और ये कहता हूँ कि प्रियतम अब इस पर आप जो कुछ भी बजाना चाहते हैं, बजा सकते हैं। आपका जो इशारा होगा, आपकी हवा जहाँ कहीं से भी आएगी, मेरे कण-कण से वही आवाज निकलेगी। मेरे कण-कण से वही ध्वनि निकलेगी। आप बजाइए, हम बजेंगे। चार आने कीमत की बाँस की जरा-सी नली, जब खाली होती है और खाली होने के बाद वादक के ओंठों के पास जा पहुँचती है। वादक जब उसमें फूँक मारना शुरू करता है तो कैसी-कैसी लहरें, कैसी-कैसी तरंगें, कैसे-कैसे गाने उसमें से निकलते हैं। बेटे ! हमारे भीतर से बहुत गायन निकलते हैं, बहुत संगीत निकलते हैं।

जीवन संगीत प्रभु का ही

हमारे जीवन में से जो संगीत निकलते हैं और जिन संगीतों को आप सुनते हैं, वस्तुतः वे हमारे नहीं हैं। ये प्रियतम के हैं और प्रियतम का संगीत-संदेश प्राप्त करने का अधिकार हमको इस कीमते पर मिला है कि हमने अपने आप को खाली कर दिया। हमने अपनी कामनाओं को और महत्वाकांक्षाओं को पैरों तले रौंदकर फेंक दिया। हमारी महत्वाकांक्षाएँ समाप्त हो गई, हमारी कामनाएँ समाप्त हो गई, इच्छाएँ समाप्त हो गई। अब हमारी कोई कामना नहीं है, जिसे हम भगवान से कहें। अब हमारी एक ही कामना है कि आप हमको जिस तरीके से चलाना चाहते हैं, चला दीजिए। हम आपके पीछे एक

अनुशासित व्यक्ति की तरह से, वफादार सेवक की तरह से, एक स्वामी भक्त, समर्पित व्यक्ति की तरह से चलेंगे।

सब उलटा चक्कर

बेटे ! हमारा समर्पण, हमारी शरणागति शाब्दिक नहीं है, वास्तविक है और लोगों की शाब्दिक होती है। कैसे ? “सब भार सौंप दिया, भगवान तुम्हारे हाथों में” गुरुजी ! हम तो आपकी शरण में हैं और हम आपको भगवान

बौद्ध भिक्षु होने पर अपना नाम बदलना अनिवार्य था। उसका उद्देश्य यह था कि वर्ण, गोत्र, जाति का आभास न हो व सब शिष्यगण अहंकार को विस्मृत कर दें।

एक बार शिष्यों में चर्चा चली कि दीक्षित होने पर भी शरीर तो छूट नहीं जाते ! फिर गोत्र, जाति, वर्ण कैसे छूट जाएँगे ! बात भगवान के कानों तक पहुँची उन्होंने सबको एकत्र कर कहा — “वत्स ! तुमने साँप की केंचुली देखी है ?” “हाँ भगवन् ! देखी है।” “तो कोई बताए यह क्या है ?” “भगवन् ! केंचुली जब आती है तो साँप अंधा हो जाता है।”

“एवं जब केंचुली छूट जाए तब।”

“तब साँप को पुनः दीखने लगता है।”

तथागत ने समझाया — “हमारे गोत्र, वर्ण व जातियाँ भी साँप की केंचुली के समान ही हैं, जब तक शरीर पर ये रहती हैं मनुष्य अहंकार में अंधा बना रहता है, परंतु जब ये केंचुली छूट जाती हैं तो उसे सर्वव्यापी विराटसत्ता की अनुभूति होने लगती है। इसीलिए नाम, पद, यश, कुल और गोत्र की अहंता से विमुक्त होना आवश्यक है।

शिष्य वस्तुस्थिति समझकर संतुष्ट हो गए।”

मानते हैं। अच्छा ! हमको भगवान मानता है तो फिर हमारे कहने पर चल। नहीं, महाराज जी ! आप ! हमारे कहने पर चलें। अहाऽऽ तो ये बात है, इसीलिए तू हमें भगवान मानता है। हमको अपने कहने पर चलाएगा। हाँ, महाराज जी ! आप ! हमारे कहने पर चलिए और हमारी मनोकामना पूरी कर दीजिए और अपना तप हमारे हवाले कर दीजिए। तो तू इसलिए भगत बन रहा था ? हाँ, महाराज जी ! इसीलिए बन रहा था। तो बेटे ! भगत का यह तरीका नहीं है। भगत का तरीका यह है कि हम बड़े हैं, ज्ञानवान हैं और तू चेला है, हमारा कहना मान और

हमारे साथ चल। नहीं, महाराज जी! आप! हमारा कहना मानिए। तो तू इसीलिए चेला बनता था? नहीं, महाराज जी! मैं कहता तो था कि आपका चेला हूँ, पर हूँ गुरु। अच्छा, तो तू गुरु है, पर बनता है चेला। ऐसी मक्कारी क्यों करता है? या तो तू हमारे कहने पर चल या हम तेरे कहने पर चलें। अगर तू अपने कहने पर हमारा तपबल चलाना चाहता है तो तू गुरु है और अगर हमारे कहने पर तू अपने श्रम और मनोयोग को खरच करना चाहता है तो हम गुरु हैं। महाराज जी! ये क्या चक्कर उलटा बन गया। हाँ बेटे! देख ले, सब कुछ उलटा हो गया।

समर्पण पतंग की तरह, कठपुतली की तरह

मित्रो! मेरे जो गुरु हैं, मैं उनके पीछे-पीछे चलता हूँ और अपनी मनःस्थिति को ऐसी बनाने की कोशिश करता हूँ, जैसी पतंग की होती है। पतंग अपनी डोर को किसी बच्चे के हवाले कर देती है और यह कहती है कि आप हमें उड़ाइए। बच्चा उसे उड़ाता है और पतंग आसमान में चढ़ती हुई चली जाती है। पतंग जिस दिन बच्चे से यह कहती है कि हमें आपके हाथ में अपनी डोर नहीं देनी है, अपनी डोर हमें अपने हाथ में रखनी है तो उस दिन से पतंग उड़ नहीं पाएगी। कठपुतलियों के धागे बाजीगर के हाथ में बँधे रहते हैं और बाजीगर अपनी उँगलियों को नचाता है और उँगलियों के इशारे पर कठपुतलियाँ नाचती हैं। नाचकर कैसा मजेदार और शानदार खेल होता है, देखने वाले तमाशा देखते और मजा उड़ाते हैं, तालियाँ बजाते हैं। किसका नाच हो रहा है? कठपुतलियों का हो रहा है। कठपुतलियों का नहीं हो रहा, बेटे! बाजीगर की उँगलियों में बँधे हुए धागों का हो रहा है। बाजीगर की उँगलियों में हमने अपनी जिंदगी के सब धागों को बाँध दिया है। भगवान के हाथों में बाँध दिया है।

स्वयं भगवान हमारे गुरु

भगवान कैसा है? बेटे! भगवान को हमने देखा नहीं है और कभी-कभी मन कच्चा हो जाता है कि भगवान न हुआ तो? भगवान को जब देखा नहीं, तो हम उससे बात कैसे कर सकते हैं? इसलिए हमने अपनी श्रद्धा का एक केंद्रबिंदु बना रखा है और वो है—हमारा ‘बॉस,’ अपना ‘मास्टर’। जब पत्थर का भगवान बनाया जा सकता है, लकड़ी का भगवान बन सकता है, गोबर का गणेश बन सकता है तो जीवंत हाड़-मांस का भगवान

क्यों नहीं बन सकता? हमारा गुरु हमारा भगवान है। हमारी श्रद्धा उसके लिए समर्पित है। हम यह प्रतीक्षा करते रहते हैं और एक बात कहते हैं कि आप हुक्म दीजिए। हमने कभी एक बार भी यह नहीं कहा कि आप हमको बुला लीजिए, हमको दर्शन दीजिए, हमको ये कर दीजिए। आज तक इतनी उम्र हो गई, पचपन साल से हम उनसे संबंधित हैं, लेकिन कभी हमारे मन में ये संकल्प उठा हो कि हे भगवान! आप हमारा ये कर दीजिए, दर्शन दीजिए, जहनुम में डालिए या गड्ढे में पटक दीजिए, या हिमालय पर बुला लीजिए। बेटे! हमारी कोई इच्छा नहीं है। आप गुरु से प्रार्थना कीजिए। बेटे! गुरु से क्या प्रार्थना करनी चाहिए? गुरु को तो हुक्म देना है कि हमको ये करना है, बस, हमारे लिए वही सब कुछ है।

मित्रो! कोई हमसे ये पूछे कि यह मनःस्थिति लेकर आपने क्या पाया? आप घाटे में चले गए होंगे? नहीं, बेटे! हम घाटे में नहीं गए, वरन नफे में आ गए, क्योंकि हमें बहुत दिनों से मालूम है कि भगवान के कायदे-कानून क्या हैं? भगवान अपने आप को बेचता रहा है और ये कहता रहा है कि जिसकी मरजी हो, हमको खरीदकर ले जा सकता है और अपनी मरजी से हमको चला सकता है। राजा हरिश्चंद्र ने चौराहे पर खड़े हो करके कहा था कि जो भी चाहे, हमको खरीदकर ले जा सकता है। हम उसका काम करेंगे। हम उसके हाथ बिकने को तैयार हैं। हम एक वफादार नौकर की तरह से जिंदा रहेंगे, जो भी चाहे, हमें खरीद ले। राजा हरिश्चंद्र को एक डोम खरीदकर ले गया था और वे उसके हाथ बिक गए थे। डोम ने जो कुछ भी कहा था, उसका कहना उन्होंने माना था। भगवान ठीक राजा हरिश्चंद्र की तरह से बिकने के लिए तैयार है और आप में से हर आदमी का हुक्म बजाने को तैयार है। हर आदमी का कहना मानने को तैयार है। भगवान और उसकी शर्त की कीमत क्या है? भगवान को कीमत देकर पाया नहीं जा सकता और न किसी ने पाया आज तक। भगवान को जिस किसी ने भी पाया है, उसने कीमत देकर खरीदा है।

भगवान के हाथों स्वयं को बेच दें

नहीं साहब! भगवान फोकट में मिलता है। बेटे! भगवान फोकट में नहीं मिलता। नहीं साहब! वह तो चावल, धूपबत्ती की कीमत पर मिलता है। चंदन की माला की कीमत पर मिलता है। जप-अनुष्ठान की कीमत

पर मिलता है। नहीं, बेटे! भगवान इतनी कम कीमत का नहीं है। भगवान की कीमत हम चुका सकते हैं? हाँ, आप! भगवान की कीमत चुका सकते हैं। आपके पास इतना धन है कि आप चाहें तो भगवान को मजे में खरीद सकते हैं। बताइए, वो क्या कीमत है, जिससे हम भगवान जैसी महानशक्ति और महानसत्ता को खरीद पाएँ। बेटे! वो एक ही कीमत है, जिससे भगवान जैसी महानशक्ति और महानसत्ता को खरीद सकते हैं और वो है—अपने आप को भगवान के हाथों बेच देना। अगर अपने आप को बेच देंगे तो आप भगवान को खरीद सकते हैं। अपने आप को बेचा कैसे जा सकता है? बेचा ऐसे जा सकता है कि आप अपनी इच्छाओं को भगवान के हवाले कर दें और ये कहें कि अब हमारी इच्छाएँ खत्म हो गईं। अब आपकी इच्छाओं का शासन-अनुशासन हमारे ऊपर कायम होता है। आपके संकेत हमारे ऊपर कायम होते हैं। आप हमको चलाइए और हम आपकी मरजी के ऊपर चलेंगे।

भगवान प्रतिच्छाया

भगवान कैसा होगा? भगवान कैसा होना चाहिए? इसके लिए मैंने दो शब्दों का इस्तेमाल किया है और वो शब्द मुझे बहुत प्यारे हैं। कौन-कौन से वो शब्द हैं? एक शब्द है—‘प्रतिच्छाया’ और एक है—‘प्रतिध्वनि’। प्रतिच्छाया क्या है? बेटे! प्रतिच्छाया से मेरा मतलब यह है कि एक बड़ा-सा शीशा हो और उस शीशे के सामने आप खड़े हो जाइए तथा अपने हाथ-पाँव को चलाना शुरू कीजिए। फिर देखिए कि शीशे में जो आदमी खड़ा है, बिल्कुल आपके तरीके से चलता है और जैसा भी आप चाहते हैं, उसी तरह से चलता है। शीशे के सामने, जब आप घूँसा दिखाते हैं कि मार देंगे तो शीशे वाला कहता है कि मार दूँगा। जब आप शीशे वाले से कहते हैं कि नमस्कार भाईसाहब! तो शीशे वाला कहता है, नमस्कार भाईसाहब! आप और हम तो मित्र हैं। शीशे वाला कहता है हाँ, साहब! बिल्कुल मित्र हैं और जब हम यह कहते हैं कि तेरी जेब काटेंगे, तेरी हजामत बनाएँगे तो शीशे वाला कहता है कि तेरी जेब काटेंगे और तेरी हजामत बनाएँगे। किसकी बात कह रहे हैं—शीशे वाली प्रतिच्छाया की? नहीं बेटे! ये भगवान की बात है। आपका ईमान, आपकी नीयत जैसी भी कुछ है, रबर की गेंद के तरीके से टक्कर मारती है भगवान से और ज्यों की त्यों लौटकर आपके पास आ जाती है। आपकी नीयत ज्यों की त्यों

भगवान के पास से वापस आ जाती है, इसलिए मैंने भगवान को प्रतिच्छाया कहा है।

भगवान प्रतिध्वनि

मित्रो! भगवान को मैंने प्रतिध्वनि कहा है। प्रतिध्वनि से क्या मतलब है? प्रतिध्वनि से मेरा मतलब यह है कि गुंबद के नीचे खड़े होकर जब हम आवाज लगाते हैं तो ज्यों की त्यों आवाज वापस आ जाती है। जो भी हम कहते हैं, वह गुंबद से टक्कर खाकर के ज्यों का त्यों आ जाता है। जैसे—हम कहते हैं कि कौन बोल रहा है? गुंबद भी कहता है—कौन बोल रहा है? हम कहते हैं—जो कुछ है, हमारे हवाले कीजिए। गुंबद भी कहता है—

गड़रिए ने भेड़ को बड़े प्यार से कंधे से उतारा, उसे स्नान कराया, बाल सुखाए और हरी घास खाने को दी। जब भेड़ उस घास को खा रही थी, तब गड़रिए का आह्लाद देखते ही बनता था। महापुरुष ईसा उस गड़रिए की पर्णशाला के समीप ही बैठे विश्राम कर रहे थे। उन्होंने इस प्रसन्नचित्त गड़रिए को देखकर पूछा—“वत्स! आज तुम इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हो?”

गड़रिए ने कहा—“महात्मन्! यह भेड़ जंगल में प्रायः हमेशा भटक जाती है। मेरे पास सौ और भी भेड़ें हैं, पर वह सब सीधे घर आती हैं, इसे इतना प्यार इसलिए दिया कि यह फिर कहीं न भटके।”

यह सुनकर ईसा ने अपने शिष्यों से कहा—“जो अपनी राह से भटक गए हैं, उन मनुष्यों को प्यारपूर्वक ही सीधे मार्ग पर लाना चाहिए।”

जो कुछ है, हमारे हवाले कीजिए। हम कहते हैं—हमको वरदान-आशीर्वाद दीजिए। गुंबद भी कहता है—हमको वरदान-आशीर्वाद दीजिए। हम कहते हैं—हमारी मनोकामना पूरी कीजिए। गुंबद भी कहता है—हमारी मनोकामना पूरी कीजिए। ये कौन बोल रहा है? बेटे! ये भगवान बोल रहा है। जिन शब्दों में, जिस नीयत के साथ इस गुंबद में हम जो कुछ बोलते हैं वह लौटकर उसी रूप में हमारे पास आ जाता है। जब यह बोलते हैं कि हमें आपका कुछ नहीं चाहिए तो भगवान भी कहता है कि हमें भी आपका कुछ नहीं चाहिए। जब हम गुंबदरूपी भगवान से यह कहते हैं कि जो कुछ भी हमारे पास है,

वह हम आपके हवाले करते हैं तो भगवान भी कहता है कि जो कुछ हमारे भी पास है, हम आपके हवाले करते हैं। कहते हैं कि भक्तों की परंपरा अनादिकाल से यही रही है और यही रहेगी।

कर्मकांड का मर्म समझिए

मित्रो! भक्तों का जीवन जीने के लिए भजन करने के साथ-साथ, अपने जीवन की प्रक्रिया में भक्ति का समावेश करने के लिए हमने दार्शनिक दृष्टि से, भावनात्मक दृष्टि से और अंतःकरण की दृष्टि से हरचंद कोशिश की है। आपने तो इसका छिलका हाथ में पकड़ रखा है। किसका छिलका पकड़ रखा है? नारियल का छिलका आपने हाथ में पकड़ रखा है और गूदे को फेंक दिया है। छिलके से क्या मतलब है? छिलके से हमारा मतलब कर्मकांडों से है। कर्मकांड छिलका है? हाँ बेटे! छिलका उसकी हिफाजत के लिए बना है, ताकि उसके अंदर की गिरी-गोला खराब न हो जाय। इसलिए छिलके की भी जरूरत है, लेकिन आपने केवल छिलका पकड़ लिया है, कर्मकांड पकड़ लिया है और उपासना के लिए जिस भावना की जरूरत है कि भगवान की और भक्त की भावना एक होनी चाहिए, उसको आप भुलाते हुए चले जाते हैं। सबेरे मैं आपको ध्यान कराता हूँ और यह कहता हूँ कि समर्पण, विसर्जन, विलय, समन्वय, समाधान और शरणागति। इसका अर्थ यह है कि हमारी उपासना का स्तर ये होना चाहिए और उपासना की अनुभूति होनी चाहिए कि भक्त और भगवान एक, सविता और साधक एक। इसमें क्या होता है? दोनों एक हो जाते हैं। दोनों के एक हो जाने से क्या मतलब है? दोनों के एक हो जाने से ये मतलब है कि नाला नदी हो जाता है। नदी नाला नहीं हो सकती, नाला नदी हो जाता है। चंदन झाड़ी नहीं होता, झाड़ियाँ चंदन हो जाती हैं। हम झाड़ियाँ हैं और भगवान को हमारे जैसा बन जाना चाहिए। नहीं बेटे! ऐसा नहीं हो सकता। हमको भगवान जैसा बनना पड़ता है। यही मनःस्थिति है, यही भक्ति का स्वरूप है। उपासना का यही सिद्धांत है, यही कसौटी है और यही तथ्य और स्वरूप है।

इष्ट के साथ एकाकार

मित्रो! उपासना के साथ-साथ इसी तरह की अपनी मनःस्थिति बनाने की मैं कोशिश करता हूँ। जप तो करता रहता हूँ जबान से। हाथ से अक्षत चढ़ाता व माला भी

घुमाता रहता हूँ, परंतु कोशिश यह करता हूँ कि मेरी अंतरात्मा, अंतःकरण, चिंतन, विश्वास और आस्थाएँ, जीवन का स्वरूप उसी ढाँचे में ढलता हुआ चला जाए, जैसा कि मेरा इष्टदेवता है। गायत्री माता के ढाँचे में ढलने की कोशिश करता हूँ। उसके पास रहने वाले, उपासना करने वाले राजहंस का नमूना बनने की कोशिश करता हूँ, ताकि जिस तरीके से राजहंस के लिपटे हुए सफेद कपड़े होते हैं, ज्यों के त्यों सफेद बने रह सकें। नीर-क्षीर करने की विवेक-बुद्धि ज्यों की त्यों बनी रह सके। दूध और पानी का फरक करने की, उचित और अनुचित का फरक करने की बुद्धि ज्यों की त्यों बनी रह सके। उपासना में मैं गायत्री माता के नजदीक बैठने की, गायत्री माता का हंस बनने की कोशिश करता हूँ। सदा यही चिंतन करता रहता हूँ। बेटे! अगर यही चिंतन आपका भी प्रारंभ हो जाय और यही हिम्मत और जुरत आपके भीतर भी पैदा हो जाय तो मैं आपसे कहता हूँ कि आप भी उपासना का लाभ उठा सकेंगे। उपासना का फल मिलेगा। उपासना में आपको रस आएगा। उपासना आपको टॉनिक जैसी मालूम पड़ेगी। जब मैं उपासना से उठता हूँ तो ऐसा मालूम पड़ता है कि कुछ पी करके आया हूँ। कुछ ले करके आया हूँ, कुछ मेरे ऊपर लद गया है। कुछ पा करके आया हूँ। आप जब उपासना से उठते हैं तो थके हुए से उठते हैं, जँभाई लेते हुए उठते हैं, हारे हुए से उठते हैं। आप तो ये शिकायत करते हैं कि हमको नौद आ जाती है, झपकी आ जाती है। हमारा मन नहीं लगता। बेटे! हमें ऐसी कोई शिकायत नहीं होती। हम तो आनंद से और मस्ती से भर जाते हैं। अगर आप भी अपनी मनःस्थिति ऐसी बनाने की कोशिश करें तो आपकी साधना का पहला चरण पूरा हो सकता है।

साधना और स्वाध्याय भी

मित्रो! दूसरा वाला एक चरण और है। दूसरा वाला चरण यह है कि उपासना के सिवाय जीवन की प्रक्रिया में एक और चीज को हमने समावेश कर लिया है। उसका नाम है—साधना एवं स्वाध्याय। स्वाध्याय का मतलब क्या होता है? स्वाध्याय से मतलब आमतौर से लोग धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने से निकालते हैं, पर वास्तविक मतलब यह नहीं है। स्वाध्याय का मतलब सत्संग से लिया जा सकता है। संगति का आदमी के ऊपर बहुत असर पड़ता है। संगति वातावरण की भी है।

जहाँ कहीं भी हम जाते हैं, हर जगह से हमको नसीहत मिलती है। हर जगह से जो सलाह-मशविरा मिलता है, हर जगह से जो प्रभाव मिलता है, जो वातावरण मिलता है, वो हमको अपनी ओर घसीटता हुआ चला जाता है। हम अकेले एक ओर और सारी दुनिया एक ओर। हम कहाँ तक खड़े रह सकते हैं ? बीबी से लेकर साले तक और जमाई से लेकर बेटे तक, हर आदमी इस बात में एक राय है कि हमको संपत्ति कमाना चाहिए, चाहे वो ईमानदारी से हो या बेईमानी से। बीबी से पूछते हैं कि बताइए आपकी क्या राय है, बेईमानी से पैसा कमा लें ? कोई हर्ज की बात नहीं है। सारी दुनिया कमाती है। बाल-बच्चों के काम आएगा, मकान बना लेंगे। बीबी हमको इस मामले में यही सलाह देती है।

आज की दुनिया के प्रचलन

मित्रो! माँ से लेकर अन्यान्यों तक नैतिक सिद्धांतों के मामले में कोई समर्थन नहीं करता। ब्याह हुए छह वर्ष हो गए, कोई बच्चा नहीं हुआ। अम्मा क्या करें ? बेटा! तू मेरा कहना माने तो दूसरा ब्याह कर ले। लेकिन इसका क्या करूँ, जिसको ब्याह कर लाए थे। अरे! इसको फाँसी दे-दे, निकाल दे, जहर दे-दे, मायके भेज दे। ये कौन कहता है ? ये हमारी माँ कहती है। और बीबी कहती है कि आप रिश्वत लिया करें और हमारे लिए सोने की अँगूठी बनवा दें। हमारा साला भी कहता है, पड़ोसी भी कहता है, हर आदमी कहता है। हमारे मित्र भी यही सलाह देते हैं। सारे का सारा समाज, जिससे हम घिरे हुए हैं, एक भी आदमी हमको ऐसा नहीं दिखाई पड़ता, जो नैतिक मामलों में, आध्यात्मिक मामलों

में हमको सलाह देता हो और प्रोत्साहन देता हो। जिधर भी नजर डालते हैं, वहाँ हमको नैतिक दिशा में एक भी प्रोत्साहित नहीं करता। सौ में से सौ आदमी। हर आदमी हमारे पैर पकड़ करके पीछे घसीटता है।

वातावरण चाहता है चिकित्सा

न केवल मित्र और संबंधी घसीटते हैं, वरन हवा भी हमको उधर ले जाती है। हम बाजार में से निकलते हैं तो जर्रा-जर्रा, चप्पा-चप्पा हमको ये कहता है कि आपको अनैतिक होना चाहिए। बड़ी वाली इमारत से पूछा—“क्यों बहन जी! आप इतनी बड़ी खड़ी हुई हैं तो आपके अंदर रहने वाला व्यक्ति बहुत मजा करता होगा।” अजी साहब! पंडित जी मौज उड़ाता है। उसकी तिजोरी में रुपया भरा हुआ पड़ा है। उस हवेली से फिर हमने पूछा—“क्यों बहन जी! फिर तो आप हमको भी मिल सकती हैं?” मिल तो सकती हूँ, लेकिन जो तरीका इसमें रहने वाले आदमियों ने अख्तियार किया, वही तरीका आपको अख्तियार करना पड़ेगा। हम आपकी भी हवेली बन सकती हैं। क्या तरीका अख्तियार किया ? उसने सारे कच्चे चिट्ठे कह सुनाए कि बदमाशी से और बेईमानी से इन्होंने पैसे इकट्ठे किए। हम हर जगह गए, इससे पूछा, उससे पूछा, बाबू से पूछा, क्लर्क से पूछा, इन्कम टैक्स वाले से पूछा कि भाईसाहब! आपकी क्या राय है ? सबने कहा—“गुरुजी! अगर आप ईमानदारी से धन इकट्ठा करना चाहते हैं तो पेट भरने लायक रोटी आपको मिल सकती है। ज्यादा गुजारा नहीं हो सकता। सब जगह ऐसा ही गंदा वातावरण है। बेटे इस वातावरण में क्या होगा ?” (क्रमशः)

‘आत्मशोध है’ भिक्षुओ! इसके लिए तुम्हें जंगल-जंगल भटकने की आवश्यकता नहीं। परमपद है तुम्हारे बिल्कुल समीप।

एक स्त्री दर्पण के सामने बैठी अपना चेहरा देख रही थी और बड़ी तत्परता से उसे सुंदर और निर्मल बनाने का प्रयत्न कर रही थी। मैंने देखा, वह बड़े ध्यान से चेहरे में लगी गंदगी को ढूँढ़ती है और उसे साफ करती है। आत्मपरीक्षण के संबंध में भी यही बात है। अपनी चेतना के दर्पण में अपने आप को देखो और ढूँढ़ो कहीं काम, क्रोध, भय, उद्विग्नता, असंतोष, असंतुलन तो नहीं छिपा हुआ है ? तुम्हारे विचार गंदे तो नहीं हैं ? इंद्रियों पर तुम्हारा नियंत्रण है या नहीं ?

यदि इनका सही उत्तर न मिले तो उन बुराइयों को मिटाने में लग जाओ। उस स्त्री की तरह जब तुम्हें अपने आंतरिक चेहरे की निर्मलता पर संतोष हो जाएगा, उसी दिन तुम मोक्ष, परमपद या आत्मकल्याण की स्थिति प्राप्त कर लोगे।

परिष्कृत अध्यात्म हमारे जीवन में उतरे — ३

विगत दो कड़ियों में पूज्यवर ने आज के प्रचलित अध्यात्म, कर्मकांड प्रधान धर्म की सटीक आलोचना की है। वे उपासना की चर्चा करते हैं तो बेल के वृक्ष से लिपटने की बात कहते हैं। वे कहते हैं कि हम खाली हो जाएँ, निष्काम हो जाएँ तो ही हमें भगवत्कृपा प्राप्त हो सकती है। बाँसुरी की तरह हम पोले हो जाएँ, ताकि प्रभु का ही जीवन संगीत उसमें से प्रकट हो। समर्पण पतंग की तरह हो, कठपुतली की तरह हो। परमपूज्य गुरुदेव समर्पण की प्रतिमा के रूप में अपने गुरु का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि भगवान को जिस किसी ने भी पाया है, कीमत देकर पाया है। अपनी इच्छाओं को उस महान शक्ति को सौंपकर पाया है। भगवान के लिए पूज्यवर ने प्रतिच्छाया, प्रतिध्वनि शब्द का प्रयोग किया है। कर्मकांडों को वे स्वीकार करते हैं, पर उन्हीं को सब कुछ मानने की विडंबना से बचने की बात कहते हैं। इष्ट के साथ एकाकार होना, नीरक्षीर वृत्ति विकसित कर हंस बनने का प्रयास, यही उपासना का मर्म है। आलू छापे हुए वातावरण की चिकित्सा हेतु वे जीवन-साधना और स्वाध्याय की बात कहते हैं। अब उसी का विवरण आगे पढ़ें—

एक आदर्श का नाम है भगवान

मित्रो! आज का वातावरण बहुत गंदा है। इस वातावरण में क्या होगा? इस वातावरण में हम भगवान की तरफ कैसे चलेंगे? भगवान का अर्थ नैतिकता और आदर्श है। नहीं साहब! भगवान तो कोई व्यक्ति विशेष है। नहीं बेटे! भगवान कोई व्यक्ति नहीं होता है। नहीं साहब! हमने भगवान की शक्ति देखी है। वह बाँसुरी बजाता है, गायें चराता है और तीर चलाता है। नहीं बेटे! वह तीर नहीं चलाता है। भगवान एक सिद्धांत का नाम है, एक संवेदना का नाम है, एक आदर्श का नाम है। हमने उसकी शक्तें गढ़ ली हैं। ये सारी शक्तें हमारी गढ़ी हुई हैं। यह सही है कि भगवान ने आदमी को बनाया है, लेकिन उससे भी ज्यादा यह सही है कि आदमी ने भगवान को बनाया है। क्या आदमी भगवान को बना सकता है? हाँ, आदमी भगवान को बना सकता है। कैसे बना सकता है? हम अपने छापाखाना में छाप-छाप करके बहुत से भगवान बना देते हैं। आप जयपुर चले जाइए। वहाँ दे-दनादन हथौड़े चल रहे हैं, पत्थरों के ऊपर। क्या बना रहे हो? गुरुजी! भगवान जी की नाक जरा-सी लंबी हो गई है, उसी की काट-छाँट कर रहा हूँ। तो तू भगवान जी की नाक काटेगा? हाँ गुरुजी! ये तो नाक काटने से ही काबू में आएगा।

शक्तें इनसान की गढ़ी हुई

मित्रो! क्या हो रहा था? भगवान की नाक काट रहा था और ये क्या कर रहा था? भगवान की गरदन को ऐसे-ऐसे कर रहा था। मैंने कहा—अरे बाबा! ये तो भगवान हैं और तू भगवान की गरदन को घिस रहा है। यह बकरा थोड़े ही है। उसने कहा कि हमारे लिए तो बकरे में और भगवान में कोई फरक नहीं पड़ता। इनकी गरदन जरा मोटी है, उसे ठीक करूँगा। वह रेत-रेतकर भगवान को बना रहा था। इस तरह भगवान की जितनी शक्तें हैं, वो सब इनसान की बनाई हुई हैं, इनसान की गढ़ी हुई हैं। शक्तिवाला भगवान नहीं हो सकता। भगवान का नाम है—आदर्श, भगवान का नाम है—करुणा, भगवान का नाम है—सज्जनता और संवेदना। भगवान का नाम है—शराफत और क्षमा। यह तो बेटे! एक खिलवाड़ है। यह भगवान नहीं है। भगवान शक्तों के रूप में नहीं आता, वह संवेदनाओं के रूप में आता है। इससे कम में वह नहीं आता है।

स्वाध्याय द्वारा समझें संवेदनारूपी भगवान को

मित्रो! क्या करना चाहिए? अपने भगवान को संवेदना में उतारने के लिए हमको ये करना पड़ेगा कि हमें एक अलग कंपनी बनानी पड़ेगी, एक अलग देश बसाना पड़ेगा। एक अलग तरीके से हमको अपनी व्यवस्था

करनी पड़ेगी। लोगों में हम काम तो करेंगे, लेकिन उनसे अलग रहकर। लोगों की सलाह हम नहीं मानेंगे। किसकी सलाह मानेंगे? स्वाध्याय की। स्वाध्याय का मतलब सत्संग है। सत्संग के लिए हम एक ऐसी कंपनी, एक ऐसी कमेटी और एक ऐसी सोसायटी बनाएँगे, जो हमारे ढंग की हो, हमारे स्तर की हो, जिसके परामर्श और सलाह से हम अपनी जिंदगी की समस्याओं का समाधान कर सकें। बेटे! हमने एक ऐसी ही कंपनी बना रखी है। हम अकेले रहते हैं। कहाँ रहते हैं? ऊपर अकेले रहते हैं। तो महाराज जी! आपको डर नहीं लगता। कोई और नहीं रहता? बेटे! हमारे पास इतने आदमी रहते हैं कि बारह से पाँच बजे तक भीड़ लगी रहती है। किसकी? आप लोगों की भीड़ लगी रहती है। ये कितने घंटे रहती है? पाँच घंटे। इसके बाद जो उन्नीस घंटे रह जाते हैं, उसमें मेरे पास ऐसे-ऐसे लोग रहते हैं कि कभी आप किवाड़ खोलकर आ जाएँ तो दंग रह जाएँगे। गुरुजी! ये कौन-कौन बैठे हैं। बेटे! ऐसे-ऐसे लोग बैठे रहते हैं कि मैं उनका नाम नहीं बता सकता। नहीं महाराज जी! नाम बताइए। अच्छा, चल बेटे! तुझे बताता हूँ। हनुमान जी आ करके मेरे पास बैठ जाते हैं। रामचंद्र जी बैठ जाते हैं। सातों ऋषि बैठ जाते हैं। सब उसी में समा जाते हैं।

सभी महापुरुषों की संगम स्थली हमारा कक्ष

महाराज जी! इतने संत आते हैं तो आप चाय तो पिलाते होंगे? हाँ, बेटे। और कौन-कौन आते हैं? बेटे! महात्मा गांधी आते हैं, रवींद्रनाथ टैगोर आते हैं। दुनिया के सारे श्रेष्ठ व्यक्ति—सुकरात से लेकर अफलातून तक, अरस्तू तक। हिंदुस्तान के ही नहीं, पूरे संसार के ऋषि आते हैं और मेरे पास बैठ जाते हैं। घुल-मिलकर हम खूब मजे की बातें करते हैं। आपस में ऐसी-ऐसी बातें करते हैं और खूब हँसते हैं। दुनियावालों का खूब मखौल उड़ाते हैं और कहते हैं कि दुनियावाले तो पागल हैं। तो क्या आप इनकी बातों को नहीं सुनते? मैंने कहा कि कभी-कभी तो मन में आ जाता है कि इनकी बात मान लें। तो वे कहते हैं कि हमारी कमेटी और हमारी कंपनी का कहना है कि इनकी बात नहीं सुनना। ये बहुत छोटे आदमी हैं। वे आपको भी अपने साथ गड्ढे में घसीट ले जाएँगे, नरक में धकेल देंगे। आप इनके कहने में मत आना। वे मरीज हैं, इनकी सेवा तो करना, पर इनका कहना न मानना। एक दिन विवेकानंद मुझसे कह रहे थे

कि गुरुजी! पानी में डूबने वाले व्यक्ति को मल्लाह पार लगाता है। ऐसे डूबने वाले व्यक्ति को आपने देखा है? हमने कहा—नहीं देखा है। तो सुनिए ऐसे पार लगाता है कि जो कोई आदमी पानी में डूबने वाला है तो निकालने वाला डुबकी लगाता है और उसे पकड़ लेता है, पर एक बात का ध्यान रखता है। क्या ध्यान रखता है? उसको घसीटता लाता है, पर साथ-साथ में यह भी ध्यान रखता है कि कहीं वह हमारे पास तो नहीं आ गया। वह जब पास आने को होता है तो उसे कोहनी मार देता है।

हमारी सत्संगी सभा-हमारा स्वाध्याय

क्यों साहब! ये क्या बात है कि घसीटता भी लाता है और कोहनी भी मारता है? यह ऐसा क्यों करता है? यह इसलिए करता है कि डूबने वाला इतना थका हुआ होता है कि जो कोई पार लगाने वाला होगा, यदि उसे मौका मिल जाए तो उसकी पीठ पर सवार हो जाए। पीठ पर सवार होने का क्या परिणाम होगा? उसका परिणाम यह होगा कि वह खुद तो डूबेगा ही, बचाने वाले को और डुबो देगा। इसीलिए तैरने वाला ध्यान रखता है कि इसमें कोहनी मारते जाओ। क्या मतलब है इसका? यह कि डूबने वाले को कोहनी भी मारिए। यह बात विवेकानंद कह रहे थे। मैंने कहा कि अब से आपकी बात का ध्यान रखूँगा और इन लोगों को, जो मेरे संबंधियों से लेकर कुटुंबियों तक और मेरे खानदान वालों से लेकर मित्रों तक, सलाहकार से लेकर संबंधियों तक हैं। इनको पार तो मैं लगाऊँगा, पर कोहनी भी मारता रहूँगा। कहीं ऐसा न हो जाए कि ये अपने संग मुझे भी गड्ढे में घसीट ले जाएँ। इस तरह हमारी कंपनी बहुत बढ़िया है। इन लोगों से रोज उन्नीस घंटे बात होती है। गांधी जी अपना जी खोलकर बात करते हैं और अगर गांधी जी से मैं कभी बातचीत करना चाहता हूँ, तब? तब मैं उनसे यह पूछता हूँ कि जब मैं आपके साबरमती आश्रम में रहता था, तब तो मुझे आपके केवल पाँच मिनट मिलते थे। किसी दिन नहीं भी मिलते थे। पाँच मिनट में ही बिना भूमिका बनाए कि मैं तो आपके आश्रम में हो आया हूँ। आप तो महात्मा हैं, संत हैं, उद्धार कीजिए। बेटे! ये बेकार की बातें करने से क्या फायदा? बातें करनी हैं तो काम की करो, नपी-तुली बातें करो, ताकि मेरा समय भी न खराब हो और तुम्हारा भी समय खराब न हो। भूमिका क्यों बनाते हो?

ये हैं हमारे सलाहकार, हमारे हितैषी

मित्रो! तब वहाँ हमें पाँच मिनट मिलते थे। और यहाँ? गांधी जी कहते हैं कि जब हम जिंदा थे, तब हमारे पास बहुत मुसीबतें थीं और बहुत सारे काम थे। इसलिए आपको टाइम के लिए मना कर देते थे। अब तो हमारे पास बहुत समय है, आप चाहे जितना इस्तेमाल कर सकते हैं, चाहे जिस समय बात कर सकते हैं। अब हमारा नहीं, आपका समय है। अब हम आपके हिसाब से चलेंगे। वे घंटों तक बोलते चले जाते हैं। बेटे! हमारी जिंदगी में मजा आ गया और उसकी वजह से हम ऊँचे उठते चले गए हैं। हमारे इन सलाहकारों ने हमारी हिम्मत बढ़ाई है और हमारी सहायता की है। आपको भी इनकी सहायता मिल सकती है और उस माध्यम का नाम है—स्वाध्याय। हमने अपने यहाँ संतों की रूहों को डिब्बों में बंद करके रख लिया है। और वो रूह हैं—उनकी पुस्तकें, उनके ग्रंथ, जिन्हें हम रोज श्रद्धा से पढ़ते हैं। इस भावना से पढ़ते हैं कि ये महापुरुष हमारे सामने बैठे हुए हैं और हमें परामर्श दे रहे हैं। स्वाध्याय अर्थात्—विचारों का संशोधन, अर्थात्—विचारों में श्रेष्ठता का समावेश और अवतरण। यह भी ठीक उतना ही कीमती है, जितना कि भजन। यह भजन से कम कीमती नहीं है। इन दिनों हमारा बहुत सारा समय—चार घंटे पूजा में खरच होता है। हमारे स्वाध्याय के दोनों तरीके हैं—पुस्तकें पढ़ने के माध्यम से भी और जो हम मनन-चिंतन करते हैं, उसके माध्यम से भी। जब हम लिखते हैं तो उस माध्यम से भी। हमारे मस्तिष्क के प्रत्येक कण-कण में श्रेष्ठ और ऊँचे विचार छाए रहते हैं और उसका माध्यम है—स्वाध्याय। इसकी कीमत उतनी है, जितनी कि भजन की। भजन और स्वाध्याय में कोई फरक नहीं पड़ता। मैं दोनों को एक ही मानता हूँ।

भजन, मनन और लेखन

भजन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से श्रेष्ठता की ओर चलने के लिए हमारी अंतरात्मा को प्रभावित करता है और स्वाध्याय हमारे बुद्धि संस्थान को, विचार संस्थान को निकम्पेपन से बचाकर के श्रेष्ठता और शालीनता की ओर ले जाता है। इसीलिए मेरे जीवन में भजन के बाद दूसरा स्थान स्वाध्याय का है। पढ़े-लिखे हैं तो क्या, नहीं पढ़े हैं तो क्या? पढ़े-लिखे लोगों के लिए स्वाध्याय और

सत्संग हो सकता है। बिना पढ़ों के लिए चिंतन और मनन हो सकता है। बहरहाल दोनों को मिलाकर ऊँचे विचारों के संपर्क में हम जितने समय तक रहते हैं, असल में उसी का नाम सत्संग है और स्वाध्याय है। हमको ऊँचे उठाने वाले, आगे बढ़ाने वाले, उच्चस्तरीय विचारों से संपर्क कराने वाले जो श्रेष्ठ विचार हैं, वही स्वाध्याय है।

बिखराव का नियोजन : संयम

इस तरह उपासना का दूसरा अंग, दूसरा अंश है—स्वाध्याय। स्वाध्याय और साधना दो बातें हो गईं। एक अंग और रह गया। उसका नाम है—संयम। संयम से क्या मतलब है? बेटे ! संयम से मतलब यह है कि हमारी सारी शक्तियाँ बिखराव में नष्ट होती जाती हैं। अगर हम बिखराव को बंद कर दें और शक्तियों को केंद्रित करना शुरू कर दें तो हमारी शक्तियों के जखीरे जमा हो जाते हैं। बारूद को अगर हम फैला दें और दीयासलाई दिखा दें तो वह भक्क से जल जाएगी। अगर इसी बारूद को एक केंद्र में इकट्ठा कर दें बिखराव को रोक दें, बंदूक की नली में बंद कर दें और सामने निशाने की ओर चलाएँ तो वह निशाने की ओर सनसनाती हुई चली जाती है। केंद्रीभूत जरा-सी बारूद निशाने पर जाकर गोली मारती है। अगर आतिशी शीशे पर हम सूरज की किरणों को एकत्रित कर दें तो जाने क्या से क्या हो जाता है। आग जलने लगती है और सारे के सारे खेत-खलिहान, घर-आँगन को जलाकर राख कर देती है। वैसे यही धूप खेत-खलिहान, घर-आँगन में कितनी बिखरी रहती है, जो केवल प्रकाश भर करती है। केंद्रीभूत कर देने पर वही धूप कमाल दिखाती है। केंद्रीभूत करने से क्या मतलब है? बेटे! केंद्रीभूत करने से हमारा मतलब संयम करने से है। संयम किसे कहते हैं? संयम उसे कहते हैं, जो हमारे जीवन के बिखराव हैं, जिनकी वजह से हमने सब खो दिया, सब गँवा दिया। अगर हम अपने आप को केंद्रीभूत कर लें तो छलनी के छेदों में से जिस तरीके हम अपने भीतर के और भगवान के दिए हुए अनुदानों को सारा का सारा खत्म कर देते हैं, उन्हें केंद्रित कर सकते हैं। एक आदमी ने छलनी में दूध दुहा। छलनी के छेदों में से सारा दूध बह गया, फैल गया। जब उठाया तो देखा हाथ खाली थे, कपड़े और भीग गए थे।

संयम के प्रकार

मित्रो! हमारे भीतर का जो उत्पादन है और हमारे बाहर का जो उत्पादन है, वो असीम है। हमारी कमी और कमजोरी ये है कि हम उस असीम उत्पादन को फेंकने देते हैं, बिखरने देते हैं। अगर बिखरने को हम रोक सकें तो मजा आ जाए। बिखराव को रोकने के लिए क्या करना पड़ता है? संयम का इस्तेमाल करना पड़ता है। उसमें एक है—जीभ का संयम। अगर आप जीभ का संयम कर पाएँ तो मैं आपसे कह सकता हूँ कि आपका स्वास्थ्य ठीक रखने की यह गारंटी हो सकती है। स्वास्थ्य कौन खराब करता है? वायरस। नहीं बेटे! वायरस नहीं। वायरस तो बहुत छोटा होता है और आदमी बहुत बड़ा होता है। वायरस को तो आदमी उँगली से दबाकर, मारकर फेंक सकता है। नहीं साहब! वायरस बड़ा जबरदस्त होता है। नहीं बेटे! वायरस बड़ा नहीं होता। कौन बड़ा होता है? बीमारियाँ कौन पैदा करता है? वायरस। नहीं, वायरस नहीं पैदा करता, वरन असंयम पैदा करता है। चंदगीराम तपेदिक के मरीज थे और उनके मरने के दिन नजदीक आ गए थे। एक कोई संत आया और उसने कहा—क्या मरने का मन है? नहीं महाराज जी! मरने का तो मेरा मन नहीं है। जीना तो चाहता हूँ, पर मौत हमारे पास आ गई। उन्होंने कहा—नहीं, मौत से जिंदगी बड़ी है। अगर आप जिंदगी को पसंद करते हैं तो मौत चली जाएगी। मौत का टाइम अभी नहीं आया है। जिंदगी को आप पकड़े रह सकते हैं। हम कैसे पकड़े रह सकते हैं? आपकी सेहत इस जीभ ने खराब की। आप जीभ पर कंट्रोल कीजिए और जीभ से कहिए कि हम आपका हुक्म, आपका कहना नहीं मानेंगे। आपको हमारा कहना मानना पड़ेगा। जीभ पर जैसे ही उन्होंने कंट्रोल करना शुरू किया, सेहत सुधरने लगी। जीभ हमारे पेट को खराब करती है। पेट खून को खराब करता है। खून खराब होकर के सैकड़ों तरह की बीमारियों में परिणत हो जाता है और वही जहर हमारी जिंदगी को गलाता और खत्म करता हुआ चला जाता है। जीभ पर यदि काबू करना सीख लें तो आप पाएँगे कि आपकी सेहत का सँवरना शुरू हो जाता है।

इंद्रियों पर नियंत्रण करें

मित्रो! दूसरी, तीसरी और चीजें हैं अर्थात्—इंद्रियाँ हैं। दूसरी इंद्रियाँ हैं—आँखें। गांधारी ने आँखों पर पट्टी

बाँध ली थी। पट्टी से क्या मतलब है? आँखों का जो बिखराव है, उसे बंद कर दिया। आँखों पर पट्टी बाँध लेने से मतलब कपड़ा लपेट लेना नहीं है। बिखराव से मतलब है—आँखों के द्वारा जो हमारा तेजस् नष्ट होता है। हम जगह-जगह देखते रहते हैं और आकर्षण हमारी शक्तियों को खींचता रहता है जिससे ब्रह्मचर्य नष्ट होता है।

वास्तविक ब्रह्मचर्य

बेटे! ब्रह्मचर्य जो है, वो वास्तव में जननेंद्रिय से नष्ट नहीं होता। ब्रह्मचर्य आँखों से नष्ट होता है। आँख से हम

एक बार भगवान बुद्ध ने भैंसे की योनि में जन्म लिया। जंगली भैंसा होने पर भी भगवान बड़े शांत थे। उनके सीधेपन के कारण उन्हें एक बंदर बड़ा तंग करता। कभी पीठ पर कूदता, कभी पूँछ खींचता तो कभी सींग पकड़कर घुमाता। फिर भी भैंसा शांत ही रहता। एक दिन देवताओं ने भैंसे से कहा—“यह बंदर तुम्हें तंग करता है। इसे दंड देना चाहिए।”

देवताओं की बात सुनकर भैंसे ने कहा—“मैं बंदर की दुष्टता समझता हूँ और एक झटके से उसका अंत कर देने में भी समर्थ हूँ। लोग अपने से शक्तिशाली का अपराध तो बाध्य होकर सहते हैं, पर सहनशीलता तो अपने से निर्बल का अपराध सहन करने में है।”

दुराचार करते हैं। जननेंद्रिय से भी दुराचार होता है, लेकिन असली दुराचार इससे नहीं होता। जननेंद्रियों में से तो पानी निकलता है, लेकिन हमारी शक्तियाँ, हमारी बिजली, जो हमारी शक्तियों का केंद्र है, आँखों में से निकलती है। आँखों के तेजस् का जब बिखराव होता रहता है तो हमारी आँखें ही कमजोर नहीं होतीं, हमारा दिमाग ही कमजोर नहीं होता बल्कि हमारा दिल और ईमान भी कमजोर होता है। हमारी आध्यात्मिक शक्तियाँ भी कमजोर होती हैं।

यही तप है

मित्रो! मैं इंद्रिय-निग्रह की बात कह रहा था। संयम की परिभाषा आमतौर से लोगों ने यहीं खत्म कर दी है, पर वास्तव में वह यहीं खत्म नहीं होती। संयम चार तरह का है। संयम को साधने के लिए तप किया जाता है। तप किसे कहते हैं? बेटे! तप किसी खास बात को नहीं कहते। तप रोकने का नाम है। हमारी शक्तियों की जो बरबादी होती रहती है, उसे हम रोक पाएँ तो हमारे पास शक्तियों का इतना बड़ा जखीरा हो जाए कि हमको कहीं से माँगना ही न पड़े। आपको शक्ति वान बनना है, अध्यात्मवान बनना है तो इसमें कुछ करना नहीं है, केवल आप अपनी शक्तियों को रोक लें, बस। बाँध होते हैं, उनमें पानी भरा होता है और बिजली पैदा होती है। उनमें क्या होता है? कुछ भी नहीं होता। बरसात का पानी, जो चारों तरफ फैल जाता है, बिखर जाता है, उसे रोक दें, बस। पानी रोक देंगे, आपके पास बाँध बन जाएगा। उसमें से नहर निकाल लेना, सिंचाई कर लेना, बिजली पैदा कर लेना, जो कुछ भी करना चाहो, कर लेना। बाँध का नाम है—संयम। आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए हर आदमी को संयमी होना चाहिए।

अर्थ संयम

संयम से क्या मतलब है? संयम की धाराएँ चार हैं। एक संयम है—इंद्रिय निग्रह—इंद्रिय संयम, जिसको आमतौर से लोग बस इतना ही समझते हैं। संयम की ज्यादा बात उनके ध्यान में ही नहीं आती। दूसरा संयम है—धन का संयम—अर्थ का संयम। अर्थ संयम किसे कहते हैं? बेटे! अर्थ संयम का अर्थ है—सादा जीवन, उच्च विचार। अपने जीवन में हम जो कुछ भी कमाते हैं, उसमें से अधिकांश धन लकजरी के लिए, विलासिता के लिए, संचय के लिए खर्च होता चला जाता है। अगर हम इसका संयम करना सीखें, अर्थ संयम करना सीखें तो हम थोड़े में गुजारा कर सकते हैं। अगर हम अपने धन के बारे में, अपने खर्च के बारे में किफायत से रहना शुरू करें तो अपनी बची हुई शक्तियों के जखीरे को, बचे हुए धन को कितने अच्छे-अच्छे कामों में लगा सकते हैं। बेटे! आप किफायत से रहना शुरू करें। बेटे! हमने मथुरा में पैंतीस साल बिताए। अखण्ड ज्योति कार्यालय के घर में हम पैंतीस साल तक रहे और उन पैंतीस सालों के खर्च की डायरियाँ और पर्चे

हमारे पास रखे हुए हैं। दो सौ रुपये महीने हम अपना काम चलाते रहे हैं। आप गरीब थे? नहीं बेटे! हम गरीब नहीं थे। हमारे पास बहुत पैसा था। हमारे पिताजी दो सौ बीघे जमीन छोड़कर मरे थे। उससे हमें अच्छी-खासी आमदनी थी। अस्सी बीघे जमीन जो चार लाख की होती है, हम हायर सेकेंड्री स्कूल को देकर के आए हैं।

ऐसे साधा हमने

बेटे! हम कमा सकते थे। कमाने के लिए अभी भी मामूली लेखकों के लिए धर्म युग और दूसरे अखबार सौ रुपये एक लेख के देते हैं। हमारी कलम इससे कम कीमत की नहीं है। हम एक लेख रोज लिख दें, जैसे अखण्ड ज्योति के लिए लिखते हैं तो अभी भी सौ रुपये प्रतिदिन एक लेख की मजदूरी हो सकती है। इस तरह तीस दिन में तीन हजार रुपये बहुत आसानी से कमा सकते हैं। महाराज जी! जब आप तीन हजार कमा सकते थे तो आपको अपना खर्च तीन हजार करना चाहिए था, आपने गँवा दिए। नहीं बेटे! कमाने का अधिकार हमको है, लेकिन खर्च करने का अधिकार हमें नहीं है। जिस समाज में हम पैदा हुए हैं, उस समाज का भी अधिकार और हक हमारे ऊपर है। इसीलिए अर्थ संयम का अर्थ है कि हमारे देश का औसत भारतीय नागरिक जिस स्तर का जीवनयापन करता है, उस स्तर का जीवनयापन हमको भी करना चाहिए। हमारे पास जो बचत हो जाती है, उस बचत से हम क्या-क्या काम कर सकते हैं? पैसे की बचत से हम इतना ज्यादा काम कर सकते हैं कि अपने कुटुंबियों को और बच्चों को शिक्षित और संस्कारवान बनाने से ले करके, अपने आप को सभ्य और शालीन बनाने तक के हम असंख्यों काम कर सकते हैं। अपने समाज के लिए इतने बड़े अनुदान दे सकने में समर्थ हो सकते हैं। लोकहित इतना ज्यादा कर सकते हैं कि कोई ठिकाना न रहे, अगर आप अर्थ संग्रह करना, अर्थ संचय करना शुरू करें तब।

अर्थ का सुनियोजन

मित्रो! इस संबंध में एक आदमी ईश्वरचंद्र विद्यासागर की कथा मैं आपको कई बार सुना चुका हूँ। एक और कथा मेरे ध्यान में आ जाती है। अमेरिका में एक बड़ा संपन्न आदमी था। वह करोड़पति था, पर था बड़ा कंजूस। फटे हुए कपड़े पहनता था और जब कोई लड़की उसके

यहाँ शादी-विवाह के लिए आती और कहती कि आपसे हम विवाह करना चाहते हैं। तो वह व्यक्ति पूछता कि क्या आप कमा करके हमें पैसा देंगी? आपके पास क्या कर्मा हैं? आप तो करोड़पति हैं और आपसे विवाह हम इसलिए करना चाहते हैं कि आपकी कमाई का पैसा हमको मिलेगा और हम मजा उड़ाएंगी। तब तो आपको हमसे विवाह नहीं करना चाहिए। हाँ, अगर आप कुछ कमाकर हमारे यहाँ जमा कर सकती हैं तो आप हमारे साथ शादी कर सकती हैं, अन्यथा नहीं। बहुतों ने कहा कि आपने विवाह भी नहीं किया आप हमारे बाल-बच्चे ले लीजिए, गोद रख लीजिए। अच्छा तो आप ये बताइए कि जब आपका बच्चा हमारे घर आएगा तो कितनी संपत्ति ले करके आएगा? वो संपत्ति लेकर क्या आएगा, वह तो आपकी संपत्ति लेगा। नहीं साहब! हमको ऐसे बच्चे नहीं चाहिए।

वह बहुत कंजूस था। एक बार ऐसा हुआ कि कुछ लोग उसके यहाँ किसी काम के लिए धन माँगने के लिए गए। किसी विश्वविद्यालय में कोई खास फैकल्टी बन रही थी, इसलिए सब मालदारों से चंदा माँगा जा रहा था। उसके पास भी चंदा माँगने के लिए जब एक कमेटी

पहुँची तो देखा उसके घर दो बत्तियाँ जल रही थीं। एक ऊपर जल रही थी और एक मेज पर जल रही थी। नमस्कार होते ही उसने एक बत्ती बुझा दी और बोला— हम बेकार में बत्ती क्यों जलाएँ? जितनी देर तक आप से बातें करनी हैं, उतनी देर में इतने पैसे की बिजली जलेगी। बिजली बंद करने के बाद आपस में लोग हँसे और कहने लगे कि यहाँ बेकार में आए। यहाँ कुछ मिलने वाला नहीं है। जैसा सुना था, वैसा ही है, यह कंजूस। उसने पूछा—कहिए आप लोग कैसे आए? उन्होंने कहा कि यहाँ के विश्वविद्यालय में साइंस की एक फैकल्टी बनने वाली है। उसमें अमुक-अमुक काम कराए जाने वाले हैं। अमुक विषय की शिक्षाएँ दी जाने वाली हैं। उसने सारी बातें बड़े ध्यान से सुनीं और कहा कि मेरे जीवन का भी यह लक्ष्य था कि मैं अपने अमेरिका निवासियों में इस तरह के साइंस के ज्ञान की वृद्धि करूँ, जैसा कि आप कह रहे हैं। तो क्या आप वास्तव में ऐसा कर रहे हैं। हाँ, हम वास्तव में ऐसा कर रहे हैं? तो आप मेरे लायक कोई सेवा बताइए। और आप जानते हैं, उसने क्या किया? (क्रमशः)

(समापन किश्त अगले अंक में) । □

शहर में एक युवक रहता था, वह बड़ा परिश्रमी था। दिन भर काम करता और शाम को जो मिलता खा-पीकर घैन की नींद लेता था।

एक दिन एक धनी व्यक्ति को देखकर उसकी ईर्ष्या जाग पड़ी। ईर्ष्या की जलन में युवक को रात में अच्छी तरह नींद नहीं आती।

संयोग से एक दिन उसे बहुत-सा धन जमीन में गड़ा मिल गया। अब तो उसकी सारी चिंता दूर हो गई। दूसरे दिन से ही उसका समय भोग और वासना की तृप्ति में बीतने लगा। कुछ ही दिनों में उसका सारा शरीर कमजोर पड़ गया। मित्र लोग ईर्ष्या करने लगे, सब पैसे से प्रेम करने वाले मिलते, उसे किसी पर विश्वास न रहा। फलस्वरूप उसकी चिंता पहले से दोगुनी हो गई। उसने सोचा इससे तो पहले ही अच्छे थे, सुख और संतोष की नींद तो लेते थे।

एक दिन एक महात्मा उधर से निकले, युवक ने उनसे सुखी होने का उपाय पूछा। महात्मा ने कहा—‘संतोष!’ और इतना कहकर आगे बढ़ गए। युवक ने बात समझी, अपनी मुफ्त की संपत्ति एक विद्यालय को दान कर दी और फिर वही परिश्रमशील जीवन जीने में लग गया।



परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी —

परिष्कृत अध्यात्म हमारे जीवन में उतरे — ४

परमपूज्य गुरुदेव व्यावहारिक-परिष्कृत अध्यात्म के प्रतिपादक थे। इस अति महत्वपूर्ण प्रवचन में, बड़ी ओजस्वी वाणी में, उनसे निष्पन्न-कर्मकांडप्रधान धर्म की जमकर आलोचना की है। उपासना के लिए समर्पण चाहिए। भगवान एक आदर्श का नाम है। हम उन आदर्शों को जीवन में अपनाएँ, जिनका कि वह समूह है। बाद में उनसे जीवन-साधना, स्वाध्याय एवं संयम पर इन व्रतों के पालन से जीवनोत्कर्ष की चर्चा की है। इन्द्रियनिग्रह की विस्तार से व्याख्या कर उनसे चारों संयमों (अर्थसंयम एवं विचार-इन्द्रिय के अतिरिक्त) को उदाहरणों के साथ समझाया। अर्थसंयम की चर्चा में एक दानी की चर्चा वे कर रहे थे, जिसने जीवन भर कंजूसी से जीवन जिया, पर जब देने की बात आई तो लोक-मंगल के लिए आगे बढ़-चढ़कर अनुदान दिए। इसी चर्चा का अगला क्रम इस समापन किस्त में—

विद्या विस्तार हेतु दान

मित्रो! दान माँगने आए लोगों ने देखा कि बुढ़ा मूड में है, इससे कुछ माँग लें तो अच्छा है। ज्यादा माँगेंगे तो गुस्सा हो जाएगा और भगा देगा। डरते-डरते उन्होंने कहा कि आप पाँच सौ डॉलर दे दें तो बहुत खुशी होगी। अच्छा, देता हूँ आपको। उसने चेकबुक निकाली, पचास हजार डालर का चेक बनाया और उनके हवाले कर दिया। सबने एकदूसरे को देखा और चेक को कमेटी के सदस्यों के बीच घुमाते रहे। बुढ़ा ने पूछा—“क्यों साहब! कोई गलती मालूम पड़ती है क्या? बताइए?” “हाँ साहब! ये तो पचास हजार डालर का चेक है। हमने तो पाँच सौ डॉलर माँगे थे।” उसने कहा—“आपको मालूम नहीं है कि जिस काम के लिए मैंने विवाह नहीं किया, जिस काम के लिए मैं फटे कपड़े पहनता हूँ, जिस काम के लिए मैंने बच्चे गोद नहीं लिए, जिस काम के लिए मैं गरीबों जैसी जिंदगी व्यतीत करता हूँ, वह मेरा काम है। एक लक्ष्य है कि अपने देश और अपनी जाति की सेवा कर सकूँ, विद्या की सेवा कर सकूँ। इसीलिए मैंने ये दौलत जमा करके रखी थी। आप जैसा कहते हैं, अगर उसी साइंस फैकल्टी में यह धन लगाएँगे तो मैं पहली किस्त पचास हजार डॉलर एक टोकेन मनी के रूप में आपके सपुर्द करता हूँ। फिर मैं देखूँगा कि आप जो कहते हैं, वो कहाँ तक सही है। तब फिर मैं दूसरा चेक

पचास हजार डॉलर का, तीसरा और चौथा चेक भी पचास-पचास हजार डॉलर का दूँगा और अंत में, जो बात आप कह रहे हैं, अगर करने जा रहे हैं तो मेरी सारी की सारी कमाई, जो दो करोड़ डॉलर की है, वो सारी की सारी संपदा आपकी फैकल्टी के नाम वसीयत कर जाऊँगा कि मेरे धन का एक-एक चप्पा और एक-एक पैसा इनके सपुर्द कर दिया जाए।”

औसत नागरिक का जीवन जिएँ

बेटे! मैं क्या कह रहा हूँ? धन के संयम, अर्थसंयम की बात कह रहा हूँ। पैसे तो हम बहुत कमाएँ, लेकिन अपने लिए कम से कम खर्च करें तो हम संत का जीवन जी सकते हैं। आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए केवल भजन करना ही काफी नहीं है, वरन औसत भारतीय स्तर का जीवनयापन आपका लक्ष्य होना चाहिए। आप क्या कमाते हैं, मैं नहीं जानता, लेकिन आपको खर्च करने का अधिकार नहीं है। अगर आप आध्यात्मिकता में प्रवेश करते हैं, भगवान पर विश्वास करते हैं, सिद्धांतों पर विश्वास करते हैं तो आप यह मानकर चलें कि हम जिस देश के नागरिक हैं, उसी स्तर का जीवन जिएँगे। आप उस स्तर से ज्यादा ऊँचा स्तर मत बढ़ाएँ। हिंदुस्तान का औसत नागरिक जितने में गुजारा करता है, आप उतने में ही गुजारा कीजिए। इसके बाद जो धन आपके पास बच जाता है, उसे

लोकहित के लिए, श्रेष्ठ कामों के लिए, पीड़ा और पतन जो देश में फैला हुआ है, उस पीड़ा और पतन के निवारण के लिए खरच कीजिए। लकजरी पर मत खरच कीजिए। इकट्ठा करना बंद कीजिए। ये आध्यात्मिकता के सिद्धांत हैं।

सच्चा अध्यात्म समझिए

मित्रो! आध्यात्मिकता का सिद्धांत है, एक फिलॉसफी है। आध्यात्मिकता जीवन जीने की एक विधि है। आध्यात्मिकता का अर्थ है—स्प्रिचुएलिटी एवं एथिक्स। आध्यात्मिकता क्रिया-कृत्यों का नाम नहीं है। आध्यात्मिकता जादूगरी नहीं है कि इधर हाथ फेरा, उधर हाथ फेरा, उस पर चावल चढ़ा दिया, इस पर चंदन चढ़ा दिया। ये क्या है? मैजिक है। कौन-सा? जो आप करते हैं। आपको जो सिखाया गया है, वो मैजिक सिखाया गया है, जादू सिखाया गया है, जिसका अर्थ आप यह समझते हैं कि हाथ में, मुट्ठी में मिट्टी रखेंगे और फूँक मारने से रुपया पैदा हो जाएगा। भगवान को पकड़ेंगे, देवी को पकड़ेंगे, हनुमान चालीसा पढ़ेंगे और उस पर यह करेंगे, इधर का उधर करेंगे। बस, खट से देवी से काम निकाल लेंगे। बेटे ! ये मैजिक है, जादूगरी है, जो आपको सिखाई गई है और आपने सीखा है। जिस बात पर आप विश्वास करते हैं, वो जादूगरी है और जो चीज आपके हाथ में पड़ी हुई है, वो सिर्फ जादूगरी है। आपको पता होना चाहिए कि जादूगरी कभी सही नहीं होती। जादूगरी अगर सही होती तो जादूगर और बाजीगर जो रुपया बनाते हैं, उससे वे अब तक मालदार हो गए होते और पंडित जी! जो कभी देवी का पाठ कराते हैं। कभी कहते हैं कि ग्यारह रुपया दीजिए, हम आपका चौबीस हजार का अनुष्ठान कराएँगे। क्यों कराएँगे अनुष्ठान? आप अपने ही घर में क्यों नहीं अनुष्ठान करेंगे और अपने ही घर में क्यों नहीं कमा लेंगे? मुझसे क्यों माँगेंगे? नहीं साहब! हम आपके घर में लक्ष्मी जी का पूजन कराएँगे, जो आपको मालामाल बना देगी तो फिर आप अपने ही घर में लक्ष्मी पूजन क्यों नहीं कर लेते और स्वयं मालामाल बन जाते? ग्यारह रुपये क्यों माँगते हैं?

यह जादूगरी नहीं है

मित्रो! यह मालूम होता है कि हमारी आध्यात्मिकता मैजिक और जादूगरी के स्तर की हो गई है, जिसमें क्रिया-कृत्य मुख्य रह गए हैं। कर्मकांड मुख्य रह गए हैं

और जीवन का निर्माण करने का स्वरूप, जीवन की गतिविधियों का निर्धारण गौण हो गया है। अध्यात्म ऐसा नहीं हो सकता। असली अध्यात्म, जिसमें शक्ति है, सामर्थ्य है, वो अगर होगा तो उसमें इन बातों का समावेश होगा, जैसा कि मैं आपसे निवेदन कर रहा था कि धन का संयम, इंद्रियसंयम, समय का संयम और विचारों का संयम आवश्यक है। समय का संयम किसे कहते हैं? बेटे! हमने एक घंटा रोज स्वाध्याय के लिए सुनिश्चित कर रखा है। विनोबा भावे तेईस भाषाओं के विद्वान थे। उन्होंने एक घंटा रोज अन्य भाषाओं को पढ़ने के लिए सुरक्षित कर रखा था। हमने एक घंटा रोज के हिसाब से

भगवान महावीर आत्मसंयम की साधना में उन दिनों लीन थे। उन्हें उद्विग्न करने के लिए संगम नामक एक दुष्ट पीछे पड़ा हुआ था। आएदिन वह उन्हें क्षुब्ध करने के लिए कुछ न कुछ कुचक्र रचता रहता।

एक दिन उसने खौलता दूध उनके ऊपर उलट दिया तो भी वे अविचल भाव से अपनी साधना में निरत रहे।

संगम पिघला। वह अपने कुकृत्यों पर आँसू बहाता, क्षमा माँगता विदा होने लगा।

भगवान की आँखें भी नम हो गईं। वे बोले—
“तात! इन कुकृत्यों का दुष्परिणाम तुम्हें कितना कष्टकारक होगा, यही सोचकर मुझे व्यथा हो रही है। दूध से जलने पर उठे हुए फफोले देखकर नहीं।”

नित्य स्वाध्याय करने का क्रम बना करके दस लाख पन्ने पढ़ लिए थे। अखण्ड ज्योति में जो आप बार-बार कोटेशन्स पढ़ते हैं, रेफरेन्सेज पढ़ते हैं और ये कहते हैं कि गुरु जी चलते-फिरते इन्साइक्लोपीडिया हैं। बेटे ! हमारे दिमाग में सैंकड़ों इन्साइक्लोपीडिया भरे पड़े हैं। ये कहाँ से आए? बेटा ! एक घंटे रोज के हिसाब से इसका हमने संयम किया है। यह समय के संयम का प्रतिफल है।

काल और महाकाल

मित्रो! अगर आपने समय नाम की कोई चीज समझी होती, समय का उपयोग किया होता तो मजा आ जाता।

हमने समय का इस्तेमाल करना सीखा है। रावण ने काल को पाटी से बाँध लिया था और जब कभी जरूरत पड़ती थी तो काल से कहता था कि रुपया निकाल नहीं तो अभी मारता हूँ। काल पाटी से बाँधा रहता था और रावण से यह कहता था कि मुझे मारिए मत, जो आप कहेंगे, वही मैं ला करके आपको दूँगा। अच्छा सोने की लंका लाओ? काल कहता था कि अच्छा थोड़ी-सी मोहलत दीजिए, अभी आपको सोने की लंका बना दूँगा। एक रात में ही सब बना दिया था। यह किसका उपासक था? महाकाल का था। महाकाल कहाँ है? महाकाल का मंदिर वहाँ उज्जैन में बना हुआ है। रावण का आराध्य वही था। अच्छा! तो रावण महाकाल का उपासक था? हाँ बेटे! वह महाकाल का उपासक था। महाकाल किसे कहते हैं? टाइमपीस को महाकाल कहते हैं, घड़ी को महाकाल कहते हैं। तू समझता है कि टाइम किसे कहते हैं? समय किसे कहते हैं? अरे अभागे! तूने तो सारा वक्त बेकारी में, गप्पबाजी में, आवारागर्दी में, निरर्थक कामों में खरच कर डाला। अगर एक दिशा में दिमाग में चिंतन करना संभव रहा होता तो बेटे आप दूसरे वैज्ञानिक होते, आप दूसरे कालिदास होते। बिखरे हुए दिमाग की वजह से कालिदास पहले बेकार आदमी थे, बेवकूफ आदमी थे। सारी की सारी चिंतन-प्रक्रिया को जब उन्होंने एक केंद्र में लगा दिया तो वही अक्ल इतनीपैनी और तीखी हो गई कि समस्त बाधाएँ पार करती हुई चली गई।

बिखराव को रोकिए, निग्रह कीजिए

लोहे की भोथरी कील लीजिए। उसे कहीं गाड़िए, ठूसिए नहीं गड़ेगी, लेकिन अगर कील की नोक निकाल दीजिए, प्वाइंट बना दीजिए, प्वाइंट बनाकर आप सूराख कीजिए, वह सूराख करती हुई चली जाएगी। ड्रिलिंग मशीन सबको पार करती हुई चली जाएगी। कील नहीं, नोक काम करती है। आपने तो अपने मस्तिष्क को, मनःस्थिति को बिखराव से भर दिया है। आप जाने क्या-क्या विचार करते रहते हैं। अल्लम-गल्लम, बेकार के निरर्थक विचार करते रहते हैं। आप इन सभी निरर्थक विचारों को एकत्र कीजिए और एक प्वाइंट पर लगा दीजिए और फिर देखिए कि आपकी अक्ल कितनी पैनी हो जाती है। अक्ल कितनी तीखी हो जाती है और आप वैज्ञानिक हो जाते हैं, दार्शनिक हो जाते हैं। मस्तिष्क

का बिखराव, समय का बिखराव, धन का बिखराव, इंद्रियों का बिखराव इन सब चीजों के बिखराव को रोककर आप अपने आप को रोकना शुरू करते हैं। अपने आप को काबू में लाना शुरू करते हैं, अपने आप को एकाग्र करना शुरू करते हैं तो आपका नाम तपस्वी हो जाता है, संयमी हो जाता है। अर्जुन मछली बेधने में सफल हुआ और स्वयंवर जीतने एवं द्रौपदी से विवाह करने में समर्थ हुआ। उसका एक ही कारण था कि उसने अपनी विचारशक्ति के फैलाव को, बिखराव को केंद्रित कर लिया था। जब उससे गुरु द्रोणाचार्य ने पूछा कि तुमको क्या दिखाई पड़ता है, तब उसने कहा कि हमको मछली की आँख दिखाई देती है और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। वही तीर सबके पास थे, जो अर्जुन के पास थे, लेकिन मछली की आँख को देखने वाला केवल अर्जुन ही सफलता प्राप्त करने में सफल हुआ।

संयम की महिमा अपार

मित्रो! आप अपने ऊपर संयम करना सीख पाएँ, बिखराव के ऊपर नियंत्रण करना सीख पाएँ, अपनी अव्यवस्थाओं के ऊपर नियंत्रण करना सीख पाएँ तो आपको बाहर से कहीं माँगना ही न पड़े। सामर्थ्य आपके भीतर है। बिखराव से वह शक्ति नष्ट होती रहती है। आप उस बिखराव को रोकिए। सूर्यकिरणों पर आजकल रिसर्च हो रही है। वैज्ञानिक कहते हैं कि सूर्यकिरणों को अगर हम एकत्रित कर पाएँ, फैलती हुई किरणों को अगर हम काबू में ला पाएँ तो हीट (गरमी) और बिजली की सभी जरूरतों को हम इसी से पूरा कर लेंगे। आप सूरज हैं और आपके भीतर शक्तियों के जखीरे भरे पड़े हैं। अगर आप अपनी शक्तियों के बिखराव को रोक पाएँ तो मजा आ जाए।

लोकहितार्थाय सेवा

ये तीन बातें हो गईं। चौथी बात एक और रह जाती है। चारों बातों को मिला देने से आपका अध्यात्म पूरा हो जाता है। चौथी बात क्या रह जाती है? चौथी बात रह जाती है—सेवा। आप अपनी सामर्थ्य को लोकहित के लिए, परमार्थ के लिए, परहित के कार्यों के लिए खरच कर दीजिए। फिर देखिए कि उसके बदले में आपको क्या-क्या मिलता है? दुनिया के महापुरुषों में से एक-एक का जीवन इतिहास उठाकर आप देख लीजिए, हरेक के जीवन में सेवा का समावेश रहा है। संतों के

जीवन में सेवा का समावेश रहा है। लोग समझते हैं कि संत एकांत में बैठे रहते हैं।

बेटे! आइन्स्टीन भी एकांत में बैठे रहते थे, पर एकांत में बैठने का उनका उद्देश्य क्या था? उनका उद्देश्य यह था कि वे रिसर्च करते रहते थे और लोगों की वजह से, भीड़-भाड़ की वजह से उनके काम में हर्ज होता था। इसलिए वे एकांत में रिसर्च करके विज्ञान को आगे बढ़ाते थे। एकांत में भी रहा जा सकता है, पर उस एकांत का भी कोई उद्देश्य तो होना चाहिए? निरर्थक पड़े रहना, निरर्थक बैठे रहना, कोने में पड़े रहना और समय खर्च करना—ये संतों का काम नहीं हो सकता। प्राचीनकाल के संतों में से हम हरेक को देखते हैं, जिसमें चरक आते हैं, सुश्रुत आते हैं, अश्विनीकुमार आते हैं, व्यास और सप्तर्षि आते हैं। इनमें से प्रत्येक ने अपने लिए नियमित जीवन, संयमित जीवन रखने के पश्चात् सारे का सारा जीवन समाज सेवा में लगा दिया। व्यास जी ने अठारह पुराण लिखे। वसिष्ठ जी ने 'योगवासिष्ठ' लिखा। जाने कितने काम करते गए। हरेक ऋषि व संत के पास अपने ऋषिकुल और गुरुकुल होते थे और वे बादलों के तरीके से, अलख निरंजन करते हुए जगह-जगह अलख जगाते थे।

आप समाज के ऋणी हैं

मित्रो! सेवा हमारे लिए आवश्यक है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। हमको जो मिला है, समाज से मिला है। अगर आपको समाज के अनुदान न मिले होते तो रामू भेड़िए के तरीके से आपको बोलना भी नहीं आता। आप जानते हैं कि जिनके कान खराब होते हैं, वे आदमी बोल भी नहीं सकते। अगर आपको दूसरों की नकल करने का और दूसरों के शब्द सुनने का मौका न मिला होता, अथवा आप कहीं एकांत में रखे गए होते तो आपको बोलना भी नहीं आता, आप गूँगे होते। आप जो आज बोलते हैं, ये अनुकृति आपकी नहीं हैं, वरन समाज की दी हुई हैं। शिक्षा आपके पेट में से निकल करके नहीं आई है। समाज ने आपको शिक्षा दी है। नौकरी आप स्वयं नहीं कर लेते, समाज का जो ढाँचा बना हुआ है, उसने आपको नौकरी दी है। बीबी आपकी नहीं है। वह आपके पेट में से नहीं निकली है। किसी और खानदान ने अपनी लड़की को बड़ा बनाया, पढ़ाया-लिखाया और आपके सपुर्द किया। आपके ऊपर समाज के असीम

अनुदान हैं। मनुष्य समाज का कर्जदार है, ऋणी है और दूसरे जीव ऋणी नहीं हैं, पर आदमी ऋणी है।

आदमी समाज का अनुदान लेकर के ऊँचा उठा है। अतः हर आदमी का यह कर्तव्य और फर्ज हो जाता है कि जिस समाज के इतने ऋण हमारे ऊपर हैं, उसका कर्ज चुकाएँ। समाज ने आपको कर्जा चुकाने के लिए जितना लायक बनाया है, उस लायकी का आप कर्ज चुकाइए। आत्मा का विस्तार करने के लिए, अपना विस्तार

पाठ समाप्त हुआ। आचार्य रामानुज प्रदक्षिणा के लिए उठे ही थे कि सामने से चांडाल आ गया। उसे देखते ही आचार्यश्री क्रुद्ध हो उठे और गरजकर बोले—“शठ! आगे से हट जा, रास्ते को अपवित्र न कर।” चांडाल ठिठक गया। लौटना चाहा, पर किसी अज्ञातशक्ति ने उसे रोक दिया। हाथ जोड़कर उसने विनयपूर्वक पूछा—“भगवान! अभी चला जाता हूँ, किंतु आप यह बताइए जाऊँ किधर? मेरे चारों ओर पवित्रता बिखरी पड़ी है, फिर मैं अपवित्र कहाँ जाऊँ?” रामानुज की आँखों से अज्ञान का परदा हट गया। चांडाल सब ओर पवित्रता के ही दर्शन करता है और मैं भगवान का भक्त होकर भी अपने मन का मल भी, नहीं साफ कर सका?

रामानुज ने हाथ जोड़कर कहा—“क्षमा करो तात! आज तो तुमने मेरी आँखें खोल दीं। तुमने तो मुझे भी पवित्र कर दिया।”

करने के लिए समाज के साथ अपने सुख और दुःख को बाँटिए। सुख और दुःख बाँटने से हलके होते हैं। सुख अकेले नहीं भोगा जा सकता। सुख को भोगने के लिए भी सहायक चाहिए और दुःख को हलका करने के लिए भी सहायक चाहिए। अकेला आदमी दुःख से दुखी हो करके पागल हो जाएगा। इसी तरह अकेला आदमी सुख का उपभोग करेगा तो न उपभोग कर सकेगा और यदि करेगा तो पागल हो जाएगा। मिल-बाँटकर खाना, सुख बाँटना और दूसरों का दुःख बाँटना, सहयोग-सहकार करना आध्यात्मिक जीवन के अंग हैं। आदमी बुद्धि के

आधार पर बड़ा नहीं है। आदमी की विशेषता सहकारिता है। सहायता के आधार पर हम बढ़े हैं।

सारी विश्व-वसुधा का चिंतन करें

इनसानी समाज, मानवीय समाज, मानवीय शांति और मानवीय गरिमा सहकारिता के ऊपर टिकी हुई हैं। आदान-प्रदान के ऊपर टिकी हुई हैं, अनुदान के ऊपर टिकी हुई हैं और सारे विश्व में जो कुछ भी श्रेष्ठ है, वह सारा का सारा अनुदान बिखेरता हुआ चला जाता है। बादल अनुदान बिखेरते हैं, नदियाँ अनुदान बिखेरती हैं। हवा अनुदान बिखेरती है। चंदन अनुदान बिखेरता है। पेड़ अनुदान बिखेरते हैं और संत-महापुरुषों में से प्रत्येक को अपना अनुदान बिखेरना पड़ता है।

मित्रो! अगर आपकी आत्मा का विकास होता है, अगर आपकी आत्मा का विस्तार होता है तो आपको 'वसुधैव कुटुंबकम्' की मान्यता को ले करके चलना होगा। 'वसुधैव कुटुंबकम्' की मान्यता का मतलब यह होता है कि जैसे हम अपने छोटे से खानदान और कुटुंब का ध्यान रखते हैं, अपने बीबी-बच्चों का ध्यान रखते हैं। ठीक उसी तरह से हमको सारे समाज के दुःख और सुख का ध्यान रखना पड़ेगा। दूसरों के दुःखों को कम करने के लिए और दूसरों के सुखों को बढ़ाने के लिए, जैसे कि आप अपने कुटुंब के दायरे में काम करते हैं, वैसे ही आपको सारे के सारे समाज के दायरे में काम करना पड़ेगा।

मानव में देवत्व के उदय से चार फायदे

मित्रो! जैसा कि हमने कहा है कि आध्यात्मिकता चार आधारों पर टिकी हुई है। ये हैं—साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा। इन चारों को मिला देते हैं तो आप एक श्रेष्ठ व्यक्ति बन जाते हैं और आपके भीतर से देवत्व का उदय होता है। देवत्व के उदय से क्या फायदा होगा? देवत्व के उदय से चार फायदे तुरंत होते हैं। चार फायदे प्रत्यक्ष होते हैं और जो पाँचवाँ फायदा है, उसके बारे में कह नहीं सकते कि होता है कि नहीं होता। सबसे पहला फायदा यह होता है—**आत्मा के भीतर संतों वाला गर्व अनुभव होता है।** आदमी को भीतर से गर्व अनुभव होता है। अमीरी से भी गर्व अनुभव होता होगा, मालूम नहीं। मैं अमीर तो रहा नहीं, पर मैं यह कहता हूँ कि आध्यात्मिक अमीरी से आदमी के ऊपर गर्व और गौरव छाया रहता है। आदमी की दरिद्रता या गरीबी दूर हो

जाती है। अमीरी उस पर छाई रहती है। आत्मसंतोष उस पर छाया रहता है। यह फायदा आप समर्थ अध्यात्म से पा सकते हैं, जैसे कि मैंने पाया। दूसरा फायदा क्या है? दूसरा फायदा ये है कि **आपको समाज से श्रद्धा और सहयोग मिलता है।** अगर आप अध्यात्मवादी हैं तो मैं वायदा करता हूँ कि जिसकी आप शिकायत करते हैं कि अपने खानदान वालों से लेकर अपने पड़ोसियों तक, रिश्तेदारों से लेकर अमुक तक का सहयोग हमको नहीं मिलता, वह श्रद्धा और सहयोग आपको मिलेगा। नहीं साहब! हमको नहीं मिलेगा। बेटे! यह आपकी परीक्षा हो रही है। थोड़े दिनों तक परीक्षा होती है। परीक्षा की कसौटी पर, जब आदमी का इम्तहान ले लिया जाता है कि इस चालाक जमाने में भी यह आदमी सही है तो सहयोग और सम्मान बरसने लगता है। बेटे! इम्तहान देने में थोड़ा समय लगता है और तू उसी चक्कर में आ जाता है। टिका रह अपनी जगह पर फिर देख। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, शुरू-शुरू में उनकी दिल्लगी उड़ाई गई, उनका विरोध किया गया। पीछे उनकी सहायता की गई और सहायता करने का जब अंतिम समय आया है तो सारी दुनिया ने उनके चरणों पर अपना मस्तक झुका दिया है।

यह क्या चीज है? बेटे! यह वो चीज है, जिसको हम लोक-सम्मान और लोक-सहयोग कहते हैं। जिसके लिए आदमी आकुल-व्याकुल रहता है और प्यासा-प्यासा फिरता है। यह आपको मिलने वाला है। तीसरा फायदा—**भगवान का अनुग्रह आपको मिलने वाला है, अगर आप अध्यात्मवादी हैं तब।** अगर आप अध्यात्मवाद का दिखावा करते हैं, तब मैं नहीं कह सकता। अगर आप अध्यात्म का बहकावा और भुलावा दे करके ईश्वर की हजामत बनाना चाहते हैं तो मैं आपकी बात से सहमत नहीं हूँ, लेकिन अगर आप असली अध्यात्मवादी हैं तो मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि ईश्वर का अनुग्रह, ईश्वर का प्यार आपके ऊपर बरसेगा और वो उद्देश्य पूरा होगा, जिसके लिए आपको मनुष्य का जीवन मिला हुआ है। स्वर्ग होता होगा तो वह भी मिलेगा, मुक्ति होती होगी तो वह भी मिलेगी, परंतु मैं आपसे कहता हूँ कि स्वर्ग और मुक्ति नहीं भी होती हो तो भी आप यह अनुभव करेंगे कि अपने जीवन में आप स्वर्ग में निवास करते हैं। संत इमर्सन ये कहते थे—“हमको नरक में भेज दीजिए और हम अपने लिए स्वर्ग पैदा कर लेंगे।” आपके वातावरण में स्वर्ग छाया रहेगा।

मित्रो! चौथा फायदा है—हमारे वातावरण में स्वर्ग। यह हमेशा छाया रहता है। हम स्वर्ग में रहते हैं। हम श्रेष्ठ विचारों में रहते हैं, श्रेष्ठ लोगों के बीच में रहते हैं। श्रेष्ठ लोग हमारे पास आते हैं और जब भी बातें होती हैं तो श्रेष्ठ बातें होती हैं। श्रेष्ठता का हम चिंतन करते हैं, अतः हम स्वर्ग में रहते हैं। मनुष्य के भीतर जब देवत्व का उदय होता है तो उसे मालूम पड़ता है कि उसके नजदीक देवता ही देवता आ गए हैं। यहाँ जो कोई भी आता है, श्रद्धालु आता है, प्रेम करने वाला आता है, भक्ति की बात करने वाला आता है। उदार मनुष्य आता है, सेवाभावी आता है। हमारी सारी जिंदगी देवताओं के बीच रहते हुए, स्वर्गीय वातावरण और परिस्थितियों में रहते हुए बीत गई। अगर आप अध्यात्मवादी हैं तो मैं यह कहता हूँ कि जो नरक और जो दैत्य आपको तंग करते हैं, धीरे-धीरे स्वयं ही हारते हुए चले जाएँगे और आप उनको हटाते हुए चले जाएँगे। आप एक अलग वातावरण में रहेंगे और यह पाएँगे कि मरने के बाद जिस स्वर्ग और मुक्ति की अपेक्षा करते थे, वह इसी जीवन में नजदीक आते हुए चले जाते हैं।

असली अध्यात्म को समझें, यही जीवन का सार है

मित्रो! असली अध्यात्म समर्थ है, शक्तिवान है। अगर आपके पास असली अध्यात्म है तो आप समझिए कि जीवन का सबसे बड़ा लाभ आपने पा लिया। उस अध्यात्म को प्राप्त करने के लिए तीर्थाटन, पूजा और भजन काफी नहीं हैं। उसके लिए ये चार काम करने पड़ेंगे—साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा। जैसे कि मैंने अपने जीवन में इन चारों चीजों को समान रूप से अवतरित करने की कोशिश की, ऋषियों ने अपने जीवन में अवतरित करने की कोशिश की। जिसके माहात्म्य शास्त्रकारों ने बताए और मैं भी अपना अनुभव बताता हूँ कि समग्र अध्यात्म इन्हीं चीजों पर टिका होता है। अगर आप इसको प्राप्त करने की कोशिश करें तो मेरे ही तरीके से आप भी निहाल हो सकते हैं, धन्य हो सकते हैं और इसी जीवन में जीते-जी सुख और शांति पा सकते हैं, स्वर्ग और मुक्ति पा सकते हैं। मरने का इंतजार करने और तब यह सब देखने की जरूरत नहीं है। आज की बात समाप्त। ॥ ॐ शांति ॥

राजा विक्रमादित्य के राज्य में एक सदाचारी-संतोषी ब्राह्मण रहता था। वह निर्धन था। स्त्री की प्रेरणा से धनप्राप्ति के निमित्त घर से निकला तो जंगल में एक महात्मा से भेंट हुई। उन्होंने इसे चिंतित देख आश्वासन दिया और विक्रमादित्य को पत्र लिखा कि तुम्हारी इच्छापूर्ति का अब समय आ गया है। अपना राज्य इस ब्राह्मण को देकर यहाँ चले आओ।

वह पत्र विक्रमादित्य ने पढ़ा तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और ब्राह्मण को राज्य सौंपने की तैयारी की। ब्राह्मण ने राजा को राज्य-त्याग के लिए इतना उत्सुक और अत्यंत आनंदविभोर देखा तो सोचने लगा कि जब राजा ही राज्य सुख को लात मारकर योगी के पास जाने में विशेष आनंद अनुभव कर रहा है तो योगी के पास अवश्य ही कोई राज्य से भी बड़ा सुख है। अतः उसने राजा से कहा—“महाराज! मैं अभी महात्मा जी के पास पुनः जा रहा हूँ, लौटकर राज्य लूँगा।” यह कहकर योगी के पास पहुँचकर बोला—“भगवन्! राजा तो राज्य त्यागकर, आपके पास आने के लिए नितांत उतावला और हर्षविभोर हो गया, इससे जान पड़ता है कि आपके पास राज्य से भी बड़ी कोई वस्तु है, मुझे वही दीजिए।

महात्मा ने प्रसन्न हो उसे पूर्ण योग किया बताई, जिससे ब्राह्मण पूर्ण तपस्वी होकर मोक्ष-सुख पा गया। मोक्ष-सुख से राज्य-सुख नितांत तुच्छ है।



परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी —

अध्यात्म का मर्म समझने हेतु बालिंग बनिए - १

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

देवियो, भाइयो! एक पहलवान की हर जगह ख्याति हो गई। जगह-जगह उसे बुलाया जाने लगा। अखाड़े में जीत-जीत करके वह नाम कमाने लगा। अखबारों में उसके फोटो छपने लगे। लोगों की इच्छा हुई कि हमको भी पहलवान बनना चाहिए। वे पहलवान के पास गए और यह देखा कि पहलवान क्या किया करता है। उसे दंड पेलते हुए देखा और बैठक करते हुए देखा। यह देखकर कई आदमियों ने दंड पेलना और बैठक करना शुरू कर दिया, लेकिन दंड पेलने और बैठक करने के बहुत समय बीत जाने के पश्चात भी कोई आदमी पहलवान नहीं बन सका, और न ही कोई आदमी इतनी ख्याति वाला बन सका जितना कि वो पहलवान था। वे फिर से उसके पास गए और कहा—“दोस्त! सही-सही बताना कि जो हम करते हैं, क्या वही आप भी करते हैं या कोई और तरीके की दंड-बैठक करते हैं?” पहलवान ने उनको देखा, मुआयना किया और कहा—“जैसा आप करते हैं, वैसा ही हम करते हैं, कोई फरक नहीं है।” उन्होंने कहा कि फिर हम क्यों पहलवान नहीं बन सके और आप कैसे पहलवान बन गए?

मात्र कसरत नहीं, कुछ और विशेष

पहलवान ने कहा कि आपने जो चीज आँखों से देख ली, उसे तो नकल कर लिया और जो आँखों से नहीं देखी, उसको नकल नहीं किया। वो क्या चीज थी, जो आँखों से नहीं देखी? उन्होंने कहा कि आपने हमारे आहार-विहार, संयम और ब्रह्मचर्य के बारे में गौर नहीं किया। हम अपने आहार-विहार के बारे में बहुत सावधान रहते हैं। सोने-जागने के बारे में हम बहुत खयाल रखते हैं। हम ब्रह्मचर्य से रहते हैं। आप रहते हैं? नहीं साहब! ब्रह्मचर्य की कोई जरूरत नहीं है, हम तो कसरत करते हैं। हम अपने आहार पर नियंत्रण करते हैं। और आप?

उन्होंने कहा कि नियंत्रण से क्या फायदा। आहार-विहार की, ब्रह्मचर्य की जरूरत क्या है। आप भी दंड पेलते हैं, हम भी दंड पेलेंगे। पहलवान ने कहा कि आपका कहना गलत है। व्यायाम की अपनी जगह बड़ी आवश्यकता है और बड़ा महत्त्व है, लेकिन व्यायाम से सौ गुना, हजार गुना महत्त्व इस चीज का है कि आदमी का रहन-सहन और आहार-विहार किस तरह का है। आप रहन-सहन, आहार-विहार की उपेक्षा करेंगे और केवल आँख से जो कसरत दिखाई पड़ती है, उसी को सब कुछ मान लेंगे। फिर कैसे फायदा हो सकता है? उसकी बात सही थी।

विधि से अध्यात्म नहीं समझ में आएगा

मित्रो! यही गलती हमारे आध्यात्मिक-क्षेत्र में भी होती रहती है। लोग क्रिया-कलापों को, कर्मकांडों को ही सब कुछ मान लेते हैं। गुरु जी, आपने कुंडलिनी जगाने में कौन-सा मंत्र जपा, कैसा प्राणायाम किया, कृपा करके उसका नियम बता दें। चक्रवेधन के लिए क्या-क्या किया? चलिए अभी बता देते हैं। तो गुरु जी! हमारा भी चक्रवेधन हो जाएगा? नहीं, आपका नहीं हो सकता। तो फिर आप विधि छिपा रहे होंगे? नहीं बेटे! विधि हम नहीं छिपाते हैं। विधि तो हम वही बताते हैं, जो हमने की है, पर उस विधि को करने के पश्चात भी आप कोई फायदा नहीं उठा सकते। आपकी मेहनत, आपका श्रम बेकार चला जाएगा और आपको निराशा होगी। आप मंत्र को गाली देंगे, विधि बताने वाले को गाली देंगे और विधान को गालियाँ देंगे। इसीलिए हम आपको नहीं बताते। तो महाराज जी केवल विधि से बात नहीं बन सकती? नहीं, विधि से बात नहीं बन सकती। तो क्या विधि बेकार है? मैं कब बेकार कहता हूँ।

परहेज, आहार-विहार का महत्त्व

बेटे! मैंने आपको कब कहा कि दवा खाना बेकार है। दवा बहुत जरूरी है, लेकिन दवा के साथ में परहेज करना और भी ज्यादा जरूरी है। परहेज न करें और हम दवा खाते रहें तब? तब दवा बेकार, दवा में पैसा खराब

करना होगा। डॉक्टर, वैद्य, आप और दवाएँ सब बेवकूफ सिद्ध होंगे। अरे महाराज जी! दवाओं की अभी आप प्रशंसा कर रहे थे और अब गाली देते हैं, ये क्या बात हुई? बेटे! हम गाली इसलिए देंगे कि आहार-विहार पर आप कोई ध्यान नहीं देंगे, परहेज नहीं करेंगे, चाहे जैसे रहेंगे, चाहे जो खाएँगे और सोचेंगे कि दवा खा करके अच्छे हो जाएँगे। उससे आपको फायदा नहीं हो सकता और आपका पैसा भी खराब होने वाला है। जिस हकीम ने आपको यह बात बताई है कि केवल दवा खाइए और अच्छे हो जाएँगे तो मैं उस हकीम और मरीज दोनों को गलत कहता हूँ। दोनों को ही ये जानना और बताना, समझना और समझाना चाहिए कि जितनी कीमत दवा की है, उससे ज्यादा परहेज की है। परहेज कीजिए तो आप बिना दवा के भी अच्छे हो सकते हैं। नेचर आपके स्वास्थ्य को ठीक कर देगी, जैसे कि जंगलों के भील और दूसरे लोग अच्छे हो जाते हैं। अगर आप अच्छी से अच्छी, कीमती से कीमती दवा खाएँ और अपने आहार-विहार का उल्लंघन करते चले जाएँ तो सारी दवाएँ बेकार, निरर्थक होती हुई चली जाएँगी।

मित्रो! उपासना के—राम नाम के महत्व आकाश-पाताल के बराबर बता दिए गए हैं। ये ठीक हैं, लेकिन? लेकिन तो हम भूल जाते हैं। एक किसान की जमीन में बहुत सारी फसल होती है और दूसरे की में फसल नहीं होती। क्या वजह है साहब? वही बीज आपने बोया, वही हमने बोया। बीज और बोना तो समान रहा, लेकिन जमीन का तो जमीन-आसमान का फरक रहा। आपने अपनी जमीन में न पानी लगाया, न खाद लगाई, न निराई-गुड़ाई की। बस, बीज बो दिया और अब आप कहते हैं कि आपके खेत में ज्यादा फसल हो गई और हमारी फसल क्यों नहीं पैदा हुई। बीज बोने की क्रिया जो आँख से दिखाई पड़ती है, उसे तो आप मान लेते हैं, पर जमीन को ठीक करने, नम रखने के लिए सिंचाई, निराई-गुड़ाई, खाद के लिए जो मेहनत की जाती रही और संरजाम जुटाए जाते रहे, वे आपने नहीं देखे। बीज बोया और फसल काटेंगे साहब! राम का नाम ले लिया और चमत्कार पाएँगे! मंत्र जप करेंगे चमत्कार पाएँगे और कुंडलिनी जाग्रत करेंगे और चमत्कार पाएँगे!

क्रिया के साथ भाव भी

क्रिया के आधार पर क्रियायोग। क्रिया अपने आप में महत्वपूर्ण है, लेकिन उसके साथ भावयोग का समन्वय

भी ज्यादा आवश्यक है। आपके पास धनुष-बाण है। उससे आप शिकार खेल सकते हैं, लेकिन उसके लिए हाथ की कलाइयों में ताकत का होना भी जरूरी है। तलवार का महत्व हम क्यों कर कम आँकिंगे? आपकी तलवार कितनी ही कीमती क्यों न हो, लेकिन उसको पकड़ने के लिए हाथों में, कलाइयों में बल होना चाहिए। नहीं साहब! हमारी कलाइयों में तो दम नहीं है, बुखार में

कलकत्ता में स्वामी रामकृष्ण मठ की स्थापना हो चुकी थी। उनके सारे भक्त संन्यास लेकर मठ में प्रवेश कर चुके थे। मठ का सारा काम मठ में लगी जमीन से चलता था।

तभी कलकत्ता में प्लेग का प्रकोप हुआ। लोग बुरी तरह मरने और बीमार होने लगे। स्वामी विवेकानंद जी से यह देखा न गया और उन्होंने मठ को सुश्रूषा शिविर में बदल दिया।

सारे अध्यात्म साधकों को सेवा कार्यों में लगा दिया और कहा—“आज भगवान ने अपने सच्चे भक्तों और सच्चे संन्यासियों की परीक्षा ली है, आज मनुष्य और महामारी के बीच संग्राम छिड़ गया है। आज मठ के प्रत्येक संन्यासी को अपनी संचाई का प्रमाण देना है। ऐसी सेवा करो, इतनी परिचर्या करो, इतनी सहानुभूति बरसाओ कि मठ में आया हुआ कोई भी रोगी मृत्यु से पराजित न होने पाए। धन की कमी होने पर मठ की भूमि बेच दूँगा। चिंता न करना।”

स्वामी जी की प्रभावोत्पादक पुकार पर संन्यासी, जीवन के देवदूतों की भाँति रोगियों की सेवा में जुट गए।

..... पड़े हुए हैं। आप तलवार दीजिए और हम डाकुओं से मुकाबला करेंगे। नहीं बेटे! डाकू तेरी तलवार छीन ले जाएँगे और तेरी पचास रुपये की तलवार भी जाएगी। तू मत जा, तेरा जाना बेकार है। तलवार घुमाएगा तो तेरी कलाई में मोच आ जाएगी। नहीं, महाराज जी! तलवार से मैं सबको मार डालूँगा। ठीक है, ले शिवाजी वाली तलवार, लेकिन इससे तू किसी को मार नहीं सकता, क्योंकि तेरी कलाई में बल नहीं है।

अध्यात्म एकांगी नहीं है

मित्रो! इसके बारे में मैं लोगों से कहता रहता हूँ, लेकिन लोगों को भ्रम हो जाता है। इसलिए आपसे भी जद्दोजहद करना पड़ता है। सारे अध्यात्म-क्षेत्र में जद्दोजहद करनी पड़ती है। लोगों ने कर्मकांडों के माहात्म्य को इतना अधिक बढ़ा-चढ़ाकर बादलों के बराबर बना दिया है। ये मंत्र और वो मंत्र, ये विधि-विधान कीजिए, लेकिन जाने क्यों यह भूल जाते हैं कि इन मंत्रों को, इन बाणों को जिस धनुष पर रखकर चलाया जाने वाला है, वह है कि नहीं? कारतूस को जिस बंदूक में रखकर चलाया जाने वाला है वह है कि नहीं है? बंदूक की जरूरत को, महत्त्व को जो नहीं समझते इसीलिए बहस हो जाती है। इसीलिए आप कारतूस को गाली दे रहे थे? हाँ बेटे! तेरे पास बंदूक तो है नहीं, फिर गोली कैसे चलाएगा? इसलिए क्रियायोग के माहात्म्य का खंडन करने पर जब मैं उतारू हो जाता हूँ तो आवेश में आकर कर्मकांडों के खिलाफ वो शब्द कहने लगता हूँ, जिससे आपको असलियत समझ में आ जाए। एकांगी और सरल वाला हिस्सा जो है, उसे आप पकड़ लेते हैं और जो मुश्किल वाला हिस्सा है, उसकी आप उपेक्षा करना चाहते हैं। उसको आप नजरअंदाज करना चाहते हैं। गहराई तक आप जाना नहीं चाहते और केवल बाहर की वह क्रिया जो सबसे सरल है, उसको आप पकड़ लेना चाहते हैं। बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधेगा? नहीं साहब! बिल्ली का मुँह पकड़ने की ताकत हममें नहीं है, हम नहीं पकड़ सकते। बिल्ली का मुँह नहीं पकड़ सकते तो बेटे! घंटी कैसे बाँधी जाएगी? वह चूहे को खा जाएगी, उसे मार डालेगी।

वास्तविकता को समझें

मित्रो! मैं ये निवेदन कर रहा था कि हमको वास्तविकता को समझना चाहिए। वास्तविकता को समझेंगे तो आपको अध्यात्म का जो माहात्म्य और जो लाभ और जो उसकी फिलॉसफी समझाई जाती है, आप पाएँगे कि वह हूबहू सही है। उसका एक-एक अक्षर सही है। राम के नाम का जो माहात्म्य बताया गया है, मंत्र का जो माहात्म्य बताया गया है, जप का जो माहात्म्य बताया गया है, योग का जो माहात्म्य बताया गया है, गायत्री मंत्र का जो माहात्म्य बताया गया है, वह एक-एक शब्द सही है। अगर आप यहीं पर अटके रहेंगे कि केवल कर्मकांड

के आधार पर गायत्री मंत्र का चमत्कार देखना चाहेंगे तो फिर मैं आपसे कहूँगा कि इसका एक-एक अक्षर गलत है, झूठा है। गायत्री मंत्र जप करने से कोई फायदा नहीं हो सकता। महाराज जी! आप ये क्या कहते हैं? बेटे! तू समझता तो है नहीं कि मैं क्या कहता हूँ। तू एकांगी बात लिए फिरता है; जबकि अध्यात्म एकांगी नहीं हो सकता। एकांगी अध्यात्म संभव नहीं है।

मित्रो! अध्यात्म की दोनों धाराएँ जुड़ी हुई हैं। ये गाड़ी के दोनों पहिए हैं। एक पहिए पर गाड़ी नहीं चल सकती। प्राण और जीवन दोनों को मिला करके संपूर्ण अध्यात्म बनता है। हमारा संपूर्ण व्यक्तित्व न केवल शरीर से बना है और न केवल प्राण से बना हुआ है। प्राण और शरीर इन दोनों के समन्वय से हमारा व्यक्तित्व बना हुआ है। मैं शरीर को गाली देता हूँ, मिट्टी का बताता हूँ, पंचतत्वों का बताता हूँ। हड्डी-मांस का बताता हूँ। इसलिए बताता हूँ कि इसमें प्राण नहीं। जब इसमें प्राण होता है तो इसे मिट्टी का नहीं कह सकता। तब मैं यह कहूँगा कि यह देवता का मंदिर है और जब इसमें से प्राण निकल जाएगा तो मैं यह कहूँगा कि ये तो मिट्टी है, इसके लिए क्यों रो रहे हो? इसे जलाकर अलग करो। इसमें क्या रखा है? ये तो बेकार है, निरर्थक है। इसको गाड़ दो, नदी में बहा दो या इसको जला दो। इससे अब क्या बनने वाला है? नहीं साहब! यह तो हमारे पिताजी थे। बेटे! पिताजी थे तो वे हवा में चले गए। पिताजी ने तो कहीं जन्म ले लिया होगा। अब कहाँ हैं ये तेरे पिताजी, यह तो मिट्टी है। मिट्टी को तू कहाँ रख सकता है? इसे जला दे, हम और तुम दोनों चलेंगे। नहीं साहब! आप पिताजी को बेकार जलाने की बात कहते हैं, उन्हें गाली देते हैं। नहीं बेटे! पिताजी को नहीं, इस मिट्टी के लिए कह रहे हैं, जिसे रखना निरर्थक है।

कर्मकांड एवं भावनाओं का समन्वय हो

साथियो! इसी तरह आपको कर्मकांड और भावयोग के फरक को और समन्वय को समझना होगा। अगर आप अध्यात्म के मार्ग पर चलना चाहते हैं तो दोनों कदम मिलाकर चलने पर ही यह मंजिल पार की जा सकती है। एक कदम से मंजिल पार नहीं हो सकती। केवल कर्मकांड चाहे जितने ही आप क्यों न कर लें, आप चाहे कितने ही अनुष्ठान क्यों न कर लें, लेकिन अगर आप उन क्रियाओं को, जिनकी तुलना हम आहार

और विहार से किया करते हैं। जिसको हम आत्मसंशोधन और आत्मपरिष्कार कहते रहते हैं, यदि आप उनकी उपेक्षा करने लगेंगे, यदि आप यह ख्याल करेंगे कि बस, जप करना ही काफी है, रामायण पढ़ना ही काफी है तो फिर मैं आपकी निंदा करूँगा और ये कहूँगा कि आप मकसद तक नहीं पहुँच सकते और जो फायदा उठाना चाहिए, वह आप नहीं उठा सकते। इसलिए वास्तविकता को आप जितनी जल्दी समझ लें, उतना ही अच्छा है। कर्मकांड निरर्थक नहीं हैं, उनकी निंदा नहीं कर रहा हूँ, लेकिन कर्मकांड के साथ में व्यक्तित्व का जुड़ा होना, मनुष्य का जीवन परिष्कृत होना, आदमी का सही होना नितांत आवश्यक है। आध्यात्मिकता की यह पहली शर्त है। अगर आप इस शर्त को पूरा नहीं करेंगे तो फिर बात कैसे बन सकती है। यह शर्त अनिवार्य है, आवश्यक है। इस शर्त की उपेक्षा नहीं हो सकती।

सही सलाह

मित्रो! स्वास्थ्य की दृष्टि से अगर आपको कभी दो में से एक (व्यायाम एवं आहार-विहार) की उपेक्षा करनी ही पड़े तो मैं व्यायाम की उपेक्षा करने के लिए आपको छोड़ सकता हूँ। गुरु जी! हम तो बहुत दिन तक जीना और स्वस्थ रहना चाहते हैं। अच्छा तो आप दो में से एक चुनिए? अगर आप व्यायाम के लिए कहेंगे तो हम आहार-विहार ठीक नहीं रखेंगे। अगर आप आहार-विहार के लिए कहेंगे तो व्यायाम ठीक नहीं रखेंगे। बेटे! दोनों को मिलाकर चलने में क्या हर्ज है। नहीं साहब! दोनों तो हम नहीं करेंगे। एक कर लेंगे। आप सोने-जागने, ब्रह्मचर्य, आहार-विहार आदि की बातें मत कहिए, बस, हम आपका व्यायाम करते रहेंगे। बेटे! दोनों कर लेगा तो तेरा क्या बिगड़ेगा? नहीं महाराज जी! आप दो में से एक का फैसला कर दीजिए, हम वही करेंगे। ठीक है, बेटे! तो फिर मैं इस बात की सलाह दूँगा कि तू अपना आहार-विहार ठीक रख। अगर तू व्यायाम नहीं भी करेगा, तो कोई उतना ज्यादा नुकसान नहीं होगा। हाँ, अगर आहार-विहार ठीक रखने के साथ व्यायाम भी करेगा तो तेरा जिंदगी लंबी हो सकती है। तू मजबूत हो सकता है, लेकिन अगर तू इसी बात पर जम गया है कि मैं एक हो चोज करूँगा तो मैं यही कहूँगा कि तू ठीक से आहार किया कर, समय पर सोया और जगा कर। संयम रख, ब्रह्मचर्य का पालन कर, तभी बात बनेगी।

गहरा कुसंस्कार

मित्रो! इसीलिए अध्यात्म के लिए मुझे लोगों से बार-बार इन छोटी-मोटी बातों के लिए कहना पड़ता है। पिछली बार जब आप आए थे, तब भी यही कहा था। फिर आप कहते हैं कि गुरु जी! यही बात आप पहले भी कहते थे, यही अब कह रहे हैं। क्या करूँ बेटे! आपकी समझ में यह बात अभी तक नहीं आई और मैं नहीं जानता कि कितने समय में यह समझ में आएगी। चलिए इसे मैं आध्यात्मिकता के क्षेत्र का कुसंस्कार कहता हूँ।

दुष्ट परिस्थितियों की तरह काशी के बंदर भी बड़े दुष्ट होते हैं। एक बार मैं काशी में किसी जगह जा रहा था। उस स्थान पर बहुत से बंदर रहते थे, जो आने-जाने वालों को अकारण तंग करने में बड़े विख्यात थे।

मेरे साथ भी उन्होंने वही किया। मेरा रास्ते से गुजरना उन्हें अच्छा न लगा, वे चिल्लाकर मेरी ओर दौड़े और पैरों में काटने लगे। उनके हाथ से छुटकारा पाना असंभव प्रतीत हुआ। तेजी से भागा, पर जितना भागता बंदर भी उतना दौड़ते और काटते। तभी एक अपरिचित स्वर सुनाई दिया—“भागो मत सामना करो।” बस, मैं खड़ा हो गया और ऐसी जोर की डाँट बताई कि एक घुड़की में ही बंदर भाग खड़े हुए।

जीवन में जो कुछ भयानक है, उसका हमें साहसपूर्वक सामना करना पड़ेगा। परिस्थितियों से भागना कायरता है। कायर पुरुष कभी विजयी नहीं होगा। भय, कष्ट और अज्ञान का जब हम सामना करने को तैयार होंगे तभी वे हमारे सामने से भागेंगे। यह शिक्षा मुझे उन बंदरों से मिली।

यह कुसंस्कार इतना गहरा है कि लोगों ने यह समझ रखा है कि पूजा-पाठ की प्रक्रियाएँ करने के पश्चात आदमी को भगवान के पास जाने की इजाजत मिल जाती है और भगवान का तथा देवी-देवताओं का प्यार मिल जाता है। इसको हम कुसंस्कार कहते हैं। इस कुसंस्कार को निकालने के लिए मुझे आपसे बार-बार लड़ाई लड़नी पड़ती है

बार-बार सत्यनारायण की कथा कहनी पड़ती है और बार-बार गायत्री मंत्र का जप करने की बात कहनी पड़ती है। बार-बार एक ही बात कहनी पड़ती है, ताकि यह कुसंस्कार आपके मन-मस्तिष्क से हट जाए। इसको भक्ति या योग न कह करके मैं कुसंस्कार ही कहूँगा, जिसे आपने सब कुछ मान रखा है। अगर यह कुसंस्कार आपके मन से निकल गया तो समझूँगा कि मेरा परिश्रम सार्थक हो गया और आपको आध्यात्मिकता के द्वार में प्रवेश करने और अंदर जाने का रास्ता खुल गया।

शिक्षण क्रमिक ही संभव

मित्रो! अगर आप इस बात को समझ गए होते और आपने इस बात पर गौर करना शुरू कर दिया होता कि हम अपने जीवन की रीति-नीति में हेर-फेर करना शुरू करेंगे। अपने क्रिया-कलापों में हेर-फेर करना शुरू करेंगे, अपने विचार करने की प्रक्रिया में और दृष्टिकोण में हेर-फेर करना शुरू करेंगे तो फिर मैं आपको अगले वाला पाठ पढ़ाता। फिर मैं आपको कुंडलिनी योग की शिक्षा देता, चक्र जागरण की शिक्षा देता। फिर मैं आपको क्या-क्या शिक्षाएँ देता? जाने कितनी शिक्षाएँ मेरे पास पड़ी हुई हैं? लेकिन मैं देखता हूँ कि इन बच्चों के ऊपर जुल्म करना होगा, अगर मैं इन्हें सीधे एम० ए० का पाठ पढ़ाना शुरू कर दूँ। अरे! इन्हें तो अभी गिनती भी नहीं आती, पहाड़ा तक नहीं आता, कविता नहीं आती और मैं इनको फिजिक्स पढ़ाना शुरू कर दूँ, कैमिस्ट्री पढ़ाना शुरू कर दूँ, इससे अच्छा है कि इनको नहीं पढ़ाऊँ। इनको ये कहूँ कि आप पहले किताब पढ़ना सीखिए, अक्षरज्ञान सीखिए, गिनती गिनना सीखिए, मात्राएँ लिखना सीखिए। जब आपका इतना हो जाए, तब मैं आपको फिजिक्स सिखाने के लिए तैयार हूँ। नहीं महाराज जी! आप तो फिजिक्स की निंदा करते थे। हाँ बेटे! इसलिए निंदा करता था कि तू समय से पहले ही जिद लगाए बैठा है। जिस काम को पूरा करना चाहिए, उसको पूरा करना नहीं चाहता, आसमान पर छलाँग मारना चाहता है। इसलिए मैं इसकी बुराई करने लगता हूँ।

अब बड़े बालिग बन जाइए

मित्रो! जब छोटा बच्चा कहता है कि पिताजी हमारा विवाह करा दीजिए। अरे बेटा! तेरी बहू तो कानी है। कानी बहू से तेरा विवाह नहीं करेंगे। अपने मुन्ना के

लिए बढ़िया वाली अच्छी बहू लाएँगे। कितनी बड़ी बहू लेगा? दीवार के बराबर। नहीं, ये दीवार तो बहुत बड़ी होती है, छोटी लूँगा। अच्छा कितनी बड़ी, इस बैलगाड़ी के बराबर। हाँ, बैलगाड़ी के बराबर बहू ले लूँगा। ठीक है, आप लोगों को ऐसे ही मुझे बहकाना पड़ता है, क्योंकि आप लोगों को पाँच-छह वर्ष में कैसे बहू लाकर के दे दूँगा? नहीं साहब! हमारा तो विवाह करा दीजिए, भैया का विवाह हो गया है, हमारा विवाह नहीं हुआ है। बेटे! अभी तू छह साल का है और बड़ा भैया बाईस साल का हो गया है। तू जब बाईस साल का हो जाएगा, तब तेरे लिए भी बहू लाकर दूँगा। तेरी नौकरी भी लगवा दूँगा। अच्छा तो हमारे लिए भी साइकिल लाकर दीजिए। नहीं बेटे, अभी तू छह वर्ष का है, तुझसे चढ़ा भी नहीं जाएगा, गिर जाएगा। तू जरा बड़ा हो जा, फिर ला दूँगा।

मित्रो! आध्यात्मिक-क्षेत्र में अब आपको भी बड़ा होना चाहिए। आध्यात्मिक-क्षेत्र में आपको बालिग होना चाहिए, वयस्क होना चाहिए। जब आप वयस्क होंगे, बालिग होंगे, तब मैं या मेरे बाद कोई और इतने सारे लोग बैठे हुए हैं—सिखाने के लिए और पढ़ाने के लिए, वे आपको कर्मकांड, क्रियाकांड जिनको आप मैजिक समझते हैं और जिनका मैं मखौल उड़ाता रहता हूँ जादू कह करके कि वह मात्र जादू है। नहीं बेटे! वह जादू नहीं है। अध्यात्म की उपासनाएँ-साधनाएँ जादू नहीं हैं, वह सही हैं, लेकिन मैं आपको जादू इसलिए बताता हूँ कि मिट्टी में से सोना बन सकता है, रुपया बन सकता है, किंतु शर्त यही है कि उसे वैज्ञानिक ढंग से कमाया जाए। जमीन में आप खेती करें और उसमें से रुपया कमाएँ, यह तरीका सही है। मिट्टी में से आप सीधे रुपया कमाना चाहते हैं, इसका मतलब यह हुआ कि आप कर्मकांडों से, पूजा-उपासना से, मंत्र-तंत्र से चमत्कार चाहते हैं। मंत्र-तंत्रों में से चमत्कार मिले होते तो इन बाबाजियों और इन पंडितों ने कब के सारे चमत्कार समेट करके अपने झोले में भर लिए होते और आपको तमाशा देखने को भी नहीं मिलता। ऐसा नहीं हो सकता। आप क्रम से पढ़िए, हिसाब से पढ़िए। क्लासवाइज आगे बढ़िए, नंबर से बढ़िए और उसके लाभ उठाइए, जो लाभ उठा सकते हैं। समय से पहले आप बेकार में कहेंगे कि हमारी मूँछें लगा दीजिए। अच्छा बेटा! ला चवन्नी, देख अभी तेरी मूँछ मँगा देता हूँ। अरे ये कैसी मूँछ हैं, ये तो निकल पड़ीं। तुझे कैसी मूँछ चाहिए थी?

आपकी-सी मूँछ चाहिए थी, जो खींचने पर भी नहीं निकलती है। बेटे! तो अभी तू ठहर जा। अभी तू छह साल का है। बीस साल बाद तेरी असली मूँछें आएँगी। अभी तेरी उम्र इतनी बड़ी नहीं हुई है।

शृंगी ऋषि का पुत्रेष्टि यज्ञ

साथियो! हममें से प्रत्येक को अपना व्यक्तित्व विकसित करना चाहिए। व्यक्तित्व के विकास के साथ में मंत्र काम करते हैं, तंत्र काम करते हैं। शृंगी ऋषि की घटना आपको बराबर याद रखना चाहिए। शृंगी ऋषि की घटना इस तरीके से है कि जब राजा दशरथ के यहाँ कोई संतान नहीं हुई तो उन्होंने गुरु वसिष्ठ जी से कहा कि महाराज जी! आप तो योग, तप और मंत्रों में बड़ी शक्ति बताते हैं। आप हमारे यहाँ संतान नहीं पैदा कर सकते? हाँ, मंत्रों से संतान हो सकती है। पुत्रेष्टि यज्ञ का शास्त्रों में

बहुत माहात्म्य बताया गया है और कहा गया है कि पुत्रेष्टि यज्ञ करने वाले को ये हवन करना चाहिए। उससे संतान हो सकती है। महाराज जी! आप तो हमारे गुरु हैं। मुद्दतें हो गई, एक भी बच्चा हमारे यहाँ पैदा नहीं हुआ और हमको तीन विवाह करने पड़े। हम बूढ़े हो गए आपने अभी तक पुत्रेष्टि यज्ञ क्यों नहीं कराया। अब तक तो बच्चे भी बड़े हो गए होते। आपने यह बात पहले क्यों नहीं कही? इसलिए नहीं कही कि पुत्रेष्टि यज्ञ में जो मंत्र काम आते हैं, उन मंत्रों को हम सार्थक नहीं कर सकते। क्यों नहीं? आप तो सार्थक कर सकते हैं। आप पढ़े-लिखे हैं, संस्कृत जानते हैं। नहीं, जीभ की नोक से मंत्रोच्चारण नहीं हो सकता। जीभ की नोक से बोली जाने वाली वाणी या वचन केवल जानकारी के काम आ सकते हैं, लेकिन चमत्कार नहीं दिखा सकते। उनके पीछे व्यक्तित्व होना चाहिए। (क्रमशः) □

ईसामसीह की असाधारण सफलता एवं उनके अभिनव उत्कर्ष में उनके व्यक्तित्व में निहित गुण ही मुख्य थे। उनका सबसे पहला गुण था—उनका आत्मविश्वास। ईसा में असीम विश्वास था, वे कोई भी कार्य करते समय उसकी संपन्नता के प्रति पूर्ण आश्वस्त रहते थे तथा पूरे विश्वास के साथ उसे पूर्ण करते थे। दूसरा विलक्षण गुण उनमें था—व्यक्तित्व को परखने की शक्ति। अपने प्रथम संपर्क में ही वे मनुष्य में अंतर्हित योग्यता एवं शक्ति का आभास कर लेते थे तथा तदनुसार अपने अनुकूल योग्यता वाले व्यक्तियों को वे अपने पास रखते थे। उन्होंने अपने १२ प्रमुख शिष्य चुने थे। ये बारह व्यक्ति, बाह्यरूप से कोई अच्छी पृष्ठभूमि के नहीं थे, वह इनके चयन के समय इनके साथ आशान्वित नहीं थे, परंतु बाद में इन बारह शिष्यों की कर्मठता को देख सब लोग आश्चर्यचकित हो ईसामसीह की परख की प्रशंसा करने लगे थे। इन बारह व्यक्तियों में से कोई मछुआ था तो कोई साधारण दुकानदार। वे सभी साधारण से व्यक्ति थे। उनमें न कोई विशेष योग्यता ही थी, न कोई मान्य उपलब्धि ही उनके पास थी तथापि वे आगे चलकर ईसा की सेवा में आकर स्वर्णवत् बन गए। इन व्यक्तियों के व्यक्तित्वों को विकसित करने के लिए ईसामसीह ने सर्वप्रथम इन्हें 'शिक्षण' देना प्रारंभ किया। अनवरत तीन वर्षों तक अपनी पूरी क्षमता एवं योग्यता की शक्ति लगाकर ईसामसीह ने इन बारह व्यक्तियों का शिक्षण कर, इनमें अभिनव संस्कार डाले।

तीन वर्ष के प्रयासों के बाद भी शिष्यगण ईसामसीह को पूर्णतः समझ नहीं पाए थे। ये शिष्यगण सदैव ही यह पूछते रहते थे कि इतना सब कर ईसा कौन-सा राज्य स्थापित करने जा रहे हैं व उस राज्य में उन्हें (शिष्यों को) क्या-क्या पद मिलने वाले हैं। अपने शिष्यों के इस प्रकार के उपहासास्पद व नैराश्यपूर्ण व्यवहार से भी ईसा ने धैर्य नहीं खोया, वे निरंतर अपने लक्ष्य की पूर्ति में लगे ही रहे व फिर विश्व ने देखा कि अंततः ईसा के विश्वास, धैर्य व साहस को सफलता मिली।



परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी —

अध्यात्म का मर्म समझने हेतु बालिग बनिए - २

गतांक से आगे—

पिछले माह पाठकों ने जाना कि एकांगी अध्यात्म संभव नहीं है। विधि महत्वपूर्ण है, पर इसके साथ भाव भी। दवा खाना जरूरी है, पर परहेज भी जरूरी है। आत्मसंशोधन और आत्मपरिष्कार दोनों जरूरी हैं। पूजा-पाठ से ही सब मिल जाता है, इसे पूज्यवर अध्यात्म-क्षेत्र का कुसंस्कार कहते हैं। यह कुसंस्कार निकल गया तो हम वरिष्ठ हो जाएंगे, बालिग हो जाएंगे। इसी क्रम में वे शृंगी ऋषि की कथा बताते हैं कि वाणी में चमत्कार व्यक्तित्व से, तप से आता है। इसी कथा को आगे बढ़ाते हुए विषय को समझने का आत्मसात् करने का प्रयास करें।

पुत्रेष्टि यज्ञ कौन सफल करे ?

मित्रो! गुरु वसिष्ठ ने कहा—राजन्! हमने बच्चे पैदा कर लिए, इसलिए हमारा ओजस् और वर्चस् जो कि मंत्र के साथ शामिल होने के पश्चात चमत्कार दिखाता है, वह चला गया। अब हम केवल मंत्र उच्चारण कर सकते हैं, विद्यार्थी को पढ़ा सकते हैं, सुना सकते हैं, उसकी साउंड ठीक कर सकते हैं, लेकिन कोई चमत्कार नहीं दिखा सकते। इसलिए हमारी वाणी के द्वारा बोले हुए मंत्र फलित नहीं हो सकते। तब फिर कोई और व्यक्ति ऐसा है, जो वही मंत्र बोलकर चमत्कार दिखा सके? हाँ! ऐसे भी एक व्यक्ति हैं। हम कोशिश करेंगे कि वे आ सकें और आपका पुत्रेष्टि यज्ञ संपन्न करा सकें। शृंगी ऋषि इसी तरह के थे, जिनके पिता ने, जिनके गुरु ने अट्ठाईस वर्ष की उम्र तक उनको यह ज्ञान नहीं होने दिया था कि दुनिया में कोई स्त्रियाँ भी होती हैं। जंगल में रहते थे, केवल मरदों का ही संपर्क था। स्त्रियों के बारे में कोई चर्चा ही नहीं होती थी। उन्होंने आश्रम की व्यवस्था में स्त्रियों का कोई जिक्र नहीं आने दिया था। शृंगी ऋषि ने स्त्रियों की कोई शक्ति नहीं देखी थी।

निर्मल-निष्पाप शृंगी

गुरु वसिष्ठ से जब राजा दशरथ ने यह सुना तो उन्होंने कहा कि हम यह नहीं मान सकते कि कोई आदमी स्त्री को नहीं जानता होगा। चलिए, हम आपको दिखा करके लाते हैं। गुरु वसिष्ठ राजा दशरथ जी को

लेकर के लोमष ऋषि के आश्रम में गए और शृंगी ऋषि जिनकी उम्र अट्ठाईस साल की थी, उनके पास देव बालाओं को ले करके गए और वहाँ उनके सामने खड़ी कर दीं। शृंगी ऋषि ने पूछा—“आप लोग कौन हैं?” “हम भी विद्यार्थी हैं।” शृंगी ऋषि ने जब उनसे यह पूछा कि हम तो अट्ठाईस वर्ष के हो गए और हमारी दाढ़ी-मूँछें आ गई, फिर आप लोगों की दाढ़ी-मूँछें क्यों नहीं आई? उन्होंने कहा कि हम जिस गुरुकुल में पढ़ते हैं, वहाँ बहुत ठंडक पड़ती है। इस वजह से वहाँ मूँछें बहुत बड़ी उम्र में निकलती हैं। हमारी उम्र अभी इतनी नहीं हुई, इसलिए हमारी दाढ़ी-मूँछें निकलकर नहीं आती हैं “तो फिर आपका गुरुकुल ठंडक में बहुत अच्छा होता होगा? आपके यहाँ खाने को बहुत अच्छे फल मिलते होंगे?” हाँ! हमारे यहाँ बहुत अच्छे फल होते हैं। कैसे फल होते हैं, जरा दिखाइए? उन्होंने टोकरी में से निकालकर मिठाइयाँ, गुलाब जामुन उनके हाथ पर रख दिया। शृंगी ऋषि भागते हुए अपने पिता लोमष ऋषि के पास गए और कहा कि बाहर से कुछ विद्यार्थी आए हुए हैं। वह कहते हैं कि हमारे गुरुकुल में ठंडक की वजह से मूँछें नहीं निकलती। उनकी भी उम्र अट्ठाईस साल है और हमारी भी अट्ठाईस साल है। उनके पेड़ों पर फल ऐसे लगते हैं, जैसे हमने कभी खाए नहीं। जरा आप भी देखिए। गुलाब जामुन हाथ पर रख दिया। लोमष ऋषि हँसने लगे—आऽऽहा....क्या बात है?

उस ब्रह्मतेज की ताकत समझें

लोमष ऋषि बाहर आए और देखा कि बाहर गुरु वसिष्ठ और राजा दशरथ खड़े हुए हैं, वे उनका मकसद समझ गए। उन्होंने कहा—बैठो। हम तो परीक्षा लेने आए थे कि क्या ऐसे भी व्यक्ति होने संभव हैं? अब हमें विश्वास हो गया कि ये जो मंत्र बोलेंगे, वे फलित होंगे। मित्रो! उसे आप क्यों नहीं समझते? अक्षरों को समझते हैं और उन्हें महत्त्व देते हैं। क्रिया-कांडों को महत्त्व देते हैं, लेकिन उस असलियत को आप महत्त्व क्यों नहीं देते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप असलियत को समझें। इस असलियत को आप समझें कि कर्मकांडों के पीछे, क्रिया-कलापों के पीछे, पूजा-उपासना के विधि-विधानों के पीछे जो शक्ति काम करती है, जो फोर्स काम करती है; जो ताकत काम करती है, जो ब्रह्मतेज काम करता है, उसकी वजह से भगवान को मजबूर होना पड़ता है। देवताओं को मजबूर होना पड़ता है। मंत्रों को अपना चमत्कार दिखाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। आप उसका माहात्म्य क्यों नहीं समझना चाहते? नहीं साहब! यह तो बड़े झगड़े का काम है, बड़े झंझट का काम है। बड़ी जीवट का काम है, बड़े तूफान का काम है। हाँ बेटे! बड़े तूफान का काम है। खेती करना तूफान का काम है, पढ़ना बड़े तूफान का काम है। व्यापार करना बड़े तूफान का काम है। पहलवान होना बड़े तूफान का काम है। हर चीज बड़े तूफान की है।

अध्यात्म इतना सस्ता नहीं

मित्रो! अध्यात्म-क्षेत्र में आगे बढ़ना, जैसे कि आपने समझा है कि पालथी मार करके आधे घंटे के लिए बैठ जाना और इधर की माला उधर घुमा देना और उधर की माला इधर घुमा देना है। इधर का चावल उधर चढ़ा देना, इधर घंटी बजा देना, इस नाक में से हवा और उस नाक में से पानी निकाल देना है। क्या आप इसी खेल-खिलवाड़ को अध्यात्म समझते हैं और इसी से सब कुछ पा लेना चाहते हैं? नहीं, अध्यात्म इतना सस्ता नहीं हो सकता। अध्यात्म महँगा है और आपको इसकी महँगी कीमत चुकाने के लिए तैयार होना चाहिए। अगर आप उसकी महँगी मूल्य की कीमती चीजें पाना चाहते हैं, महँगे चमत्कार पाना चाहते हैं, तब? तब मित्रो! आपको कर्मकांड के साथ, क्रियायोग के साथ भावयोग का समन्वय करना चाहिए। कल मैंने इसकी ओर संकेत किया था और कर्मकांडों में से प्रत्येक के बाबत कहा था कि ये

कर्मकांड हमें भावयोग की ओर घसीटकर ले जाते हैं। ये हमारी भावनाओं को विकसित करते हैं। ये हमारे दृष्टिकोण को परिष्कृत करते हैं और हमारे क्रिया-कलाप के बाबत दिशाएँ देते हैं, प्रेरणाएँ देते हैं कि हमारे जीवन का क्रिया-कलाप क्या होना चाहिए? और हमारे सोचने का तरीका क्या होना चाहिए? ये सारे के सारे क्रिया-कलाप हमको इस दिशा पर ले जाते हैं, ताकि हमारा

.....
रामकृष्ण परमहंस से किसी जिज्ञासु ने पूछा—
“क्या मंत्रजप सबके लिए समान फलदायक होते हैं?” उन्होंने उत्तर दिया—‘नहीं!’ ऐसा क्यों? के उत्तर में परमहंस जी ने जिज्ञासु को एक कथा सुनाई।

एक राजा था। उसका मंत्री नित्य जप करता। राजा ने जप का फल पूछा तो उसने कहा—“वह सबके लिए समान नहीं होता।” इस पर राजा को असमंजस हुआ और वह कारण बताने का आग्रह करने लगा। मंत्री बहुत दिन तक तो टालता रहा, पर एक दिन उपयुक्त अवसर देखकर समाधान कर देने का ही निश्चय किया।

मंत्री और राजा एकांतवार्त्ता कर रहे थे। एक छोटा बालक और वहाँ खड़ा था। मंत्री ने बच्चे से कहा—“राजा साहब के मुँह पर पाँच चपत जमाओ, मंत्री की बात पर बच्चे ने ध्यान नहीं दिया और जैसे का तैसा ही खड़ा रहा।” इस अपमान पर राजा को बहुत क्रोध आया और उसने बच्चे को हुक्म दिया—“मंत्री के मुँह पर जोर से पाँच चाँटे लगाओ! बच्चा तुरंत बढ़ा और उसने तड़ातड़ चाँटे लगा दिए।”

मंत्री ने निश्चिततापूर्वक कहा—“राजन्! मंत्रशक्ति इस बच्चे की तरह है, जिसे इस बात का विवेक रहता है कि किसका कहना मानना चाहिए, किसका नहीं? किस पर अनुग्रह करना चाहिए, किस पर नहीं?”

.....
 व्यक्तित्व, हमारे भीतर की शक्ति, जो हमारी अंतरात्मा में सन्निहित है, उसके ऊपर चढ़ी हुई मलिनताएँ, उसके ऊपर चढ़े हुए मनोविकार लुप्त होते हुए चले जाएँ। बस, यही है कर्मकांडों का उद्देश्य और दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है।

भगवान मात्र व्यक्तित्व देखता है

मित्रो! आप सोचते होंगे कि कर्मकांडों से प्रभावित होकर के भगवान खिंचते हुए चले आते होंगे, भगवान

प्रसन्न हो जाते होंगे, बात ऐसी नहीं है। भगवान बड़े समझदार आदमी का नाम है। भगवान बड़े बुद्धिमान और दूरदर्शी का नाम है, दूरदृष्टि वाले आदमी का नाम है। इसको हम खेल-खिलौनों से और छिटपुट मंत्रों का उच्चारण करके और चावलों को इधर से उधर फेंक करके फुसला नहीं सकते। बेटे! उसे रिश्ताने के लिए उसी स्तर की चीजों की जरूरत है, जिसको भगवान पसंद करता है। भगवान मनुष्य के व्यक्तित्व के अलावा कुछ और नहीं देखना चाहता। आपको किया-कलाप, कर्मकांड कैसा आता है, कैसा नहीं आता, भगवान को यह देखने की फुरसत नहीं है। आप वाल्मीकि की तरह से 'राम-राम' की जगह 'मरा-मरा' कहने लगें तो भी भगवान जी को कोई शिकायत नहीं है। आप 'मरा-मरा' कहिए, चाहे 'राम-राम' कहिए। नहीं, साहब! राम-राम कहने से भगवान प्रसन्न हो जाते हैं और 'मरा-मरा' कहने से नाराज हो जाते हैं। 'मरा-मरा' कहने से देवी नाराज हो जाती हैं। बेटे! हमें नहीं मालूम कि 'मरा-मरा' कहने से कौन-सी देवी नाराज हो जाती है और 'राम-राम' कहने से कौन-सा भगवान प्रसन्न हो जाता है। नहीं महाराज जी! चंदन की माला घमाने से शंकर जी प्रसन्न होते हैं और रुद्राक्ष की माला घमाने से शंकर जी नाराज हो जाते हैं। बेटे! हमें नहीं मालूम है।

भगवान को बच्चा समझते हो ?

मित्रो! आप क्या समझते हैं कि शंकर जी इतने बेअक्ल और इतने नासमझ हैं कि चंदन की माला से तो खुश हो जाएँ और रुद्राक्ष की माला से नाराज हो जाएँ। ऐसा तो बच्चे करते हैं। आप उसे सफेद रंग का गुब्बारा दे दें तो बच्चा नाराज हो सकता है और कह सकता है कि हम तो गुलाबी रंग का लेंगे, सफेद रंग का नहीं लेंगे और शंकर जी किस चीज की माला पहनेंगे, चंदन की या रुद्राक्ष की? नहीं साहब! हम तो रुद्राक्ष की पहनेंगे, चंदन की नहीं पहन सकते। बच्चे की तबियत जैसी भगवान शंकर की होगी, ये नहीं हो सकती, जैसा कि आपका ख्याल है, लेकिन अगर आप यह मानते हैं कि शंकर भगवान बच्चे नहीं हैं, शंकर भगवान कोई बुजुर्ग हैं, तब फिर आपको दूसरी तरह से विचार करना होगा। तब आपको मालाओं की परख करने की अपेक्षा, शंकर जी को प्रसन्न करने की अपेक्षा तथा उस दुकानदार के दरवाजे पर नाक रगड़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी। क्यों साहब! यह रुद्राक्ष की माला असली है कि नकली है?

क्या मतलब है आपका? यह मतलब है कि असली रुद्राक्ष की माला है तो शंकर जी प्रसन्न हो सकते हैं और अगर नकली होगी तो नाराज हो सकते हैं। आऽऽहा! तो यह चक्कर है, यह मामला है? शंकर जी असली रुद्राक्ष से प्रसन्न हो जाते हैं और नकली से नाराज हो जाते हैं।

सारा खेल भावनाओं का है

बेअक्ल आदमी यह समझता है कि मालाओं की शक्तें देख करके, उनकी पहचान करके शंकर जी की प्रसन्नता और नाराजगी टिकी हुई है तो ऐसा बिल्कुल नहीं है। शंकर जी को आप मिट्टी की गोलियों से बनी हुई मालाओं से जप लें तो भी शंकर जी उतना ही चमत्कार दिखा सकते हैं, जितने कि मिट्टी के बने हुए द्रोणाचार्य ने चमत्कार दिखाए थे। यह सारे का सारा भावनाओं का खेल है, श्रद्धा का खेल है, मान्यताओं का खेल है। यह लकड़ी का खेल नहीं है। ताँबे के पात्र में पंचपात्र लगा दो तो कैसा हो सकता है? स्टील का पंचपात्र लगा दो तो कैसा हो सकता है? बेटे! मिट्टी का भी बना ले और अगर तैरे पास कोई पंचपात्र न हो तो हथेली में पानी रखकर पी लिया कर, उससे कोई फरक नहीं पड़ता। महाराज जी! ये तो कर्मकांडों का, विधि-विधानों का सवाल है? है तो सही बेटे! कर्मकांडों का, विधि-विधानों का सारा का सारा ढाँचा या स्वरूप आपको सावधान रखने, सतर्कता बरतने, जागरूकता रखने, नियमों का पालन करने के लिए बनाया गया है। इसलिए इसका स्वरूप तो है सही और वह रहना चाहिए, ताकि आदमी को अटेन्शन रहने का, सावधान रहने का, जागरूक रहने का, विधि और व्यवस्था के साथ काम करने का, अनुशासन के नियमों का पालन करने का ध्यान बना रहे। अन्यथा ढीले-पोले आदमी सारा काम बिगाड़ देंगे। इसलिए अनुशासन कायम रखने के लिए शास्त्रकारों ने जो मर्यादाएँ बना दी हैं, उनका रक्षण होना चाहिए। उनका मैं हिमायती हूँ, विरोधी नहीं हूँ, लेकिन अगर आप यह समझते हों कि इनके द्वारा ही हमारा उद्देश्य पूरा हो सकता है तो ऐसा नहीं हो सकता।

शक्ति का स्रोत है भगवान

मित्रो! मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा लाभ भगवान को प्राप्त करना है। मैं नहीं समझता कि इससे भी बड़ा कोई लाभ हो सकता है। असल में जितने भी लाभ हैं, जितनी भी क्षमताएँ हैं, जितनी भी सामर्थ्य हैं, उन सबका केंद्र एक शक्ति का स्रोत है, जिसको हम भगवान कहते हैं। जनरेटर कहाँ लगे हुए हैं? यहाँ से बहुत दूर रुड़की

के पास बहदुराबाद पथरी नाम की जगह है, वहाँ बिजलीघर बने हुए हैं। यहाँ जो बत्तियाँ जल रही हैं, माइक चल रहे हैं, एम्प्लीफायर में से बोल रहे हैं, वह सारी बिजली वहाँ से आ रही है। इसी तरह मनुष्य के पास जो भी चीज है, सारे के सारे विश्व में, जड़ में चेतना का जो चमत्कार है, वह भगवान का है। चेतना एक ही है, भगवान के पास। उसके अंश जितने भी हमारे पास आ जाते हैं—उसके हिसाब से हम मजबूत, ताकतवर, संपत्तिवान और ज्योतिर्वान बन जाते हैं। भगवान की क्षमताएँ जितनी हमारे भीतर कम होती हैं, उतने ही हम कमजोर बने रहते हैं, दुर्बल बने रहते हैं, दीन-दुर्बल बने रहते हैं। असहाय बने रहते हैं और जब ये क्षमताएँ हमारे भीतर पर्याप्त मात्रा में इकट्ठी हो जाती हैं, तब फिर हम देवपुरुष बन जाते हैं, फिर हम अवतार हो जाते हैं। फिर हम महामानव हो जाते हैं, फिर हम देवात्मा बन जाते हैं और तब अंत में हम भगवान हो जाते हैं। कब? जब भगवान की शक्तियाँ हमारे पास आ जाती हैं। अंदर समाविष्ट हो जाती हैं।

सामर्थ्य की कीमत पर संपदा मिलती है

इसलिए करना क्या है? मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ—परम पुरुषार्थ यह माना गया है कि हम ऐसी शक्ति के साथ में अपना संबंध मिला लें, जहाँ से जा करके प्रचुर मात्रा में सामर्थ्य और उसके साथ-साथ में संपत्ति मिलती रहे। सामर्थ्य की कीमत है—संपत्ति। आपके शरीर में सामर्थ्य है तो मजदूरी कीजिए और पैसा कमाइए। आपका चेहरा अच्छा है, हट्टे-कट्टे हैं, जवान हैं। हम ब्याह करेंगे? अच्छा साहब! आप ब्याह कर लीजिए, कोई हर्ज नहीं, परंतु यदि आपकी सामर्थ्य चली जाए, बुढ़ापे में सब बाल झड़ जाएँ और तब कहे कि हमारा ब्याह कर दो साहब! तब लोग कहेंगे कि चल-चल बुढ़े को शरम भी नहीं आती है। अरे साहब! जैसे और आदमी, वैसे वह हैं। दोनों ही ढाई सौ रुपये महीने कमाते हैं। देखिए उसका भी तो ब्याह हो गया है, हमारा भी ब्याह करा दीजिए। नहीं, आपका ब्याह नहीं हो सकता, क्योंकि आप बुढ़े हो गए हैं। आपके झुर्रियाँ पड़ गई हैं, आपके दाँत उखड़ गए हैं। आपका चेहरा बुढ़ा हो गया है। अब आपका ब्याह नहीं हो सकता। नहीं साहब! हमारा भी ब्याह रचा दीजिए। नहीं बेटे, सामर्थ्य ही सब कुछ है। सामर्थ्य की कीमत पर संपत्तियाँ आती हैं और दुनिया में सामर्थ्य का पुंज एक ही है—भगवान। हम उसी की सामर्थ्य से सब काम करते हैं।

दुनिया में जितना भी पानी भरा हुआ है, सब समुद्र की अमानत है। समुद्र में से बादलों में आता है। बादलों में से नदी और तालाब में भर जाता है। सारी की सारी सामर्थ्य भगवान में भरी पड़ी है। भगवान की सामर्थ्यों में से हम जितना अंश अपने भीतर ग्रहण कर लेते हैं, उतने ही अंशों में हम सामर्थ्यों के धनी होते हैं और धनी के हिसाब से हमारे पास वह संपत्ति है, जिसको आप चाहते हैं।

मित्रो! आप क्या चाहते हैं। संपत्ति ही चाहते थे न? हाँ! संपत्ति चाहते थे तो आपको यह नहीं मालूम है कि

बुद्ध के पास एक युवक आया। उनके चरणों में सिर झुकाया और आँखें उठाकर एक बार देखा—पुनः चरणों में झुक गया। बुद्ध ने पूछा—“किसलिए आए हो?” युवक बोला—“जिसके लिए आया था वह इच्छा पूर्ण हुई, अब कुछ न पूछना है न कहना है।” बुद्ध बोले—“क्या घट गया? क्या पूर्ण हुआ? यह औरों को भी बता दो।” वहाँ सत्संग में कोई दस हजार भिक्षुओं की भीड़ थी, किंतु किसी को कुछ दिखाई नहीं दिया। मात्र इतना ही दिखाई दिया कि युवक आया चरणों में झुका, किंतु क्या घटित हुआ? क्या परिवर्तन हो गया? यह किसी को कुछ दिखाई नहीं दिया। युवक बोला—“मैं बदलने आया था, बदल गया हूँ। मेरी आत्मा में जिस क्रांति के लिए चाह थी, उसके पूर्ण होने के लिए विश्वास मिल गया है। कोई भरोसा पैदा हो गया है। एक विश्वास के साथ मैं बदल गया हूँ। नई श्रद्धा ने जन्म ले लिया है। बुद्ध को देखकर मुझे विश्वास हो गया है जो बुद्ध में हो सकता है, वह मुझमें भी हो सकता है। बुद्ध मेरा भविष्य है, जो मैं कल हो सकता हूँ वह बुद्ध आज है। इस भरोसे के साथ चरणों में झुका और वापस उठा तो मैं दूसरा आदमी हो गया।”

संपत्ति किसे दी जाती है? आप मिठाई खरीदना चाहते हैं ना? तो आप मिठाई किससे खरीदेंगे? नोट लाइए, क्वाइन लाइए। क्वाइन—पैसे का क्या करेंगे? हम तो ऐसे ही खरीदेंगे। नहीं बेटे! पहले रुपये लेकर आओ, तब चीज मिलेगी। सामर्थ्य की कीमत पर संपत्ति खरीदी जा सकती है, वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं। सामर्थ्य है तो वस्तुएँ आपकी अपनी हो जाती हैं। सामर्थ्य कहाँ रहती है? बेटे! कहीं नहीं रहती है। दुनिया में वह एक ही जगह रहती है और कहीं सामर्थ्य नहीं है। उस सामर्थ्य को

प्राप्त करने के लिए क्या करना पड़ेगा? कैसे करना पड़ेगा? इसी विधि का नाम अध्यात्म है।

अध्यात्म की शुरुआत यहाँ से

अध्यात्म को हम दो हिस्सों में बाँट सकते हैं। बच्चों को जो अध्यात्म हम बताते हैं, वह दो चीजों से हम पढ़ाते हैं। एक का नाम है—पूजा, एक का नाम है—पाठ। बालकों की शिक्षा हम यहाँ से आरंभ करते हैं। अच्छा साहब! पूजा क्या होती है और पाठ क्या होता है? बेटे! जबान से जो कुछ भी उच्चारण किया जाता है, उसका नाम पाठ है। मसलन आप जप करते हैं तो वो पाठ हो गया। जब आप रामायण पढ़ेंगे, तब हम उसे पाठ कहेंगे। जीभ से जो कुछ भी बोला जाएगा, जीभ से जो कुछ भी उच्चारण किया जाएगा, वो सब पाठ में आ जाएगा और पूजा में क्या आएगा? पूजा में शारीरिक क्रियाएँ एक और वस्तुएँ दो आती हैं। इन दोनों को हम पूजा में शुमार करेंगे। जैसे आप आरती उतारते हैं। आरती में हाथों को चलाना पड़ता है और उसमें धूपबत्ती रखनी पड़ती है, दीपक रखना पड़ता है और घी जलाना पड़ता है, फूल चढ़ाना पड़ता है। वस्तुओं और क्रियाओं दोनों को जब मिला देते हैं तो यह क्या हो जाता है? तो यह पूजा हो जाती है।

मित्रो! पूजा और पाठ आरंभिक विद्यार्थी को हम यही सिखाते हैं। खड़िया और पट्टी ले करके बच्चों को हम यही सिखाते हैं। इससे पहले पढ़ाई आरंभ नहीं हो सकती। पूजा और पाठ दोनों आवश्यक हैं। बेटे! मैं पूजा और पाठ का मखौल नहीं उड़ाता, कलम और पट्टी का मखौल नहीं उड़ाता। उड़ाऊँगा तभी, जब तू एम० ए० का विद्यार्थी होगा और जब खड़िया, मिट्टी का बुद्दका और पट्टी लेकर आएगा, तब मैं मखौल उड़ा सकता हूँ। आज तो मैं कैसे उड़ाऊँगा। आज तो मैं कहूँगा कि पट्टी लाइए और मैं तुझे बताऊँगा। बेटे! पूजा और पाठ में ज़िदगी भर सिखाए हैं और अभी ज़िदगी भर सिखाऊँगा। गुरु जी! उस दिन तो आप पूजा-पाठ का मखौल उड़ाते थे। बेटे! मखौल उड़ाता था तब, जब मैंने यह गमझ लिया था कि तू एम० एस-सी० का विद्यार्थी है। तब मैंने तुझसे यह कहा था कि बेटे! फाउन्टेन पेन और कॉपी ले करके आना। अब तू जवान है, इसलिए जवान के ढंग से यह कहता हूँ कि तुझे कॉपी की जरूरत है, पेन की जरूरत है। अब तुझे पट्टी की जरूरत नहीं है। तब तू बच्चा था, इसलिए बच्चे के ढंग से पढ़ाया था।

अब अगर तू पट्टी और खड़िया ले करके आएगा तो मखौल उड़ा सकता हूँ।

पूजा-पाठ प्रारंभिक कक्षाएँ

साथियो! पूजा-पाठ प्रारंभिक है और आवश्यक है। वह ज़िदा रहना चाहिए और ज़िदा रखना है। पूजा और पाठ की प्रक्रिया को मैं दुनिया से नष्ट नहीं होने दे सकता। क्यों? क्योंकि यह सारा संसार अभी बालकों से ही भरा पड़ा है। शुरुआत हमको वहीं से करनी पड़ेगी। आगे चलना तो वहीं से पड़ेगा। तीन पहियों की गाड़ियों का विरोधी नहीं हो सकता मैं। तीन पहियों की गाड़ी जिस पर बच्चों को खड़े होना सिखाते हैं और जिस पर बच्चे ठुमक-ठुमककर चलते हैं, उसका मैं हिमायती हूँ। मैं कहता हूँ कि तीन पहिए की गाड़ी दुनिया में रहनी चाहिए। नहीं साहब! उस दिन तो आप मोटर की बात कर रहे थे, साइकिल खरीदने के लिए कह रहे थे। हाँ, बेटे! साइकिल खरीदने के लिए भी कहता हूँ, पर मैं तीन पहियों की गाड़ी का भी हिमायती हूँ। मैं चाहता हूँ कि तीन पहिए की गाड़ी बच्चों के लिए कायम की जाए। पूजा और पाठ का मैं हिमायती हूँ। पूजा और पाठ के बारे में जब कभी भी आप मेरे मुँह से सुनते हैं, तब मैं कड़ुवे शब्द उस समय इस्तेमाल करता हूँ; जबकि आप कॉपी और पेन से इनकार करते हैं। जब आप मुझसे इस बात के लिए बहस करते हैं कि आपने पट्टी और बुद्दका की बात कही थी और अब कॉपी की बात क्यों करते हैं। फिर मैं आपकी पट्टी को गाली दूँगा और आपके बुद्दके को फेंक दूँगा और अपने कॉलेज के नौकर को कहूँगा कि इसकी पट्टी को उठा ले जा और बुद्दका-खड़िया को बाहर फेंक दे। बी० ए० का विद्यार्थी हो गया, इसको शरम नहीं आती। क्यों? क्योंकि आप बड़े हो गए हैं।

समझदारी आने पर अगला पाठ

मित्रो! जब आप जानकार हो जाएँगे, समझदार हो जाएँगे, जब आप समझदारी में प्रवेश करना शुरू करेंगे, तब मैं आपको वास्तविकता समझाऊँगा। तब मैं आपसे यह कहूँगा कि आपको क्रियायोग के साथ-साथ भावयोग का समन्वय करना चाहिए। पूजा और पाठ का विकसित स्वरूप योग और तप हैं। पूजा-पाठ के साथ-साथ आपको इन दोनों का भी समन्वय करना चाहिए। योग किसे कहते हैं। योग को क्रिया के रूप में जब आप मुझसे पूछताछ करना शुरू करेंगे, तब मैं उन बातों को बताना

शुरू करूँगा। कौन-सी बात? वही नेति, धौति, वस्ति, वज्रोली, कपालभाति आदि ये सारी बातें आपको बता सकता हूँ। कब? जब आप मुझसे क्रिया के रूप में पूछेंगे तब, लेकिन अगर आप मुझसे यह पूछेंगे कि आप इसकी फिलॉसफी बताइए, इसके कारण बताइए, इसकी वजह बताइए, तब मैं फिर दूसरे तरीके से आपको समझाना शुरू करूँगा। फिर मैं योग की व्याख्या क्रिया-कृत्यों के रूप में नहीं कर सकता, फिर मैं आपको न्यूली की शिक्षा नहीं दे सकता। फिर मैं आपको सर्वांगसन की शिक्षा नहीं दे सकता। शीर्षासन की शिक्षा दे करके यह नहीं कह सकता कि आपने यह विधि सीखी कि नहीं सीखी। अपने योगतंत्र की विधि सीखी, यह नहीं कहूँगा।

भाव-भूमिका में प्रवेश, परमात्मा से योग

मित्रो! फिर मैं यह कहूँगा कि भाव-भूमिका में प्रवेश करने के पश्चात जब योग की व्याख्या की जाती है तो उसका मतलब होता है—जोड़ देना। योग मीन्स—जोड़ देना। किसके साथ जोड़ देना—भगवान के साथ जोड़ देना। भगवान के साथ जब हम अपने आप को जोड़ देते हैं, तब उसका नाम 'योग' होता है। आपको जो हम उपासना

सिखाते हैं, उसका भी मतलब वही होता है। उपासना का अर्थ क्या होता है? शब्दकोशों में 'उप' कहते हैं, 'पास' को और 'आसन' माने बैठने को कहते हैं। पास-पास बैठ जाने का अर्थ उपासना होता है, जो प्रार्थी से एक कदम आगे है। भगवान के पास बैठ जाना, यह शुरुआत है और दोनों का समन्वित हो जाना, दोनों का मिल जाना, दोनों का जुड़ जाना, दोनों का एकाकार हो जाना—योग है। योग का अर्थ, भावनात्मक अर्थ, फिलॉसफी के साथ अर्थ होता है—मिल जाना। कैसे मिल जाना? क्या भगवान के साथ मनुष्य को मिलाया जा सकता है? हाँ, बेटे! मिलाया जा सकता है। भगवान के साथ हम उसी तरीके से मिल सकते हैं, जैसे दो चीजें मिल करके एक हो जाती हैं। उसी तरीके से हम और भगवान एक हो सकते हैं। अर्थात्—या तो भगवान हमारे जैसा होगा, या फिर हम भगवान जैसे हो जाएँगे। दो में से एक बात हो जाएगी और हम योगी हो जाएँगे, मिल जाएँगे। तब या तो भगवान इतना घटिया हो जाएगा जैसे कि हम हैं या फिर हम भगवान जैसे बड़े हो जाएँगे। मिल जाएँगे, फिर दो नहीं रह सकते। एक हो जाएँगे।

(क्रमशः)

□

एक बार गुरु नानक पानीपत गए, जहाँ शाहशरफ नामक एक प्रसिद्ध सूफी फकीर रहते थे। गुरु नानक उस समय गृहस्थियों वाले वस्त्र धारण किए हुए थे। यह देखकर शाहशरफ ने पूछा—“फकीर होकर आपने गृहस्थियों वाले कपड़े क्यों पहन रखे हैं और संन्यासियों की तरह आपने अपना सिर क्यों नहीं मुड़ा रखा है?”

नानक ने उत्तर दिया—“मूड़ना मन को चाहिए, सिर को नहीं और मिट्टी की तरह नम्र होकर ही मन को मूड़ा जा सकता है।” अपने वेश के संबंध में उन्होंने कहा—“जो मनुष्य परमेश्वर के दर पर अपने सुख, स्वाद और अहंकार को त्याग कर गिर पड़े, वह जो भी वस्त्र धारण करे, परमात्मा उसे स्वीकार करता है। दरवेश का चोंगा और टोपी यही है कि वह ईश्वरीय ज्ञान को अपनी आत्मा में बसा ले। जो कोई मन जीत ले, सुख-दुःख में एक समान रहे और हर समय सहजावस्था में विचरण करे, उसके लिए हर तरह का वेश शोभनीय है।”

जब शाहशरफ ने पूछा—“आपकी जाति क्या है, आपका मत क्या है, गुजर कैसे होती है?”

गुरु जी ने कहा—“मेरा मत है सत्यमार्ग, मेरी जाति वही है जो अग्नि और वायु की है, जो शत्रु-मित्र को एक समान समझती है। मेरा जीवन वृक्ष-धरती की तरह है। नदी की तरह मुझे इस बात की चिंता नहीं कि मुझ पर कोई धूल फेंकता है या फूल और मैं जीवित उसी को समझता हूँ जिसका जीवन चंदन के समान दूसरों के लिए घिसता हुआ संसार में अपनी सुगंध फैला रहा हो।”

यह सुनकर शाहशरफ ने कहा—“दरवेश कौन है?” नानक ने कहा—“जो जिंदा ही मरे की तरह अविचल रहे। जागते हुए सोता रहे, जान-बूझकर अपने आप को लुटाता रहे। जो क्रोध में न आए, अभिमान न करे। न स्वयं दुखी हो, न किसी को दुःख दे। जो हमेशा ईश्वर में मग्न रहे और वही सुने जो उसके अंदर से ईश्वर बोलता है और उसी सर्वातिर्यामी परमात्मा को हर व्यक्ति हर स्थान में देखे।”



परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी —

अध्यात्म का मर्म समझने हेतु खालिग खलिए - 3

विगत दो कड़ियों (जुलाई-अगस्त, २००६) में पाठकों ने पढ़ा कि पूजा-पाठ का मूल आधार क्या होना चाहिए। कुसंस्कारों का निकलना ही वरिष्ठता को प्राप्त होना है। इसी क्रम में शृंगी ऋषि की पूरी कथा पूज्यवर ने हमें सुनाई, फिर कहा कि कर्मकांडों के पीछे ब्रह्मतेज काम करता है तो भगवान मजबूर होता है। अध्यात्म सस्ता नहीं है। भगवान भक्ति का स्रोत है और वह हमें संपदाएँ सामर्थ्य की कीमत पर, पात्रता के संबर्द्धन पर ही देता है। हम समझदारी विकसित करें तो ही यह मर्म समझ पाएँगे। अब आगे तीसरी कड़ी—

नाला मिला गंगा में

मित्रो! योगी बनने की आध्यात्मिक प्रक्रिया यही है कि जैसे नाला गंगाजी में शामिल हो जाता है तो नाला खतम हो जाता है। गंगा बाकी रहती है। नाला अपनी सारी की सारी क्षमता, अशुद्धता, स्वरूप, इच्छा, नाम, रूप सब कुछ खतम कर देता है और गंगाजी में शामिल हो जाता है। परिणाम क्या होता है? गुरु जी उसको तो बड़ा नुकसान हो गया। हाँ बेटे! बड़ा नुकसान हो गया, नाला बेचारा मारा गया। बेचारा किसी काम का नहीं रहा। नाले का नाम भी इस दुनिया से चला गया, खतम हो गया। नहीं बेटे! नाला खतम नहीं हुआ, वह जिंदा है, केवल परिष्कृत हो गया। परिष्कृत होकर के अब उसका नाम गंगा है। कल तक लोग उससे घृणा करते थे, नफरत करते थे, क्योंकि उसका पानी गंदा था। अब जबकि नाला गंगाजी में शामिल हो गया और गंगाजी में शामिल होने के बाद में उसका पानी भी गंगाजल हो गया तो लोग उसमें स्नान करते हैं, आचमन करते हैं। किसका? “जन्म शतभ्यं पीत्वा.....।” इसी गंदे नाले के पानी में से लोग नहा रहे हैं, पानी भरकर ले जा रहे हैं। शंकर जी पर चढ़ा रहे हैं। तू भी उसमें से लोटे में भरकर ले जाना और देखना कि यह पानी खराब हो जाएगा क्या? खराब नहीं हो सकता। अब यह सड़ेगा नहीं। क्यों? क्योंकि अब यह गंगाजी में शामिल हो गया।

सामीप्य का चमत्कार

मित्रो! जब हम अपने व्यक्तित्व को, अपनी हस्ती को भगवान में शामिल कर देते हैं, तब हम योगी हो जाते

हैं। तब मिलने का नाम योगी है, जैसे नदी और नाला मिल जाते हैं। बूंद और समुद्र मिल जाते हैं। बस, हम उसी तरीके से एक हो जाते हैं। चंद्रमा सूरज के नजदीक होता है और उसकी किरणों से प्रभावित होकर चमकने लगता है। चंद्रमा में चमक है? चंद्रमा में कोई चमक नहीं है। वह मिट्टी का लोंदा है। जैसे हमारी जमीन मिट्टी की बनी है, वैसे ही चंद्रमा मिट्टी का बना हुआ है और सूरज का प्रकाश ग्रहण करने के पश्चात वह चमकने लगता है। जीवंत हो उठता है। पारस के नजदीक जाकर के लोहा सोना हो जाता है। जब हम भगवान के नजदीक चले जाते हैं, उनमें घुल जाते हैं, पास बैठ जाते हैं, मिल जाते हैं तो हम नाले के तरीके से सम्मिलित होने के बाद में गंगा बन जाते हैं। पास जाने की बात चली तो मैं मान सकता हूँ कि लोहा पारस के पास जाता है। घुलता तो नहीं है, लेकिन पास जाने के बाद में कम से कम लोहे वाली शक्ल खतम हो जाती है और सोने वाली शक्ल शुरू हो जाती है। बच्चे के हाथ में डोरी के साथ लगी हुई पतंग हवा के साथ शामिल होने के बाद आसमान में उड़ती हुई कितनी ऊँची चली जाती है। धूल के कण और धूल के जरे हवा के साथ शामिल होने के बाद कहाँ तक चले जाते हैं? आसमान तक चले जाते हैं। राजा के मुकुट तक चले जाते हैं और मीनार तक चले जाते हैं। यही धूल के कण पहले चल नहीं सकते थे, ठोकरें खाते थे।

लिपट जाएँ भगवान से

साथियो! हम भगवान के साथ शामिल होने के पश्चात पतंग के तरीके से ऊँचे चले जा सकते हैं। धूल के कणों

के तरीके से हवा के साथ शामिल होने के पश्चात कितने ऊँचे उठते हुए चले जा सकते हैं। हम बेल की तरह से पेड़ के साथ लिपटने की वजह से, जितना ऊँचा पेड़ है, उतने ऊँचे हम चले जा सकते हैं। बेल जमीन पर फैल सकती है, ऊँची नहीं उठ सकती। बेल को ऊँचा उठना हो तो क्या करना पड़ेगा? तब उसे किसी पेड़ का सहारा लेना पड़ेगा, तभी वह पेड़ के साथ-साथ उतने ऊँचाई तक जा सकती है, जितना ऊँचा पेड़ है। भगवान पेड़ का नाम है, जिसके साथ यदि हम लिपटने की कोशिश करें तो हम उतने ही बड़े बन सकते हैं, जितना कि स्वयं भगवान। लेकिन मित्रों! क्या होता रहता है कि हम भगवान को प्राप्त करने के तरीके नहीं जान पाते। हमारी तरकीब और हमारा दृष्टिकोण तथा हमारी इच्छा बड़ी फूहड़ और कमजोर है। क्या इच्छा है? हम भगवान को थोड़ा-सा प्रसाद चढ़ाना चाहते हैं, धूपबत्ती चढ़ाना चाहते हैं, नाम लेना चाहते हैं और क्या करना चाहते हैं? बस, यही करना चाहते हैं, नाम लेना चाहते हैं। हमारे पंडित जी ने बताया था कि नाम लिया करो और क्या करेंगे? हाथ से फेरा-फेरी करेंगे, चावल रखेंगे, रोली रखेंगे, दक्षिणा रखेंगे, प्राणायाम करेंगे, न्यास करेंगे, माला पहनाएँगे।

अपनी मरजी से चलाएँगे भगवान को?

ठीक है, आप यह सब करेंगे, लेकिन इन सबके बदले में आप चाहते क्या हैं? यही चाहते हैं न कि इन सबके बदले भगवान हमारी मरजी के मुताबिक चलना शुरू करें। आपकी मरजी के मुताबिक? हाँ साहब! हमारी मरजी के मुताबिक भगवान को चलना चाहिए। आप यह क्या कह रहे हैं? जरा आप सोचिए तो सही, आखिर आप कहना क्या चाहते हैं। अगर आप ऐसा ख्याल रखते हैं कि आप भगवान को नसीहत देने की स्थिति में हैं और भगवान के ऊपर हुकूमत चलाने की स्थिति में हैं, आप भगवान को गलतियाँ बताने की स्थिति में हैं तो आप अपने बारे में गलत ख्याल लगाकर बैठे हैं और आप झूठी हिमाकत करने पर उतारू हो गए हैं। हाँ गुरु जी! हमारे पैर दबा दीजिए। बेटे! हम तो तेरे गुरु हैं, हम कैसे दबाएँगे? अच्छा तो आप ऐसा कीजिए कि हमारी धोती धोकर लाइए। बेटे! हम तेरे गुरु हैं हमारी धोती तू धोकर ला। वाह गुरु जी! हमने तो इसीलिए आपको गुरु बनाया था कि आप हमारी धोती धोइए। बेटे! ये तो तू गलती करता है। तू हमारे साथ गुस्ताखी से पेश आता है। अच्छा तो आप ऐसा कीजिए, हमारी तैल

मालिश कर दीजिए। धत तेरे की, तू बड़ा पागल आदमी मालूम पड़ता है। तुझे यह नहीं मालूम कि हम तेरे गुरु हैं और तू हमारा चेला है। हाँ गुरु जी! चेला हूँ, इसीलिए तो चलाता हूँ। नहीं बेटे! चेला कभी नहीं चला सकता।

कर्म व्यवस्था से खिलवाड़?

मित्रों! गुरु वह होता है, जो सिखाता है और शिष्य उसे कहते हैं, जो सीखता है। भगवान उसे कहते हैं, जो हुक्म चलाता है, जो निर्देश देता है और भक्त उसे कहते हैं, जो भगवान के आदेशों को, आदर्शों को स्वीकार

महाभारत समाप्त होने पर धर्मराज ने चारों भाइयों व द्रौपदी सहित तीर्थयात्रा का निश्चय किया। उन्होंने श्रीकृष्ण से भी चलने का आग्रह किया, किंतु उन्होंने आवश्यक कार्य बतलाते हुए एक कमंडलु दे दिया कि जहाँ-जहाँ स्नान करो, वहाँ-वहाँ इस कमंडलु को भी डुबो लेना। तीर्थयात्रा समाप्त करके ये लोग वापस लौटे व कमंडलु श्रीकृष्ण को लौटा दिया। उन्होंने उसी समय उसे फोड़कर प्रसाद रूप सबको बाँट दिया। खाया तो सभी को कडुवा लगा और सबने उसे थूक दिया।

श्रीकृष्ण ने समझाया कि केवल धोने मात्र से जिस प्रकार कमंडलु का कडुवापन दूर नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार अनेक तीर्थों में स्नान करने मात्र से अंतःकरण के पाप कैसे धुल सकते हैं?

करने के लिए अपना कदम आगे बढ़ाता है और तू क्या करता है? महाराज जी! हम तो मनोकामना पूरी करा लेना चाहते थे। मनोकामना पूरी कराने की मंशा लेकर के तू गलती करता है। एक गलती यह करना चाहता है कि स्वयं के ऊपर, संसार के ऊपर, मनुष्यों के ऊपर जो कर्म व्यवस्था लागू की गई है, उस कर्म व्यवस्था को तू मटियामेट करने को उतारू हो गया है। सारी की सारी सृष्टि जो चल रही है यह कर्म व्यवस्था से चल रही है। समूचा संसार कर्म व्यवस्था के आधार पर चल रहा है। कर्म के आधार पर हम अच्छे फल प्राप्त करते हैं, बुरे

फल प्राप्त करते हैं। कर्म के आधार पर हम पुरुषार्थ करते हैं। कर्म के आधार पर हम उन्नति करते हैं। कर्म दुनिया के लिए एक व्यवस्था है। तू क्या चाहता है? साहब! कर्म के द्वारा जो अच्छे फल मिलने चाहिए, वह हम कर्म की अपेक्षा पूजा और पाठ के उपरांत पाना चाहते हैं। बेटे! पूजा और पाठ करके कर्म का फल प्राप्त करना चाहेगा, तब तो दुनिया में कोई भी आदमी कर्म करना नहीं चाहेगा। हर आदमी पूजा-पाठ करना चाहेगा। लक्ष्मी को पाने के लिए हर आदमी लक्ष्मी स्तोत्र का पाठ करना चाहेगा। तब कोई भी आदमी दुकानदारी नहीं करेगा, व्यापार नहीं करेगा, खेती-बाड़ी नहीं करेगा।

मनोकामना का खेल

अगर आप कर्म के फल को नहीं समझना चाहते तो कामना की बात कहकर के क्या करने चले हैं? इसकी प्रतिक्रिया क्या हो सकती है और क्या परिणाम हो सकते हैं, आप जानते नहीं? जिस आदमी को जो दंड मिलना चाहिए, जो सजा मिलनी चाहिए, आपका क्या यह ख्याल है कि थोड़ा-बहुत पूजा-पाठ करने से दंडों को कम किया जा सकता है? आप दुनिया में एक ऐसी नई व्यवस्था कायम कराना चाहते हैं कि किसी आदमी को गलत काम करने की सजा नहीं मिलनी चाहिए। अच्छी उन्नति करने के लिए किसी को कोई परिश्रम नहीं करना चाहिए और सारे के सारे काम पूजा-पाठ से पूरे होने चाहिए। क्या आप यही कहने चले थे? या यही करने चले थे? इसका परिणाम क्या होगा? कभी सोचा है कि यह दुनिया कैसे जिएगी? दुनिया के कायदे कैसे रहेंगे, दुनिया के नियम कैसे चलेंगे? दुनिया की व्यवस्था कैसे कायम रह पाएगी? बता बेटे! तू क्या कह रहा था? नहीं साहब! मैं तो मनोकामना की बात कह रहा था। बेटे! मनोकामना की बात तो ठीक है, पर इसका होगा क्या? भगवान अपनी सारी की सारी सृष्टि को एक कायदे के आधार पर, कानून के आधार पर, नियम के आधार पर चला रहा है। उस भगवान का क्या होगा, जो सूरज को कायदे पर चला रहा है, चंद्रमा को कायदे पर चला रहा है। गेहूँ में से गेहूँ पैदा कर रहा है, मक्के में से मक्का पैदा कर रहा है। गाय के पेट में से गाय का बच्चा पैदा हो रहा है। बकरी के पेट में से बकरी का बच्चा पैदा हो रहा है। कायदे के ऊपर सारी की सारी सृष्टि का नियम चल रहा है।

यह कैसा पागलपन?

आप क्या कह रहे थे भगवान से? भगवान से मैं यह कह रहा था कि हमारे कर्मों के फल को आप हटाइए और हमारा पूजा-पाठ के आधार पर नई व्यवस्था कायम कीजिए। अच्छा बेटे! भगवान की सृष्टि का जो क्रम है उस व्यवस्था को आप गलत करना चाहते थे? हाँ साहब! यही चाहता था कि कम से कम हमारे लिए भगवान अपने कायदे-कानून, नियम-व्यवस्था सब बिगाड़ दे। क्यों? आपके लिए ही क्यों बिगाड़ दे? क्या आप कहीं सोने के बने हुए हैं? बिगाड़ेगा तो सबके लिए बिगाड़ेगा,

श्रेष्ठ समाज में हर व्यक्ति शरीर से स्वस्थ-सुंदर, बुद्धि से सुजान-विवेकशील तथा आचरण से सुशील और धर्मीनेष्ट होना चाहिए। इस प्रकार के श्रेष्ठ व्यक्तित्व बनाने का प्रयास किया जाना हर स्तर पर आवश्यक है। नर-नारी किसी एक पक्ष को विशेष अधिकार या विशेष प्रतिबंधित स्थिति में नहीं रखा जा सकता। विकास की धारा दोनों के लिए समान रूप से खुली रहनी चाहिए। कोई अपनी ही उपेक्षा, अपनी ही निष्क्रियता से न बदे यह बात दूसरी है, किंतु किसी को बढ़ने का अधिकार न देना भयंकर भूल है। मनुष्य शरीर पाकर हर व्यक्ति को किसी भी स्तर तक बढ़ने की पूरी छूट भगवान की ओर से भी है। जो विकास की शर्त और उसके सिद्धांत के अनुरूप आचरण करेगा वह कोई भी हो, भगवान का प्रिय बन सकता है।

लेकिन अगर अपने नियम-व्यवस्था बिगाड़ेगा तो मैं आपसे यह पूछता हूँ कि दुनिया जिंदा रहेगी या मरेगी? नहीं महाराज जी! हमारी मनोकामना पूरी करा दीजिए। बेटे! तू पागल है। मित्रो! भक्त के लिए मनोकामना जैसा कोई प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। भक्ति के द्वार में यदि आप प्रवेश करना चाहें और भक्ति को कभी आप जानना चाहें, तब आपको नए तरीके से विचार करना होगा। सोचने के वर्तमान तरीके सारे के सारे आपको बदल देने पड़ेंगे, फिर आपको नए सिरे से भक्ति का शुभारंभ

करना होगा। भक्ति के सिद्धांत नए सिरे से कायम करने पड़ेंगे, फिर आपको इस तरीके से भक्ति के सिद्धांत प्रतिपादित करने पड़ेंगे कि हमारा 'बॉस' जो हुक्म चलाएगा, वह हम मानेंगे। आप अपने 'बॉस' से पूछिए कि आप हुक्म दीजिए, हम आपकी मरजी के मुताबिक चलेंगे।

मिलिट्री बनाम अध्यात्म

मित्रो! फौज का कप्तान हुक्म देता है और सिपाही कहना मानता है। मिलिट्री का सारा डिसिप्लिन—अनुशासन इस बात पर टिका हुआ है कि कप्तान हुक्म दे और सिपाही उसके अनुसार चले। नहीं साहब! सिपाही हुक्म दे और कप्तान चले तब? तब बेटे! मिलिट्री का सर्वनाश हो जाएगा, सत्यानाश हो जाएगा। सारे के सारे सिपाहियों में से कोई क्या कहेगा, कोई क्या कहेगा, कप्तान का कहना नहीं मानेगा। इससे कप्तान का दिमाग खराब हो जाएगा, वह पागलखाने चला जाएगा। मिलिट्री का सारा आधार इस बात पर टिका हुआ है कि कप्तान को हुक्म देना चाहिए और सबको मानना चाहिए। यही शिक्षण आध्यात्मिकता का भी है। इसका शिक्षण है कि कठपुतली के तरीके से हमको अपने आप को भगवान के सपुर्द करना चाहिए और भगवान से यह कहना चाहिए कि आप हुक्म चलाइए और हम आपकी मरजी के मुताबिक उसे कर दिखाएँगे। स्त्री और पुरुष का अर्थात् पति-पत्नी का उदाहरण यहाँ ऐसा फिट—सही बैठ जाता है। कैसे? स्त्री और पुरुष दोनों की शादी हो जाती है। स्त्री अपनी हया और शरम, इज्जत और आबरू, मन की इच्छा, रहन-सहन का तरीका अपने मर्द के कहने के अनुसार बदल देती है और मर्द अपने पास जो संपत्ति है, दौलत-जायदाद है, अपना वंश, गोत्र सब कुछ स्त्री के सपुर्द कर देता है। एक के सपुर्द करने से दूसरा अपने आप को सपुर्द कर देता है। भगवान से अगर आप यह चाहते हो कि वह अपनी संपदाएँ आपके सपुर्द कर दे, आपको अपनी विभूतियाँ सपुर्द कर दे, अपने क्रिया-कलाप सपुर्द कर दे तो उसकी कीमत कम से कम इतनी चुकानी चाहिए कि हम उससे ये कहें कि हम आपकी मरजी के मुताबिक चलेंगे। इसी का नाम समर्पण है।

समर्पण और सोऽहम्

समर्पण किसे कहते हैं? योग किसको कहते हैं? समर्पण को कहते हैं। उस योग को सिखाने के लिए

हमने स्वर्ण जयंती साधना वर्ष में 'सोऽहम्' की उपासना के ऊपर बहुत ध्यान दिया। गायत्री का जप करने से पहले आप में से हर एक आदमी को यह कहा है कि आप 'सोऽहम्' की उपासना किया कीजिए। गुरु जी! 'सोऽहम्' क्या होता है? बेटे! 'सोऽहम्' उसे कहते हैं कि जब हमारी श्वास भीतर जाए तो हमको यह ध्यान करना चाहिए कि हमारे भीतर जो हवा जाती है, उसके भीतर एक बहुत बारीक आवाज होती है—सोऽऽऽ। और जब श्वास बाहर निकला करे, तब भी ये ख्याल करना चाहिए कि हमारे भीतर से एक आवाज आती है—

एक गरुड़ अपने बच्चे को अपनी पीठ पर बैठाकर दूर-दूर तक ले जाता और दिन भर दाने चुगाकर शाम को फिर अपनी पीठ पर बैठाकर वापस ले आता। गरुड़ ने उड़ना सीखने के लिए कई बार कहा, किंतु निःशुल्क साधन बिना श्रम के उपलब्ध होते रहने से वह आलसी और परावलंबी बन गया था।

एक दिन आकाश में उड़ते-उड़ते गरुड़ ने एकदम अपने को खींच लिया तो उसका बच्चा नीचे गिरने लगा। घबराकर पंख फड़फड़ाए और गिरते-गिरते बचा।

सायंकाल बच्चे ने माँ से शिकायत की कि आज तो पिताजी ने मुझे मार दिया होता और पूरी घटना सुना दी। माँ ने समझाया, जो अपने आप नहीं सीखते उन्हें सिखाने-समझाने का यही नियम है।

'हम'। सोऽऽऽ भीतर की ओर जाने वाली आवाज और 'हम' बाहर निकलने वाली। महाराज जी! इसे तो हम करते भी हैं और अच्छा भी लगता है। कभी तो यह आवाज सुनाई पड़ती है और कभी नहीं सुनाई पड़ती। बेटे! सुनाई पड़ती है तो कोई हर्ज नहीं है और नहीं सुनाई पड़ती है तो भी कोई हर्ज नहीं है। इसकी वास्तविकता को समझें कि यह है क्या? 'सोऽ' माने—भगवान और 'हम' माने—मैं। हम और भगवान दोनों एक होते हैं। भगवान हमारे भीतर प्रवेश करता है नाक में से श्वास के साथ-साथ और 'हम' माने 'मैं' या अपनापन, मैं पन

श्वास के साथ हम बाहर निकाल देते हैं। अर्थात् अब मैं की सत्ता खतम, अहं की सत्ता खतम और भगवान का स्वामित्व हमारे जीवन के ऊपर स्थापित। अब भगवान ही हमारा स्वामी है। हम भगवान के गुण गाते हैं। आज से अपनी सारी की सारी चीजें भगवान की हुई।

सोऽहम् का शिक्षण

मित्रो! 'सोऽहम्' की उपासना में हम यह सिखाते हैं कि श्वास के साथ जो प्राण भीतर जाता है, वह भीतर जाकर के रोम-रोम में समाविष्ट हो जाता है। श्वास जो भीतर जाती है, उसी हवा की वजह से हमारे हाथ-पैर काम करते हैं, उसी हवा की वजह से हमारा दिमाग काम करता है। श्वास बंद हो जाए तो न हमारे हाथ काम करेंगे, न दिमाग काम करेगा और न अंतःकरण काम करेगा। जैसे मैं पहले ध्यान के माध्यम से प्रकाश के तीनों ही क्षेत्रों में प्रवेश करने की बात कह रहा था, आज मैं आपसे यह कह रहा हूँ कि 'सोऽहम्' के माध्यम से हम अपनी सारी चीजें भगवान को सौंपते हैं। तीन चीजें हमारे पास हैं, एक चौथी चीज भी है। वह बाहर रहती है, पर बड़ी घटिया चीज है। वह भी हमारे साथ शामिल हो गई है। असल में हमारी दौलत और हमारा व्यक्तित्व तीन हिस्सों में बँटा हुआ है। एक है—हमारा कर्म, जिससे हम धन कमाते हैं और न जाने क्या-क्या कमाते हैं। यह हमारे शरीर से ताल्लुक रखता है। एक हमारा ज्ञान है, जो हमारे मस्तिष्क से ताल्लुक रखता है और एक हमारा अंतःकरण है। एक हमारी भावना है, जो हमको वाल्मीकि ऋषि बना देती है। क्रौंच पक्षी को घायल देख करके जब वाल्मीकि की आँखों में आँसू आ गए, तब उनके अंतःकरण में अच्छी भाव किरणों का उदय हुआ और तब उसमें से ज्ञानगंगा प्रवाहित हो उठी और उनके मुँह से वाल्मीकि रामायण निकल पड़ी।

भावना में है, प्रबल शक्ति

मित्रो! यह हमारी भावनाओं की शक्ति है, जो मिट्टी में से भगवान पैदा कर देती है, जो मिट्टी में से द्रोणाचार्य पैदा कर देती है, जो मिट्टी के टुकड़े में से गिरधर गोपाल पैदा कर देती है। यह हमारी भावना की शक्ति है, जो पत्थर के टुकड़े में से काली पैदा कर देती है और गोबर में से गणेश पैदा कर देती है और मनुष्यों में से भगवान पैदा कर देती है और मामूली से आदमी को गुरु बना देती है। यह सारी की सारी शक्ति बेटे! भावना की

शक्ति है। भावना के बारे में मैं कैसे व्याख्या करूँ, इसे आपको समझाना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि भावना के क्षेत्र को आपने कभी छुआ तक नहीं। भावना में कितनी सामर्थ्य होती है, यह आपने कभी जाना तक नहीं। भावना का जादू, भावना का चमत्कार यही है। अध्यात्म वास्तव में भावना का चमत्कार है, जिससे आप रहित हैं। कामनाओं में डूबे हुए आदमी, वासनाओं में डूबे हुए आदमी भावना के बारे में कल्पना तक नहीं कर सकते। आपको मैं कैसे बताऊँ, कैसे समझाऊँ, किन शब्दों में समझाऊँ, ताकि आप भावना का महत्त्व, श्रद्धा का महत्त्व समझकर संवेदना का महत्त्व समझ पाएँ कि यह कितनी

पवनार में विनोबा जी प्रतिदिन आठ घंटे कुआँ खोदने का काम करते थे। आस-पास की संस्थाओं के लोग भी इस कार्य में उनकी मदद करते थे। कोई नेता या मंत्री विनोबा जी से मिलने आते तो उन्हें भी यह काम करना पड़ता था। श्रीमती जानकी देवी बजाज भी कुछ दिन वहाँ रहीं और उन्होंने नियमित रूप से एक घंटा चक्की पीसने, एक घंटा रहट चलाने और छह घंटे खाली-भरी टोकरी कुएँ पर इधर-उधर देने का काम किया।

प्रसिद्ध उद्योगपति परिवार की इन सरल, निराभिमानी व सेवानिष्ठ महिला का यह उदाहरण निश्चित रूप से हमें प्रेरणा प्रकाश देने को पर्याप्त है। जो यह सोचते हैं कि हम संपन्न हैं, परिश्रम क्यों करें, वे बड़ी भूल करते हैं। परिश्रम और वह भी किसी महत्त्वपूर्ण उद्देश्य को लेकर किया वह कम पुण्य नहीं।

बड़ी चीज है। इसमें से ज़र्रे-ज़र्रे में हमको भगवान दिखाई पड़ सकता है और वस्तुओं में से भगवान हमारे सामने आ सकता है—श्रद्धा के माध्यम से। मित्रो! तीन शक्तियाँ हमारे पास हैं और 'सोऽहम्' की उपासना के माध्यम से हम उन तीनों शक्तियों को तीव्र करते हैं, प्रखर करते हैं। इसके द्वारा हम अपनी तीनों चीजों को भगवान के सपुर्द करते हैं। हम अपने शरीर को भगवान के सपुर्द कर देते हैं और यह कहते हैं कि आप हुक्म कीजिए। हमारे क्रिया-कलाप और हमारे कार्य आपकी मरजी के मुताबिक हों।

अपनी मरजी भगवान पर मत थोपिए

मित्रो! भगवान से आप यह मत कहिए कि आप हमारी मरजी के मुताबिक अपना कर्म करें। यह गुस्ताखी आप मत कीजिए। ऐसा कहने से पहले आप अपनी जवान बंद कीजिए और यह सोचिए कि आप कहने क्या जा रहे हैं? अरे, आप यह कहिए कि हे भगवान! हम आपकी मरजी के मुताबिक काम करेंगे। कठपुतली के धागे बाजीगर के हाथ में बँधने चाहिए और कठपुतली को यह जुरत दिखानी चाहिए कि हम आपके इशारों पर नाचना शुरू करेंगे। कठपुतली को यह नहीं कहना चाहिए कि आप हमारी मरजी के मुताबिक काम कीजिए। आपकी मनोकामना की कोई कीमत नहीं होती। अगर कोई कीमत हो सकती है तो केवल भगवान की मनोकामना की हो सकती है। जब आप अपनी मनोकामनाएँ भगवान के ऊपर लादने के लिए उतारू हो जाते हैं, तब फिर आप उस पुरानी वाली घटना, जो बड़ी नासमझी की मालूम पड़ती है, उसी घटना की आप नकल बनाते हैं। कौन सी घटना की? उस घटना की जिसमें कि नारद जी विष्णु भगवान के पास एक दिन गए और यह कहने लगे कि हमारी मनोकामना पूरी कर दीजिए। भगवान को बड़ा आश्चर्य हुआ। भक्ति और मनोकामना भक्त की जिंदगी में एक साथ कैसे हो सकती हैं? भक्त के भीतर मनोकामना बैठ गई तो फिर भक्ति कैसे आ जाएगी? भक्ति आएगी तो मनोकामना नहीं रहेगी और मनोकामना आ जाएगी तो भक्ति नहीं रह सकती।

नारद मोह

नारद जी मनोकामना की बात लेकर के गए थे। भगवान को बड़ा अचंभा हुआ। आज मैं क्या देख रहा हूँ और क्या सुन रहा हूँ? नारद के मुँह से क्या निकल रहा है, लेकिन हमारे आपके तरीके से नारद जी अपने स्वार्थ में इस कदर हावी थे कि अपनी ही बात कहते चले गए। उन्होंने भगवान जी के ऊपर हुक्म चलाया और निर्देश दिया कि हमारा कहना मानिए, हमारा हुक्म मानिए। क्या हुक्म है आपका? हमारा विवाह करा दीजिए। अरे नारद! तू बूढ़ा हो गया है, मरने के दिन आ गए। अब तू विवाह करके क्या करेगा? नहीं साहब! हम तो विवाह करना चाहते हैं और न केवल विवाह करना चाहते हैं, वरन मालदार भी बनना चाहते हैं। आज हर मनुष्य के सामने दो ही कामना हैं, तीसरी कोई नहीं है। आदमी अमीर बनना चाहता है और अय्याशी करना चाहता है। अय्याशी

और अमीरी के अलावा और कोई ख्वाहिशें नहीं हैं। नारद जी ने भी दोनों ही ख्वाहिशें भगवान के सामने रख दीं। हम और आप भी घुमा-फिराकर वही दो बातें रखते हैं, तीसरी कोई बात है ही नहीं तो आप रखेंगे कहाँ से? नारद जी ने कहा कि वहाँ स्वयंवर होने वाला है और उस लड़की से हम विवाह करने वाले हैं। हमको दहेज का पैसा भी चाहिए और लड़की भी चाहिए। वासना भी चाहिए और तृष्णा भी चाहिए।

“माँ देखना, मैं कितनी अच्छी चीज लाया हूँ।”

“अरे! यह क्या ले आया। यह तो किसी चिड़िया के अंडे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि तू चिड़िया के तीनों अंडे उठा लाया है। जब वह अपने घर लौटेगी तो बहुत रोएगी बेटा!”

“अच्छा माँ! यह चिड़िया के अंडे हैं। मुझे क्या मालूम था?”

वह बालक लँगड़ाते-लँगड़ाते उस पेड़ तक गया, क्योंकि चोट के कारण उसके पैर में दरद हो रहा था। वह पेड़ पर चढ़ा और उसने सब अंडे उसी घोंसले में रख दिए और पेड़ के नीचे बैठा तब तक रोता रहा, जब तक कि वह चिड़िया पेड़ पर न आ गई। चिड़िया को देखकर उसका सारा दरद जाने कहाँ चला गया और हँसता-कूदता अपनी माँ के पास लौट आया। यह बालक कोई और नहीं, वरन दीनबंधु एंड्रज थे, जो जीवन भर दीनों को अपना भाई समझकर प्यार करते रहे।

भगवान भक्त की कामना का अंत करते हैं

भगवान जी सोचते रहे कि भाई! यह क्या हो रहा है? उन्होंने विचार किया कि मेरा भक्त पाप के इस पंक में डूबेगा तो हजार जन्म में भी मुझ तक नहीं पहुँच सकेगा। इसलिए इसकी कामनाओं को खतम करना पड़ेगा। कामनाओं को पूरा करने से ये कैसे पूरी हो सकती हैं। एक के बाद दो, दो के बाद सौ, सौ के बाद हजार होती चली जाएँगी। अतः कामनाओं को शुरुआत में ही खतम कर देना चाहिए। भगवान भक्त की कामना

को खतम करते हैं। नारद जी जब स्वयंवर में गए तो एक सुंदरी माला लेकर के आई और बस, सबको माला दिखाती फिरी। नारद जी को भी दिखाई, वह भी बैठे हुए थे। एक राजकुमार को माला पहनाकर चली गई। नारद जी को बहुत बुरा लगा। वे भगवान विष्णु के पास गए और वही शिकायत करने लगे, जो आप में से हर आदमी करता हुआ पाया जाता है। आपमें से हर एक आदमी की शिकायत है कि हमारी मनोकामनाएँ पूरी नहीं कीं। किसने पूरी नहीं कीं? साहब! मंसा देवी ने पूरी नहीं कीं, चंडी देवी ने पूरी नहीं कीं, हनुमान जी ने पूरी नहीं कीं, साँई बाबा ने पूरी नहीं कीं, आचार्य जी ने पूरी नहीं कीं, किसी ने भी पूरी नहीं कीं। सब खराब हैं और सब बेकार हैं और सब ठग हैं। इनमें से कोई भी हमारी मनोकामना पूरी नहीं कर सकता। आपका यही कहना है ना? जी हाँ, यही कहना है?

हमारी शिकायत, भगवान का जवाब

मित्रो! नारद जी भी यही कहते थे। नारद जी की जब मनोकामना पूरी नहीं हुई, तब वे भगवान जी के पास गए और गालियाँ सुनाने लगे। गालियाँ सुनाने के बाद नारद जी जब शांत हो गए, तब विष्णु भगवान ने कहा कि एक बात बताओ नारद? मैंने अपने भक्तों में से

किस-किस की मनोकामना पूरी की है? एक भी ऐसे आदमी का नाम बता दीजिए कि जिसकी मैंने मनोकामना पूरी की है? मैंने हर एक आदमी की मनोकामना को परिष्कृत किया है, स्वच्छ किया है, निर्मल बनाया है। मैंने किसी की मनोकामना पूरी नहीं की। अगर मैं मनोकामना पूरी करने लगूँगा तो जैसे कमीने और घटिया आदमी हैं, उससे भी ज्यादा घटिया और कमीना मुझे बनना पड़ेगा और लोगों के कहने के मुताबिक मैं ऐसा नहीं बन सकता। लोग मुझसे जो काम कराना चाहते हैं और जिस काम के लिए मेरा इस्तेमाल करना चाहते हैं, मैं उनको अपने आपका इस्तेमाल नहीं करने दूँगा। लोगों की मरजी हो तो मेरे पास आएँ और मरजी न हो तो अपने घर बैठें। नहीं साहब! लोग तो यही कहते हैं कि भगवान जी हमारा हुक्म मानेंगे और हमारी मरजी के मुताबिक चलेंगे और हमारी मनोकामना पूरी करेंगे। नहीं बेटे! ऐसा नहीं हो सकता। हाँ, यदि आप भगवान की मनोकामना पूरी करें तो शायद हो सकता है कि भगवान जी आपकी मनोकामना पूरी कर दें, लेकिन आप तो अपनी मनोकामना पूरी कराना चाहते हैं और भगवान की मनोकामना पूरी करना ही नहीं चाहते। यह कैसे हो सकता है? (क्रमशः समापन अगले अंक में)

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के समय दक्षिणेश्वर में श्री प्रताप हाजरा नाम के एक महाशय रहते थे। उन्होंने साधुओं जैसा जीवन अपना रखा था। वे कभी-कभी रामकृष्ण परमहंस के साथ कोलकाता जाकर सत्संग का लाभ उठाया करते थे।

एक बार वे स्वामी जी के साथ कोलकाता जाकर जब लौटे तो अपना अँगोछा वहीं एक भक्त के घर भूल आए।

स्वामी रामकृष्ण को जब यह पता चला तो उन्होंने हाजरा महाशय से कहा—“ऐसे भुलक्कड़ स्वभाव के कारण तो तुम कभी-कभी भगवान को भी भूल जाते होगे। जो नित्यप्रति के सांसारिक व्यवहार में सावधान नहीं रह सकता, वह आध्यात्मिक-क्षेत्र में सावधानी बरत सकता है, इसमें संदेह है।”

हाजरा महाशय स्वामी जी के कथन का आशय न समझकर सफाई देते हुए बोले—“क्या बताऊँ महाराज! भगवान के भजन में लीन रहने से मुझे कुछ याद ही नहीं रहता।”

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने हाजरा महाशय की झूठी आत्मश्लाघा समझ ली। वे दुखी होकर सोचने लगे साधु का नाम धरा कर इतनी आत्मप्रशंसा! फिर प्रकट में बोले—“हाजरा तू धन्य है, जो थोड़े से जाप से ही इतना पहुँच गया कि सांसारिक विषयों की याद ही नहीं रहती। एक मैं ऐसा तुच्छ प्राणी हूँ, जो दिन-रात भगवान के चरणों में ही ध्यान दिए रहता हूँ, फिर भी आज तक न कभी अपना बटुआ कहीं भूला हूँ और न अँगोछा।”

अब हाजरा महाशय को अपनी भूल का भान हुआ। वे स्वामी जी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगे।



परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी —

अध्यात्म का मर्म समझने हेतु खालिग खनिए - ४

(समापन किस्त)

हमारी पूजा-उपासना का मूल आधार क्या हो? इस पर युगऋषि की अमृतवाणी को तीन अंकों से पढ़ रहे हैं। वे कहते हैं कि कर्मकांड गौण हैं, उनके पीछे जो शक्ति काम करती है वह है— आत्मबल। सबसे महत्त्वपूर्ण है— आत्मपरिष्कार एवं फिर गुणों का समुच्चय भगवत्सत्ता का सामीप्य। नाला-गंगा, बेल-वृक्ष, पतंग-डोर आदि के उदाहरणों से उपासना का मर्म समझाने का प्रयास किया गया था। पूज्यवर कर्म-व्यवस्था को सर्वोपरि वरीयता देते हैं एवं इसके अनुशासन को मानना अध्यात्म का पहला पाठ बताते हैं। समर्पण और भावनाओं के महत्त्व को उनसे समझाया। नारद-प्रकरण के माध्यम से बताया कि मनोकामनाएँ इस तरह पूरी नहीं होतीं। अब पढ़ें समापन किस्त में मर्मस्पर्शी प्रतिपादन उनकी ही अमृतवाणी के माध्यम से—

अध्यात्म महँगा है

मित्रो! जितने भी आदमी भगवान के भक्त हुए हैं, योगी हुए हैं, उनकी भक्ति और योग क्या योगाभ्यास तक, प्राणायाम तक या उपासना तक ही सीमित रहे? नहीं, मैं आपको बताना चाहूँगा कि विवेकानंद आधा घंटा उपासना करते थे, डेढ़ घंटा ध्यान करते थे और गांधी जी आधा घंटा सामूहिक प्रार्थना करते थे, लेकिन विवेकानंद से लेकर गांधी जी तक का, सभी का सारा का सारा जीवन भगवान के क्रिया-कलापों को पूरा करने के लिए समर्पित हो गया। बाकी भी जो महामानव हुए हैं, उनके जीवन की ओर जब हम देखते हैं तो भगवान ब्रह्म ने क्या उपासना की, क्या पूजा की, हमें नहीं मालूम। नहीं साहब! आप बताइए कि भगवान ने क्या पूजा की और कौन-सा मंत्र जपा? बेटे! हमें नहीं मालूम, लेकिन हाँ, उन्होंने अपनी जिंदगी के सारे सुखों को, संसार को, जो उनके जीवन में शामिल थे, हर सुख को अलग फेंक दिया। वच्चे को अलग फेंक दिया, बीबी को अलग फेंक दिया, राज-पाट को अलग फेंक दिया। भगवान को इच्छा पूरी करने के लिए और भगवान की दुनिया को सुंदर बनाने के लिए अपनी सारी जिंदगी खतम कर दी। यही उनका असली मंत्र था।

नहीं महाराज जी! उसे रहने दीजिए और ये बताइए कि वे कौन सी माला से जप करते थे? बेटे! तू पागल

आदमी है, केवल माला पूछता रहता है, मंत्र पूछता रहता है। असली माला नहीं पूछता, जो बड़ी महँगी पड़ती है। नहीं साहब! सस्ती माला बताइए। सस्ती माला कहीं नहीं बिकती है। अध्यात्म वाली माला महँगी है, अध्यात्म महँगा है। गांधी जी कौन-सा मंत्र जपते थे? बेटे! हमें नहीं मालूम है। हमने उन्हें 'हरे राम-हरे कृष्ण' ये कहते देखा था। 'ईश्वर-अल्लाह तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान।' कहते सुना था। नहीं महाराज जी! कोई तो मंत्र जपते होंगे, उसी से ऐसा चमत्कार वे दिखा सके। यह तो हमें नहीं मालूम, लेकिन इतना मालूम है कि उन्होंने अपने जीवन का एक-एक अंश और एक-एक अंग इतना परिष्कृत बनाया था कि राम और गांधी में कोई फरक नहीं रह गया था। नानक जी ने कौन-सा मंत्र जपा था? बेटे! हमको नहीं मालूम। नहीं साहब! कोई तो जपा होगा? बेटे! तुम तो बेकार की बहस करते हो, तुझसे हम यह कह सकते हैं कि उन्होंने अपने सारे जीवन का क्रम और स्वरूप ऐसा बना लिया था, जिससे कि भगवान को मजबूर हो करके उनके समीप आना पड़ा।

जीवन-साधना महत्त्वपूर्ण, विधि या माला नहीं

महाराज जी! नरसी मेहता ने कौन-सा जप किया था? बेटे! तू बड़ा पागल है। हरदम मंत्र-तंत्र पूछता रहता है। यह नहीं पूछता कि नरसी मेहता ने जिंदगी कैसी जी थी। सुदामा जी ने भक्ति की थी तो श्रीकृष्ण भगवान के

पास कौन-सा चावल लेकर के गए थे? महाराज जी आप बता दीजिए कि कितना ले जाऊँ तो मैं भी ले जाऊँ। बेटे! तू बासमती का डेढ़ किलो चावल लेकर श्रीकृष्ण भगवान के मंदिर में चले जाना और फिर यों कहना कि साहब! मैं नहीं देता हूँ.....। जब भगवान तुम्हारी पोटली छीन लें, तब कहना कि लाइए, राज-पाट दीजिए। मित्रो! पोटली नहीं, सुदामा जी की जिंदगी को देखिए। यह नहीं कि वे कौन-सा मंत्र जपते थे, वरन यह देखिए कि शुरू से अंत तक का उनका जीवन कैसा रहा? जीवन-साधना कैसी रही? मित्रो! सारी जिंदगी साधना करनी पड़ती है। साधना आधे घंटे में नहीं होती। आधे घंटे में तो केवल नशा किया जाता है, जिसका असर कुछ घंटे तक रहता है, किंतु साधना की मस्ती, भक्ति की मस्ती सारे दिन, सारी जिंदगी छाई रहती है। शराब का नशा पाँच मिनट में भी हो सकता है और पंद्रह मिनट में भी हो सकता है। इसी तरह भजन का नशा जल्दी भी हो सकता है और देर में भी हो सकता है, पर नशा होना चाहिए। अगर नशा नहीं आए तब? तब तो बैठा रह घंटे भर तक, छह घंटे तक बैठा रह, नशा तो आना चाहिए। भक्ति का नशा हमारी जिंदगी में आना चाहिए।

आए जिंदगी में भक्ति का नशा

मित्रो! भक्ति का नशा अगर हमारी जिंदगी में आएगा तो आप पाएँगे कि आपके चिंतन और आपके स्वरूप सब बदलते हुए चले जाएँगे। आप सारे के सारे भक्तों के क्रिया-कलापों को मत पूछिए, जप की विधि मत पूछिए, वरन आप उनके जीवन को देखिए। आप देखिए कि उन्होंने कौन-सी भक्ति की थी और किस ढंग से की थी। सुदामा की भक्ति को देखिए, सुग्रीव की भक्ति को देखिए कि उसने किस तरह की भक्ति की थी। अंगद की भक्ति को देखिए, हनुमान की भक्ति को देखिए। हनुमान जी का जीवन देखिए। नहीं साहब! कौन से मंत्र का जप किया था और कौन-सा अनुष्ठान किया था और कुंडलिनी कहाँ से जगाई थी? हनुमान चालीसा का पाठ कैसे किया था? बेटे! तू बड़ा पागल और जाहिल आदमी है। जाहिल और पागल मैं इसलिए कहता हूँ कि तू केवल कर्मकांडों की बावत मालूम करना चाहता है। कर्मकांडों के साथ में जीवन की जो प्रक्रियाएँ जुड़ी हुई हैं, उनको सुनना नहीं चाहता, देखना नहीं चाहता, बोलना नहीं चाहता और सोचना नहीं चाहता। नहीं साहब! आप तो हनुमान चालीसा को गालियाँ देते हैं। नहीं, बेटे! मैं

गालियाँ नहीं देता, वरन मैं तो बीसों आदर्शियों से यह कहता रहता हूँ कि जिनको रात में खराब सपने दिखाई पड़ते हैं, वे हनुमान चालीसा सिर के नीचे रखकर सोया करें। रात में तुझे, जो वो भूत-प्रेत दिखाई पड़ते हैं और घर के चक्कर लगाते रहते हैं, जो गायत्री माता के जप से भी नहीं डरते तो फिर तू हनुमान जी का जप किया कर। हनुमान चालीसा पढ़ता हुआ सो जाया कर, निकल जाया कर। कोई आया भूत, बस, बुला लिया हनुमान जी को।

हर भावनाशील व्यक्ति के सम्मुख देवमानव बनने और समाज को समुन्नत बनाने की यशस्वी भूमिका निभाने का अवसर विद्यमान है। स्रष्टा ने हर मनुष्य को ऐसे साधनों से संपन्न बनाकर भेजा है कि वह जीवन-लक्ष्य को पूरा करने में सहज ही सफल हो सके तथा सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धक की भूमिका निभाते हुए श्रेयाधिकारी बन सके।

अधिकांश को इस सौभाग्य से वंचित रहना पड़ता है, जो उसे मानव जीवन के साथ ही अजस्र उपहार के रूप में उपलब्ध है। व्यवधान के कारणों पर विचार करने से परिस्थिति की जटिलता नहीं मनःस्थिति में भरी हुई कुटिलता ही एक प्रधान अवरोध प्रतीत होती है। उपभोग और संग्रह का अनावश्यक लालच, संबंधियों के प्रति अनुपयुक्त व्यामोह, अहं का उद्धत परिपोषण इन तीनों का समुच्चय ही वह त्रिशूल है, जो जीवन-संपदा को अस्त-व्यस्त करता और स्रष्टा के उपहार को दुर्भाग्य में बदलता है।

जीवन क्रम को बदलना होगा

महाराज जी! तो फिर आप हनुमान जी की भक्ति को गाली क्यों दे रहे थे? गाली इसलिए दे रहा था कि आप तो हनुमान चालीसा का पाठ करने तक सीमित हो गए? आपने यह विचार नहीं किया या नहीं करना चाहते कि भक्त को हनुमान जी जैसा, होना चाहिए। भक्त को अपने जीवन का स्वरूप इस तरीके से बनाना चाहिए, जिस तरह से कि हनुमान जी का श्रेष्ठ जीवन, आदर्श जीवन, उत्कृष्ट जीवन, आकांक्षाओं से रहित जीवन रहा

है। 'राम काज कीन्हें बिना, मोहि कहाँ विश्राम' यह हनुमान जी का आदर्श है। राम के काज में दिन और रात लगे बिना आप हनुमान जी की पूजा करना चाहते हैं। नहीं साहब! मैं तो हनुमान चालीसा का पाठ करूँगा। भाड़ करेगा हनुमान चालीसा का पाठ, अपने जीवन को सुधारना नहीं चाहता और पाठ करेगा। मित्रो! आप योगाभ्यास का मतलब समझिए। आप जहाँ कहीं भी जाइए, ध्रुव को देख लीजिए, विभीषण को देख लीजिए, हनुमान जी को देख लीजिए, अर्जुन को देख लीजिए, हर एक को देख लीजिए। आप सांसारिक गुरुभक्ति को देखना चाहें तो शिवाजी को देख लीजिए कि समर्थ गुरु रामदास का चेला कैसा हो सकता है? इन सबको आप देख लीजिए।

वास्तविक चेला कौन?

नहीं महाराज जी! मैं तो आपका चेला हूँ। आपसे इसलिए गुरुदीक्षा ली थी कि आपकी कृपा हो जाएगी। कहाँ ली थी गुरुदीक्षा? महाराज जी! जब आप वहाँ कोटा-बूँदी गए थे। हाँ, बेटे! तब ली होगी, लेकिन बेटे! गुरुदीक्षा ले तो इस तरह की ले, जैसे शिवाजी ने समर्थ गुरु रामदास से ली थी। मैं तो ऐसी ही गुरुदीक्षा देता हूँ। नहीं साहब! हम तो आपसे आशीर्वाद माँगने के लिए गुरुदीक्षा लेते हैं। चालाक कहीं का, हमसे आशीर्वाद पाने के लिए दीक्षा लेता है? हमारा तीन साल का तप ले जाना चाहता है और हमें चवन्नी की माला पहनाना चाहता है, धूर्त कहीं का। तू चेला नहीं, हमारा असली गुरु है। इसलिए मित्रो! चेला बनने के लिए आपको इन खेल खिलौनों की बात नहीं करनी चाहिए। आपको शिष्य बनना हो तो मांथाता जैसा शिष्य बनना चाहिए। मांथाता किसका शिष्य बना था? शंकराचार्य का और भगवान बुद्ध का शिष्य बना था अशोक और हर्षवर्द्धन। आप ऐसे शिष्य बनिए, नहीं महाराज जी! आप तो हमारे गुरु हैं? नहीं, बेटे! तू क्या जाने गुरु और चेला। तू बेकार में गुरु और चेला बकता फिरता है। तूने ये दो शब्द कहीं से सुन लिए हैं कि कोई गुरु होता है और कोई चेला होता है, किंतु इनका मतलब नहीं समझता है कि गुरु-चेला का अर्थ क्या है?

बेटे! गुरु और चेला का मतलब होता है—गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसा, रामकृष्ण और विवेकानंद जैसा। महाराज जी! हमें भी विवेकानंद बना दीजिए? हाँ, बेटे! वायदा करता हूँ कि मैं किसी को विवेकानंद बना दूँ, पर पहले तू चेला तो बन। नहीं, महाराज जी! आप

तो वैसे ही विवेकानंद बना दीजिए और अमेरिका का टिकट दिलवा दीजिए और जहाँ कहीं भी स्पीच दूँ, वहाँ की फोटो अखबारों में छपवा दीजिए। बेटे! तू अपनी चालाकी से बाज नहीं आएगा। हाँ, महाराज जी! मैं तो व्याख्यान देकर आऊँगा और फिर नौकरी कर लूँगा। ब्याह-शादी भी अगले साल कर लूँगा और देखिए फिर मैं तीन बच्चे भी पैदा करने वाला हूँ और विवेकानंद भी बनने वाला हूँ। हाँ, बेटे! तू बड़ा होशियार है। सारी होशियारी तो तेरे हिस्से में ही आ गई है। हाँ, महाराज जी! मुझे विवेकानंद बना दीजिए। तुझे, पागल को विवेकानंद बना दें?

पात्रता का विकास करें

मित्रो! क्या करना पड़ेगा? आपको आध्यात्मिकता के उन सिद्धांतों को जीवन में समाविष्ट करना पड़ेगा और अपनी पात्रता का विकास करना पड़ेगा। योग के लिए आपको, अपनी पात्रता और प्रामाणिकता बढ़ानी चाहिए। स्वाति नक्षत्र में पानी की बूँदें सीप में गिरती हैं और उसमें मोती बनता है। हर जगह मोती नहीं बनता। आपको मोती वाली सीप बनना चाहिए और मुँह खोलना चाहिए, ताकि स्वाति की बूँदें आपके अंदर प्रवेश करने में समर्थ हो सकें। बरसात होती है तो किसी बरतन में केवल उतनी ही मात्रा में पानी जमा होता है, जितनी कि उसके पास जगह होती है। आप अपने बरतन का आकार बढ़ाइए, ताकि भगवान की कृपा और भगवान का अनुग्रह और गुरु का आशीर्वाद आपके ऊपर छाया रहे और आप उसको हजम कर सकें तथा उसको धारण कर सकें। धारण करने की ताकत इकट्ठी कीजिए। धारण करने की ताकत नहीं है और दुनिया भर से माँगते फिरते हैं। आप उसे रखेंगे कहाँ पर? नहीं, साहब! आप तो आशीर्वाद दीजिए। बेटे! हम आशीर्वाद तो दे भी दें, पर तू उस आशीर्वाद को रखेगा कहाँ पर? उसे रखने के लिए तेरे पास जगह भी है या नहीं? नहीं, महाराज जी! घी दे दीजिए। अच्छा, बेटे! दे देंगे, लेकिन इसे रखेगा किसमें? महाराज जी! कुरते में ले लूँगा। ठीक है, कुरते में ले-ले घी, लेकिन इससे तेरा कुरता भी खराब हो जाएगा, धोती भी खराब हो जाएगी और घी भी फैल जाएगा। नहीं, महाराज जी! आप तो दे सकते हैं? कैसे दें, लेगा कहाँ? आशीर्वाद को लेने के लिए ताकत चाहिए। हजम करने के लिए शक्ति चाहिए, उसको धारण करने के लिए क्षमता चाहिए। आप अपने भीतर उस क्षमता को पैदा कीजिए, फिर हम दे देंगे आशीर्वाद।

इच्छा भगवान को सौंप दें

मित्रो! पात्रता का विकास यही है, जिसके आधार पर हमारी भक्ति सफल होती हुई चली जाती है। भगवान की नाव पर सवार होकर के हम अपने आप को पार कर सकते हैं। हवा के तरीके से ऊँचे उठते हुए चले जा सकते हैं, लेकिन इसके लिए हमको एक काम करना पड़ेगा। हमको अपनी इच्छाएँ भगवान को सौंपनी पड़ेंगी। आप अपनी इच्छाएँ सौंप दीजिए और भगवान की विरादरी में शामिल हो जाइए और यह कहिए कि अब हमारी कोई इच्छा नहीं है। अब भगवान की इच्छा ही हमारी इच्छा है। आप चलाइए, हम अपने जीवन की नीति का निर्धारण उसी तरीके से करेंगे। हम अपने विचारों का और दृष्टिकोण का नवीनीकरण इस तरीके से करेंगे, जैसे भगवान की, शास्त्रों की, आदर्शों और सिद्धांतों की प्रणाली है। बेटे! हमने यही किया। हम योगी हैं। कौन-सा योग करते हैं? बेटे! हम शीर्षासन करते हैं। अच्छा तो गुरु जी! आप शीर्षासन में सिर के बल चलना शुरू कर देते हैं? नहीं, बेटे! ऐसे तो नट करता है तो फिर आप नाक में से पानी निकालते हैं? नहीं, बेटे! तो फिर आप कैसे योगी हैं? बेटे हम ऐसे योगी हैं कि हमने अपने गुरु को भगवान माना है और उनसे यह कहा है कि आप हुकुम दीजिए और हम आपके साथ-साथ चलेंगे। सारी जिंदगी भर, पचास वर्ष हो गए, पंद्रह वर्ष की उम्र से लेकर के आज सड़सठ वर्ष की उम्र तक हमारे मन में दूसरा कोई ख्याल नहीं आया। एक ही ख्याल आया कि उत्तर की तरफ मुँह करके यह पूछते हैं कि हमारे मार्गदर्शक, हमारे मास्टर हुकुम दें, ताकि हमारी बची हुई हड्डियाँ, बचा हुआ मांस, बचा हुआ रक्त, बचा हुआ भ्रम और हमारी क्षमताएँ आपके काम आ सकें और हम आपके हुकुम के लिए काम आ सकें। इसके अतिरिक्त हम और कुछ नहीं सोचते हैं।

कामनाओं का विसर्जन

मित्रो! उसका परिणाम क्या हुआ? उसका परिणाम यह है कि उनकी शक्तियाँ, उनकी सामर्थ्य, उनका तप, उनकी क्षमता हमारे पास असंख्य मात्रा में उड़ती हुई चली आती है। हमने एक सेर अपना कमाया है तो निन्यानवे सेर गुरु का खाया है। हमारा संबंध उसी रिजर्व बैंक से है। हमारे बैंक में तो पैसा रहता नहीं है, लेकिन हम ड्राफ्ट काट देते हैं, दूसरों को चेक दे देते हैं। कहाँ से

पैसा आ जाता है? रिजर्व बैंक से आ जाता है। हमने अपने आप को रिजर्व बैंक में 'मर्ज' कर दिया है, इसलिए रिजर्व बैंक हमारे 'क्रेडिट' और 'डेबिट' दोनों को संभालता है। इसलिए मित्रो! आप हिम्मत कीजिए, अपने कलेजे को कड़ा कीजिए, बहादुर बनिए और एक चीज त्याग दीजिए, जिसको इच्छा कहते हैं, कामनाएँ कहते हैं। आप अपनी कामनाएँ भगवान के ऊपर मत थोप दीजिए। आप अपनी कामनाएँ खतम कर दीजिए और भगवान

सच्चे आध्यात्मिक व्यक्ति के हृदय में प्रेम, ईमानदारी, सत्यता, उदारता, दया, श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के भाव उत्पन्न होते हैं। ये सब आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। ये मनुष्य की स्थायी शक्तियाँ हैं। इनको प्राप्त करने का उस समय तक प्रयत्न करते रहना चाहिए, जब तक कि समस्त जीवन पूरी तरह इनमें रूँग न जाए। जिस आदमी में सब गुण मौजूद हैं, वास्तव में वही आध्यात्मिक व्यक्ति है। इसी सत्य के आधार पर वह परमात्मा से मिल सकता है। ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग किसी धर्मविशेष या किसी कर्मकांड में सीमित नहीं है, यह तो आत्मा की गंभीरता में विद्यमान है। केवल 'ईश्वर'- 'ईश्वर' रटने वाले धर्मात्मा नहीं होते, वरन् वे ही व्यक्ति धर्मात्मा होते हैं, जो परमात्मा के आदेशों पर अथवा उनके बताए हुए मार्ग पर चलते हैं। धन्य हैं वे, जो परमात्मा का उपदेश सुनते हैं और उसके अनुसार आचरण करते हैं।

की कामनाओं को अपने रोम-रोम में बसाकर के ले जाइए। आप योग्य हो जाइए। अगर आप भगवान में मिल गए, उनकी कामनाओं में शामिल हो गए, अगर आप बूँद की तरह समुद्र में शामिल हो गए, फिर आप भक्ति का कमाल देखिए, भक्ति का चमत्कार देखिए। फिर भगवान की सामर्थ्य का, भगवान की कृपा का चमत्कार देखिए। फिर योगाभ्यास का चमत्कार देखिए।

योग ऐसा ही होना चाहिए। उलटा चलने वाला, नाक में से पानी पीने वाला, पेट में से हवा निकालने वाला योग नहीं है। आप योगी बनिए, फिर उसका मजा देखिए कि उसका क्या फायदा हो सकता है।

दुःखों को सहना, तप करना

साथियो! दूसरा हिस्सा है—तप। तप किसे कहते हैं? बेटे! तप उसे कहते हैं कि कुछ मुसीबतें तो हमारे भाग्यवश आती हैं, परिस्थिति वश आती हैं। कुछ मुसीबतें ऐसी होती हैं, जिन्हें हम सिद्धांतों की वजह से, आदर्शों की वजह से अपने आप बुलाकर स्वीकार करते हैं। इसका नाम है, तप। मुसीबतें किसके पास नहीं आती, बताना जरा? आपमें से किसी के पास मुसीबतें आई? हाँ, महाराज जी! हमारे व्यापार में बहुत घाटा हो गया। आपमें से इन मुसीबतों से कोई बचा हुआ है क्या? कोई एक भी आदमी बताए मुझे। कहा गया है—“रेरे मनुष्यः वदति अतिसुखम्.....।” अर्थात्—अरे मनुष्यो! किंचित तुममें से कोई एक आदमी भी ऐसा हो, जो ये कह सकता हो कि हमने सारी जिंदगी सुख के साथ व्यतीत कर ली, आपमें से कोई हो तो हमें बताओ। एक भी नहीं है। हर एक के ऊपर मुसीबतें आती हैं, आएंगी और आनी चाहिए, क्योंकि सुख जहाँ हमें उन्नति की ओर ले जाते हैं, वहीं दुःख और मुसीबतें हमें सावधानी की ओर ले जाती हैं, सतर्क बनाती हैं, मजबूत बनाती हैं, बहादुर बनाती हैं। हमारे ज्ञान और धर्म को सही करती हैं। दुःख भी अपने आपमें जरूरी हैं। शक्कर भी जरूरी है, नमक और मिरच भी जरूरी है। दोनों के बिना साग नहीं बन सकता।

आदर्शों के लिए करें गरीबी स्वीकार

मित्रो! दुःखों की अपनी उपयोगिता है तो सुखों की अपनी उपयोगिता है, लेकिन जब हम दुःखों को सिद्धांतों के लिए, आदर्शों के लिए इच्छापूर्वक स्वीकार करते हैं, जब हम उन्हें बुलाते हैं कि आप आइए, हम सिद्धांत का जीवन जीना चाहते हैं, आदर्श का जीवन जीना चाहते हैं तो हमें स्वेच्छा से गरीबी मंजूर करनी पड़ती है। गरीबी के बिना आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ नहीं हो सकता। एक गरीबी थोपी हुई होती है और एक गरीबी इच्छानुकूल ली हुई होती है। इसका क्या मतलब होता है? इसका मतलब होता है कि हम अपने आपमें किफायतशाली बनें। कम से कम में, न्यूनतम में, जितनी भी हमारी आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं, उतने में पूरी करें। इसके बाद जो

बाकी हमारे पास पैसा बच जाता है, श्रम बच जाता है, समय बच जाता है, अकल बच जाती है, उन सारी की सारी चीजों को बचत करने के पश्चात उसे भगवान के तई लगाएँ, समाज के तई लगाएँ, श्रेष्ठकर्मों के तई लगाएँ। ये तप कहलाएगा। कैसे कहलाएगा? क्योंकि इसमें आपको मुसीबतें उठानी पड़ेंगी, अपने आप को तंग करना पड़ेगा। आप किफायतशाली बनेंगे तो आपको तंगी आएगी कि नहीं? फिर आपको कैसे अच्छा खाना मिल सकता है, जब आपको यह मालूम पड़ेगा कि हम इस गरीब मुल्लू में रहते हैं, जिसमें मनुष्यों को दोनों वक्त का भोजन नहीं मिलता। फिर आप मक्खन की डिमांड नहीं कर सकते, दूसरी चीजों की डिमांड नहीं कर सकते।

अपने लिए कम औरों के लिए ज्यादा

तप का आरंभ यहीं से होता है, जिसको हम भूखा रहने के माध्यम से शुरू कराते हैं, तप में क्या-क्या नियम पालन करने पड़ते हैं? गायत्री अनुष्ठानों में हम आपको तप के नियम पालने के लिए कहते हैं। हम कहते हैं कि आप तपस्वी बनिए और तप करने के छोटे-छोटे नियम हम आपको बताए देते हैं। जीभ पर काबू रखिए, उपवास कीजिए, भूखे रहिए, ब्रह्मचर्य से रहिए, जमीन पर सोइए, अपने शरीर की सेवा स्वयं कीजिए। ये सारे के सारे तप के नियम हम आपको बताते हैं। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब केवल इतना है कि हम मुसीबतों का स्वेच्छा से अभ्यास करें, तितिक्षा का हम स्वेच्छा से अभ्यास करें। अगर हमें गरीबी में रहना पड़े, कंगाली में रहना पड़े, किफायतशाली में रहना पड़े तो हम कम खर्चे में भी काम चला सकें। तप यहीं से प्रारंभ होता है। तप का दूसरा पक्ष है—‘सादा जीवन, उच्च विचार’। उच्च विचार वही आदमी कर सकता है, जो ‘Simple Living’ में विश्वास करता है। ब्राह्मण के लिए, साधु के लिए यही नियम बताया गया है कि उसे किफायतशाली होना चाहिए, मितव्ययी होना चाहिए, अपरिग्रही होना चाहिए। इसका क्या मतलब है? इसका एक ही मतलब है कि जो कुछ भी आपके पास है, अपने लिए उसका कम से कम इस्तेमाल करें और ज्यादा से ज्यादा समाज को दें।

प्राणवान बनिए, कष्ट उठाइए

मित्रो! तप वहाँ से आरंभ होता है; जबकि हमको भिन्न-भिन्न कामों के लिए कष्ट उठाने के लिए तैयार

रहना पड़ता है। आपने देखा होगा कि अच्छे काम करने वालों को गालियाँ पड़ती हैं। समाज-सुधारकों को रोज गालियाँ पड़ती हैं। स्वामी दयानंद को जहर खिला दिया गया। गांधी जी को गोली मार दी गई। श्रीकृष्ण जी को तीर मार दिया गया। वे सब जिन्होंने समाज की विकृतियों से लोहा लिया, सबको मुसीबतें उठानी पड़ीं। आप स्वेच्छा से तैयार हो जाइए और कहिए कि मुसीबतों आपका स्वागत है, कठिनाइयों आपका स्वागत है। लोग आपको गाली देंगे। गालियाँ देने वालों आपका स्वागत है। बेटे! मैं तो हरदम कहता रहता हूँ कि गांधी के चेलों ने गोलियाँ खाई थीं। आचार्य जी का जो कोई चेला बनना चाहता है, वह कम से कम गालियाँ खाकर के आए। 'बॉस' की गाली खाकर के आए, बीबी की गाली खाकर के आए। पड़ोसी की गाली खाकर के आए। जब आप श्रेष्ठ सिद्धांतों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए खड़े हो गए हों तो जिन-जिन लोगों के स्वार्थों को आघात पहुँचता होगा, वे सब आपकी बुराई करेंगे और ढेरों गालियाँ देंगे, रात को नुकसान कर जाएँगे। 'बॉस' आपका ट्रांसफर करा देगा, करेक्टर रोल खराब कर देगा, जुरमाना करा देगा। मित्रो! आपको मुसीबतें और कठिनाइयाँ उठाने के लिए तपस्वी का जीवन जीना चाहिए। अपने अंदर क्षमताओं का विकास करना चाहिए। आपको उदार बनना चाहिए, दानी बनना चाहिए। आपको प्राणों से भरा होना चाहिए, ताकि आप मुसीबतें उठा सकें।

मैं तो कंगाल बना सकता हूँ

नहीं, महाराज जी! आप तो हमें आमदनी करा दीजिए, बीमा दिलवा दीजिए। नहीं, बेटे! मैं ऐसा नहीं करा सकता। तू अध्यात्म मार्ग पर चलने की हिम्मत करता है तो मैं तुझे कंगाल बना सकता हूँ। देख राजा भर्तृहरि को कंगाल बनना पड़ा, राजा हरिश्चंद्र को कंगाल बनना पड़ा, ध्रुव को कंगाल बनना पड़ा। गोपीचंद्र को कंगाल बनना पड़ा, बुद्ध को कंगाल बनना पड़ा, रामचंद्र जी को कंगाल बनना पड़ा, भरत जी को कंगाल बनना पड़ा। भगवान के भक्तों में से हर एक को कंगाल बनना पड़ा। नहीं, महाराज जी! आप तो हमें अमीर बना दीजिए। नहीं, बेटे! मैं अमीर नहीं बना सकता। अमीर बनने की तेरी इच्छा है तो राम नाम लेना बंद कर, फिर मैं एक और मंत्र तुझे बता सकता हूँ। उसका नाम है, रावण। तू रावण के नाम का जप कर, क्योंकि रावण के पास एक सोने की लंका थी।

बाल-बच्चे भी थे। तू रावण का पाठ किया कर और 'रावणाय नमः-रावणाय नमः' का जप किया कर। इससे शायद लक्ष्मी जी भी आ सकती हैं। पैसा भी आ सकता है। राम के नाम से नहीं आएगा। राम के नाम से तुझे तपस्वी जीवन जीना पड़ेगा। ब्रह्मचारी रहना पड़ेगा और मर्यादाओं का पालन करना पड़ेगा। नहीं, साहब! रामचंद्र जी का जप करूँगा और पैसा कमाऊँगा। बेटे! ऐसा नहीं हो सकता।

तप से आएगी मजबूती

मित्रो! तपस्वी का जीवन जीने के लिए आपको हिम्मत और शक्ति इकट्ठी करनी चाहिए। तपाने के बाद हर चीज मजबूत हो जाती है। कच्ची मिट्टी को

.....
अपने हृदय में प्रेम की अखण्ड ज्योति जगा दो। सबसे प्रेम करो। अपनी भुजाएँ पसारकर प्राणिमात्र को प्रेम के पाश में बाँध लो। विश्व के कण-कण को अपने प्रेम की सरिता से सींच दो। प्रेम वह रहस्यमय दिव्य रस है, जो एक हृदय से दूसरे को जोड़ता है। यह एक अलौकिक शक्ति-संपन्न जादू भरा मरहम है, जिसे लगाते सारे कोढ़-खाज अच्छे हो जाते हैं और बेचैनी के स्थान पर शांति प्राप्त होती है। अपना प्रत्येक कर्म सात्त्विक प्रेम से भर दो। दया व धर्म का पालन करने से तुम्हें अधिकाधिक बल, आनंद और संतोष प्राप्त होगा।

.....
जब हम तपाते हैं तो तपाने के बाद मजबूत ईंट बन जाती है। कच्चा लोहा तपाने के बाद स्टेनलेस स्टील बन जाता है। पारे को जब हकीम लोग तपाते हैं तो पूर्ण चंद्रोदय बन जाता है। पानी को गरम करते हैं तो भाप बन जाता है और उससे रेल के बड़े-बड़े इन्जन चलने लगते हैं। कच्चे आम को पकाते हैं तो पका हुआ आम बन जाता है। जब हम बेल्डिंग करते हैं तो लोहे के दो टुकड़े जुड़ जाते हैं। उस पर जब हम शान धरते हैं तो वह हथियार बन जाता है। बेटे! यह सब गलने की निशानियाँ हैं। आपको अपने ऊपर शान धरनी चाहिए और भगवान के साथ बेल्डिंग करनी चाहिए। आपको अपने आप को

इतना तपाना चाहिए कि आप पानी न होकर स्टीम—भाप बन जाएँ। कौन-सी वाली स्टीम? जो रेलगाड़ी को धकेलती हुई चली जाती है। यह गरमी के बिना नहीं हो सकता। गुरु जी! हम तो मुसीबतों से दूर रहेंगे। आप मुसीबतों से दूर नहीं रह सकते। तपस्वी जीवन, आध्यात्मिक जीवन मुसीबतों से दूर नहीं रखा जा सकता। गुरु जी! आप तो ऐसी कृपा कीजिए कि हमारी जिंदगी शांति से व्यतीत हो जाए। शांति से तेरा क्या मतलब है? शांति से मेरा मतलब चैन से है। नहीं, बेटे! चैन की जिंदगी नहीं हो सकती। संघर्ष करने के बाद, अशांति को नष्ट करने के बाद जब हमको शांति मिलती है, विजयश्री मिलती है, उसी का नाम 'शांति' है। संतोष का नाम शांति है। संतोष श्रेष्ठ काम करने वालों को मिलता है। सफल को भी मिल सकता है, असफल को भी मिल सकता है। गरीब को भी मिल सकता है, अमीर को भी मिल सकता है। आपको तपस्वी बनने के लिए यही करना चाहिए।

योग एवं तप बनें जीवन के अंग

मित्रो! हमने लोगों को यज्ञ की शिक्षा दी है। हम यज्ञ की प्रक्रिया बताते हैं, यज्ञ का प्रचार बताते हैं, यज्ञ का प्रचार करते रहते हैं, गायत्री का प्रचार करते रहते हैं। 'धियो यो नः प्रचोदयात्' की शिक्षा देकर विवेक की शिक्षा देने के लिए, दूरदर्शिता की शिक्षा देने के लिए लोगों को हम योगी बनाते हैं। इसके लिए सवरे आपको यज्ञ कराते हैं, गायत्री मंत्र का अनुष्ठान भी कराते हैं। यज्ञ का प्रचार हम इसलिए करते हैं कि लोगों में यज्ञीयवृत्ति

पैदा हो जाए। यज्ञ में हम अपनी चीजों को हवन कर देते हैं, जला देते हैं, हवा में बिखेर देते हैं। समाज की संपदा बना देते हैं। आग जिस किसी को भी अपने पास पाती है, उसे अपने समान बना लेती है। आग अपना मस्तक नीचे नहीं झुकाती। यज्ञ हमारे इस शरीर में भी चल रहा है। यज्ञ आसमान में भी चल रहा है। पानी बादलों से बरसता है। बादल जमीन में से, समुद्र में से पानी लेकर के बरसते हैं और पानी का यह चक्र चलता रहता है। शरीर में भी चक्र चल रहा है। हाथ बनाते हैं, पेट खाता है। यह चक्र बराबर चल रहा है। इस चक्र को आप कायम रखें। एकदूसरे की मदद करें, एकदूसरे की सेवा करें, एकदूसरे की सहायता करें। हमने आपको तपस्वी बनने के लिए यज्ञ का शिक्षण दिया है। यज्ञ का आंदोलन वास्तव में तपस्या का आंदोलन है, कष्ट सहने का आंदोलन है। खुशी-खुशी से कष्ट सहने के लिए, त्याग और बलिदान करने के लिए, खुशी-खुशी से सेवा करने के लिए, आपके भीतर से प्रेरणा और उमंग उत्पन्न करने के लिए हमने यह आंदोलन चलाया है। इसका अर्थ है—तप। हमने गायत्री मंत्र का विस्तार इसलिए नहीं किया है कि आप मालदार होते हुए चले जाएँ और अमीर होते हुए चले जाएँ। हमने गायत्री मंत्र का विस्तार इसलिए किया है कि आपमें विवेकशीलता और समझदारी की शक्ति का विकास हो। अर्थात्—योग, अर्थात्—गायत्री और तप, अर्थात्—यज्ञ। ये हमारे आध्यात्मिकता के दोनों पहलू हैं, जो आपके व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाते हैं। आज की बात समाप्त। ॐ शांति: ।

एक भला खरगोश था। वह सबकी भलाई करता था और सबके काम आता था। सभी से उसकी मित्रता थी। एक बार वह बीमार पड़ा। बीमारी ऐसी थी, जिसमें वह चल-फिर नहीं सकता था। अस्तु, उसने पास-पड़ोस से किसी प्रकार इतनी घास इकट्ठी कर ली थी कि बीमारी के दिन उसके सहारे किसी प्रकार गुजर सकें।

जानवरों को खरगोश की बीमारी का समाचार मिला तो वे उससे सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए दौड़ पड़े। सभी मीठी-मीठी बातें करते और उसके जल्दी अच्छे होने की कामना करते। साथ-साथ उस खाली समय में खरगोश की जमा की गई घास में भी गुँढ़ मारते जाते। दिनभर ताँता लगा रहता और जमा की गई घास घटती जाती। दो-चार दिन में ही सारी घास समाप्त हो गई। खरगोश की बीमारी तो घटी, पर चारे के अभाव में वह भूख से तड़प-तड़पकर मर गया।



परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी —

साधना में प्राण आ जाए तो कमाल हो जाए - १

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

चेतना की शक्ति

मित्रो! जीवित और मृतक व्यक्ति के बीच का अंतर आपको मालूम है। जीवित और मृतक व्यक्ति के नाम और रूप वही रहते हैं। शक्ल को आप देख लीजिए, वही शक्ल है। पिता जी की मृत्यु हो गई है, हम भी उनके दर्शन करने के लिए आए हैं। अच्छा! तो देख लीजिए, ये वही हैं न? हाँ, वही हैं। मित्रो! मरे हुए पिता जी के अंदर एक और विशेषता पाई जाएगी। उनके अंदर हलचल नहीं होती। जीवित आदमी का दिल धड़कता रहता है, साँस चलती रहती है। फिर भी आप यह मत सोचें कि मरने के बाद में आदमी की हलचलें बंद हो जाती हैं। हलचलें बंद नहीं होतीं। आदमी के भीतर क्या हलचलें शुरू हो जाती हैं? धड़कन के स्थान पर एक नई प्रक्रिया शुरू हो जाती है और उसका नाम है—सड़न। सड़न की एक्टिविटीज बहुत तीव्र गति से चालू हो जाती है, जिस तरीके से हमारा रक्त चलता है, साँसें चलती हैं, उससे भी ज्यादा सड़न की एक्टिविटीज बन जाती है। आदमी का नाम और रूप वही है, लेकिन अब वह कुछ काम नहीं कर सकता।

प्राण-प्रतिष्ठा का महत्त्व

मृत व्यक्ति काम क्यों नहीं कर सकते? क्योंकि इनके अंदर से एक चीज गायब हो गई है और उस चीज का नाम है—चेतना, जिसको चित्शक्ति कहते हैं। चित्शक्ति उनके अंदर से गायब हो गई है और सब चीजें विद्यमान हैं। अब ये कुछ काम कर सकेंगे? नहीं, अब ये कुछ काम नहीं कर सकेंगे। इनकी शक्ति बनी रहेगी, सूरत बनी रहेगी। इनका फोटो भी खिंच सकता है। समाधि भी बन सकती है और सब काम हो सकते हैं, पर ये कुछ कर नहीं सकते। इनसे कुछ फायदा उठाना चाहें तो? कोई फायदा नहीं उठा सकते, क्योंकि ये मरे हुए हैं।

मरे हुए से आप क्या फायदा उठा सकेंगे? अच्छा क्या आप एक बात बता सकते हैं कि मूर्तियाँ, जो मंदिरों में स्थापित रहती हैं और जो दुकानों पर रखी रहती हैं, उन दोनों में क्या फरक है? जो मूर्तियाँ दुकानों पर रखी रहती हैं और जो मंदिरों में स्थापित रहती हैं, उन दोनों के शक्ल में कोई फरक नहीं है। दोनों की मूर्तियाँ एक हैं, किंतु उनमें एक फरक पड़ जाता है। एक मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है और एक की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती। दुकानदारों के यहाँ, मूर्ति बेचने वालों के यहाँ, ढेरों मूर्तियाँ पड़ी रहती हैं। कहीं हनुमान जी उलटे पड़े हैं, लक्ष्मी जी सीधी पड़ी हैं, गणेश जी तिरछे पड़े हैं। सब के सब उलटे-पलटे पड़े हैं। कूड़ा-कचरा पड़ा है तो क्या? सफाई हो गई तो क्या? कोई फरक नहीं पड़ने वाला है। वे नाराज भी नहीं हो सकते, क्योंकि उनके अंदर प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हुई है।

जीवंतता का संचार

मित्रो! प्राण-प्रतिष्ठा करने के बाद क्या हो जाता है? फिर वो मूर्ति जीवंत हो जाती है। देवताओं के तरीके से उसका भोजन का प्रबंध करना पड़ता है, आरती का प्रबंध करना पड़ता है, सोने-जागने का प्रबंध करना पड़ता है। नहीं करेंगे तो देवता नाराज हो सकते हैं। मूर्तियों में श्रद्धा रखने वालों के लिए देवता चमत्कार दिखा सकते हैं। मूर्तियों के चमत्कार? हाँ, मूर्तियों के भी चमत्कार होते हैं। श्रद्धा हो तो, उसके समीप जाने से हमको निश्चित रूप से शांति तो मिलती ही है। क्यों साहब! यह सब कब मिलेगा? जब देवता के अंदर प्राण-प्रतिष्ठा हो जाएगी और अगर प्राण-प्रतिष्ठा न हो तब? तब बेटे! कुछ नहीं हो सकता। प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हुई है तो मूर्ति कुछ नहीं कर सकती। तब यह मूर्ति एक खिलौना है। दुकानदारों के यहाँ ये पड़ी रहती हैं। इनमें कोई चमत्कार नहीं होता; जबकि शक्ति वही है। प्राण-प्रतिष्ठा से मेरा क्या मतलब है, अब आप समझ गए होंगे।

अभी मात्र हलचलें जानी हैं

मित्रो! मैं ये कह रहा था कि इस शिविर में जो हमने समग्र कर्मकांड कराया है और आपको सिखाया है, उसकी अब प्राण-प्रतिष्ठा होनी चाहिए। उसके अंदर प्राण होने चाहिए, नहीं तो उसकी शक्ल बनी रहेगी, कलेवर बना रहेगा, उसका स्वरूप बना रहेगा, हलचल बनी रहेगी, किंतु आपको उससे कोई खास फायदा नहीं हो सकेगा। दुनिया में सब काम चलते रहते हैं। भौंरा या लट्टू घूमता रहता है, पर घूमते रहने से उसमें प्राण नहीं। जिस तरीके से ताश के पत्ते खेलने वाले कभी बेगम काट देते हैं, कभी गुलाम काट देते हैं तो कभी बादशाह काट देते हैं। तो क्या यह डबल हत्या नहीं हो गई? मुकदमा नहीं चलेगा? नहीं, क्योंकि यह पत्तों का बादशाह था। पत्तों का बादशाह कैसा होता है, जिसमें नाम और रूप तो है, पर जान नहीं है। पत्तों का गुलाम भी मरा हुआ है, बेगम भी मरी हुई है और बादशाह भी मरा हुआ है। तीनों मरे हुए हैं। बेजान होने की वजह से न तो कोई मुकदमा चल सकता है, न कोई हुकूमत मिल सकती है और न कोई दौलत मिल सकती है। तो क्या हो जाएगा? केवल मनोरंजन हो जाएगा। इसीलिए हम आपसे यह कह रहे थे कि आप एक काम और कर लें तो मजा आ जाए। अभी आपने नाम और रूप जान लिया। उसके क्रिया-कृत्य अर्थात् हलचलें जान लीं। हलचलें किसे कहते हैं? आचमन कैसे करना चाहिए? प्राणायाम कैसे करना चाहिए? माला कैसे घुमाना चाहिए? हवन और आरती कैसे करना चाहिए, आदि क्या हैं? ये हैं हलचलें।

कर्मकांडों में प्राण आ जाए

नाम और रूप क्या है? नाम और रूप वो है—गायत्री माता का रूप है। अनुष्ठान नाम है, जप नाम—रूप है और हलचल क्रिया-कृत्य हैं। ये तीनों के तीनों इसमें विद्यमान हैं। आपने तीन इम्तिहान पास कर लिए। अब आपको हक है कि आप यह पूछ लें कि इसके चमत्कार हमको मिलने चाहिए। बेटे! चमत्कार आपको जरूर मिलेंगे, अगर आप एक काम कर सकें तब। कौन सा काम? इन तारु जी को जिंदा कर दीजिए, जो मरे पड़े हैं। मरे हुए से क्या मतलब है? इनमें जान नहीं है। अगर इनमें आप जान पैदा कर सकें तो मजा आ जाए। जान से क्या मतलब है? जान से मेरा मतलब यह है कि आप प्रत्येक कर्मकांड को जीवंत कर दें। जीवंत कैसे करते

हैं? यही तो आज मैं आपको बता रहा हूँ। आपको हमने उपासना के नाम पर, जो कर्मकांड बताए हैं और जो आपने सीखे हैं, वे बहुत काम के हैं। और सिखा दीजिए? बेटे! जो आपने सीख लिया, वह काफी है। हमने आपको इतना ज्यादा सिखा दिया है कि मैं सोचता हूँ कि इससे ज्यादा सीखने की आपको कतई जरूरत नहीं है। कोई जरूरत पड़ेगी तो हम आपको और सिखा देंगे। अभी हम जिंदा हैं। आपने अभी जो सीखा है, उसको कंपलीट कर लें। सब चीजें अधूरी, कोरी, सब चीजें गूँगी-बहरी, सीखने की अपेक्षा यह अच्छा है कि आप थोड़ी चीजें करें, लेकिन उन्हें सही तरीके से, जीवंत रूप में करें। सफलता का यही रहस्य है।

पंचकोश हैं पंचदेव

अच्छा महाराज जी! कुछ और सिखा दीजिए। क्या सिखा दें बेटे? पंचकोशों की उपासना सिखा दीजिए। जरूर सिखा देंगे। अन्नमय से लेकर प्राणमय, मनोमय से लेकर विज्ञानमयकोश तक सब सिखा देंगे, आप निश्चित रहें। हमको यह विद्या आती है। अभी हम यहीं रहेंगे और जब मर जाएंगे तो आपके लिए हम किसी ऐसे आदमी का इंतजाम करके छोड़ जाएंगे, जो आपको पंचकोशों की उपासना सिखा सके। हमारे-आपके भीतर, जो पाँच देवता रहते हैं, वह उन्हें जाग्रत करा सके। पाँच देवता कहाँ रहते हैं? बेटे! हमारे भीतर रहते हैं। नहीं साहब! बाहर रहते हैं। आपकी बात भी सही है, लेकिन हमारी बात और ज्यादा सही है। आपकी बात कैसे सही है? आपने क्या देखा है? हमने बादल बरसते देखे हैं। बादल जब बरसते हैं तो पानी गिरता है और उससे अनाज पैदा होता है। आपकी बात बिलकुल सही है, जिसे हम कतई नहीं काट सकते। देवता ऊपर से बरसते हैं, भगवान ऊपर से बरसते हैं, सिद्धियाँ ऊपर से बरसती हैं, चमत्कार ऊपर से बरसते हैं। अनुग्रह ऊपर से बरसते हैं और सिद्ध पुरुषों द्वारा, देवताओं द्वारा बरसते हैं। आपकी इस बात से भी मैं सहमत हूँ, लेकिन बेटे! आप भी मेरी एक बात से सहमत हो जाइए। आपकी कौन सी बात है? हमारी बात यह है कि बादल समुद्र में से पैदा होते हैं। नहीं साहब! बादल तो ऊपर से सूरज पर से आते हैं। नहीं बेटे! बादल ऊपर से नहीं आते। दिखाई तो पड़ते हैं कि बादल ऊपर से आते हैं और बरस जाते हैं, पर वास्तविकता यह नहीं है।

व्यक्तित्व में से उछलता है यह वैभव

मित्रो! वास्तविकता यह है कि जमीन में पानी भरा हुआ है और वह ऊपर को छलाँग मारता है। यद्यपि वह छलाँग मारता दिखाई तो नहीं देता। अगर आप समुद्र के नजदीक गए होते तो आपको दिखाई पड़ता कि समुद्र में से किस तरीके से पानी ऊपर को छलाँग भर-भरकर मारता है। बस, बादल बन जाते हैं। आपने तो केवल बादलों को बरसते देखा है, लेकिन समुद्र के पानी को गरम हो करके उछलते नहीं देखा। अगर आपने देखा होता तो आपका बहम दूर हो जाता। फिर आप ये कहते कि बादल ऊपर से नहीं आते, नीचे से निकलते हैं। देवता कहाँ से निकलते हैं? ऊपर से निकलते हैं, बरसते हैं। आपकी बात सही है, लेकिन हमारी भी बात मानिए कि देवता भीतर से उछलते हैं। देवता कहाँ से उछलते हैं? मनुष्य के व्यक्तित्व में से उछलते हैं। जिन पाँच पांडवों का जिक्र किया गया है कि कुंती ने पाँच पांडव पैदा किए थे। ये तो मैं नहीं कहता कि देवताओं ने वरदान नहीं दिए होंगे, लेकिन हाँ, वे पाँचों देवता कुंती के पेट में से पैदा हुए थे। इनमें से एक सूर्य का बेटा था तो एक इंद्र का बेटा था। अच्छा तो ये सब के सब ऊपर से आए होंगे? जरूर आए होंगे, लेकिन कुंती के पेट में से पैदा हुए थे। देवता श्रेष्ठ व्यक्तित्व में से बरसते हैं, पैदा होते हैं।

क्यों साहब! देवता किसी के पेट में आ सकते हैं? नहीं बेटे! देवता हर किसी के पेट में नहीं आ सकते। किसी खास किस्म के आदमी के पेट में ही आते हैं। उस तरह का पेट पैदा कर लेना, जिसमें देवताओं के बैठने की जगह हो और देवता उसमें विराम पा सकें, प्रकट हो सकें। इसी का नाम साधना है। आप इस बात को एक बार फिर समझ लेना। चलते-चलते आप इस बात को एक बार फिर से हृदयंगम करके जाना कि देवताओं की मिन्नतें करना, देवताओं की खुशामदें करना, देवताओं की चापलूसी करना, देवताओं की मनौती मनाना, देवताओं को अपने पक्ष में कर लेना कतई साधना नहीं है। बेटे! ऐसी कोई साधना नहीं है, जिसमें देवताओं को वरगलाया जा सके। मैंने सारे शास्त्रों को पढ़ डाला है, अध्यात्मवेत्ताओं को पढ़ डाला है

साधना का मर्म

यदि ऐसा रहा होता तो किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन को परिष्कृत न करना पड़ता, साधना नहीं करनी

पड़ती, संयम नहीं करना पड़ता, तप नहीं करना पड़ता, योगाभ्यास नहीं करना पड़ता और अपने आप को परिष्कृत करने की कतई जरूरत न होती। वे देवताओं को पकड़ने की जुर्रत अपने आप करते रहते कि लक्ष्मी जी को ऐसे पकड़ेंगे, हनुमान जी को ऐसे पकड़ेंगे, संतोषी माता को ऐसे पकड़ेंगे। इनको पकड़ने और गिरफ्तार करने का धंधा चलता रहता। आदमी को श्रम न करना पड़ता। सही बात ये है कि जितने भी ऋषि हुए हैं, जितने भी साधक हुए हैं, जितना भी साधकों का इतिहास है कि जब से जमीन बनी है, तब से लेकर आज तक उसमें से एक भी साधक हमको ऐसा दिखाई नहीं पड़ता, जिसने अपने आप को परिष्कृत न किया हो। अपने आप को धोया न हो। अपने आप को संजोया न हो। साधना का वास्तविक अर्थ आप समझ पाएँ तो आप धन्य हो जाएँ और मैं धन्य हो जाऊँ। साथ ही साथ आप यह विश्वास करें कि हमारी साधना निष्फल नहीं जाएगी तो आपकी सफलता का मार्ग खुल जाएगा।

जीवन देवता की साधना क्यों नहीं की

मित्रो! अब तक मैं ये कहता रहा हूँ कि आचार्य जी के दरबार में आकर के कोई आदमी खाली हाथ नहीं जाएगा। अहंकार? अहंकार नहीं बेटे! ये वास्तविकता है। हमने किसी भी आदमी को खाली हाथ नहीं जाने दिया है। कोई भी आदमी यहाँ आकर के देख ले कि आचार्य जी के यहाँ नौ दिन तक रह करके हम खाली हाथ आए? नहीं बेटे! हमारे लिए शर्म की बात है, कलंक की बात है। आप हमारे यहाँ आएँ और खाली हाथ चले जाएँ, ऐसा नहीं हो सकता। एक बात मैं फिर आपसे कहता हूँ कि किसी की भी साधना निष्फल नहीं जाती। शर्त एक ही है कि आपने साधना की हो। साधना आप किसकी करते हैं? कभी पत्थर की करते हैं, कभी खिलौने की करते हैं। कभी मूर्ति की करते हैं, कभी प्रेत की करते हैं। कभी देवी की तो कभी देवता की। असल में आपको जो साधना करनी चाहिए थी, उसकी आप करते नहीं। आपके अपने भीतर जो देव रहता है, जिसका नाम है—आत्मदेव। जो अंतर्ज्योति हमारे भीतर जलती है, उस अंतर्ज्योति की साधना करने का आपने प्रयत्न किया होता तो जितना प्रयत्न आपने अब तक उपासना के लिए किया है, मैं आपको यकीन दिला सकता हूँ कि आपकी साधना सफल होती। मैं देवताओं की साक्षी

देकर कह सकता हूँ और शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि अगर आपने वो कृत्य किया होता, दिशाओं को मोड़ दिया होता। दिशाओं को अपने अंदर केंद्रीभूत किया होता तो आपको अध्यात्म के सच्चे लाभ मिलते।

अध्यात्म की परिभाषा

मित्रो! अध्यात्म की परिभाषा क्या है? आप जानते हैं? अंतर्मुखी जीवन को अध्यात्म कहते हैं। आप तो इसे समझते ही नहीं हैं कि अंतर के जीवन को अध्यात्म कहते हैं। अध्यात्म का क्या अर्थ होता है? साइंस ऑफ सोल (Science of Soul) होता है। जिसका अर्थ है— अंतरंग जीवन का परिष्कार। अगर आपने अपने अंतरंग जीवन का परिष्कार किया होता तो आपको साधना का वह विज्ञान हाथ लग गया होता, जो चिर पुरातन है। हम पुरातन को नवीन के साथ जोड़ना चाहते हैं। आपकी साधना को हम उसी स्तर पर ले जाना चाहते हैं, जिसमें कि प्राचीनकाल के साधक, ऋषि और संत जिस आधार पर अपने आप को परिष्कृत करते थे। इसमें कभी वैक्यूम अर्थात् खालीपन नहीं रह सकता। आप गंदी हवा निकाल दीजिए, दूसरी अच्छी हवा उसकी जगह पकड़ लेगी। गंदी हवा निकाल दीजिए, नई आ जाएगी। नहीं साहब! गंदी हवा कैसे निकालें? बेटे! तू गंदी हवा को निकाल दे, नई हवा हम दे देंगे। नहीं साहब! हमको नए विचार दे दीजिए। नई भक्ति दे दीजिए। हमको शांति दे दीजिए। आप क्या चाहते हैं, बोलिए? अच्छा एक काम आप कर दीजिए, एक काम हम कर देंगे। आपके लिए हम भक्ति लाकर दे देंगे, भक्ति हमारे पास सुरक्षित है। सुरक्षित नहीं होगी तो हम भगवान से प्रार्थना करेंगे कि आपको भक्ति दें। वह जरूर दे देंगे, नहीं होगा तो हम अपने में से काटकर दे देंगे।

अपनी पात्रता विकसित कर लें पहले

मित्रो! एक बार फिर समझ लीजिए कि आप शक्ति पाने से पहले स्वयं शक्ति हैं। आपके अंदर नई शक्ति जरूर आ जाएगी। नहीं साहब! नहीं आएगी। नहीं आएगी तो हम आपको यकीन दिलाते हैं कि हमारे गुरु ने हमको शक्ति दे दी है और हम आपको दे देंगे। महाराज जी! शांति लाइए। हाँ बेटे! शांति से कहेंगे कि हे देवी! यह आपको बुलाते हैं तो शांति चली आएगी। क्यों भाई! किस काम के लिए बुलाते हैं? या ऐसे ही मेहरबानी चाहते हैं? तो शांति आपको मिल जाएगी। क्यों साहब! नहीं आई तब? बेटे! शांति हमारे पास है। अपनी शांति

में से एक हिस्सा काटकर आपको दे देंगे। आप यकीन कीजिए। बाप अपने बेटे को अपनी संपदा काटकर दे सकता है! हम आपको अपना पुण्य काटकर दे देंगे। आप एक काम कर लीजिए, अपना परिष्कार कर लीजिए और अपनी पात्रता को विकसित कर लीजिए। साधना उसी के लिए है, अनुष्ठान उसी के लिए है।

पात्र का महत्त्व समझें

अच्छा, आप बताइए कि जो चीज आपको मिलेगी, उसको आप रखेंगे कहाँ? अच्छा बताइए हम आपको घी दे देंगे। आइए साहब! मेरे पास घी रखा हुआ है। गरमागरम बहुत ताजा घी है। एक किलो घी मिलेगा, आप भी ले जाइए। हाँ साहब! लाइए। हाँ बेटे! ले जाओ, लेकिन आप लेंगे किसमें? पात्र कहाँ है। हाथ में लेंगे। ठीक है, हाथ में ले लीजिए। क्या हुआ? उँगलियों के बीच के सूराख में से सब घी टपक गया। कुरते पर टपका तो कुरता खराब हो गया। धोती पर टपका तो धोती खराब हो गई। पैर पर टपका तो पैर खराब हो गया। अब साबुन लाइए। अरे भाई! यह आपसे नहीं साफ होगा, धोबी को देना पड़ेगा। इसमें घी लग गया है। वह तेजाब से धुलेगा। बारह आने धुलाई के देने पड़ेंगे। कपड़े की लाइफ भी तेजाब के कारण कम हो जाएगी। साहब! बहुत नुकसान हो गया। बारह आने धुलाई कुरते की, बारह आने धोती की, डेढ़ रुपया हो गया और चार रुपये की धोती की जिंदगी भी कम हो गई, चार रुपये की कुरते की जिंदगी कम हो गई, सो अलग। नुकसान कितना हुआ? आठ रुपये और डेढ़ रुपया कुल साढ़े नौ रुपये हो गए। हमारा घी भी गया और आपका नुकसान हो गया सो अलग और आपको शिकायतें पैदा हो गईं सो अलग। आपने हमें गालियाँ दीं सो अलग। क्या गालियाँ दीं? आपको समझ नहीं थी तो फिर आपने हाथ में घी क्यों दे दिया। आप तो बड़े बूढ़े हैं, बुजुर्ग हैं। आपकी अक्ल कहाँ चली गई थी? आपने क्यों दिया? हमको गालियाँ पड़ीं और आपका घी चला गया।

क्यों रे अभागे! घी लेने ऐसे ही चला गया था? हाँ साहब! ऐसे ही चला गया था। नहीं बेटे! ऐसे मत जाना घी लेने के लिए। अगर आपको लेना हो तो एक चीज का इंतजाम करना और उसका नाम है—पात्र। पात्र—बरतन लेकर जाना। बरतन नहीं हो तो मत जाना। क्यों साहब! गाय का दूध देंगे। हाँ देंगे। यह कितना दूध देती है? छह किलो दूध देती है। सुबह छह किलो और शाम

को छह किलो। तो लाइए सब दूध दे दीजिए। लीजिए साहब! दूध तैयार है—धर....धर....धर...। क्या हो गया। अरे, सारा दूध जमीन पर चला गया। आपके हाथ पर? हमारे हाथ पर नहीं पड़ा। क्यों? पात्र था आपके पास? नहीं साहब! पात्र नहीं था। तब फिर आप किसमें दूध लेंगे। गाय का कसूर है? नहीं, गाय का कसूर नहीं है। वह तो बिलकुल शुद्ध और ताजा दूध देती है, पर हमारे पास पात्र ही नहीं है। बेटे! बिना पात्रता के कुछ भी नहीं मिलता और यदि मिल भी जाए तो टिकता नहीं।

शिष्य हैं कहाँ अब?

मित्रो! देवताओं की कृपा हम आपको दिलाएँगे, पर आप उसे रखेंगे कहाँ? आप रखने वाली चीज का इंतजाम कर लीजिए, बाकी सब चीजें बहुत सरल हैं। जिन चीजों के लिए आप हैरान हो रहे हैं, वो कुछ कठिन नहीं हैं। वह सरल हैं। माँगने वाले भी बहुत हैं और देने वाले उससे भी ज्यादा हैं, खासकर आध्यात्मिक क्षेत्र में। आध्यात्मिक क्षेत्र में विद्यार्थियों की कमी है, मास्टरों की कमी नहीं है। नहीं साहब! मास्टर कम हैं। मास्टर कम हैं तो आप वहाँ चले जाइए गुरुकुल कांगड़ी में और वहाँ देख करके आइए। ये कौन से क्लास में पढ़ रहे हैं? साइकोलॉजी में एम० ए० कर रहे हैं। साइकोलॉजी में कितने विद्यार्थी हैं? साहब! दो विद्यार्थी हैं और मास्टर कितने हैं? तीन मास्टर हैं। धत तेरे की....ये क्या हुआ? अरे बेटे! विद्यार्थी कहाँ हैं दुनिया में। आध्यात्मिक क्षेत्र में तो खासकर विद्यार्थी नहीं हैं। नहीं साहब! हम गुरु की तलाश कर रहे हैं। गुरु की तलाश कर रहा है कि शिष्यों की तलाश कर रहा है। शिष्य नहीं हैं बेटे! शिष्य दुनिया से गायब हो गए हैं। अगर दुनिया में से शिष्य गायब न हुए होते तो गुरु धन्य हो गए होते।

साथियो! दुनिया में शिष्यों का अभाव है। रामकृष्ण परमहंस के पास ढेरों के ढेरों लोग जाते थे। कौन जाते थे? शिष्य जाते थे, लेकिन कोई सच्चा शिष्य नहीं मिला। कोई एक मिल गया तो गुरु धन्य हो गए और नाचने लगे, कूदने लगे, निहाल हो गए। गुरु मिलना बड़ी बात है, लेकिन चेला मिलना बहुत मुश्किल की बात है, जब कभी कोई ऐसा चेला मिल जाता है तो गुरु धन्य हो जाते हैं। आप समझते नहीं हैं इस बात को। ईसामसीह धन्य हो गए। कब धन्य हो गए? जब उनको सेंटपॉल मिल गए। सेंटपॉल कौन थे? सेंटपॉल ईसा से तीन सौ वर्ष बाद पैदा हुए थे। उन्होंने सारी की सारी क्रिश्चियनिटी

को नए ढंग से विस्तारित किया है। उन्होंने मर्कस से लेकर बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट और न्यू टेस्टामेंट का नए सिरे से डिवीजन किया। ईसाई धर्म का, जो वर्तमान स्वरूप है, वह सेंटपॉल का दिया हुआ है। सेंटपॉल को पा करके ईसा धन्य हो गए। यह तो मैं नहीं कहता कि ईसा को पा करके सेंटपॉल धन्य नहीं हुए, लेकिन मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि सेंटपॉल जितने प्रसन्न हुए

मनुष्य जन्म की सार्थकता तथा श्रेष्ठ समाज की रचना के लिए जनजीवन में गुणों का समावेश होना आवश्यक है। मनुष्य का बुद्धि-भ्रम उसे गुणों का संग्रह नहीं करने देता, अन्यथा मानव प्रकृति के साथ गुणों का समावेश स्वाभाविक ही है। इस भ्रांति के कारण मनुष्य गुणों का लाभ, उनका फल तो चाहता है, परंतु गुणों का विकास अपने जीवन में करने की मुख्य शर्त की उपेक्षा कर जाता है। यही भूल उसके जीवन की विडंबना का कारण बन जाती है। जो व्यक्ति और सामाजिक गुणों के विकास और व्यवहार को महत्त्व देते हैं, वे सब प्रकार सुख-संपत्ति से युक्त देखे जाते हैं।

जीवन में गुणों के विकास के अनेक मार्ग शास्त्रों और विद्वानों द्वारा सुझाए जाते रहे हैं। उन मार्गों में श्रेष्ठ-गुण संपन्न महामानवों के जीवन का अध्ययन तथा उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करना भी एक अति महत्त्वपूर्ण मार्ग है। इस प्रक्रिया को समय और परिस्थिति भेद से सत्संग, कथा, मनन, चिंतन, स्वाध्याय आदि भी कहा जाता है। ईश्वर स्वयं सद्गुणों का पुंज है। अस्तु, ईश्वरोपासना भी गुण संवर्द्धन का एक अनूठा और अति प्रभावशाली मार्ग है।

होंगे ईसा की कृपा पा करके, ईसा उससे कम प्रसन्न नहीं हुए होंगे सेंटपॉल को पा करके।

गुरु को पाकर हम निहाल

मित्रो! हम अपने गुरु को पा करके बड़े प्रसन्न हैं। क्यों? क्योंकि हमको एक सामर्थ्यवान सत्ता मिल गई है, जो कि समय-समय पर पिछले पचपन साल से दिन-रात हमारी सहायता कर रही है। हम धन्य हैं। कौन करता है किसी की सहायता? जरूरत पड़ती है तो इतनी अक्ल हम कहाँ से लाते? इतनी बुद्धि कहाँ से लाते, जिससे वेदों का भाष्य करते। वेदों का भाष्य चार आदमियों

ने किया है, पाँचवा आदमी अभी तक दुनिया में नहीं हुआ है। कौन नहीं हुआ है? एक आदमी का नाम था—सायण। एक का नाम था—उब्वट। एक का नाम था—महीधर और एक का नाम था—रावण। प्राचीनकाल के केवल चार भाष्यकार हुए हैं। अब और कोई भाष्यकार हो सकते हैं? नहीं बेटे! वेदों का भाष्य करना बहुत

कठिन कार्य है। यह अक्ल हम कहाँ से लाए? यह हमारे गुरु की कृपा थी। अटारह पुराणों के भाष्य हमने किए? नहीं बेटे! हमने नहीं किए। हमारी अक्ल नहीं है, वह तो कराने वाला कोई और है, जो यह सब कराता रहता है और कठपुतली की तरह हम उसके इशारे पर नाचते रहते हैं। (क्रमशः)

देव संस्कृति विश्वविद्यालय

गायत्रीकुंज—शांतिकुंज, हरिद्वार (उत्तरांचल) २४९४११

प्रवेश सूचना

सर्टिफिकेट कोर्स (६ माह)

- योग विज्ञान (Yogic Sciences)
- समग्र स्वास्थ्य प्रबंधन (Holistic Health Management)
- धर्मविज्ञान (Theology)
- ग्राम प्रबंधन (Rural Management)
- एप्लाइड योग एवं हेल्थ (Applied Yoga & Health)

उपर्युक्त समस्त पाठ्यक्रमों की प्रवेश परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए निर्देश पुस्तिका एवं आवेदन पत्र रु० ५०/- के नगद भुगतान पर कुलसचिव कार्यालय से प्राप्त किए जा सकते हैं। डाक द्वारा आवेदन पत्र मँगाने हेतु अपना प्रार्थना पत्र कुलसचिव, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज, हरिद्वार के नाम देय रु० १००/- के ड्राफ्ट के साथ भेजें।

प्रवेश के लिए अर्हता, चयन प्रक्रिया एवं अन्य जानकारी हेतु निर्देश पुस्तिका एवं विश्वविद्यालय की वेबसाइट www.dsvv.org का अवलोकन करें।

महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

- | | |
|--|---------------------------------|
| १. पाठ्यक्रमों की घोषणा एवं आवेदन पत्रों का प्रदाय | ○ २५ अक्टूबर, ०६ |
| २. भरे हुए आवेदन पत्र प्राप्त करने की अंतिम तिथि | ○ १० दिसंबर, ०६ |
| ३. प्रवेश परीक्षा (प्रातः १० से ०१:०० बजे तक) | ○ २४ दिसंबर, ०६ |
| ४. लिखित प्रवेश परीक्षा परिणामों की घोषणा | ○ २५ दिसंबर, ०६ |
| ५. साक्षात्कार (पूर्वान्ह ११.०० बजे से प्रारंभ) | ○ २६ दिसंबर, ०६ |
| ६. प्रवेश हेतु चयनित अभ्यर्थियों की घोषणा | ○ २७ दिसंबर, ०६ |
| ७. मेडिकल परीक्षण | ○ २७-२८ दिसंबर, ०६ |
| ८. प्रवेश पाने की तिथियाँ | ○ २८-२९ दिसंबर, ०६ |
| ९. परिचय सत्र | ○ ३० दिसंबर, ०६ से ०१ जनवरी, ०७ |
| १०. ज्ञानदीक्षा समारोह | ○ ०२ जनवरी, ०७ |
| ११. सत्रारंभ | ○ ०३ जनवरी, ०७ |

दूरभाष: ९१-१३३४-२६२०९४, २६१३६७, २६१४८५.

एक्सटेंशन: ४०५, ४३९, ४०१

वेबसाइट: www.dsvv.org

कुलसचिव